सचित्र

प्रश्नव्याकरण सूत्र

प्रवर्तक श्री अमर मुनि

Illustrated

PRASHNAVYĀKARAN SUTRA

Pravartak Shri Amar Muni

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नव्याकरण सूत्र

प्रश्नव्याकरण अर्थात् प्रश्नों का व्याकरण समाधान, उत्तर।

मानव मन में सदा से यह प्रश्न उठता रहा कि राग-द्वेष जनित वे कौन-से भयंकर विकार जो आत्मा को मलिन करके दुर्गति में ले जाते हैं अ इनसे कैसे बचा जाए? इन प्रश्नों के समाधा स्वरूप प्रश्नव्याकरण सूत्र में मन के इन विकारों व विस्तृत वर्णन किया गया है। इन्हें आगम की भाषा आश्रव कहते हैं। ये आश्रव हैं—**हिंसा, असत्य चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह**। इन आश्रवों व स्वरूप और उनसे होने वाले दुःखों को इस सूत्र भलीभाँति समझाया गया है।

साथ ही इन पाँच आश्रवरूपी शत्रुओं बचने हेतु **अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य** ए **अपरिग्रह**—यह पाँच संवर बताये गये हैं। सवंर भावित आत्मा, राग-द्वेष जनित विकारों से दूर रहत है।।

आश्रव-संवर वर्णन में ही समग्र जिन प्रवच का सार आ जाता है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में आश्रव और संवर क विशेष विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

PRASHNAVYĀKARAN SUTRA

Prashnavyākaran means the gramma of questions, solution and answer.

Human mind is always faced with th question that what are those terribl perversions caused by attachment an aversion that tarnish the soul and push it to tormenting rebirth, and how to avoid them In order to answer these question *Prashnavyākaran Sutra* starts by givin detailed description of these perversions. I Agamic terms they are called Aashravas They are — **violence, falsity, stealing non-celibacy and covetousness.** Thi Sutra vividly explains the definitions o these Aashravas and the miseries caused b them.

In order to protect oneself from thes five Aashravas, the tormenters of mind, fiv Samvars have been defined. They are — **Ahimsa, truth, non-stealing, celibac and non-covetousness**. A soul energize by Samvar remains free of the perversion caused by attachment and aversion.

The descriptions of Aashrava an Samvar encapsulate the gist of the whol sermon of the Jina.

Prashnavyākaran Sutra has a vivid an lucid elaboration of Aashrava and Samvar.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र

प्रश्नव्याकरण सूत्र

प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

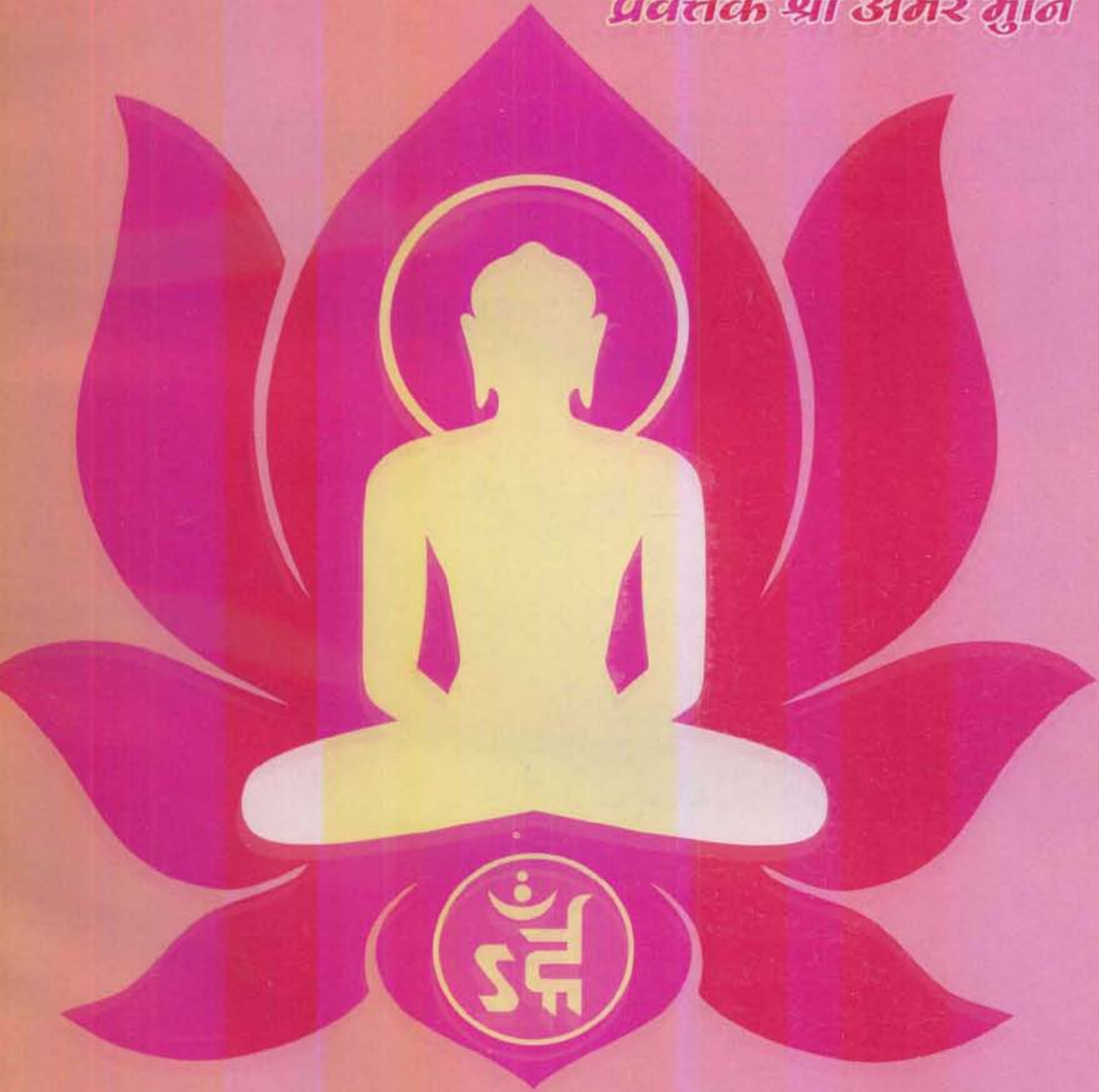

PRASHNAVYĀKARAN SUTRA

Pravartak Shri Amar Muni

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम गणधर भगवत् सुधर्मा स्वामी प्रणीत दसवाँ अंग

सचित्र
प्रश्नव्याकरण सूत्र

मूल पाठ, हिन्दी-अंग्रेजी भावानुवाद, विवेचन तथा रंगीन चित्रों सहित

प्रधान सम्पादक

जैनधर्म दिवाकर उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक

श्री अमर मुनि जी

सह-सम्पादक

श्री वरुण मुनि "अमर शिष्य"

श्री संजय सुराना

अंग्रेजी अनुवादक

श्री राजकुमार जैन

प्रकाशक

पद्म प्रकाशन, पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-40

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राष्ट्रसंत उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक अनंत उपकारी गुरुदेव
भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. सा. की आठवीं पुण्यतिथि के पावन अवसर पर प्रकाशित

सचित्र आगम माला का बावीसवाँ पुष्प

- सचित्र प्रश्नव्याकरण सूत्र

- *प्रधान सम्पादक :*
  जैनधर्म दिवाकर उ. भा. प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी

- *सह-सम्पादक :*
  श्री वरूण मुनि "अमर शिष्य"
  श्री संजय सुराना

- *अंग्रेजी अनुवादक :*
  श्री राजकुमार जैन

- *प्रथम आवृति :*
  वी. नि. सं. २५३४, वि. सं. २०६४, चैत्र
  ईस्वी सन् २००८, मई

- *चित्रकार :*
  डॉ. त्रिलोक शर्मा

- *प्रकाशक :*
  पद्म प्रकाशन
  पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

- *मुद्रक :*
  संजय सुराना
  श्री दिवाकर प्रकाशन
  A-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
  फोन : ०५६२-२८५११६५, मो. : ९३१९२०३२९१

- *मूल्य :*
  छह सौ रुपया मात्र (६००/- रुपये)

© *सर्वाधिकार :* पद्म प्रकाशन, दिल्ली

E-mail : padamprakashan@gmail.com

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The Tenth Anga Written by
FIFTH GANADHAR BHAGAVAT SUDHARMA SWAMI

ILLUSTRATED

PRASNAVYAKARAN SUTRA

Original Text with Hindi and English Translations,
Elaboration and Multicoloured Illustrations

❑ EDITOR-IN-CHIEF ❑
Jain Dharma Diwakar Uttar Bharatiya Pravartak
Shri Amar Muni ji

❑ CO-EDITOR ❑
Shri Varun Muni "Amar Shishya"
Shri Sanjay Surana

❑ ENGLISH TRANSLATOR ❑
Shri Rajkumar Jain

PUBLISHERS
PADAM PRAKASHAN, PADAM DHAM, NARELA MANDI, DELHI-40

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Published in the Eighth pious memory of Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev Bhandari Shrí Padam Chandra Ji M. S.

THE TWENTY-SECOND NUMBER OF THE ILLUSTRATED AGAM SERIES

- ILLUSTRATE D *PRASHNAVYĀKARAN* SUTRA
- *Editor-in-Chief*
  Jain Dharma Diwakar - Uttar Bharatiya Pravartak
  Shri Amar Muni ji
- *Co-Editor*
  Shri Varun Muni "Amar Shishya"
  Shri Sanjay Surana
- *English Translator*
  Shri Rajkumar Jain
- *First Edition*
  Chaitra, 2064 V.
  May, 2008 A. D.
- *Illustrations*
  Dr. Trilok Sharma
- *Publishers*
  Padam Prakashan
  Padam Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040
- *Printer*
  Shree Diwakar Prakashan, Agra
  A-7, Awagarh House, Opp. Anjna Cinema,
  M. G. Road, Agra-282 002
  Ph. (0562) 2851165, Mob. : 9319203291
- *Price*
  Six Hundred Rupees only (Rs. 600/-)

© *Copyright :* Padam Prakashan, Delhi
E-mail : padamprakashan@gmail.com

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

जय गुरु आत्म

जय गुरु हेम

जय गुरु पद्म

जैनागम रत्नाकर

आचार्य सम्राट्

पू. श्री आत्माराम जी म. सा.

संस्कृत-प्राकृत विशारद सरलमना

पं. श्री हेमचन्द्र जी म.

एवं

राष्ट्र सन्त उ. भा. प्रवर्त्तक भण्डारी

श्री पद्मचन्द्र जी म. सा.

आराध्यत्रय के पुण्य स्मरण में

सश्रद्ध सादर समर्पित

प्रधान सम्पादक

...यि सम्राट् प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म.

सह सम्पादक

युवा मनीषी श्री वरुण मुनि जी म. 'अमर शिष्य'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत सेवा में सहयोगी गुरुभक्त

श्रीमान् विजयकुमार जी - चन्द्रकांता जैन
(अमर शिष्य श्री वरूण मुनि जी म. के जन्मदाता माता-पिता)

ला. प्रेमचन्द्र जी-जगमति देवी जैन
(मुनि श्री के दीक्षा प्रदाता दादा-दादी)

श्री सुनील कुमार - ममता जैन
(मुनि श्री के धर्म माता-पिता)

श्री बजरंगदास जी - चमेलीदेवी जैन
रायकोट

श्री हीरालाल - ऊषा जैन
(सम्पादक - अमर बोध), मोहाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम प्रकाशन के आधार स्तंभ

श्री सत्यपाल जी – रूक्कमणी अग्रवाल
कुरूक्षेत्र

श्री सुदर्शन जी – मोहिता अग्रवाल
कुरूक्षेत्र

श्री विजयकुमार जी – आशारानी जैन
लुधियाना (पंजाब)

श्री धर्मवीर जी – धनेषकांता जैन
लुधियाना

श्री महेन्द्र जी – चांदरानी जैन
लुधियाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत सेवा में समर्पित गुरुभक्त

श्री पृथ्वीचंदजी – शांतिदेवी जैन
पद्मपुर (राजस्थान)

श्री ज्ञातनंदन जी – अंगूरी देवी जैन
रोहिणी, दिल्ली

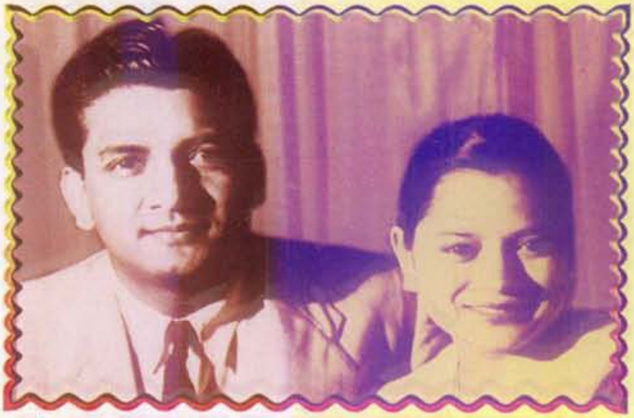

डॉ. श्री मौजीराम जी जैन, श्रीमती पुष्पा जैन
सैनिक फार्म, दिल्ली

श्री रामकुमार जी – कमलादेवी जैन
(जाटल वाले) दिल्ली

श्री गुलाबराय जी – विमलादेवी जैन
पुलसुधार (पंजाब)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

दानों में श्रेष्ठ दान ज्ञानदान है। इस वचन पर चिन्तन करके आज से 16 वर्ष पूर्व परम श्रद्धेय प्रवर्त्तक **श्री अमर मुनि जी म. सा.** ने भगवत् वाणी रूप जैन सूत्रों का हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद करवाकर चित्र सहित प्रकाशन करने की महत्वपूर्ण योजना बनाई। सन् 1992 में हमने सर्वप्रथम सचित्र श्री उत्तराध्ययन सूत्र हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया। इस प्रकाशन को पाठकों और विद्वान वर्ग ने भरपूर सराहा। अब निरन्तर 16 वर्षों के प्रयास से श्रुत सेवा के इस कार्य में हम अपने लक्ष्य के निकट पहुँच रहे हैं। अब तक 21 सचित्र आगमों का प्रकाशन हो चुका है। इस वर्ष दो आगम ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है—**श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र** तथा **श्री भगवती सूत्र (भाग-3)**।

श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र द्वादशांगी का दसवाँ अंग सूत्र है। इस सूत्र में पाँच आश्रव और पाँच संवरों का विस्तृत निरुपण किया गया है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में पाँच आश्रवों—हिंसा, मृषावाद, अदत्तादान, अब्रह्मचर्य और परिग्रह व द्वितीय श्रुतस्कंध में पाँच संवरों—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का बहुत ही सांगोपांग वर्णन किया गया है।

हमारा यह परम सौभाग्य है कि परम श्रद्धेय स्व. उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक महास्थविर गुरुदेव **भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. सा.** के मंगल आशीर्वाद से प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. सा. आगम सेवा के इस महान् पुण्य कार्य में हम सबको प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान कर युग-युग तक चिरस्थायी रहने वाला ज्ञानदीप प्रज्वलित कर रहे हैं।

इन आगमों के प्रकाशन में स्व. श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' (सम्पादक) तथा श्री सुरेन्द्र बोथरा, जयपुर एवं श्री राजकुमार जी जैन, दिल्ली (अंग्रेजी अनुवादक) का सहयोग हमें हमेशा प्राप्त होता रहा। श्री श्रीचन्द जी सुराना के स्वर्गवास के पश्चात् उनके पुत्र युवा साहित्यकार श्री संजय सुराना भी पूरे मनोयोग से इस कार्य में सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

आगमों के सम्पादन एवं प्रूफ संशोधन के गहन कार्य में गुरुदेव प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म. सा. के शिष्य श्री वरुण मुनि जी भी एकाग्रता एवं समर्पण भाव से अपनी सेवायें दे रहे हैं। चित्रकार डॉ. त्रिलोक शर्मा ने इस आगम के चित्र बनाये हैं एवं श्री वरुण मुनि जी ने इनका मार्गदर्शन किया है।

आगममाला का यह 22वाँ पुष्प सचित्र श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र आपके हाथों में पहुँचाते हुए हमें अति प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। हमेशा की तरह इस बार भी उदार गुरु भक्तों ने मुक्त हृदय से अर्थ-सहयोग देकर अपने अर्जित धन का सदुपयोग किया। गुरु भक्ति और वीतराग वाणी के प्रति उनके इस धर्म अनुराग का हम हृदय से स्वागत करते हैं।

अन्त में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य से जुड़े सभी महानुभावों के हम हृदय से आभारी हैं। जिनके अथक परिश्रम से यह ग्रन्थ प्रकाशित होकर आपके हाथों में पहुँच सका।

—महेन्द्रकुमार जैन
अध्यक्ष : पद्म प्रकाशन, दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Publisher's Note

Best charity is the charity of knowledge. Pondering over this statement, highly revered Pravartak Shri Amar Muni ji Maharaj launched the unique project of publishing the Jain *Agams*, the word of the Jina, after getting them translated in Hindi and English as well as including colourful illustrations. As our first publication in this series we brought out *Illustrated Shri Uttaradhyayan Sutra* with Hindi-English translation in 1992. This book was amply lauded by common readers as well as scholars. Now, after continued efforts of sixteen years we are approaching our goal in this mission of service to the scriptures. Till date twenty-one illustrated *Agams* have been published. In the current year we plan to add two more *Agam* works to this series — *Shri Prashna Vyakaran Sutra* and *Shri Bhagavati Sutra* (Volume-3).

Shri Prashnavyãkaran Sutra is the tenth book of the corpus of 12 *Angas* (*Dvadashangi*). This book deals with the five *Ãsravas* (inflow of *karmas*) and five *Samvars* (blockage of the inflow of *karmas*). It has two sections (*Shrutskandh*). The first section contains detailed discussion on five *Ãshravas* – *Himsã* (violence), *Mrishãvãd* (falsity), *Adattãdãn* (taking without being given), *Abrahmacharya* (non-celibacy), and *Parigraha* (covetousness). The second section contains detailed discussion on five *Samvars* – *Ahimsã* (non-violence), *Satya* (truth), *Achaurya* (non-stealing), *Brahmacharya* (celibacy), and *Aparigraha* (non-covetousness).

Honouring the intense desire of and inspiration by late Gurudev Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padma Chandra Ji M. this project was launched by Uttar Bharatiya Pravartak Shri Amar Muni ji M. We are fortunate that he continues to inspire and guide us in this pious mission of service to the Shrut, and thereby lighting the everlasting lamp of knowledge.

We have been getting continued cooperation of contributing scholars like Shri Shrichand ji Surana 'Saras' (in editing), Agra; as well as Shri Surendra Kumar

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ji Bothara, Jaipur; and Shri Rajkumar ji Jain, Delhi (in English translation). After the sad demise of Shri Shrichand ji Surana his son Shri Sanjay Surana, a young and budding author, has taken his place with all sincerity. Pujya Gurudev's able disciple Shri Varun Muni shares, with all sincerity and devotion, the responsibility of the serious work of editing the *Agam*s and proofreading. Dr. Trilok Sharma, a skilled artist, has made the illustrations of this *Agam*, like many others, under the guidance of Shri Varun Muni ji. We are, indeed, indebted to them all.

We are very happy to present this 22^{nd} book, *Illustrated Shri Prashnavyākaran Sutra*, of the Illustrated *Agam* Series to our readers. Many generous and devout guru-devotees have displayed their devotion for the Guru and scriptures through their financial contributions and meaningful utilization of their hard earned wealth. We heartily laud and appreciate their gesture.

In the end we express our sincere gratitude for all those directly or indirectly associated with the publication of this book and whose tireless hard work has made it possible to bring this book to you.

Mahendra Kumar Jain
President : Padam Prakashan

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

काल के परिवर्तन के स्वभाव वाला यह भरत क्षेत्र अनंत अवसर्पिणी और अनंत उत्सर्पिणीयों से गुजर रहा है। हर अवसर्पिणी और हर उत्सर्पिणी में तीर्थंकर भगवान ज्ञान की गंगा बहाते हैं। भव्य जीव इस गंगा में स्नान करके पवित्र होते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करते हैं और संसार से मुक्ति पाते हैं। तीर्थंकर देवों के पश्चात् उनके मुख्य शिष्य गणधरों द्वारा ये परम्परा चलती रहती है। समय के परिवर्तन के साथ धीरे-धीरे ज्ञान का विच्छेद होता है, पुन: तीर्थंकर प्रभु के मुखारविन्द से ज्ञान की गंगा बहती है और ये परम्परा सदा-सर्वदा गतिमान रहती है।

वर्तमान अवसर्पिणी में इस भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव हुये और आज से करीब 2500 वर्ष पूर्व अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हुये। भगवान महावीर स्वामी के 11 गणधर थे। भगवान की उपस्थिति में ही 9 गणधर मोक्ष पधार गये और भगवान के निर्वाण के साथ ही गौतम स्वामी को केवलज्ञान हुआ। फलत: श्री सुधर्मा स्वामी, जिन्हें उस समय केवलज्ञान नहीं हुआ था, भगवान महावीर के पाट पर प्रथम आचार्य के रूप में विराजित किए गए। (तीर्थंकर के पाट पर केवली विराजमान नहीं होते, क्योंकि सामान्य केवली के और तीर्थंकर के केवलज्ञान में कोई अंतर नहीं होता तो वो **"सुयं में आउसं**–हे आयुष्यमान ! मैंने भगवान से सुना है.....**त्तिबेमि**– वह मैं कहता हूँ, ऐसा नहीं कह सकते। फिर भगवान का शासन कैसे प्रवाहमान रहता ?) अत: आज हमारे पास श्रुत के रूप में जो भी ज्ञान है वह पंचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जी की ही देन है।

भगवान के श्री मुख से अर्थ रूप देशना प्रवाहित होती है, गणधर भगवन् द्वादशांगी सूत्र के रूप में इसका गुंथन करते हैं। ये द्वादशांगी इस प्रकार है–(1) आचारांग सूत्र, (2) सूत्रकृतांग सूत्र, (3) स्थानांग सूत्र, (4) समवायांग सूत्र, (5) व्याख्याप्रज्ञप्ति या भगवती सूत्र, (6) ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र, (7) उपासकदशांग सूत्र, (8) अन्तकृद्दशांग सूत्र, (9) अनुत्तरोपपातिकदशांग सूत्र, (10) प्रश्नव्याकरण सूत्र, (11) विपाकसूत्र, और (12) दृष्टिवाद सूत्र।

भगवान के दो पाट तक तो द्वादशांगी नियम से अखंड रूप में होती है। भगवान ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों के शासन में जहाँ असंख्य पाट तक केवलज्ञान विद्यमान होता है, वहाँ द्वादशांगी भी *असंख्य पाट तक पूर्ण रूप में हो सकती है पर जिन तीर्थंकर भगवान का शासनकाल छोटा होता है,* जैसे भगवान पार्श्वनाथ का (250 वर्ष), वहाँ दो पाट तक तो द्वादशांगी परिपूर्ण रूप में अखंड होती है पर उसके बाद उसमें ज्ञान का शनै: शनै: विच्छेद होना प्रारम्भ हो जाता है। भगवान महावीर की 9वीं पाट परम्परा पर हुये आचार्य भद्रबाहु स्वामी तक 14 पूर्वों का ज्ञान विद्यमान था (14 पूर्व दृष्टिवाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र का एक भाग है) उस समय वह ज्ञान गुरु द्वारा अपने शिष्यों-प्रशिष्यों को परम्परानुसार मौखिक रूप में दिया जाता था। जैन श्रमणों के आचार के कठोर नियम, श्रमणों की संख्या बल की कमी और बार-बार देश में पड़ने वाले दुर्भिक्षों के कारण कंठस्थ करने की यह धारा टूटती रही। इस स्थिति में जब आचार्यों ने देखा कि श्रुत का ह्रास हो रहा है और ज्ञान में अव्यवस्था आ रही है, तब उन्होंने एकत्र होकर श्रुत को व्यवस्थित करने का निर्णय किया। भगवान महावीर के निर्वाण के करीब 160 वर्ष पश्चात् पाटलीपुत्र में जैन श्रमण संघ एकत्रित हुआ। वहाँ एकत्रित हुये उन श्रमणों ने परस्पर आदान-प्रदान कर 11 अंगों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया किन्तु उनमें से किसी को भी दृष्टिवाद या 14 पूर्वों का स्मरण नहीं था। (यद्यपि उस समय 14 पूर्वों के ज्ञाता आचार्य भद्रबाहु थे लेकिन वे 12 वर्षीय विशेष प्रकार की योग साधना में संलग्न थे और वे उस समय नेपाल में विराजित थे।) संघ ने दृष्टिवाद के 14 पूर्वों की वाचना के लिए अनेक संतों के साथ मुनि स्थूलभद्र को वहाँ भेजा। उनमें से दृष्टिवाद को ग्रहण करने में मुनि स्थूलभद्र ही समर्थ हुये। किन्तु 10 पूर्वों तक सीखने के बाद उन्होंने अपनी श्रुत-लब्धि का लौकिक दृष्टि से प्रयोग किया। जब यह बात आचार्य भद्रबाहु को ज्ञात हुई तो वो समझ गये कि मुनि स्थूलभद्र में ज्ञान के पाचन की वह पात्रता नहीं रही। अतः उन्होंने वाचना देना बंद कर दिया। इसके बाद संघ के बहुत अनुनय, विनय, प्रार्थना करने पर उन्होंने शेष चार पूर्वों की केवल सूत्र वाचना ही दी, अर्थ वाचना नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि सूत्र और अर्थ से 14 पूर्वों का ज्ञान आर्य भद्रबाहु तक और 10 पूर्व का ज्ञान आर्य स्थूलभद्र तक रहा। आचार्य भद्रबाहु के कालधर्म के साथ (अर्थात् वीर सं. 170) इस भरत क्षेत्र में श्रुत केवली परम्परा का विच्छेद हो गया। फिर 10 पूर्व की परम्परा आचार्य वज्र तक चली। आचार्य वज्र का कालधर्म वीर सं. 584 में हुआ। उसके बाद आर्य रक्षित हुये। आर्य रक्षित के बाद भी उत्तरोत्तर श्रुतज्ञान का ह्रास होता रहा और एक समय ऐसा आया जब पूर्वों के ज्ञान वाला कोई विशेषज्ञ नहीं रहा। इस घटना का समय वीर निर्वाण सं. 1000 है।

नन्दी सूत्र की चूर्णि में उल्लेख है कि बारह वर्षीय दुष्काल के कारण ग्रहण, गुणन और अनुप्रेक्षा के अभाव में सूत्र कंठस्थ करने वाले श्रमणों की संख्या कम होने लगी। अतः 12 वर्ष के दुष्काल के बाद स्कंदिल आचार्य के नेतृत्व में साधु संघ मथुरा में एकत्रित हुआ और जिसको जो याद था उसका परिष्कार करके सूत्रों को व्यवस्थित किया गया। इसे माथुरी वाचना कहा जाता है। इसी काल में वल्लभी में नागार्जुन आचार्य ने श्रमण संघ को एकत्रित करके आगमों को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया तथा विस्मृत स्थलों (पाठों) की पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार संशोधित करके वाचना दी गई। इसे वलभी वाचना कहा जाता है। इन दोनों वाचनाओं का काल वीर सं. 830-840 के आसपास का माना जाता है।

उपर्युक्त वाचनाओं के करीब 150 वर्ष बाद पुनः वलभी नगर में श्रमण संघ इकट्ठा हुआ और उस समय 'पूर्व ज्ञान' वाले अंतिम आचार्य देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के नेतृत्व में दोनों वाचनाओं का समन्वय किया गया और जहाँ तक हो सका अंतर दूर कर एकरूपता लायी गई। दोनों वाचनाओं में जो महत्वपूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेद थे उन्हें पाठांतर के रूप में दिया गया और आगमों को लिपिबद्ध करने का निर्णय लिया गया। इस तरह आगमों को ताड़पत्र पर लिपिबद्ध करने का ये महान कार्य वीर नि. सं. 980-993 में सम्पन्न हुआ।

वर्तमान में जो आगम उपलब्ध हैं उनका अधिकांश भाग इसी समय में स्थिर हुआ ऐसा कहा जा सकता है। नंदीसूत्र में दी गई सूची से स्पष्ट होता है कि उक्त लेखन के बाद भी आगमों का ज्ञान कुछ न कुछ रूप में विलुप्त होता रहा है। भगवान महावीर के उपदेश विक्रम पूर्व 500 में मुखरित हुए, अत: किसी भी आगम की रचना उससे पहले की संभव नहीं है और अंतिम वाचना के आधार पर इनका लेखन विक्रम सं. 510-523 (वीर सं. 980-993) में हुआ। अत: यह समय मर्यादा ही आगम रचना का काल है, ऐसा मानना ही अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

इस काल मर्यादा को ध्यान में रखकर अब हम प्रस्तुत सूत्र प्रश्नव्याकरण पर विचार करेंगे।

प्रश्नव्याकरण सूत्र द्वादशांगी में 10वाँ अंगसूत्र है। इसका स्थान अंगप्रविष्ट श्रुत में है। समवायांग सूत्र और नन्दी सूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र में प्रश्नव्याकरण के लिए '**पण्हावागरणाइं**' के रूप में बहुवचन का प्रयोग है, जिसका संस्कृत रूप '**प्रश्नव्याकरणानि**' होता है। वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र के उपसंहार में एक वचन का ही प्रयोग है—'**पण्हावागरणे**।' तत्त्वार्थस्वोपज्ञभाष्य में भी '**प्रश्नव्याकरणम्**' इस प्रकार एकवचनान्त का ही प्रयोग है। दिगम्बर परम्परा के धवला तथा राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में भी एकवचनान्त '**पणहवायरणं**' '**प्रश्नव्याकरणम्**' प्रयोग ही प्रचलित है। 'स्थानांग' सूत्र के दशम स्थान में प्रश्नव्याकरण का नाम '**पण्हावागरणदसा**' बतलाया है, जिसका संस्कृत रूप टीकाकार आचार्य अभयदेव ने '**प्रश्नव्याकरणदशा**' किया है। परन्तु यह नाम अन्यत्र अधिक प्रचलित नहीं हो पाया।

प्रश्नव्याकरण यह समासयुक्त पद है। इसका अर्थ होता है प्रश्नों का व्याकरण अर्थात् *निर्वचन उत्तर एवं निर्णय*। यहाँ 'प्रश्न' शब्द सामान्य प्रश्न के अर्थ में नहीं है। इसमें किन प्रश्नों का व्याकरण किया गया था, इसका परिचय दिगम्बर परम्परा के धवला आदि ग्रंथों में एवं श्वेताम्बर परम्परा के स्थानांग, समवायांग और नन्दीसूत्र में मिलता है। 'प्रश्न' शब्द मंत्रविद्या एवं निमित्त शास्त्र आदि के विषयविशेष से सम्बन्ध रखता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार विचित्र विद्यातिशय अर्थात् चमत्कारी प्रश्नों का व्याकरण जिस सूत्र में वर्णित है, वह प्रश्नव्याकरण है। वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण में तो ऐसी कोई चर्चा उपलब्ध नहीं होती है। अत: यहाँ प्रश्नव्याकरण का यदि सामान्यत: विचार चर्चा रूप 'जिज्ञासा' अर्थ किया जाए तो अधिक उपयुक्त रहेगा। अहिंसा-हिंसा एवं सत्य-असत्य आदि धर्माधर्मरूप विषयों की चर्चा जिस सूत्र में है, वह प्रश्नव्याकरण है। इस दृष्टि से वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र के नाम की सार्थकता परिलक्षित होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानांग में प्रश्नव्याकरण के 10 अध्ययनों का उल्लेख है। जो क्रमशः इस प्रकार है—उपमा, संख्या, ऋषिभासित, आचार्यभाषित, महावीरभाषित, क्षौमकप्रश्न, कोमलप्रश्न, अद्दागप्रश्न, अंगुष्ठप्रश्न और बाहुप्रश्न। समवायांग और नंदीसूत्र में बताया गया है कि प्रश्नव्याकरण में 108 प्रश्न, 108 अप्रश्न, 108 प्रश्नाप्रश्न हैं। अंगुष्ठ प्रश्न, बाहुप्रश्न, दर्पणप्रश्न आदि विचित्र विद्यातिशयों के वर्णन हैं। **नागकुमारों व सुवर्णकुमारों की संगति के दिव्य संवाद** हैं। 45 अध्ययन, 45 उद्देशन काल, 45 समुद्देशन काल, संख्यात हजार पद हैं।

लेकिन वर्तमान में उपलब्ध प्रश्न व्याकरण में ऐसी कोई चर्चा नहीं है। वर्तमान प्रश्नव्याकरण सूत्र में नये विषय लेने का प्रयोजन कदाचित् भावी अहित की आशंका से किसी सुविज्ञ अनुभवी आचार्य ने मन्त्रादिक विषयक प्रश्नों को छोड़कर केवल **पाँच आश्रव** और **पाँच संवर** का विषय प्रतिष्ठापित कर दिया है। वर्तमान विषय वास्तव में आत्महित में अत्यन्त उपयोगी है। पाप के स्वरूप को समझकर त्याग करना ही आत्मोत्थान का प्रधान विषय है। अन्य किसी मूल-सूत्र में इस विषय का इतना विशद विवेचन नहीं है। आश्रव और संवर ही हेय और उपादेय के रूप में जैन साधना के केन्द्र बिन्दु हैं। जो भावतः तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित होने के कारण परम्परा से चले आ रहे हैं। इसके सम्बन्ध में वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते हैं—"इस समय का कोई अनधिकारी मनुष्य चमत्कारिक विद्याओं का दुरुपयोग न करे इस दृष्टि से वे विद्यायें इस सूत्र में से निकाल दी गईं और केवल आश्रव और संवर का समावेश कर दिया गया।" आचार्य जिनदास महत्तर ने शक संवत् 500 की समाप्ति पर नन्दीसूत्र पर चूर्णि की रचना की है। उसमें सर्वप्रथम वर्तमान प्रश्नव्याकरण के विषय से सम्बन्धित पाँच संवर आदि का उल्लेख है। इसका अर्थ यह है कि शक संवत् 500 से पूर्व ही प्रस्तुत प्रश्नव्याकरण सूत्र का निर्माण एवं प्रचार-प्रसार हो चुका था और उसे अंग साहित्य में मान्यता मिल चुकी थी। अब हम प्रश्नव्याकरण सूत्र के विषयों पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे।

वर्तमान प्रश्नव्याकरण सूत्र का विषय—

प्रस्तुत प्रश्नव्याकरण सूत्र में दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम स्कंध में हिंसा आदि पाँच आश्रवों का और द्वितीय स्कंध में अहिंसा आदि पाँच संवरों का वर्णन है। आश्रवों और पाँच संवरों के 5-5 द्वार हैं।

प्रथम श्रुतस्कंध के पाँचों द्वारों में जम्बूस्वामी की पृच्छा के माध्यम से इसे पाँच-पाँच प्रश्नों में विभाजित किया गया है। जैसे कि प्रथम आश्रवद्वार **हिंसा** में— 1. हिंसा-प्राणवध का स्वरूप क्या है? 2. प्राणवध के पर्यायवाची कौन-कौन से नाम हैं? 3. किन पापी जीवों द्वारा वह किया जाता है? 4. किस प्रकार किया जाता है? 5. इसका फल क्या है? इन पाँच प्रश्नों के द्वारा हिंसा आश्रव का मार्मिक और विस्तृत चित्रण किया गया है। इसी तरह ***असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य*** और **परिग्रह** आश्रव का पाँच प्रश्नों द्वारा विस्तृत वर्णन किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय श्रुतस्कंध में **अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह** के स्वरूप का और उनके सुखद फलों का सविस्तार निरुपण किया गया है।

प्रथम संवरद्वार अहिंसा में अहिंसा भगवती का स्वरूप, इसके पर्यायवाची नाम, किन महापुरुषों द्वारा ये की जाती है और अहिंसा वृत्ति को सम्पन्न बनाने में कारण-भूत पाँच भावनायें—इन विषयों के द्वारा अहिंसा भगवती का सर्वांगीण चित्रण किया गया है।

सत्य रूप द्वितीय संवरद्वार में विविध प्रकार के सत्यों का वर्णन किया है। सत्य बोलने वालों को वाणी मर्यादा और शालीनता का ध्यान रखने का निर्देश दिया गया है। **तीसरे अचौर्य संवरद्वार** में अचौर्य संबंधित अनुष्ठानों का वर्णन किया गया है। इसमें अस्तेय की स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक व्याख्या की गई है। **चौथे ब्रह्मचर्य संवरद्वार में** ब्रह्मचर्य के गौरव का प्रभावशाली शब्दों में विस्तार से निरुपण एवं इसकी साधना करने वालों के सम्मानित होने का प्ररुपण किया गया है। ब्रह्मचर्य विरोधी प्रवृत्तियों का भी उल्लेख किया है और यह बताया गया है कि ये प्रवृत्तियाँ ब्रह्मचारी साधक को साधना से पतित करने में कारणभूत बनती हैं।

पाँचवें और अंतिम **अपरिग्रह संवरद्वार** में अपरिग्रह वृत्ति के स्वरूप, तद्विषयक अनुष्ठानों और अपरिग्रह व्रतधारियों के स्वरूप का वर्णन है। इसकी पाँच भावनाओं के वर्णन में सभी इंद्रियजन्य विषयों के त्याग का संकेत किया गया है।

इस प्रकार से प्रस्तुत सूत्र का प्रतिपाद्य विषय पाँच आश्रवों और पाँच संवरों का निरुपण है। भव्य जीव इन आश्रवों को जानें और उनका त्याग करें तथा इन संवरों को जानें और उसकी आराधना करें और कर्म मल से मुक्त होकर आत्मा के शुद्ध स्वरूप, सिद्ध दशा को प्राप्त करें।

प्रस्तुत संस्करण सचित्र क्यों ?

प्रस्तुत सचित्र आगमों को पढ़ते-पढ़ते कई बार पाठकों के मन में यह जिज्ञासा उठती है कि स्थानकवासी आगमों के प्रकाशन में कभी चित्र सहित आगम प्रकाशित नहीं किये गये। फिर ये चित्र की परम्परा क्यों ?

इसके उत्तर में हम सिर्फ यही कहेंगे कि एक ही बात को कई बार कहने पर भी वह हमारे मन-मस्तिष्क पर उतना प्रभाव नहीं डालती जितना प्रभाव चित्र को सिर्फ एक बार देखने से पड़ता है। **आगम ज्ञान का विषय इतना गहन है कि वह आसानी से ग्राह्य नहीं है।** अत: आगम के भावों को लोगों के हृदय तक ले जाने के लिए हम यह संस्करण सचित्र बनाकर साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के लिए भी उपयोगी बना रहे हैं। हमें विश्वास है कि आगम के ज्ञान की जो बातें लोग आसानी से नहीं समझ पाते, वो चित्रों के माध्यम से जरूर समझ पायेंगे। जब भी इस आगम का नाम या इसका विषय लोगों के सामने आयेगा तो तुरन्त उसके चित्र उनके मानस पटल पर उभर आयेंगे और वीतराग श्री तीर्थंकर भगवान द्वारा आगम में फरमाई गई बातों का मर्म वे आसानी से ग्रहण कर सकेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमों का अंग्रेजी भाषांतर क्यों ?

वैश्वीकरण (Globalisation) के इस युग में हर व्यक्ति की यह धारणा बन गई है कि "अंग्रेजी पढ़ने-समझने वाला व्यक्ति ही आगे जाकर सफल हो सकता है।" इस मान्यता से संस्कृत, प्राकृत तो ठीक, पर हमारी मातृभाषा भी मृत प्राय: स्थिति में आ गई है। जब प्राकृत, संस्कृत या हिन्दी-पंजाबी का अक्षर ज्ञान ही नहीं रहेगा तो हम आने वाली पीढ़ियों को आगम ज्ञान से परिचित कैसे करवायेंगे ?

जैसा कि आपको विदित है कि जब हमारा प्राकृत-संस्कृत का ज्ञान अल्प हुआ तो हमारे पूर्वजों ने हिन्दी भाषांतर देकर आगमों के ज्ञान का अमृत हमें पिलाया और अब जबकि हमारे युवकों को हिन्दी का अक्षर ज्ञान कम होता जा रहा है और अंग्रेजी भाषा के प्रति ही उनका रुझान बढ़ रहा है तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम आगमों का अंग्रेजी अनुवाद करके आगम-अमृत को अपनी नई पीढ़ी तक पहुँचाएँ और उन्हें अमर बनने का मार्ग दिखायें। इसी के साथ जो अहिंदी भाषी विदेशी जिज्ञासुजन हैं, वे भी इस माध्यम द्वारा जिनवाणी से लाभान्वित हो सकें।

आगम सम्पादन के महत्वपूर्ण कार्य का निर्वहन करने में पूज्य गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. की प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा आशीर्वाद सदा मेरे साथ रहा है। वास्तव में तो उन्हीं की कृपा से यह अत्यन्त गुरुतर कार्य भी सहज ही सम्पादित हो रहा है। गुरुजनों का आशीर्वाद पग-पग पर हमारा सम्बल व मार्गदर्शक बना हुआ है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र के सम्पादन में मेरे शिष्य वरुण मुनि जी व स्व. श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' के सुपुत्र श्री संजय सुराना का आत्मीय सहयोग विशेष रूप से रहा है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र के अंग्रेजी अनुवाद का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया है आगमों के विशेष अभ्यासी, गृहस्थ में साधु वृत्ति जैसी जीवन यात्रा करने वाले विद्वान विचारक सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन ने। साथ ही श्री सुरेन्द्र बोथरा जी ने भी अंग्रेजी अनुवाद कार्य का पुनरीक्षण कर आवश्यक संशोधन आदि किये हैं, इन सभी को हार्दिक साधुवाद।

पूज्य गुरुदेव की कृपा से आगम सेवा करने वाले गुरुभक्तों ने इस प्रकाशन में हर वर्ष की भाँति दिल खोलकर अपना सहयोग दिया है। उनके सहयोग के बल पर ही संस्था यह व्ययसाध्य प्रकाशन कर रही है।

इस प्रकार इस कार्य में जिन-जिन सहृदयों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उन सबके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

—प्रवर्त्तक अमर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Preface

With its ever-changing nature this Bharat Area passes through infinite progressive and regressive cycles of time. Each progressive and regressive cycle has different set of *Tirthankar*s, the supreme souls. They are the sources of the streams of knowledge in which worthy beings dip and gain purity. Those worthy of liberation tread the path of right knowledge-faith-conduct to reach their goal of liberation. After the nirvana of a *Tirthankar* his chief disciples, *Ganadhar*s carry his tradition. With passage of time the treasure of this knowledge undergoes decline and becomes extinct. Then comes a new *Tirthankar* and a new source of knowledge and this goes on.

The current regressive cycle of time saw Rishabhadev as the first *Tirthankar*. About 2500 back came the last *Tirthankar* Bhagavãn Mahavir Swami. Bhagavãn Mahavir had eleven *Ganadhar*s, nine of whom attained liberation during his lifetime. Gautam Swami attained *Keval Jnana* (omniscience) immediately after *Bhagavãn*'s own nirvana. Thus Sudharma Swami was the only *Ganadhar* left as a *chhadmasth* (one who is short of omniscience due to residual *karmic* bondage), and he became the first head of the order after Bhagavãn Mahavir. (A *Kevali* does not lead the order after the *Tirthankar* because there is no difference in the level of omniscience of a *Tirthankar* and a *Kevali*. Therefore he, as a rule, does not quote the *Tirthankar* by saying, "I say as I have listened from *Bhagavãn*." A *Kevali* would say only what he has himself realized and that would end the order established by the *Tirthankar*.). As such whatever knowledge we have today in the form of *Shrut* (the sermon of Bhagavãn Mahavir) is in the form of discourse of Sudharma Swami, the fifth *Ganadhar*. Whatever *Bhagavãn* conveys as essence (*artha*) through his utterance is compiled and organized by *Ganadhar*s as *Sutra* (canon) in twelve parts (*Dwadashangi*). They are — (1) *Ãchãrãnga Sutra*, (2) *Sutrakritãnga Sutra*, (3) *Sthãnãnga Sutra*, (4) *Samvãyãnga Sutra*, (5) *Vyãkhyãprajnapti* or *Bhagavati Sutra*, (6) *Jnãtãdharmakathãnga Sutra*, (7) *Upãsakdashãnga*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sutra, (8) *Antakriddashãnga Sutra*, (9) *Anuttaraupapãtik Dashãnga Sutra*, (10) *Prashnavyãkaran Sutra*, (11) *Vipãka Sutra*. and (12) *Drishtivãda Sutra*.

In case of *Tirthankar*s with a very long lineage of omniscients as well as a long period of influence, like Rishabhdev, this twelve-limbed canon remains intact for innumerable generations of heads of the order, as a rule. However, where the period of influence is short, like that of Bhagavãn Parshvanath (250 years), the twelve-limbed canon remains intact only up to the second generation of heads of the order, after which the decline starts. In case of Bhagavãn Mahavir the knowledge of fourteen *Purva*s (subtle canons; a portion of *Drishtivãd Sutra*) was intact till Bhadrabahu Swami, the 9th head of the order in Bhagavãn Mahavir's lineage. During that period the oral tradition prevailed and the disciples memorized the texts. This tradition of memorizing the canons underwent a continuous decline due to dwindling numbers of Jain ascetics caused by recurring periods of famine combined with the strict code of conduct of Jain ascetics. During one such period of famine in the eastern parts of the country the religious organization broke and Jain ascetics scattered far and wide. Looking at this disorganization and the consequent decline in the corpus of knowledge, the *Ãchãrya*s (heads of the groups) decided to come together and reorganize the system. It was in Patliputra that the whole organization of ascetics assembled sometime around 160 ANM (After Nirvana of Mahavir). After intense mutual consultations and deliberations the assembled ascetics could reorganize only eleven of the twelve limbs because none of them could recall *Drishtivãd Sutra* completely including the 14 *Purva*s. Although Ãchãrya Bhadrabãhu, an expert of 14 *Purva*s lived, he was busy in some higher yoga practices in Nepal. The *Sangh* (religious organization) sent many ascetics including Sthulibhadra to Ãchãrya Bhadrabãhu for discourses on the 14 *Purva*s of *Drishtivãd*. Only Sthulibhadra was prodigious enough to start acquiring this knowledge. However, after learning 10 *Purva*s Sthulibhadra could not contain himself and used the miraculous powers he had acquired. When Ãchãrya Bhadrabãhu came to know of this he realized that Sthulibhadra lacked the capacity to contain himself once he acquired special powers. Consequently he terminated his discourses. After much request and beseeching Sthulibhadra was given the text and not the meaning of the remaining four *Purva*s. As such the com-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

plete knowledge of the text and the meaning of the 14 *Purvas* was available till Ãchãrya Bhadrabãhu. That of 10 *Purvas* continued up to Ãchãrya Sthulibhadra. In other words the lineage of *Shrut Kevalis* got terminated with the death of Ãchãrya Bhadrabãhu (170 ANM). After this the lineage of scholars of 10 *Purvas* (*Dash Purvadhar*) continued till Ãchãrya Vajra, who died in 584 ANM. He was followed by Ãchãrya Ãryarakshit and the decline of the treasure of knowledge continued. A time came when the knowledge of the *Purvas* was completely lost. That was in 1000 ANM.

It is mentioned in the commentary (*Churni*) of *Nandi Sutra* that after a famine lasting 12 years the capacity to learn, memorize and contemplate drastically declined. This resulted in a paucity of ascetics who could memorize the scriptures. In response to this the ascetic organization assembled in Mathura under the leadership of Ãchãrya Skandil. They compiled, corrected, edited and organized all the scriptures each one of them remembered. This is called the Mathuri Vãchanã (Mathura Recitation). Around the same time another such attempt was made at Vallabhi by Ãchãrya Nagarjuna, who tried to restructure the texts on the basis of establishing textual continuity. This is known as the Vallabhi Vãchanã. The period of both these religious councils is believed to be somewhere around 830 to 840 ANM.

About 150 years after these two religious councils the ascetic organization (*Shraman Sangh*) assembled once again in Vallabhi. Under the leadership of Arya Devardhigani Kshamãshraman the aforesaid two recitations were compared and differences were removed as far as possible. Wherever there were significant and important differences they were accepted and included as variant readings. It was also decided that from memory all these text be transferred to palm leaves. This great mission of writing was accomplished around 980 to 993 ANM.

It can be said that a major portion of the *Agamic* literature available today crystallized during that period. However, even after the written tradition started, some portions of the *Agamic* knowledge kept on getting lost. This is evident from the list mentioned in *Nandi Sutra*. Bhagavãn Mahavir gave his sermon around 500 BV (Before the Vikram era), as such, creation of any book of canon before that is out of question. According to the last reciting the writing of the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Agams was done around 510-523 BV (980 to 993 ANM). Thus the period between these two dates has to be accepted as the period of creation of the *Agams*.

Keeping this periodicity in mind I will now discuss about this *Agam*, *Shri Prashnavyãkaran Sutra*.

Prashnavyãkaran Sutra is one of the *Anga Sutras* (*Angapravishta*; part of the 12 limbed-corpus called *Dwadashangi*). It is the tenth *Anga* (limb). In *Samvãyãnga*, *Nandi* and *Anuyogadvãr Sutras* its name has the plural ending – *Panhãvãgaranãim*. Its Sanskrit transliteration is *Prashnavyãkaranãni*. In the conclusion of the *Prashnavyãkaran Sutra* available today the singular ending is found – *Panhãvãgarane*. The same singular ending – *Prashnavyãkaranam* – is also found in the auto-commentary of *Tattvãrtha Sutra*. *Dhavalã*, *Rãjavãrtika* and other scriptures of the Digambar tradition too have this singular ending – *Panhavãyaranam* or *Prashnavyãkaranam*. In the tenth Sthãn of the *Sthãn Anga Sutra* its name is mentioned as *Panhãvãgaranadasã*. Commentator Ãchãrya Abhayadeva Suri has transliterated it in Sanskrit as *Prashnavyãkaranadashã*. However this name did not find acceptance anywhere else.

Prashnavyãkaran is a compound word. It means the grammar (*vyãkaran*) of questions (*prashna*), which in turn means answer, interpretation and conclusion. Here the term question has not been used for ordinary questions. Indication of which questions it deals with is found in *Dhavalã* and other Digambar scriptures as well as *Sthãnãnga*, *Samvãyãnga* and *Nandi Sutras* of the Shvetambar tradition. The term *prashna* is specially associated with the topics of mantra science and augury. Thus according to the ancient tradition the book that contains explanations about questions related to miracles and the supernatural is called *Prashnavyãkaran*. However, the book available today has nothing of that sort. Therefore in present context it would be proper to interpret it as explanation about normal curiosity and questions. That means the book that contains answers of questions related to violence, non-violence, truth, falsity and other such religious and non-religious themes is called *Prashnavyãkaran*.

Sthãnãnga Sutra mentions that there are ten chapters in *Prashnavyãkaran* — *Upamã* (allegory), *Sankhyã* (numbers), *Rishibhãshit* (sermon of sages),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Ãchãryabhãshit (sermon of teachers), *Mahavir-bhãshit* (sermon of Mahavir), *Kshaumak Prashna*, *Komal Prashna*, *Addãg Prashna*, *Angushtha Prashna*, and *Bãhu Prashna* (these are questions related to specific esoteric topic related topic). According to *Samvãyãnga* and *Nandi Sutra*s it has 108 *Prashna*s (questions), 108 Aprashnas (non-questions) and 108 *Prashna-aprashnas* (question-non-questions). It has discussions about strange miraculous powers including *Angushtha Prashna*, *Bãhu Prashna* and *Darpan Prashna*. It also contains divine dialogues from congregation of divine beings like Nãg Kumãrs and Suparna Kumãrs. It has countable thousand verses divided into 45 *Adhyayan*s, 45 *Uddeshan Kãl*s and 45 *Samuddeshan Kãl*s.

However, the text of the *Prashnavyãkaran* available presently has nothing of all this. Most probably some senior and experienced *Ãchãrya*, apprehensive of future misuse and harm, replaced all these questions about mantras with those related to five *Ãshrava*s (inflow of *karma*s) and five *Samvar*s (blockage of the inflow of *karma*s). The existing contents are, in fact, spiritually very useful. The basic process of spiritual uplift is to understand the form and action of sin and then refrain from indulgence in it. No other basic scripture contains such detailed elaboration. The central theme of Jain spiritual endeavour is avoiding the inflow of *karma*s (*Ãshrava*) and working towards the blockage of this inflow (*Samvar*). Being propagated by the *Tirthankar*, these two form the essential part of the tradition. In this context commentator (*Vritti*) Abhayadev Suri says – "With the view that some incompetent person could misuse the miraculous powers discussed (in this scripture), those subjects have been replaced by the topics of *Ãshrava* and *Samvar*." *Ãchãrya* Jinadas Mahattar wrote a commentary (*Churni*) on *Nandi Sutra* in 500 Shaka. It includes five *Samvar*s and other themes of the current text of *Prashnavyãkaran Sutra*. This indicates that the existing text of *Prashnavyãkaran Sutra* had already been written and popularized before 500 Shaka. It was also accepted within the *Anga* corpus. I will briefly discuss the subject matter of this available version of *Prashnavyãkaran Sutra*.

The subject matter of the existing *Prashnavyãkaran Sutra*

In the present *Prashnavyãkaran Sutra* there are two sections (*Shrut Skandh*). The first one discusses five *Ãshrava*s (inflow) including violence

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(*himsã*) and the second one details the five *Samvars* (blockage) including *Ahimsã*. One chapter each has been devoted to the detailed discussion of these ten doors (of *Ãshrava* and *Samvar*).

In the first section each of the five doors (of *Ãshrava*) has been divided into five questions by Jambu Swami and their answers. For example the questions about violence in the first door are — 1. What is the definition of violence (killing)? 2. What are the synonyms of killing? 3. Which sinners indulge in it? 4. How that is done? And 5. What are the fruits (consequences)? With answers to these five questions a touching and detailed picture of violence has been presented. In the same way falsity (*asatya*), stealing (*chaurya*), non-celibacy (*abrahmacharya*) and covetousness (*parigraha*) have been presented in details.

Second section contains similar detailed discussion of *Ahimsã*, Truth (*satya*), non-stealing (*achaurya*), celibacy (*brahmacharya*) and non-covetousness (*aparigraha*) and their happy consequences.

In the first *Samvar Dvãr* (door of blockage of inflow of *karmas*), *Ahimsã*, first of all its definition has been given. It is followed by its synonyms, which great persons follow it and the five sentiments (*bhãvanã*) that enhance and enrich the attitude of *ahimsã*. With these details a comprehensive description of *ahimsã* has been presented.

In the second door of blockage, truth, various kinds of truth have been presented. Besides this it has been advised to ensure discipline and grace in speech. In the third door of blockage, non-stealing, rituals related to non-stealing have been described along with gross and subtle elaborations of non-stealing. In the fourth door of blockage, celibacy, the importance and glory of celibacy have been lucidly detailed along with the glorification of its observers. Besides this, anti-celibacy attitudes have also been specified as they are the causes of possible transgression by the aspirant.

The fifth and the last door of blockage, non-covetousness, details the attitude of non-covetousness, associated activities, and description of the followers of the vow of *aparigraha*. In its five sentiments it has been advised to renounce all sensual indulgences.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thus the subject matter of this *Sutra* is — expounding five *Ãshravas* and five *Samvars*. The worthy may know these *Ãshravas* and renounce them. The worthy may know these *Samvars* and practice them. Thereby they rid themselves of the dirt of *karmas* and attain the purest condition of soul to reach the state of perfection (*Siddha*).

Why illustrations?

In the Sthanakavasi sect *Agams* were never published with illustrations. Why this new tradition?

The answer to this question is that even after hearing about a concept hundred times it is not possible to grasp a clear picture, whereas just one look at an illustration does that. Listening and reading does not leave a lasting impression on the mind but seeing a picture does that more effectively. The knowledge of *Agams* is so profound and complex that it cannot be grasped easily. For this reason we have published this illustrated edition with the purpose of bringing the spirit of *Agams* within easy reach of our readers and making the scriptures useful even for the common readers. I am confident that with the help of the illustrations our readers will be able to understand the complex topics of *Agams* that are otherwise difficult to grasp. One attentive reading and viewing will help the reader recall the picture related to any theme whenever they hear about it once again. They will be able to understand better what the preceptor has conveyed in the *Agam*. Thus these illustrated publications are the best medium for carrying the message of *Agams* to masses.

Why the English translation?

In this age of globalization it is a popular belief that only with the knowledge of English language can one pursue his goal of happiness. What to say of classical languages like Sanskrit and Prakrit when even the mother tongue is heading towards extinction due to this mindset. The children of Hindi speaking people cannot read Hindi properly. The children of Punjabi speaking people are not at ease with Punjabi script and language. Where can I express the agony of such wide spread apathy for the mother tongue? When the knowledge of the Prakrit, Sanskrit, Hindi or Punjabi scripts and languages will dwindle how will we pass on the knowledge of *Agams* to the future generations?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Knowledge of scriptures should be saved at any cost. No matter what, we have to pass on the contents of *Agams* to the next generation. When the popularity of Sanskrit and Prakrit faded our ancestors gave us the ambrosia of *Agams* through Hindi. So now when the youth of today is more at ease with English than Hindi, it becomes our duty to use English translation for carrying the pious message of *Agams* to them and show them the path to immortality.

My preface would not be complete without the pious remembrance of my revered teacher Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev Bhandari Shri Padmachandra ji M. S. who always inspired me to pursue the service to the Shrut (*Agams*). Whatever I have achieved and whatever I am presently doing is the fruit of his kindness and blessings. The blessings of my Gurus have provided me guidance and support at every step.

My able disciple Shri Varun Muni and late Shri Shrichand ji Surana's son Shri Sanjay Surana have assisted me with all sincerity and devotion in editing this edition of *Prashnavyākaran Sutra*.

Shri Rajkumar ji Jain, a scholar of *Agams* who leads an ascetic-like life as a householder, has done the English translation of this *Agam*. Shri Surendra Kumar ji Bothara has carefully gone through the English translation and made the required changes. My heartfelt thanks to them all.

Due to blessings of revered Gurudev, generous devotees have extended their cooperation and contributions to this pious and cost intensive project of publishing Illustrated *Agams*.

I convey my thanks and commendations to all those who have directly or indirectly co-operated in this mission.

—Amar Muni
(Uttar Bharatiya Pravartak)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

CONTENTS

प्रथम श्रुत स्कन्ध : आस्रवद्वार
First Volume (Shrut-skandh) : GATEWAYS OF AASRAWA

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
प्रथम अध्ययन—हिंसा	**१-७४**	**First Chapter—Violence**	**1-74**
१. प्राणवध का स्वरूप	४	1. Nature of Harming Life-Fore	4
२. प्राणवध के पर्यायवाची नाम	८	2. Synonymous of Praan-Vadh	8
३. पापियों का पापकर्म	१५	3. Sin of the Sinners	15
४. जलचर जीवों की हिंसा	१६	4. Violence to Aquatic Animals	16
५. स्थलचर चतुष्पद जीव	१७	5. Quadruped Living on Land	17
६. उरपरिसर्प जीव	१८	6. Uraparisarp Animals	18
७. भुजपरिसर्प जीव	१९	7. Bhujaparisarp	19
८. नभचर जीव	१९	8. Nabhachar	19
९. अन्य विविध प्राणी	२०	9. Other Different Living Beings	20
१०. हिंसा करने के प्रयोजन	२२	10. Purpose of Causing Violence	22
११. पृथ्वीकाय की हिंसा के कारण	२६	11. Causes of Violence to Earth-Bodied Creatures	26
१२. अप्काय की हिंसा के कारण	२७	12. Causes of Violence to Water-Bodied	27
१३. तेजस्काय की हिंसा के कारण	२७	13. Causes of Violence to Fire-Bodied Living Beings	27
१४. वायुकाय की हिंसा के कारण	२८	14. Causes of Violence to Air-Bodied Living Beings	28
१५. वनस्पतिकाय की हिंसा के कारण	२८	15. Causes of Violence to Plant-Bodied Beings	28
१६. हिंसक जीवों का दृष्टिकोण	३०	16. Approach of Violent Living Beings	30
१७. हिंसक जनों के विविध प्रकार	३२	17. Various types of Violent Beings	32
१८. हिंसा करने वाली जातियाँ	३३	18. Tribes Engaged in Violence	33

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
१९. हिंसा का फल	३६	19. Consequences of Violence	36
२०. नरक भूमि वर्णन	३७	20. Description of Hell	37
२१. नारकों का वीभत्स शरीर	४४	21. Dreadful Body of Hellish Beings	44
२२. नारकों को दिया जाने वाला लोमहर्षक दु:ख	४६	22. Frightening Torture in Hell	46
२३. नारक जीवों की करुण पुकार	४८	23. Bemoaning of Hellish Beings	48
२४. नारकपालों द्वारा दिया जाने वाला घोर दु:ख	४९	24. Dreadful Torture by Guardians of Hell	49
२५. नारकों की विविध पीड़ाएँ	५१	25. Various Pains of Hellish Beings	51
२६. परस्परोदीरित वेदना	५२	26. Pain Caused Mutually	52
२७. नारकों की मरने के बाद की गति	५७	27. Life of Hellish Beings after Death	57
२८. तिर्यंच पंचेन्द्रिय योनि के दु:ख	५९	28. The Trouble of Animal State	59
२९. चतुरिन्द्रिय जीवों के दु:ख	६३	29. The Pain of Four-Sensed Living Beings	63
३०. त्रीन्द्रिय जीवों के दु:ख	६६	30. Pain of Three-Sensed Living Beings	66
३१. द्वीन्द्रिय जीवों के दु:ख	६६	31. Pain of Two-Sensed Living Being	66
३२. एकेन्द्रिय जीवों के दु:ख	६७	32. Pain of One-Sensed Living Beings	67
३३. मनुष्यभव के दु:ख	७१	33. Sufferings of Human Life	71
३४. उपसंहार	७३	34. Conclusion	73
द्वितीय अध्ययन—मृषावाद	**७५-१२२**	**Second Chapter—Falsehood**	**75-122**
१. मृषावाद का स्वरूप	७५	1. Nature of Falsehood	75
२. मृषावाद के नामान्तर	७७	2. Synonyms of Falsehood	77
३. मृषावादी	८०	3. The False	80
४. मृषावादी-नास्तिकवादी का मत	८१	4. Philosophy of Falsehood	81
५. असद्भाववादी का मत	९०	5. Belief of Asadbhavavadi	90

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
६. प्रजापति द्वारा सृष्टि-सर्जन की मान्यता	९२	6. Belief of Creation by Prajapati	92
७. मृषावाद	९८	7. Falsehood (Mrishavad)	98
८. ईर्ष्या-द्वेषवश झूठा दोषारोपण करने वाले	१०२	8. False Allegations out of Jealousy	102
९. लोभजन्य अनर्थकारी झूठ	१०४	9. Falsehood Arising from Greed	104
१०. असत्यवादी : उभय—घातक	१०७	10. Falsehood : Dual Harm	107
११. पाप का परामर्श देने वाले	१०८	11. Advisors of Sin	108
१२. पाप कार्य में सहभागी बनने वाले	११०	12. Becoming Partners in Violent Sinful Acts	110
१३. हिंसक उपदेश—आदेश	१११	13. Violent Lessons and Orders	111
१४. युद्धादि के उपदेश—आदेश	११४	14. Lesson or Order about War	114
१५. मृषावाद का भयानक फल	११६	15. Dreadful Results of Falsehood	116
१६. फलविपाक की भयंकरता	१२०	16. Dreadfulness of Consequences	120
१७. उपसंहार	१२१	17. Conclusion	121
तृतीय अध्ययन—अदत्तादान	**१२३-१७६**	**Third Chapter— Adattadan (Stealing)**	**123-176**
१. अदत्त का परिचय	१२३	1. Introduction of Adatt	123
२. अदत्तादान के तीस नाम	१२६	2. Thirty Synonyms of Stealing	126
३. चौर्यकर्म के विविध प्रकार	१३०	3. Various Types of Stealing	130
४. धन के लिए राजाओं का आक्रमण	१३३	4. Attack by Rulers to Secure Money	133
५. युद्ध के लिए विविध प्रकार की शस्त्र-सज्जा	१३४	5. Various Weapons for the Battle	134
६. युद्ध-स्थल की वीभत्सता	१३६	6. Dreadfulness of Battlefield	136
७. वनवासी चोर	१४०	7. Thieves in Forest	140
८. समुद्री डाकू	१४०	8. Sea Robbers	140
९. ग्रामादि लूटने वाले	१४५	9. Village Robbers	145
१०. चोर को बन्दीगृह में होने वाली यातनाएँ	१४९	10. Jail Tortures to Thieves	149

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
११. चोर को दिया जाने वाला दण्ड	१५४	11. Punishment Awarded to Thieves	154
१२. चोरों को दी जाती हुई भीषण यातनाएँ	१६०	12. Dreadful Tortures given to Thieves	160
१३. पाप और दुर्गति की परम्परा	१६३	13. Sin and the Tradition of Bad Existence	163
१४. संसार-सागर	१६५	14. The Mundane Ocean	165
१५. भोगे बिना छुटकारा नहीं	१७५	15. No Relief without Experiencing	175
१६. उपसंहार	१७६	16. Conclusion	176
चतुर्थ अध्ययन—अब्रह्म	**१७७-२२२**	**Fourth Chapter— Non-Celibacy (Abrahm)**	**177-222**
१. अब्रह्मचर्य का स्वरूप	१७७	1. Nature of Non-Celebacy (Abrahm)	177
२. अब्रह्म के गुण-निष्पन्न नाम	१७९	2. Synonyms of Abrahm Based on its Qualities	179
३. अब्रह्मसेवी देवादि	१८३	3. Celestial Beings Engaged in Lust	183
४. चक्रवर्ती के विशिष्ट भोग	१८७	4. Unique Wealth of Chakravartis	187
५. चक्रवर्ती के राज्य विस्तार	१८७	5. Extent of Kingdom of Chakravarti	187
६. चक्रवर्ती नरेन्द्र के विशेषण	१८८	6. Special Characteristics of Chakravarti	188
७. चक्रवर्ती के शुभ लक्षण	१८८	7. Good Signs of Chakravarti	188
८. चक्रवर्ती की ऋद्धि	१८९	8. Prosperity of Chakravarti	189
९. बलदेव और वासुदेव के भोग	१९३	9. Enjoyments of Baldev and Vasudev	193
१०. माण्डलिक राजाओं के भोग	२०२	10. Enjoyments of Mandalik Kings	202
११. अकर्मभूमिज मनुष्यों के भोग	२०२	11. Enjoyments of men of lands of Non-action	202

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
१२. अकर्मभूमिज नारियों की शरीर-सम्पदा	२१०	12. Physical Wealth of Women of Akarm Area	210
१३. परस्त्री लुब्ध जीवों की दुर्दशा	२१६	13. Bad Condition of Men Attracted to other's Women	216
१४. अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम	२१९	14. Bad Results of Non-Celebacy	219
१५. उपसंहार	२२२	15. Conclusion	222
पंचम अध्ययन—परिग्रह	**२२३-२४३**	**Fifth Chapter— Attachment (Parigraha)**	**223-243**
१. परिग्रह का स्वरूप	२२३	1. Nature of Parigraha	223
२. परिग्रह महावृक्ष	२२४	2. Parigraha : The Great Tree	224
३. परिग्रह के गुणनिष्पन्न नाम	२२८	3. Synonyms of Parigraha	228
४. देव एवं मनुष्यगण भी परिग्रह के पाश में बँधे हैं	२३२	4. Gods and Humans : Victims of Parigraha	232
५. परिग्रह के लिए विविध कलाएँ सीखते हैं	२३९	5. Learning of Various Arts for Parigraha	239
६. परिग्रह पाप का कटुफल	२४२	6. Bitter Fruits of Attachment	242
आस्रवद्वार का उपसंहार	**२४४-२४५**	**Conclusion of Asrav Dvar**	**244-245**

द्वितीय श्रुत स्कन्ध : संवरद्वार

Second Volume (Shrut-skandh) : GATEWAYS OF SAMVAR

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
भूमिका	२४७	Introduction	247
संवरद्वारों की महिमा	२५०	Importance of Samvar	250
प्रथम अध्ययन—अहिंसा	**२५३-२९४**	**First Chapter— Non-Violence (Ahimsa)**	**253-294**
१. अहिंसा भगवती के साठ नाम	२५३	1. Sixty Synonyms of Non-Violence (Ahimsa)	253

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
२. अहिंसा की महिमा	२६१	2. Glory of Ahimsa	261
३. अहिंसा के विशुद्ध दृष्टा और आराधक	२६३	3. True Practitioners of Non-Violence	263
४. आहार की निर्दोष विधि	२७४	4. Faultless Method of Taking Food	274
५. जिन प्रवचन का उद्देश्य और फल	२८३	5. Purpose of Word of Omniscient and its Result	283
६. अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाएँ—		6. Five Sentiment of Major Vow of Ahimsa–	
अ) प्रथम भावना : ईर्यासमिति	२८३	A) First Sentiment : Iriya Samiti	283
ब) द्वितीय भावना : मन:समिति	२८५	B) Second Sentiment : Equanimity of Mind	285
स) तृतीय भावना : वचनसमिति	२८५	C) Third Sentiment : Equanimity in Speech	285
द) चतुर्थ भावना : आहारैषणासमिति	२८६	D) Fourth Sentiment : Equanimity in Seeking Food	286
य) पाँचवी भावना : आदान-निक्षेपणसमिति	२८९	E) Fifth Sentiment : Discrimination in Keeping and Picking up Things	289
द्वितीय अध्ययन—सत्य	**२९५-३१९**	**Second Chapter—Truth**	**295-319**
१. सत्य की महिमा	२९५	1. The Glory of Truth	295
२. दोषयुक्त सत्य का त्याग	२९९	2. Avoidance of Faulty Truth	299
३. बोलने योग्य सत्य वचन	३०१	3. Words Worthy to be Uttered	301
4. सत्य वचन बोलने का सुफल	३०७	4. Good Result of Major Vow of Truth	307
5. सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—		5. Five Sentiments of Major Vow of Truth–	
अ) प्रथम भावना : अनुवीचिभाषण	३०८	A) First Sentiments : Improper Word	308
ब) दूसरी भावना : अक्रोध	३०९	B) Second Sentiment : Not to be Angry	309

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
स) तीसरी भावना : निर्लोभता	३१०	C) Third Sentiment : Control over Greed	310
द) चौथी भावना : निर्भयता	३१२	D) Fourth Sentiment : Fearlessness	312
य) पाँचवीं भावना : हास्य-संयम	३१२	E) Fifth Sentiment : Discarding Laughter	212
६. उपसंहार	३१८	6. Conclusion	318
तृतीय अध्ययन—दत्तानुज्ञात	**३२०-३४५**	**Third Chapter— To Get with Permission**	**320-345**
१. अस्तेय का स्वरूप	३२०	1. Nature of Non-Stealing	320
२. ये अस्तेय के आराधक नहीं	३२४	2. Not True Practitioner of the vow of Non-Stealing	324
३. अस्तेय के आराधक कौन ?	३३०	2. Who is Practitioner of Non-Stealing ?	330
३. अस्तेय व्रत की आराधना का फल	३३४	3. Advantage of its Practice	334
४. अस्तेय व्रत की पाँच भावनाएँ—		4. Five Sentiments of the Vow of Non-Stealing—	
अ) प्रथम भावना : निर्दोष उपाश्रय	३३५	A) First Sentiment : Faultless Upashraya	335
ब) द्वितीय भावना : निर्दोष संस्तारक	३३७	B) Second Sentiment : Faultless Bedding	337
स) तृतीय भावना : शय्या-परिकर्मवर्जन	३३८	C) Third Sentiment : Avoiding Sinful Activities about Bed	338
द) चतुर्थ भावना : अनुज्ञातभक्तादि	३३९	D) Fourth Sentiment : Food Offered According to Code	339
य) पाँचवी भावना : साधर्मिक विनय	३४०	E) Fifth Sentiment : Humility Towards Co-Religionist	340
५. उपसंहार	३४४	5. Conclusion	344

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
चतुर्थ अध्ययन—ब्रह्मचर्य	**३४६-३७६**	**Fourth Chapter— Brahmcharya**	**346-376**
१. ब्रह्मचर्य की महिमा	३४६	1. Importance of Chastity	346
२. बत्तीस उपमाओं से मण्डित ब्रह्मचर्य	३५२	2. Thirty Two Similies of Vow of Chastity	352
३. महाव्रतों का मूल : ब्रह्मचर्य	३५८	3. Basis of All Major Vows : Brahmcharya	358
४. ब्रह्मचर्य—विघातक निमित्त	३६१	4. Causes Adversely Affecting Chastity	361
५. ब्रह्मचर्य—रक्षक नियम	३६२	5. Codes Safe-guarding Chastity	362
६. ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनाएँ—		6. Five Sentiments of Vow of Chastity	
अ) प्रथम भावना : विविक्त-शयनासन	३६५	A) First Sentiment : Aloof Bed	365
ब) द्वितीय भावना : स्त्री-कथावर्जन	३६७	B) Second Sentiment : Avoiding Stories about Women	367
स) तृतीय भावना : स्त्रियों के रूप-दर्शन का त्याग	३६८	C) Third Sentiment : Avoiding Looking at Beauty of Women	368
द) चतुर्थ भावना : पूर्वभोग-चिन्तन-त्याग	३६९	D) Fourth Sentiment : Avoiding Recollection of Earlier Enjoyments	369
य) पाँचवीं भावना : स्निग्ध सरस भोजन-त्याग	३७१	E) Fifth Sentiment : Avoiding Rich Tasty Juicy Food	371
7. उपसंहार	३७५	7. Conclusion	375
पंचम अध्ययन—परिग्रहत्याग	**३७७-४३७**	**Fifth Chapter— Discarding Parigraha**	**377-437**
१. उत्क्षेप	३७७	1. Introduction	377
२. अपरिग्रह संवर का स्वरूप धर्म-वृक्ष की उपमा	३९५	2. Dharma Tree	395
३. अपरिग्रही के लिये अकल्पनीय-अनाचरणीय	३९६	3. Prohibitions for the Detached	396
४. सन्निधि-त्याग	३९८	4. Discarding Collection of Possession	398

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ सं.	Subject	Page No.
५. कल्पनीय भिक्षा	४०२	5. Acceptable Offering	402
६. साधु के लिये ग्राह्य धर्मोपकरण	४०५	6. Articles for Monk	405
७. अपरिग्रही साधु का आन्तरिक स्वरूप	४०७	7. Inner Nature of Detached Monk	407
८. निर्ग्रन्थों की ३१ उपमायें	४११	8. Thirty one Illustrative Comparisons of Monks	411
९. अपरिग्रहव्रत की पाँच भावनाएँ—	४१६	9. Five Sentiments of Vow of Non-Attachment–	416
अ) प्रथम भावना : श्रोत्रेन्द्रिय-संयम	४१७	A) First Sentiment : Restraint of Sense of Hearing	417
ब) द्वितीय भावना : चक्षुरिन्द्रिय-संवर	४२०	B) Second Sentiment : Restraint of Karma Inflow Restraint to Sense of Sight	420
स) तृतीय भावना : घ्राणेन्द्रिय-संयम	४23	C) Third Sentiment : Restraint of Sense of Smell	423
द) चतुर्थ भावना : रसनेन्द्रिय-संयम	४२५	D) Fourth Sentiment : Restraint of sense of Taste	425
य) पाँचवीं भावना : स्पर्शनेन्द्रिय-संयम	४२७	E) Fifth Sentiment : Restraint of Sense of Touch	427
१०. पंचम संवरद्वार का उपसंहार	४३०	10. Conclusion of Fifth Gateway of Samvar	430
सम्पूर्ण संवरद्वार का उपसंहार	**४३८-४३९**	**Conclusion of complete Gateway of Samvar**	**438-439**
परिशिष्ट-1 : विशिष्ट शब्दों एवं नामों का कोश	४४०-४७६	**Appendix-1 :** Glossary of Technical Words	440-476
परिशिष्ट-2 : सम्पूर्ण प्रश्नव्याकरण एक दृष्टि में		**Appendix-2 :** Complete Prasnavyakaran Sutra at a glance	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्र प्रश्नव्याकरण सूत्र

प्रथम श्रुतस्कंध : आस्रवद्वार

ILLUSTRATED

PRASNAVYAKARAN SUTRA

First Volume : GATEWAYS OF AASRAWA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐卐

आस्रवद्वार
AASRAVA DVAAR

प्रथम अध्ययन : हिंसा
FIRST CHAPTER : VIOLENCE

१. जंबू ! इणमो अण्हय-संवर विणिच्छयं, पवयणस्स णिस्संदं।
वोच्छामि णिच्छयत्थं, सुभासियत्थं महेसीहिं॥१॥

पंचविहो पण्णत्तो, जिणेहिं इह अण्हओ अणाईओ।
हिंसामोसमदत्तं अब्बंभपरिग्गहं चेव॥२॥

जारिसमो जं णामा, जह य कओ जारिसं फलं देइ।
जे वि य करेंति पावा, पाणवहं तं णिसामेह॥३॥

१. आर्य सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं-जम्बू ! आस्रव और संवर को भलीभाँति जानने और समझने के लिए यह सूत्र सम्पूर्ण जिन प्रवचन का साररूप है अर्थात् जिन प्रवचन का निचोड़ है। दोनों तत्त्वों का सम्यक् निश्चय करने के लिए महर्षियों-तीर्थंकरों एवं गणधरों आदि के द्वारा यह समीचीन रूप से कहा गया है।

जिनेश्वर देव ने इस जगत् में अनादि आस्रव के पाँच प्रकार बताये हैं-(१) हिंसा, (२) असत्य, (३) अदत्तादान, (४) अब्रह्म, और (५) परिग्रह (मूर्च्छा-ममत्व)॥ २॥

प्राणवधरूप प्रथम आस्रव है। वह जैसा है, उसके जो-जो नाम हैं, जिन पापी प्राणियों द्वारा वह जिस रूप में, जिस प्रकार किया जाता है और जैसा-(दुःखमय) फल प्रदान करता है, उन सबको तुम सुनो॥ ३॥

1. Reverend Sudharma Swami tells his disciple Jambu Swami—O Jambu ! This text is the very essence of entire teaching of the omniscient in order to properly understand the inflow of Karma (Aasrava) and the stoppage of the said inflow (Samvar). In other words it is the gist of the sermon of the Jina. It is lucidly said by the great sages–Tirthankars and the Ganadhars in order to explain in detail the two essentials.

The omniscient has laid down that Aasrava which has been in existence since beginningless period is of five types namely—(i) violence, (ii) falsehood, (iii) stealing, (iv) non-chastity, and (v) covetousness (parigraha).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The first type of Aasrava is in the form of causing violence to the life force. Now you listen its different names, the way it is committed by the ignoble, and its consequences.

विवेचन : जिन भावों तथा जिन प्रवृत्तियों से आत्मा में पाप-कर्मरूप मलिन परमाणु प्रविष्ट होते हैं, उनको 'आस्रव' कहा गया है।

'आस्रव' को समझाने के लिए समुद्र में स्थित नौका का उदाहरण दिया जाता है। समुद्र स्थित नौका में यदि छिद्र हो जाते हैं, तो उन छिद्रों द्वारा नौका में धीरे-धीरे पानी प्रवेश करने लगता है, फलस्वरूप नौका समुद्र में डूबने की स्थिति में पहुँच जाती है।

इसी प्रकार संसाररूपी समुद्र में कर्मवर्गणारूप अथाह जल भरा है। आत्मारूपी नौका इस समुद्र में तैर रही है। जब आत्मा हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रहरूप अशुभ भावों में प्रवृत्त होती है तो उसमें ऐसे छिद्र हो जाते हैं जिनसे अशुभ कर्मरूपी जल आत्मा में आने लगता है। कर्म जल से भारी होने पर आत्मारूपी नौका संसार-समुद्र में डूबने लगती है। आस्रव : छिद्र-नाव में छिद्र है तो उसमें से पानी आता है। उसी प्रकार हिंसा से आत्मा में अशाता वेदनीय कर्म आते हैं। इस प्रकार कर्म आने के छिद्र को आस्रव कहते हैं।

अहिंसा, सत्य आदि संयमरूप शुभ भावों द्वारा उन छिद्रों को रोका जाता है। छिद्रों को रोक देना 'संवर' है।

तत्त्वार्थसूत्र में आस्रव के पाँच भेद बताये हैं-(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग। कुछ अन्य अपेक्षाओं से आस्रव के बीस भेद भी गिनाये गये हैं।

प्रस्तुत तीन गाथाओं में से प्रथम गाथा में शास्त्रकार ने बताया है कि अर्हत् तीर्थंकरों द्वारा इस शास्त्र में आस्रव और संवर की समीचीन, सर्वांग प्ररूपणा की जायेगी।

जिसने कर्मबन्ध के कारण-'आस्रवों' और कर्मनिरोध के कारण 'संवरों' को भलीभाँति जान लिया, उसने समग्र जिन प्रवचन के रहस्य को ही जान लिया है।

प्रत्येक संसारी जीव को आस्रव अनादिकाल से हो रहा है, संसारी जीवों ने आस्रव का कभी भी समग्र रूप में निरोध नहीं किया, किन्तु अनादि होने पर भी आस्रव अनन्तकालिक नहीं है। संवर के द्वारा उसका परिपूर्ण निरोध किया जा सकता है। अभव्य जीवों की अपेक्षा आस्रव अनादि-अनन्त है। वे कभी आस्रव का सम्पूर्ण निरोध नहीं कर पाते। किन्तु भव्य जीवों की अपेक्षा यह अनादि-सान्त है। आस्रव का निरोध करना संवर है। प्रस्तुत आगम में प्रथम आस्रव का स्वरूप बताकर फिर संवर का स्वरूप बताया जायेगा।

तृतीय गाथा में हिंसा को 'जीव वध' नहीं कहकर **'प्राण वध'** कहा है। टीकाकार ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है, 'जीव' का कभी वध नहीं होता, वह शाश्वत है, किन्तु शरीर के भीतर जो जीव की शक्तिरूप 'प्राण' है, उनका विनाश करने पर 'जीव' को घोर कष्ट व पीड़ा पहुँचती है। सभी शरीरधारी जीवों को अपने प्राण प्रिय हैं, प्राण नाश अप्रिय व दुःखदायी है। किसी जीव को कष्ट पहुँचाना हिंसा है। अतः यहाँ हिंसा के अर्थ में 'प्राण वध' शब्द का सार्थक, सोद्देश्य प्रयोग किया गया है। जैसा कहा है-

प्राणाः दशैते भगवद्भिरुक्ता,
तेषां वियोगीकरणं तुं हिंसा।।

दस प्रकार के प्राणों में से किसी भी प्राण का वियोजन (नाश) करना हिंसा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वप्रथम हिंसा आस्रव के सम्बन्ध में निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला जायेगा-

(१) हिंसा आस्रव का स्वरूप क्या है ?

(२) उसके क्या-क्या नाम हैं, जिनसे उसके विविध रूपों का परिज्ञान हो सके ?

(३) हिंसारूप आस्रव किस प्रकार से किया जाता है ?

(४) वह आस्रव किस प्रकार का कटु फल प्रदान करता है ?

(५) कौन पापी जीव-हिंसा करते हैं ?

Elaboration—The sentiments and the activities, which result in inflow of atoms of dirty karmic matter in the soul are called Aasrava.

In order to enable one to understand Aasrava properly, the example of boats floating on the sea is quoted. In case holes develop in the boat, the sea-water slowly enters the boat. As a result there comes a stage when the boat starts sinking.

Similarly the worldly ocean of life, death and re-birth is full of water in the form of harmful Karmic matter. The soul in the form of boat floats in that sea. When the soul engages itself in thought activity coloured with violence, falsehood, stealing, non-chastity or attachment for worldly things, holes develop in the boat representing soul and through those holes the demerit Karmas start entering the soul just as water enters the boat. Due to the heavy load of water in the form of Karmas, the soul represented by the boat starts sinking in the worldly ocean.

Asrava is like holes. If there are holes in a boat, water entersit. In the same way violence causes entry of pain-causing karmas in the soul. These holes that allow entry of Karmas in the soul are called Aasrava.

The holes are plugged with meritorious thought activity in the form of non-violence (ahimsa), truth and the like; plugging the holes is called Samvar.

According to Tattvarth Sutra, Aasrava is of five types—(i) Wrong perception (mithyatva), (2) non-restraint (avirati), (3) slackness (pramaad), (4) passions (kashaya), and (5) activities of body, speech and mind (yoga). In another context Aasrava is stated to be of twenty types.

Among the three verses mentioned above, the author has mentioned in the first verse that the reverend Tirthankars shall explain here Aasrava and Samvar in a comprehensive manner.

One who clearly understands Aasrava—the cause of inflow of Karma, and Samvar—the cause of stoppage of the inflow, properly, he shall in reality understand the very secret of the philosophy of the omniscient.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Every worldly living being is experiencing Aasrava since beginningless period. He never made serious effort to stop that inflow of Karma (Aasrava) completely. Although Aasrava has been without a beginning, yet it is not endless. It can be stopped completely through Samvar. In the context of abhavya (those who are incapable of attaining salvation) it is indeed without a beginning and also without an end. They can never stop the inflow of Karmas completely. But in the case of bhavya living beings, it can be ended. To stop Aasrava is Samvar. In the present text, at first the nature of Aasrava shall be explained in detail and thereafter Samvar shall be described.

In the third verse, violence is not interpreted as killing the living being. It is mentioned as killing the life-force. Explaining it, the commentator has mentioned that a living being is never killed. He is permanent. But when the life-force in him, which is called praan, is destroyed, the living being experiences great pain. Every living being possessing physical body has a great affection for the life-forces in him. He does not like the destruction of life-force in him. He experiences great pain at their loss. To cause trouble to any living being (Jiva) is violence (himsa). So violence has been properly interpreted as hurting the life-force. For instance it has been mentioned by the wise that the life-force is of ten types and to cause hurt to any one of them is violence. At first, the following topics shall be discussed in the context of Himsa Aasrava—

(1) What is the nature of Himsa Aasrava ?

(2) What are the various names through which one can know its different forms ?

(3) How is Himsa Aasrava performed ?

(4) How does Himsa Aasrava produce bitter result ?

(5) Who are the persons involved in causing hurt to living beings ?

प्राणवध का स्वरूप **NATURE OF HARMING LIFE-FORCE (PRAAN VADH)**

२. पाणवहो णाम एसो जिणेहिं भणिओ—१ पावो २ चंडो ३ रुद्दो ४ खुद्दो ५ साहसिओ ६ अणारिओ ७ णिग्घिणो ८ णिस्संसो ९ महब्भओ १० पइभओ ११ अइभओ १२ बीहणओ १३ तासणओ १४ अणज्जओ १५ उव्वेयणओ य १६ णिरवयक्खो १७ णिद्धम्मो १८ णिप्पिवासो १९ णिक्कलुणो २० णिरयवासगमणनिधणो २१ मोहमहब्भयपयट्टओ २२ मरणवेमणस्सो। एस पढमं अहम्मदारं ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. जिनेश्वर भगवान ने प्राणवध रूप हिंसा का स्वरूप इस प्रकार बताया है, यथा-(१) पाप, (२) चण्ड, (३) रुद्र, (४) क्षुद्र, (५) साहसिक, (६) अनार्य, (७) निर्घृण, (८) नृशंस, (९) महाभय, (१०) प्रतिभय, (११) अतिभय, (१२) भापनक, (१३) त्रासनक, (१४) अन्याय, (१५) उद्वेगजनक, (१६) निरपेक्ष, (१७) निर्धर्म, (१८) निष्पिपास, (१९) निष्करुण, (२०) नरकवास गमन-निधन, (२१) मोहमहाभय प्रवर्तक, (२२) मरणवैमनस्य। इति प्रथम अधर्म-द्वार।

2. The omniscient Tirthankar has described the nature of Praan Vadh as under—(i) sin, (ii) contemptible (chand), (iii) wrath (rudra), (iv) rustic (kshudra), (v) rash (sahasik) (vi) uncultured (anarya), (vii) treacherous (nirghurna), (viii) inhuman (nrishans), (ix) a great fear, (x) shadow of fear (pratibhaya), (xi) extreme fear (atibhaya), (xii) terrible (bhapanak), (xiii) terrorising (trasanak), (xiv) unjust, (xv) distressed, (xvi) non-committal, (xvii) un-religious, (xviii) merciless, (xix) non-compassionate, (xx) desirous of hell, (xxi) engrossed in extreme fear due to attachment, (xxii) enmity due to death.

विवेचन : हिंसक की मनोवृत्तियों और उसके परिणामों का प्रकटीकरण करने वाले २२ विशेषण प्रस्तुत सूत्र में दिये हैं, जिनका भावार्थ इस प्रकार है-

(१) **पावो**-पापकर्म की ८२ प्रकृतियों के बन्ध का कारण होने से यह पापरूप है।

(२) **चंडो**-जब कषाय के भड़कने से परिणाम उग्र हो जाते हैं, तब जीव प्राणवध करता है, अतएव यह चण्ड है।

(३) **रुद्दो**-हिंसा करते समय जीव रौद्र परिणामी बन जाता है, अतएव हिंसा रुद्र है।

(४) **खुद्दो**-यह अत्यन्त नीच कर्म होने से क्षुद्र है। हिंसा करने वाले के मन में स्वार्थलिप्सा, असहिष्णुता, दुर्बलता, कायरता, ईर्ष्या एवं संकीर्णता आदि क्षुद्र मनोभाव रहते हैं।

(५) **साहसिओ**-हिंसा करने वाला अविवेकी, दुस्साहसिक तथा हिंसा के कटु परिणामों के प्रति लापरवाह होता है।

(६) **अणारिओ**-अनार्य पुरुष हिंसा का आचरण करते हैं, अथवा हेय प्रवृत्ति होने से भी यह अनार्य कर्म कहा गया है।

(७) **णिग्घिणो**-हिंसा करते समय पाप से घृणा नहीं रहती, अतः यह निर्घृण है।

(८) **णिस्संसो**-हिंसा दयाहीनता का कार्य है, अतएव नृशंस है।

(९) **महब्भओ**-हिंसा की पृष्ठभूमि में भय भी एक प्रबल कारण है। हिंसा करते हुए हिंसक भयभीत रहता है। जिसकी हिंसा होती है वह हिंस्य भी भयभीत होता है। हिंसा कृत्य को देखने वाले दर्शक भी भयभीत होते हैं। हिंसा में भय व्याप्त है। हिंसा भय का हेतु होने के कारण उसे महाभयरूप माना है।

(१०) **पइभओ**-हिंसा करने वाले का मन भी हिंस्य प्राणी से भयभीत रहता है। अतः यह प्रतिभय है। भय से भय उत्पन्न होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) अइभओ–हिंसा प्राणवध (मृत्यु) स्वरूप है। प्राणिमात्र को मृत्युभय से बढ़कर अन्य कोई भय नहीं। 'एतस्मात् अन्यत् भयं नास्ति' मृत्यु से बड़ा या मरण के समान अन्य कोई भय नहीं है। अतः यह अतिभय है।

(१२) बीहणओ–हिंसा दूसरों में भय उत्पन्न करने वाली है।

(१३) तासणओ–दूसरों को त्रास या क्षोभ उत्पन्न करने वाली है।

(१४) अणज्जओ–हिंसा नीति व न्याय विरुद्ध होने के कारण अन्याय है।

(१५) उव्वेयणओ–हिंसा हृदय में उद्वेग उत्पन्न करने वाली है।

(१६) णिरवयक्खो–हिंसक प्राणी अन्य के प्राणों की अपेक्षा–परवाह नहीं करता, उन्हें तुच्छ समझता है। अतएव उसे निरपेक्ष कहा गया है।

(१७) णिद्धम्मो–हिंसा धर्म से विपरीत है। अर्थात् हिंसा त्रिकाल में भी धर्म नहीं हो सकती।

(१८) णिप्पिवासो–हिंसक के चित्त में दूसरों के जीवन की पिपासा-इच्छा नहीं होती, अतः वह निष्पिपास कही जाती है।

(१९) णिक्कलुणो–हिंसक के मन में करुणाभाव नहीं रहता, वह निर्दय हो जाता है।

(२०) णिरयवासगमणनिधणो–हिंसा का सुनिश्चित परिणाम नरकगति की प्राप्ति रूप है।

(२१) मोहमहब्भयपयट्टओ–हिंसा मूढ़ता की जननी एवं परिणाम में घोर भय को उत्पन्न करने वाली है।

(२२) मरणवेमणस्सो–मरण के कारण जीवों में उससे विमनस्कता–उदासी उत्पन्न होती है। अथवा यह मरने वाले के मन में वैमनस्य (वैर–द्वेष) उत्पन्न करती है। उक्त विशेषणों से हिंसा का वास्तविक रूप प्रकट किया गया है।

Elaboration—In this paragraph twenty two adjectives have been mentioned in order to describe the mental attitude of the violent person and the consequences of such states—

(1) Sin—Since it results in bondage of 82 species of demerit Karma, it is a sin.

(2) Contemptible—A person hurts the life-force of others when he becomes violent due to the influence of passion. So it is contemptible (chand)

(3) Wrath—While committing violence, one is in a state of wrath. So such a violence is wrath.

(4) Rustic—Violence is an extremely low type action. A violent person is selfish. He is intolerant, weak, coward, jealous and mean. So he is in a rustic (kshudra) state.

(5) Rash—A violent person does not have a sense of discrimination. He cannot control his passions. He is slack about the bettor consequences of violence.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(6) **Uncultured**—Only those who are not civilized, engage, themselves in violence. Further such a behaviour needs to be abandoned. So it is an uncultured act.

(7) **Treacherous**—While committing violence, one has no contempt for sin. So it is treacherous.

(8) **Inhuman**—Violence is the act of one devoid of compassion. So it is inhuman.

(9) **Great Fear**—In the background of violence, the primary cause is fear. While engaged in violence, one remains in a state of fear. One who is the victim of that violence, he also remains frightened. The persons seeing the violent act are also in a state of fear. So violence is full of fear.

(10) **Shadow of Fear**—The person committing violence is mentally afraid of the one against whom he is violent. So it is a shadow of fear. Fear results in fear.

(11) **Extreme Fear**—Violence is by nature hurting the life-force (causing death). The greatest fear to a living being is the fear of death. So it is extreme fear.

(12) **Terrible**—Violence causes fear in others.

(13) **Terrorising**—Violence causes dejection and trouble.

(14) **Unjust**—Violence is against the code of morality and justice. So it is unjust.

(15) **Distress**—Violence causes distress in the heart.

(16) **Non-committal**—A violent person has no regard for the life-force of others. He considers them insignificant. So he is said to be non-committal.

(17) **Unreligious**—Violence is against the code defined in scripture. It cannot be justified in any period.

(18) **Merciless**—A violent person has no respect for the life of others. So he is merciless.

(19) **Non-compassionate**—A violent person is devoid of any feeling of compassion. He is cruel.

(20) **Desirous of Hell**—Violence definite leads one to hell in the next life.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(21) Engrossed in Extreme Fear due to Attachment—Violence is the mother of ignorance. It causes extreme state of fear.

(22) Enmity due to Death—Since violence causes death, the victim feels extremely sad. It causes animosity in the victim.

The above-mentioned qualitative interpretations describe the real nature of violence.

प्राणवध के पर्यायवाची नाम SYNONYMOUS OF HURTING LIFE-FORCE

३. तस्स य णामाणि इमाणि गोण्णाणि होंति तीसं–तं जहा–

१. पाणवहं, २. उम्मूलणा सरीराओ, ३. अवीसंभो, ४. हिंसविहिंसा तहा, ५. अकिच्चं च, ६. घायणा य, ७. मारणा य, ८. वहणा, ९. उद्दवणा, १०. तिवायणा य, ११. आरंभसमारंभो, १२. आउयक्कम्मस्सुवद्दवो भेयणिट्ठवणगालणा य संवट्टगसंखेवो, १३. मच्चू, १४. असंजमो, १५. कडगमद्दणं, १६. वोरमणं, १७. परभवसंकामकारओ, १८. दुग्गइप्पवाओ, १९. पावकोवो य, २०. पावलोभो, २१. छविच्छेओ, २२. जीवियंतकरणो, २३. भयंकरो, २४. अणकरो, २५. वज्जो, २६. परियावणअण्हओ, २७. विणासो, २८. णिज्जवणा, २९. लुंपणा, ३०. गुणाणं विराहणत्ति विय तस्स एवमाईणि णामधिज्जाणि होंति तीसं, पाणवहस्स कलुसस्स कडुयफलदेसगाइं॥२॥

३. प्राणवधरूप हिंसा के कटु फलों को दर्शाने वाले विविध अर्थों व भावों के द्योतक गुणवाचक तीस नाम इस प्रकार हैं–

('गौण' शब्द से एक अर्थ यह भी द्योतित होता है कि ये सब नाम तो गौण हैं, मुख्य नाम तो प्राणवध या हिंसा है।)

(१) **प्राणवध**–स्वार्थ, अज्ञान और मोह में अन्धे होकर किसी भी प्राणी के प्राणों का घात करना प्राणवध है। पाँच इन्द्रियाँ, मनबल, वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास, इन दस प्राणों में से किसी भी प्राणी के कोई भी प्राण को चोट पहुँचाना, सताना, पीड़ा देना, काटना, पीटना या बिल्कुल नष्ट कर देना प्राणवध है।

(२) **शरीर (प्राणों का) से उन्मूलन**–जैसे वृक्ष को जड़ से उखाड़ा जाता है, वैसे ही शरीर से जीव को उखाड़ डालना उन्मूलन है।

(३) **अविस्रंभ–अविश्वास**–हिंसा करने वाला सभी जीवों के लिए अविश्वसनीय होता है। उसका कोई भी विश्वास नहीं करता क्योंकि वह कब किसको मार बैठे, आ दबोचे या अनिष्ट कर डाले, पता ही नहीं चलता। जैसे चूहे बिल्ली का कदापि विश्वास नहीं करते, वैसे ही संसार में हिंसक प्राणी के प्रति मनुष्य ही क्या, कोई भी प्राणी विश्वास नहीं करता। हिंसक की आकृति से ही प्राणी पहचान लेते हैं और उसके पास जाने से हिचकते हैं। इसलिए हिंसा प्राणियों में अविश्वास, शंका, भय और संकोच पैदा करने वाली होने से इसे अविस्रंभ या अविश्वास कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) **हिंस्यविहिंसा–हिंसविहिंसा**–जिनकी हिंसा की जाती है, वे हिंस्य जीव कहलाते हैं, उनकी हिंसा करना यानी उन्हें सताना, पीड़ा देना 'हिंस्यविहिंसा' है। अथवा हिंसा पर हिंसा करना। यानी किसी ने किसी पर प्रहार किया तो उस पर उसकी हत्या कर देना हिंसविहिंसा है। जिन्होंने हिंसा के बदले में प्रतिहिंसा की, उन्होंने जगत् में वैर को बढ़ाया। इसीलिए हिंसविहिंसा पापरूप है।

(५) **अकृत्य**–संसार में जितने भी कुकृत्य हैं, उन सबमें प्रधान कुकृत्य हिंसा है। अथवा जितने भी कुकृत्य हैं, उन सबमें हिंसा छिपी हुई है।

(६) **घातना**–किसी भी प्रकार की चोट पहुँचाना, टक्कर लगाना, उठते–बैठते, चलते–फिरते, किसी चीज को उठाते–रखते असावधानी से किसी जीव को कुचल देना, उसके प्राणों को हानि पहुँचाना 'घातना' है।

(७) **मारणा**–मारपीट करना, लात–घूँसे मारना, कोड़ों से, लाठी से, चाबुक से किसी पशु या मनुष्य पर प्रहार करना 'मारणा' है।

(८) **वधना**–किसी प्राणी के प्राणों को पीड़ा पहुँचाना या नष्ट करना वध है अथवा अपनी जिह्वा–लोलुपतावश या क्षणिक सुख के लिए बेचारे निरपराध प्राणियों का हनन करना, पशुओं का वध करना या वध को प्रोत्साहन देना भी वध है।

(९) **उपद्रवणा**–वन में आग लगाकर या मन बहलाव के लिए अथवा कुतूहलवश भैंसे, मुर्गे, साँड़ आदि को परस्पर लड़ाना उपद्रव है। अथवा कहीं आग लगाना, दंगा–फिसाद करना या पत्थरबाजी करना या आपस में लाठी, शस्त्र आदि से लड़ना इत्यादि सब उपद्रव हैं, ये भी हिंसा के भाई हैं।

(१०) **त्रिपातना या निपातना**–किसी जीव के मन, वचन और काया का अतिपात–वियोग करना अथवा आयु, शरीर और प्राणों से पृथक् कर देना त्रिपातना है।

(११) **आरम्भ–समारम्भ**–मकान बनाना, कारखाना चलाना आदि छोटे–बड़े अनेक कार्यों में स्थावर जीवों की हिंसा होती ही है, कई बार त्रस जीवों की हिंसा भी होती है। इसे शास्त्रीय परिभाषा में आरम्भ कहते हैं, खुद हिंसा करे उसे आरंभ कहते हैं। दूसरों से करवाते हैं उसे समारंभ कहते हैं।

(१२) **आयुकर्म का उपद्रव–भेदन–निष्ठापन–गालन और संवर्तक संक्षेप**–आयुष्य कर्म को विष, शस्त्र आदि से उपद्रवित कर देना (संकट में डाल देना), भिन्न कर देना (शरीर के टुकड़े–टुकड़े करके अलग कर देना), समाप्त कर देना, गला देना तथा श्वासोच्छ्वास (प्राणवायु) का ह्रास कर देना–दम घोंट देना भी प्राणवध है।

संवर्तक संक्षेपक का एक अर्थ समस्त बल, सामर्थ्य, शक्ति आदि को क्षीण कर देना भी है। किसी की ताकत को खत्म करने के लिए भूखे–प्यासे रखना, जहर देना, रोगी बना देना, ये सब हिंसा के ही प्रकार हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१३) **मृत्यु**–किसी को जान से मार डालना, जीवन से रहित कर देना या परलोक पहुँचा देना मृत्यु है।

(१४) **असंयम**–पृथ्वीकाय, अप्काय आदि छहों काय जीवों के साथ यतना, सावधानी या विवेकपूर्वक व्यवहार न करने से या स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों के शरीर (मिट्‌टी, पानी, हवा, अग्नि और वनस्पति) का अनावश्यक, निरर्थक एवं अनाप-शनाप उपयोग करने से प्राणिवध रूप असंयम होता है। असंयम ही हिंसा का जनक है।

(१५) **कटकमर्दन**–सेना लेकर आक्रमण करके जीवों का मर्दन करना, कुचल डालना या रौंद डालना अथवा मसल डालना कटकमर्दन है। अथवा युद्ध में झौंककर या लड़ाकर उनको चकनाचूर करा देना भी कटकमर्दन कहलाता है।

(१६) **व्युपरमण**–शरीर को प्राणों से भिन्न करना–रहित करना व्युपरमण है।

(१७) **परभव संक्रमकारक**–किसी प्राणी को इहभवरूपी घर को छुड़ाकर परभवरूपी नवगृह में जाने से मोह-ममत्ववश अत्यन्त दुःख होता है। इसलिए अत्यन्त दुःखकारक होने से यह दूसरे जन्म में पहुँचाने वाला परभव संक्रमणकारक कहलाता है।

(१८) **दुर्गतिप्रपात**–नरक तिर्यंचरूप दुष्ट गति के गड्‌ढे में गिराने वाला होने से प्राणवध को दुर्गतिप्रपात कहा गया है।

(१९) **पापकोप**–पाप को प्रकुपित करने या उत्तेजित करने वाला पापकोप है। हिंसा भी पाप को उत्तेजित करने-बढ़ावा देने वाली होती है।

(२०) **पापलोभ या पापल**–जो प्राणी को पाप में लुब्ध कर देता है, पाप में रचा-पचा देता है, वह पापलोभ है। अथवा पापरूप उत्कट लोभ का कारण होने से भी प्राणिवध का एक नाम 'पापलोभ' है। इसका पाठान्तर **'पापलः'** भी मिलता है, जिसका अर्थ है–पापों को लाने वाला।

(२१) **छविच्छेद**–छवि यानी शरीर के किसी भी हिस्से (नाक, कान आदि) का छेदन करना-काटना छविच्छेद है।

(२२) **जीवितान्तकरण**–जीवन का अन्त कर देना भी प्राणवध का एक अंग है। जीवन सबको अत्यन्त प्यारा होता है, किन्तु जब उसको अपने जीवन से कोई अलग करता है, तो उसे अत्यन्त दुःख होता है, यही हिंसा है।

(२३) **भयंकर**–भयंकर का अर्थ है-भय पैदा करने वाला। वध के नाम से ही प्राणी डर के मारे काँप उठता है। जिसका वध किया जाता है, उसे तो भय लगता ही है, साथ ही वध करने वाले के मन में भी यह भय बैठ जाता है कि कहीं यह सामना करके मुझे मार न बैठे। इस तरह प्राणिवध चारों ओर भय ही भय पैदा करने वाला है।

(२४) **ऋणकर**–प्राणिवध पापरूप ऋण को चुकाते समय-पाप का फल भोगते समय जीव को बड़ा ही दुःखी होना पड़ता है। परलोक में भी इस कठोर ऋण के कारण नरक आदि में असह्य यातनाएँ और तिर्यंचगति में भी भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि के नाना दुःख भोगने पड़ते हैं, जो उस ऋण के कुफल हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२५) **वज्र या वर्ज्य अथवा सावद्य**–प्राणिवध वज्र के समान बड़ा कठोर है। प्राणी का कोमल हृदय इसे सह नहीं सकता, इसलिए इसे 'वज्र' कहा है। इसका एक संस्कृत रूप **वर्ज्य** भी होता है, जिसका अर्थ है वर्जनीय।

(२६) **परितापास्रव**–परितापकारी। मृषावाद आदि अन्य आस्रव इसी आस्रव से उत्पन्न होते हैं। अथवा यह आस्रव दूसरे मृषावाद आदि आस्रवों की अपेक्षा अधिक परिताप (सन्ताप) देने वाला होने से इसे परितापास्रव कहा है।

(२७) **विनाश**–प्राणियों का इसमें द्रव्य और भाव दोनों ही तरह से नाश होता है, इसलिए इसे विनाश कहा है। द्रव्य से विनाश तो प्राणों या शरीरादि का होता है, भाव से मरते समय मरने वाले जीव में प्रायः आर्त्तध्यान एवं मारने वाले के प्रति रौद्रध्यान पैदा होता है, साथ ही मारने वाले के मन में भी क्रूर भाव पैदा होते हैं, इसलिए द्रव्य और भाव से स्व-पर विनाश का कारण होने से प्राणिवध को 'विनाश' कहा है।

(२८) **निर्यापना अथवा नियातना**–जीवनयापन से रहित कर देना निर्यापना है। अथवा जीवनयापन का अर्थ सुख से चल रही जीविका से रहित कर देना, किसी की जीविका को उखाड़ देना भी हो सकता है। अथवा इसका एकरूप नियातना होता है–जिसका अर्थ होता है, जिसमें **नितरां**–निरन्तर यातना ही यातना हो। हिंसा के कारण हिंसक प्राणी को सतत यातना का ही अनुभव होता है।

(२९) **लोपना**–जिसमें प्राणों का लोप (खात्मा) कर दिया जाता हो, वह लोपना है। अथवा प्राणों की लुम्पना–लूट करने वाली होने से यह लोपना है।

(३०) **विराधना**–आत्मा के ज्ञानादि गुणों की इसमें विराधना होती है, क्षति होती है, इसलिए विराधना भी आत्म-भाव की हिंसा का ही काम करती है। वास्तव में तो भावहिंसा ही पापकर्म के बन्ध की कारण है, द्रव्यहिंसा तो प्राणघात आदि की क्रियामात्र है।

तंदुलमत्स्य जीवों की वधरूप क्रिया (द्रव्यहिंसा) बिल्कुल नहीं करता, लेकिन उसके परिणाम जीवों को निगलने व मारने के होने से वह मरकर अपने उन हिंसा रूप परिणामों (भावहिंसा) के कारण सातवें नरक का मेहमान बनता है। इसलिए भावहिंसा ही पापकर्म के बन्ध की कारण है।

तीस नाम–इस प्रकार प्राणवध के पर्यायवाची 'गुणनिष्पन्न' ३० नाम प्रस्तुत सूत्र में बताये हैं।

3. There are thirty synonyms of violence in the form of causing hurt to life-force and they depict the bitter consequences of it and of the mental state. (The word 'gauna' used in the script indicates that all these synonymous are secondary and the primary title is violence or hurting the life-force.)

(1) Hurting the Life-force—To cause hurt to the life-force of any person in a selfish state or in delusion is violence. The life-forces are ten in the form of five sense organs—mind, speech, physical body, breathing

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and life-span. To cause hurt, trouble, cut, thresh or completely destroy any one of these forces is hurting the life-force (praan vadh).

(2) **To Uproot from the Body**—Just as a tree is removed from its very root, the soul is uprooted from the body.

(3) **Mistrust**—Nobody has a trust in a violent person. One is not sure when he may hurt, overpower or cause damage. It is not just man but every other living being too has no trust in a violent person. They recognize the violent person from his appearance itself and hesitate to go near him. Since one has a mistrust, doubt, fear and hesitation from a violent person it is called mistrust or lack of trust.

(4) **To Hurt Repeatedly**—The person who is hurt by a person, is called a victim. To cause grieveous hurt to the victim or to trouble him again and again is called causing hurt repeatedly. To kill in retaliation is also Himsya Vihimsa. Those who act in this manner, they increase enmity. So such a violence is a sin.

(5) **Unworthy Act**—Out of all the condemnable activities in the world, violence is the most condemnable act. We can also say that violence is latent in all the condemnable activities.

(6) **To Cause Serious Damage (Ghatana)**—To cause hurt of any type, to strike against, to crush or trample any living being due to carelessness, while getting up, sitting, moving about or while placing an object and thus causing damage to the life-force is Ghatana.

(7) **To Beat**—To beat a person or an animal with legs or fists, with lashes or stick is Marana (to beat).

(8) **Vadhana**—To cause hurt to the life-force of any living being is Vadh. For one's taste or momentary pleasure, to hurt or kill innocent living beings, to kill animals or to encourage others in such killings is also called Vadh.

(9) **Upadravana**—To set a forest on fire or to cause fight among cocks, he-buffaloes, bulls and the like for sensual enjoyment is called Upadrava. To set any place on fire, to cause disturbance, to hurl stones at others, to fight with sticks or weapons and the like—all such activities are Upadrav. All such activities fall in the category of violence (himsa).

(10) **Tripatana or Nipatana**—To cause serious damage to one's mind, speech or the body or to separate the life-force of a person from his body is Tripatana.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(11) **Aarambh-samarambh**—In construction of the house, in running a factory and in many suchlike small or large activities, immobile (Sthavar) living beings are killed. Sometimes such activities cause hurt even to mobile living beings. In scriptures it is called Aarambh. The violence caused due to such an Aarambh is called Aarambh-samarambh.

(12) **Upadrav, Bhedan, Nishthapan, Gaalan of Age-determining Karma and Samavartak Sankshep**—To cause serious damage to life of a person by poisoning him or by hurting with a weapon, to cut his body into pieces, to finish him, to cause damage to his breathing process, to throttle him–all such activities are activities of violence.

Another interpretation of Samvartak Sankshep is to bring the strength, capability, power and the like of a person at its lowest level. To keep one in a state of starvation, to poison him or to turn him sick in order to finish his physical strength—all such activities are activities falling in the category of violence.

(13) **Death (Mrityu)**—To kill a living being, to make one lifeless is causing death.

(14) **Non-restraint (Asanyam)**—Violence to the life-force of the living being in the form of non-restraint occurs when due to lack of discrimination, proper awakening or proper care one treats earth-bodied, water-bodied living beings and the like in an indiscriminate manner or when makes unnecessary use of gross body of such beings (earth, water, air, fire and vegetable) without any specific purpose. Such non-restraint causes violence.

(15) **Katak-mardan**—To attack people with army and then to trample them, crush them, torture them is called katak-mardan. To force or compel people to participate in battle and thus to get them crushed is also katak-mardan.

(16) **Vyuparaman**—To make one devoid of his life-force is Vyuparaman.

(17) **Parabhav Sankramakarak**—To push away any living being to the next world is parabhav sankramakarak. When a person has to leave this world and his existence here and his soul has to move to the next world (through re-birth in that state), he feels extreme dejection due to

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

his attachment. Since it is extremely painful, it is just like violence to the life-force.

(18) **Durgati Prapaat**—Violence to the life-force is termed as durgati prapaat because it throws one into the deep ditch of bad state of existence in the form of hellish state or animal state.

(19) **Paapakoap**—An element that deeply instigates sin or makes it serious or glorified is called paapakoap. Violence instigates sin.

(20) **Paapalobh or Paapal**—The behaviour that engages a living being in sin deeply is called paapalobh. Since violence in the form of a sin is the cause of extreme greed it is called paapalobh. Another version available is paapalah, which means the one that leads to sin.

(21) **Chhavichhed**—To pierce or cut the physical body is called Chhavichhed.

(22) **Jeevitaantakaran**—To bring an end to the life is also called praanavadh. Every one loves to live. So when any one brings an end to his living state, he feels extreme pain. Thus it produces violence.

(23) **Bhayankar**—It means that which produces fear. A living being feels afraid of the very word Vadh (killing). One who is being hurt or killed feels frightened. Even the killer has a fear in his mind that the opponent may not kill him. Thus violence produces fear all around.

(24) **Rinakar**—One experiences great pain when he pays the debt relating to the sin of his ill deed or when he has to bear the fruit of his sin. Due to it, he has to bear intolerable tortures in the hell and several types of pain such as hunger, thirst, cold, heat and the like in animal state of existence after transmigration from the human state. All such troubles are the result of the debt incurred by him due to his sins.

(25) **Vajra or Varjya or Saavadya**—Violence is harsh like vajra. Soft heart of a living being cannot tolerate that blow. So it is called vajra. In Sanskrit it is also called varjya, which means that which should be avoided.

(26) **Paritapasrava**—That which causes trouble. Falsehood and other suchlike inflow of Karmas are the products of this Aasrava. This inflow of Karma causes greater damage than the other Aasravas such as falsehood and the like. So it is called Paritaap Aasrava.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(27) Vinash—It destroys the living beings physically and emotionally. So it is called vinaash. Physically it destroys the life-force or the physical body. Emotionally when a person is about to die he is normally in a dejected state and feels bitter contempt towards his killer. Even the killer has dreadful feelings. So it causes destruction both physically and mentally of his ownself and of the other. Hence violence is called vinaash (destruction).

(28) Niryapana or Niyatana—To destroys ones livelihood is called niryapana. It can also be interpreted as uprooting the livelihood of a person who was comfortably leading his life. Its another interpretation is niyatana which means that which is continuously troublesome. Due to his state of violence, the violent living being experience continuous state of torture.

(29) Lopana—The process in which the life-forces are totally destroyed is called lopana. It robs one of his life-force.

(30) Viradhana—It adversely affects the fundamental qualities of the soul namely knowledge and the like. So viradhana also result in violence to the soul. In reality violence in thought is the cause of bondage of demerit Karmas. The visible hurt is simply hurt to the life-force.

The rice-shaped tiny fish was not causing any hurt externally. But due to his thought-activity of eating away and killing all the fishes, it took birth in the seventh hell. It was the result of his polluted violent mind. So mental violence is the primary cause of bondage of sin.

Violence has been described in this verse through thirty different names.

पापियों का पापकर्म SIN OF THE SINNERS

४. तं च पुण करेंति केइ पावा असंजया अविरया अणिहुयपरिणामदुप्पयोगा पाणवहं भयंकरं बहुविहं बहुप्पगारं परदुक्खुप्पायणसत्ता इमेहिं तसथावरेहिं जीवेहिं पडिणिविट्ठा।

किं ते ?

४. कितने ही पापिष्ट, संयमविहीन, तप आदि अनुष्ठानों से रहित, अनुपशान्त परिणाम वाले एवं जिनके मन, वचन और काया की प्रवृत्तियाँ दूषित हैं, जो अन्य प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने में आसक्त रहते हैं तथा त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा न करने के कारण वस्तुतः जो उनके प्रति द्वेषभाव से युक्त हैं, वे अनेक प्रकारों से भयंकर–हिंसा किया करते हैं।

वे विविध प्रकारों से कैसे हिंसा करते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. Many persons have a liking for bad deeds. They are without any self-restraint. They do not practice austerities and the like. They remain disturbed. Their mental, vocal and physical activities are polluted. They remain engaged in causing trouble to other living beings. They do not protect mobile and immobile living beings. In fact they have a feeling of contempt for them. They engage themselves in terrible acts of violence.

How do they cause violence in different ways?

जलचर जीवों की हिंसा **VIOLENCE TO AQUATIC ANIMALS**

५. पाठीण–तिमि–तिमिंगल–अणेगझस–विविहजातिमंडुक्क–दुविहकच्छभ–नक्क–मगर–दुविह–गाह–दिलिवेढय–मंडुय–सीमागार–पुलुय–सुंसुमार–बहुप्पगारा जलयरविहाणा कते य एवमाई।

५. वे हिंसा में आसक्त मानव अनेकानेक प्रकार के जलचर जीवों का घात करते हैं। जैसे–**पाटीन**–एक विशेष प्रकार की मछली, **तिमि**–बड़े मत्स्य, **तिमिंगल**–महामत्स्य, अनेक प्रकार की मछलियाँ, अनेक प्रकार के मेंढक, अस्थिकच्छप और माँसकच्छप के भेद से दो प्रकार के कच्छप, **मगर**–सुंडामगर एवं मत्स्यमगर के भेद से दो प्रकार के मगर, **ग्राह**–(ओक्टोपस की जाति) एक विशिष्ट जल–जन्तु, **दिलिवेष्ट**–पूँछ से लपेटने वाला जलीय जन्तु, मंडूक, सीमाकार, पुलकर आदि ग्राह के प्रकार, संसुमार (डोलफीन) इत्यादि।

5. The persons engaged in violence cause damage to aquatic animals in many ways. The aquatic animals are of the following types—

Paatheen—It is a special type of fish.

Timi—It is a fish of large size.

Timingal—It is gigantic fish.

Many types of fish, many types of frogs.

Tortoise is of two types—Bony tortoise and fleshy tortoise.

Magar—Crocodiles are of two types—Sunda crocodile and fish like crocodile.

Graha—It is a special type of acquatic creature.

Diliveshta—It is an acquatic creature that gathers victims with its tail. Mandook, Seemakar, pulakar and the like are the various types of graha. Sunsumaar and the like.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. कुंरग–रुरु–सरभ–चमर–संबर–उरब्भ–ससय–पसय–गोण–रोहिय–हय–गय–खर–करभ–खग्ग–वाणर–गवय–विग–सियाल–कोल–मज्जार–कोलसुणह–सिरियंदलगावत्त–कोकंतिय–गोकण्ण–मिय–महिस–वियग्घ–छगल–दीविय–साण–तरच्छ–अच्छ–भल्ल–सद्दूल–सीह–चिल्लल–चउप्पयविहाणाकए य एवमाई।

६. कुरंग और रुरु जाति के हिरण, सरभ–अष्टापद, चमर–नील गाय, संबर–सांभर, उरभ्र–मेढा, शशक–खरगोश, पसय–प्रशय–वन्य पशुविशेष, गोण–बैल, रोहित–पशुविशेष, घोड़ा, हाथी, गधा, करभ–ऊँट, खड्ग–गेंडा, वानर (बन्दर), गवय–रोझ, वृक–भेड़िया, शृगाल–सियार–गीदड़, कोल–शूकर, मार्जार–बिलाव–बिल्ली, कोलशुनक–बड़ा शूकर, श्रीकंदलक एवं आवर्त्त नामक खुर वाले पशु, लोमड़ी, गोकर्ण–दो खुर वाला जानवर, मृग, भैंसा, व्याघ्र, बकरा, तेंदुआ, जंगली कुत्ता, जरख, रीछ–भालू, शार्दूल–सिंह, सिंह–केसरीसिंह, चित्तल–नाखून वाला एक विशिष्ट पशु अथवा हिरण की आकृति वाला पशुविशेष इत्यादि बहुविध चतुष्पद प्राणी हैं, जिनकी पूर्वोक्त पापी हिंसा करते हैं।

6. The above mentioned violent sinful people hunt quadruped beasts and animals. Such beasts are deer of Kurang and ruru type **sarabh** (ashtapad), **chamar** (neel cow), **saambhar**, **sheep** (medha), **shashak** (hare), **pasaya** (a wild beast), **goan** (ox), **rohit** (a type of animal such as horse, elephant, donkey), **karabh** (camel), **khadag** (rhino, monkey), **gavaya** (rogh), **vrik** (wolf), **shrigaal** (jackal), **koal** (pig), **marjar** (cat), **kolshunak** (big pig), shrikandalak and avart (animal with round hoof), fox, **gokaran** (beasts with two hoofs), deer, he-buffalo, tiger, he-goat, tendua, wild dog, jarakh, bear, lion, chittal (a special type of beasts having nails—a beast of the shape of a deer, and many other types of quadrupeds.

विवेचन : इन नामों में एक नाम 'सरभ' प्रयुक्त हुआ है। यह एक विशालकाय वन्य प्राणी होता है। इसे परासर भी कहते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि सरभ हाथी को भी अपनी पीठ पर उठा लेता है। खड्ग ऐसा प्राणी है, जिसके दोनों पार्श्व भागों में पंखों की तरह चमड़ी होती है और मस्तक के ऊपर एक सींग होता है। (प्रश्नव्याकरण–आचार्य हस्तीमल जी म., पृ. १६)

Elaboration—One of the names mentioned above as Sarabh. It is a wild beast of huge size. It is also called parasar. It is said that this beast is able to carry even an elephant on its back. Khadag is such a beast that has feather like skin on both sides and a horn at its forehead.

(See **Prashna Vyakaran** by Acharya Hastimal Ji M, pp. 16)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

CREATURES MOVING ALONG THE BREAST

७. अयगर–गोणस–वराहि–मउलि–काउदर–दब्भपुप्फ–आसालिय–महोरगोरगविहाणकाए य एवमाई।

७. अजगर, **गोणस**–बिना फन का सर्पविशेष, **वराहि**–दृष्टिविष सर्प–जिसके नेत्रों में विष होता है, मुकुली–फन वाला साँप, **काउदर**–काकोदर–सामान्य सर्प, **दब्भपुप्फ**–दर्भपुष्प–एक प्रकार का दर्वीकर सर्प, **आसालिक**–सर्पविशेष, **महोरग**–विशालकाय सर्प, इन सब और इस प्रकार के अन्य उरपरिसर्प जीवों का पापी जन वध करते हैं।

7. Ajgar (large snake), Gonas (a special type of snake), Varahi (snake where eyes are poisonous), Mukuli (snake havings wing), Kaudar (common snake), Dabbhapuph (a type of snake), Aasalik (a peculiar type of snake), Mahorag (gigantic snake). The violent people hurt or kill such and also other types of creatures that move along their breast.

विवेचन : छाती से रेंगकर चलने वाले जीव उरपरिसर्प जीव कहलाते हैं। इन नामों में एक नाम आसालिक आया है। टीका में इसका विशेष परिचय दिया गया है। आसालिक बारह योजन लम्बा होता है। यह सम्मूर्च्छिम है और इसकी आयु मात्र एक अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। इसकी उत्पत्ति भूमि के अन्दर होती है। जब किसी चक्रवर्ती अथवा वासुदेव के विनाश का समय सन्निकट आता है तब यह उसके **स्कन्धावार**–सेना के पड़ाव के नीचे अथवा किसी नगरादि के विनाश के समय उसके नीचे उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होने से पृथ्वी का वह भाग पोला हो जाता है और वह स्कन्धावार अथवा बस्ती उसी पोल में समाकर विनष्ट हो जाती है।

महोरग का परिचय देते हुए टीकाकार ने उल्लेख किया है कि यह सर्प एक हजार योजन लम्बा होता है और अढ़ाई द्वीप के बाहर होता है। किन्तु यदि यह अढ़ाई द्वीप से बाहर ही होता है तो मनुष्य इसका वध नहीं कर सकते। सम्भव है अन्य किसी जाति के प्राणी वध करते हों। चतुर्थ सूत्र में 'केइ पावा' आदि पाठ हैं। वहाँ मनुष्यों का उल्लेख भी नहीं किया गया है। तत्त्व केवलिगम्य है।

Elaboration—The creatures that move along their breast are called Uraparisarp. Asalik also occurs as one of the above names. In the commentary this name is particularly mentioned. Asalik is twelve yojans long. It comes into existence without parents. Its life-span is less than 48 minutes. It takes birth under the earth. When a Chakravarti or Vasudev is near his end, it takes birth under the place where his army is camping. In case the destined period is for the destruction of a town, it takes birth under that town. Due to its growth, that part of the land becomes porous and that camping ground or the colony sinks in it and thus gets eliminated.

While describing Mahorag, the commentator has mentioned that this snake is one thousand yojan long and it exists outside two and a half continents constituting the area of human existence. In view of its location beyond the area of human existence, the human beings cannot kill it. It is therefore possible that other animals or beast kill it. In the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

fourth verse words Keyi paava occur. Therein human beings have not been mentioned. Factual position, however, could be known only to the omniscient.

भुजपरिसर्प जीव BHUJAPARISARP (CREATURES MOVING WITH ARMS)

८. छीरल–सरंब–सेह–सेल्लग–गोधा–उंदुर–णउल–सरड–जाहग–मुगुंस–खाडहिल–वाउप्पिय घिरोलिया सिरीसिवगणे य एवमाई।

८. क्षीरल–भुजाओं के सहारे चलने वाला जीव, शरम्ब, सेह–सेही–जिसके शरीर पर बड़े–बड़े काले–सफेद रंग के काँटे होते हैं जो उसकी आत्मरक्षा में उपयोगी होते हैं, शल्यक, गोह, चूहा, नेवला–वैरी, गिरगिट–जो अपना रंग पलटने में समर्थ होता है, जाहक–काँटों से ढका जीवविशेष, मुगुंस–गिलहरी, खाड़हिल–छछूंदर, गिल्लोरी, वातोत्पत्तिका, छिपकली इत्यादि अनेक प्रकार के भुजपरिसर्प जीवों का वध करते हैं।

8. Ksheeral—creature moving with the help of arms; Sharamb, Seh, Sehi—creature having large white and black thorns on its body which protect it, Shalyak, goh, undur (rat), mongoose, girgit (creature capable of changing the colour of its body); jahak—a special type of creature covered with thorns, muguns (squirrel), Khaadahil, Gillori, Vatotapattika, lizard and the like. The violent person hurts or kills many suchlike animals.

विवेचन : परिसर्प जीव दो प्रकार के होते हैं–उरःपरिसर्प और भुजपरिसर्प। सर्प और चूहे का सावधानी से निरीक्षण करने पर दोनों का अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है। जो भुजाओं–अपने छोटे–छोटे पैरों से चलते हैं वे भुजपरिसर्प हैं। उरपरिसर्पों के ऐसा कोई अंग नहीं होता। वे रेंग–रेंगकर छाती के बल चलते हैं।

Elaboration—Crawling creatures (Parisarp) are of two kinds—those moving along their breast (uraparisarp) and those moving with the help of their arms (bhujaparisarp), Uraparisarp do not have any arm like thing and they move only along their breast.

नभचर जीव NABHACHAR : (CREATURES MOVING IN SKY)

९. कादंबक–बक–बलाका–सारस–आडा सेतीय–कुलल–वंजुल पारिप्पव–कीर–सउण–दीविय–हंस–धत्तरिट्ठग–भास–कुलीकोस–कुंच–दगतुंड–ढेणियालग–सुईमुह–कविल–पिंगलक्खग–कारंडग–चक्कवाग–उक्कोस–गरुल–पिंगुल–सुय–बरहिण–मयणसाल–णंदीमुह–णंदमाणग–कोरंग–भिंगारग–कोणालग–जीवजीवग–तित्तिर–वट्टग–लावग–कपिंजलग–कवोतग–पारेवग–चडग–ढिंक–कुक्कुड–वेसर–मयूरग–चउरग–हयपोंडरीय–करकरग–चीरल्ल–सेण–वायस–विहग–सेण–सिणचास–वग्गुलि–चम्मट्ठिल–वियपक्खी–समुग्गपक्खी खहयर विहाणाकए य एवमाई।

९. कादम्बक–विशेष प्रकार का हंस, बक–बगुला, बलाका–विषकण्ठिका–वकजातीय पक्षीविशेष, सारस, आडासेतीय–आड, कुलल, वंजुल, परिप्लव, कीर–तोता, शकुन–तीतर, दीपिका–एक प्रकार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काली चिड़िया, हंस–श्वेत हंस, धार्तराष्ट्र–काले मुख एवं पैरों वाला हंस, भास–भासक, कुटीक्रोश, क्रौंच, दकतुंडक–जलकूकड़ी, ढेलियाणक–जलचर पक्षी, शूचीमुख–सुघरी, कपिल, पिंगलाक्ष कारंडक, चक्रवाक–चकवा, उक्कोस, गरुड़, पिंगुल–लाल रंग का तोता, शुक–तोता, मयूर, मदनशालिका–मैना, नन्दीमुख, नन्दमानक–दो अंगुल प्रमाण शरीर वाला और भूमि पर फुदकने वाला विशिष्ट पक्षी, कोरंग, भृंगारक–भिंगोड़ी, कुणालक, जीवजीवक–चातक, तित्तिर–तीतर, वर्त्तक (बतख), लावक, कपिंजल, कपोत–कबूतर, पारावत–विशिष्ट प्रकार का कपोत, पारेवा, चटक–चिड़िया, ढिंक, कुक्कुट–मुर्गा, वेसर, मयूर, चकोर, हृदपुण्डरीक–जलीय पक्षी, करक, चीरल्ल–चील, श्येन–बाज, वायस–काक, विहग–एक विशिष्ट जाति का पक्षी, श्वेत चास, वल्गुली, चमगादड़, विततपक्षी–अढाई द्वीप से बाहर रहने वाला एक विशेष पक्षी, समुद्गपक्षी इत्यादि पक्षियों की अनेकानेक जातियाँ हैं, हिंसक जीव इनकी हिंसा करते हैं।

9. Kadambak—a special type of swan, Bak—crane, Balaka—a goose like bird, Aadasetiya, Kulal, vanjul, pariplav, keer—parrot, Shakun—quail, deepika—a special type of sparrow, Hans—white swan, dhartarashtra—Swan with black face and feet, bhaas, kutikrosh, crounch, dakatundak—acquatic snails, dheliyanak—an acquatic bird, shuchimukh, Kapil, pingalaksh, karandak, Chakravaak, Ukkos, Garud, pingul—red coloured parrot, Shuk—parrot, madanashalika—maina, nandimukh, nandamanak—a bird just two finger-breadth in size hopping on the land, bhringarak, Kunalak, Chatak, quail, goose, laavak, Kapinjal, pigeon, paravat—a special type of pigeon, pareva, dhink, kukkut (cock), vesar, peacock, chakor, hridapundarik (an acquatic bird), Karak, eagle, vulture, vaayas, kaak, Vihag, white chaas. Valguli, bat, vitat bird (bird found only outside two and a half continents inhabited by human beings), Samudag bird and the like. These are various types of birds. The violent people hunt them.

अन्य विविध प्राणी OTHER DIFFERENT LIVING BEINGS

१०. जल–थल–खग–चारिणो उ पंचिंदियपसुगणे बिय–तिय–चउरिंदिए विविहे जीवे पियजीविए मरणदुक्खपडिकूले वराए हणंति बहुसंकिलिट्ठकम्मा।

१०. जल, स्थल और आकाश में विचरण करने वाले पंचेन्द्रिय प्राणी तथा पशु एवं द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अथवा चतुरिन्द्रिय प्राणी अनेकानेक प्रकार के होते हैं। इन सभी प्राणियों को जीवित रहना प्रिय है। मरण का दुःख प्रतिकूल–अप्रिय है। फिर भी अत्यन्त संक्लिष्टकर्मा–अतीव क्लेश उत्पन्न करने वाले कर्मों से युक्त पापी पुरुष इन मूक दीन–हीन प्राणियों का वध करते हैं।

10. There are many types of five-sensed creatures and animals moving about in water on land and in sky. There are also two-sensed, three-sensed and four-sensed creatures. All these creatures love life. They detest death. Even than sinful persons with complex pain-causing Karmas kill these moot two-three-four sensed living beings.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : संसार के समस्त जीवों के मुख्य भेद संलग्न तालिका से समझे जा सकते हैं–

त्रस
- द्वीन्द्रिय
- त्रीन्द्रिय
- चतुरिन्द्रिय
- पंचेन्द्रिय
  - तिर्यंच
    - १. जलचर
    - २. स्थलचर
    - ३. खेचर
    - ४. उरःपरिसर्प
    - ५. भुजपरिसर्प
  - मनुष्य
  - नारक
  - देव

स्थावर

एकेन्द्रिय
- १. पृथ्वीकाय
- २. अप्काय
- ३. तेजस्काय
- ४. वायुकाय
- ५. वनस्पतिकाय

द्वीन्द्रियादि जीव अपूर्ण इन्द्रियों वाले हैं, अतः विकलेन्द्रिय कहे जाते हैं। प्रस्तुत सूत्र में स्थावर जीवों तथा विकलेन्द्रिय जीवों का उल्लेख नहीं करके त्रस पंचेन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में ही उल्लेख है।

सभी जीवों में जीवित रहने की उत्कट अभिलाषा होती है। किन्तु विकलेन्द्रिय तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव प्रायः स्पष्ट वाणी शक्ति का अभाव होने के कारण अपनी वेदना स्पष्ट प्रकट नहीं कर सकते तथा अपना बचाव करने का सामर्थ्य भी मानव जैसा उनमें नहीं होता। निर्दय स्वार्थी मनुष्य विविध प्रयोजनों से उन जीवों की हिंसा करते हैं, जिसका निर्देश अगले सूत्रों में किया गया है।

Elaboration—The primary categories of the living beings in this world can be understood from the following table—

Mobile
- Two-sensed
- Three-sensed
- Four-sensed
- Five-sensed
  - 1. Acquatic
  - 2. Moving on land
  - 3. Moving in sky
  - 4. Moving with breast
  - 5. Moving with arms
  - Human beings
  - Hellish beings
  - Gods

Immobile

One-sensed
- 1. Earth-bodied
- 2. Water-bodied
- 3. Fire-bodied
- 4. Air-bodied
- 5. Plant-bodied

The living beings having two, three or four senses are called Vikalendriya as they do not have all the five senses. In the present Sutra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

such living beings and the immobile living beings have not been described. It relates to only five-sensed living beings.

All the living beings have a keen desire to live. But Vikalendriya and five-sensed animals cannot express their feelings clearly because they do not have a distinct power of expressing it through words. Further they are not as capable of safe-guarding themselves as human beings. Selfish, cruel persons kill them for various needs and the same has been expressed in the Sutras ahead.

हिंसा करने के प्रयोजन PURPOSE OF CAUSING VIOLENCE

११. इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं, किं ते ?

चम्म–वसा–मंस–मेय–सोणिय–जग–फिफ्फिस–मत्थुलुंग–हिय–यंत–पित्त–फोफस–दंतट्ठा–अट्ठि–मिंज–णह–णयण–कण्ण–ण्हारुणि–णक्क–धमणि–सिंग–दाढि–पिच्छ–विस–विसाण–वालहेउं।

हिंसंति य भमर–महुकरिगणे रसेसु गिद्धा तहेव तेइंदिए सरीरोवगरणट्ठयाए किवणे बेइंदिए बहवे वत्थोहर परिमंडणट्ठा।

११. चमड़ा, चर्बी, माँस, मेद, रक्त, यकृत, फेफड़ा, भेजा, हृदय, आँत, पित्ताशय, फोफस–शरीर का एक विशिष्ट अवयव (फुफ्फुस), दाँत, अस्थि-हड्डी, मज्जा, नाखून, नेत्र, कान, स्नायु, नाक, धमनी, सींग, दाढ़, पिच्छ, विष, विषाण-हाथीदाँत तथा शूकरदंत और बालों के लिए (हिंसक प्राणी जीवों की हिंसा करते हैं)।

रस में आसक्त मनुष्य मधु के लिए भ्रमर–मधुमक्खियों का हनन करते हैं, शारीरिक सुख या दुःख–निवारण करने के लिए खटमल आदि त्रीन्द्रिय जीवों का वध करते हैं, (रेशमी) वस्त्रों के लिए अनेक प्रकार के द्वीन्द्रिय कीड़ों आदि का घात करते हैं।

11. The violent human beings hunt the living beings for their skin, fat, marrow, meat, blood, lungs, brain, heart, nerves, teeth, bones, nails, eyes, ears, intestine, nose, horn, molars, flock of hair, poison, tusk and hair.

The human beings deeply attached to honey are violent to the bees. They kill bugs for their physical comfort or to avoid pain. In order to procure silk, they kill two-sensed silk worms and other worms of various types.

विवेचन : अनेक प्रकार के वाद्यों, जूतों, बटुवा, घड़ी के पट्टे, कमरपट्टे, सन्दूक, बैग, थैला, टोपियाँ, कोट, कपड़े आदि भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए पंचेन्द्रिय जीवों का वध किया जाता है, क्योंकि इन वस्तुओं के लिए मुलायम चमड़ा चाहिए और वह स्वाभाविक रूप से मृत पशुओं से प्राप्त नहीं होता। स्वाभाविक रूप से मृत पशुओं की चमड़ी अपेक्षाकृत कड़ी होती है। अत्यन्त मुलायम चमड़े के लिए तो विशेषतः छोटे बच्चों या गर्भस्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा के विविध कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 1

Illustration No. 1

हिंसा के विविध कारण

मनुष्य विविध प्रयोजनों से जीव हिंसा करता है। कोई चमड़े के जूते, घड़ी के पट्टे, कमर पट्टे, बैग, थैला, टोपी, कोट आदि बनाने के लिए जीवों का वध करता है। कोई चर्बी, मांस, रक्त, यकृत, हड्डी, दाँत आदि के लिए जीवों का वध करता है। कोई शहद के लिए मधु मक्खी के छत्तों का विनाश करता है। सूअर के बाल, ब्रुश आदि के काम आते हैं। जानवरों की खाल मनुष्य के वस्त्र आदि के काम आती है। मोर के पंखों से मोर पिच्छी बनती है, जिसे देवी-देवताओं की मूर्तियों के प्रमार्जन आदि के काम में लेते हैं। इसके अतिरिक्त पहले जिन कारणों से हिंसा होती थी, उसमें वर्तमान युग में बहुत वृद्धि हो गई है। यह सभी कारण मनुष्य की पैशाचिक वृत्ति को प्रकट करते हैं। प्रस्तुत चित्र में हिंसा के विभिन्न प्रायोजन बताये गये हैं।

—सूत्र 11, पृ. 22

VARIOUS CAUSES OF VIOLENCE

Man causes violence to living beings for various reasons. Someone kills animals and get leather for making a variety of items including shoes, watchstraps, belts, purses, handbags, hats and dresses. Some people kill animals for fat, meat, blood, level, bones, teeth and horns. Others destroy beehives for honey. Pig hairs are used for a variety of brushes. Leather is used for dresses and other things of human use. Peacock feathers are used to make fans and brooms that have various uses including cleaning idols of gods and goddesses. Moreover in the modern world there has been a sizeable increase in the number causes of violence against living beings as compared with ancient times. All these causes reveal the evil attitude of man. The illustration presents different reasons for violence.

—Sutra-11, page-22

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बच्चों का वध करना पड़ता है। प्रथम गाय, भैंस आदि का घात करना, फिर उनके उदर को चीरकर गर्भ में स्थित बच्चे को निकालकर उनकी चमड़ी उतारना अत्यन्त निर्दयतापूर्ण कार्य है। इस निर्दयता के सामने पैशाचिकता भी लज्जित होती है। इन मूक जीवों की हिंसा करने वाले तो हिंसक हैं ही, किन्तु इन वस्तुओं का उपयोग करने वाले भी इस अमानवीय घोर पाप के लिए उत्तरदायी हैं। यदि वे इन वस्तुओं का उपयोग न करें तो ऐसी हिंसा होने का प्रसंग ही उपस्थित नहीं हो।

चर्बी खाने, चमड़ी को चिकनी रखने, यंत्रों में चिकनाई देने तथा दवा आदि में काम आती है। माँस, रक्त, यकृत, फेफड़ा आदि खाने तथा दवाई आदि के काम में लिया जाता है। वर्तमान में माँसाहार की बढ़ती प्रवृत्ति पर समूचे संसार में स्वास्थ्य प्रेमी वैज्ञानिकों में चिन्ता व्याप्त है। उनका कहना है माँसाहार के कारण संसार में हत्याएँ, दुष्कर्म, असाध्य बीमारियाँ और वायुमण्डल का प्रदूषण बढ़ रहा है। माँसाहार करने वालों में अनेक ऐसी असाध्य नई-नई बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं, जिसकी दवाएँ भी अभी तक नहीं निकली हैं। माँसाहार से रोगग्रस्त होकर संसार में लाखों मनुष्य प्रतिवर्ष मरते हैं। संसार में बढ़ता जल संकट, वायु प्रदूषण और मानव जीवन में बढ़ता तनाव, पारस्परिक वैमनस्य आदि के मूल में माँसाहार की प्रवृत्ति है। शाकाहार और माँसाहार पर वर्तमान समय में बहुत साहित्य निकल रहा है। अतः यहाँ इसका विस्तार अपेक्षित नहीं है।

इसी प्रकार मेद, रक्त, यकृत, फेफड़ा, आँत, हड्डी, दन्त, विषाण आदि विभिन्न अंगों के लिए भी भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणियों का घात किया जाता है। मात्र विलासिता के लिए अपने ही समान सुख-दुःख का अनुभव करने वाले, दीन-हीन, असहाय, मूक और अपना बचाव करने में असमर्थ निरपराध प्राणियों का हनन करना हृदयहीनता और अन्तरतम में पैठी पैशाचिक वृत्ति का प्रकटीकरण है। विवेकशील मानव को इस प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करना किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता।

Elaboration—Soft leather is required for various types of musical instruments, shoes, purses, straps of watches, belts, boxes, bags, hand bags, caps, coats, apparel and the like. It is not available from the creatures that have a natural death. So five-sensed animals and beasts are hunted for these purposes. The skin of the animals who die naturally is generally hard. In order to procure very soft leather, very small off-springs or that still in the womb has to be killed. It is a very cruel act to kill cow, buffalo and the like and later to take out their off-spring from the womb by tearing its belly in order to remove the skin of that off-spring. Such a cruelty is more dreadful than even that committed by a demon. Those who kill in this manner are certainly violent people. Even those who use such products made of their leather are responsible for this inhuman sin. In case they do not make use of such products, there won't be any longer a cause of committing such a violence.

Marrow is used for edible products for keeping human skin soft and for medicines. Flesh, blood, liver and the like are used for human consumption and medicines. Those engaged in scientific research for human health all over the world are worried about the increasing habit

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

of non-vegetarian diet in the present world. They are of the view that murders, violent activities, incurable diseases, pollution of the environment in the world is on the increase because of non-vegetarianism. Many new incurable diseases are appearing in those who take meat. The medicines to cure such diseases could not be found as yet. Millions of people die every year due to diseases caused by consumption of meat. Non-vegetarianism is the fundamental cause of increasing shortage of water, air pollution, increasing tension and mutual friction among the human beings. Information in plenty is published at present about vegetarian and non-vegetarian diet. So it need not be described in greater detail here.

Similarly various types of living beings are humbled for their marrow, blood, liver, lung, intestines, teeth, bones, tusk and the like. Just for their luxurious life, the poor, dumb creatures who also feel pleasure and pain like human beings, who are incapable of protecting themselves from such a cruelty, and who have not committed any sin are killed. It depicts that such killers have no compassion and their inner nature is demon-like. The use of such products manufactured through violence to animals can in no way be justified for a discriminating human being.

१२. अण्णेहि य एवमाइएहिं बहूहिं कारणसएहिं अबुहा इह हिंसंति तसे पाणे। इमे य–एगिंदिए बहवे वराए तसे य अण्णे तयस्सिए चेव तणुसरीरे समारंभंति।

अत्ताणे, असरणे, अणाहे, अबंधवे, कम्मणिगडबद्धे, अकुसलपरिणाम–मंदबुद्धिजणदुव्विजाणए, पुढविमए, पुढविसंसिए, जलमए, जलगए, अणलाणिल–तण–वणस्सइगणणिस्सिए य तम्मयतज्जिए चेव तयाहारे।

तप्परिणय–वण्ण–गंध–रस–फास–बोंदिरूवे अचक्खुसे चक्खुसे य तसकाइए असंखे। थावरकाए य सुहुम–बायर–पत्तेय–सरीरणामसाहारणे अणंते हणंति अविजाणओ य परिजाणओ य जीवे इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं।

१२. जिनमें सद्बुद्धि का अभाव है, ऐसे अज्ञानी पापी लोग पूर्वोक्त तथा अन्य अनेकानेक प्रयोजनों से त्रस–चलते–फिरते, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों का घात करते हैं तथा बहुत–से एकेन्द्रिय जीवों का, उन एकेन्द्रिय जीवों के आश्रित अन्य सूक्ष्म शरीर वाले त्रस जीवों का भी घात करते हैं।

ये प्राणी त्राणरहित हैं–उनके पास अपनी रक्षा के साधन नहीं हैं, अशरण हैं–उन्हें कोई शरण देने वाला नहीं है, वे अनाथ हैं, बन्धु–बान्धवों से रहित हैं–सहायक विहीन हैं और बेचारे अपने कृत कर्मों की बेड़ियों से जकड़े हुए हैं। जिनके अन्तःकरण की वृत्तियाँ अशुभ हैं, जो मन्द बुद्धि हैं, वे इन प्राणियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अस्तित्व को नहीं मानते, तो फिर इनकी वेदना कैसे जानेंगे ? वे अज्ञानी जन न पृथ्वीकाय को जानते हैं, न पृथ्वीकाय के आश्रित रहे अन्य स्थावरों एवं त्रस जीवों को जानते हैं। उन्हें जलकायिक तथा जल में रहने वाले अन्य त्रस-स्थावर जीवों का ज्ञान नहीं है। उन्हें अग्निकाय, वायुकाय, तृण तथा (अन्य) वनस्पतिकाय के एवं इनके आधार पर रहे हुए अन्य जीवों का परिज्ञान नहीं है। ये प्राणी उन्हीं (पृथ्वीकाय आदि) के स्वरूप वाले, उन्हीं के आधार से जीवित रहने वाले अथवा उन्हीं का आहार करने वाले हैं।

उन जीवों का वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और शरीर अपने आश्रयभूत पृथ्वी, जल आदि के सदृश होता है। उनमें से कई जीव नेत्रों से दिखाई नहीं देते हैं और कोई-कोई दिखाई देते हैं। ऐसे असंख्य त्रसकायिक जीवों की तथा अनन्त सूक्ष्म, बादर, प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर वाले स्थावरकाय के जीवों की जानबूझकर या अनजाने इन (आगे कहे जाने वाले) कारणों से हिंसा करते हैं।

12. For the above said and many other purposes, the ignorant bad people who lack discrimination, hunt mobile living beings including two-sensed, three-sensed, four-sensed and five-sensed living beings. During this process they kill many one-sensed living beings and mobile beings having subtle body who are dependent on them.

Such living beings have no means for their safety. They are orphans. They have no friends or relatives to help them. They are bound in chains by the fruit of their misdeeds. The persons who have polluted mind or whose intellect is dormant, they do no believe in existence of life in such beings. So how can they realise the feeling of pain. Such persons lacking true knowledge do not understand earth-bodied living beings and the other mobile and immobile living beings dependant on them. They have no knowledge about water-bodied beings and the other mobile and immobile to creatures living in water. They have no knowledge of fire-bodied, air-bodied and plant-bodied beings and the other living beings dependant on these. Such living beings are by nature of the same type as earth-bodied and other bodied living beings. They are dependant on them for their life. In other words, they use them for their diet.

The colour, smell, taste, touch and the body of such living beings are identical to the earth, water and the like on which they depend. Many such creatures are not visible while some are visible to the naked eye. Human beings cause death of innumerable mobile living beings and infinite subtle, gross, separate bodied and common bodied immobile living beings intentionally or inadvertantly for various reasons (that are going to the narrated in following paragraphs).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है वे पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। इसी प्रकार जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ही जिनका शरीर है, वे क्रमशः जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं।

जब कोई मनुष्य पृथ्वीकाय आदि की हिंसा करता है तब वह केवल पृथ्वीकाय की ही हिंसा नहीं करता, अपितु उसके आश्रित रहे हुए अनेकानेक अन्यकायिक एवं त्रसकायिक जीवों की भी हिंसा करता है।

जल के एक बिन्दु में वैज्ञानिकों ने ३६,४५० जीव देखे हैं, वस्तुतः वे जलकायिक नहीं, जलाश्रित त्रस जीव हैं। जलकायिक जीव तो असंख्य होते हैं, जिन्हें वैज्ञानिक अभी नहीं जान सके हैं।

Elaboration—The living beings whose body is the earth itself are called earth-bodied. Similarly those living beings whose body is water, fire, air, plant itself are called water-bodied, fire-bodied, air-bodied and plant-bodied living beings respectively.

When a person kills earth-bodied creature and the like, he commits death not only of earth-bodied living beings but he also causes violence to many other bodied immobile living beings and also mobile living beings dependant on them.

Scientists have seen 36,450 living beings in a drop of water. But in reality, they are not water-bodied living beings. They are mobile living beings dependant on water. The water-bodied living beings are innumerable and the scientists have not been able to locate them so far.

पृथ्वीकाय की हिंसा के कारण CAUSES OF VIOLENCE TO EARTH-BODIED CREATURES

१३. [प्र.] किं ते ?

[उ.] **करिसण–पोक्खरिणी–वावि–वप्पिणि–कूव–सर–तलाग–चिइ–वेइय–खाइय–आराम–विहार–थूभ–पागार–दार–गोउर–अट्टालग–चरिया–सेउ–संकम–पासाय–विकप्प–भवण–घर–सरण–लयण–आवण– चेइय–देवकुल–चित्तसभा– पवा–आयतणा–वसह– भूमिघर–मंडवाण कए भायणभंडोवगरणस्स य विविहस्स य अट्ठाए पुढविं हिंसंति मंदबुद्धिया।**

१३. [प्र.] वे कौन-से कारण हैं, जिनसे (पृथ्वीकायिक) जीवों का वध किया जाता है ?

[उ.] कृषि, पुष्करिणी (चौकोर बावड़ी जो कमलों से युक्त हो), बावड़ी, क्यारी, कूप, सर, तालाब, भित्ति, वेदिका, खाई, आराम, विहार (मठ), स्तूप, प्राकार, द्वार, गोपुर (नगर का मुख्य द्वार) अटारी, चरिका (नगर और कोट के बीच का आठ हाथ प्रमाण मार्ग), सेतु–पुल, संक्रम (ऊबड़–खाबड़ भूमि को पार करने का मार्ग), **प्रासाद**–राजमहल, बंगला या प्रासाद, भवन, गृह, **सरण**–झौंपड़ी, **लयन**–पर्वत खोदकर बनाया हुआ स्थान, गुफा, दुकान, **चैत्य**–यक्षायतन आदि या छतरी और स्मारक, **देवकुल**–शिखरयुक्त देवालय, चित्रसभा, प्याऊ, आयतन, देवस्थान, आवसथ–तापसों का आश्रम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिगृह–तलघर और मंडप (तम्बू) आदि के लिए तथा नाना प्रकार के भाजन–सोने–चाँदी आदि धातुओं के पात्र, भाण्ड–मिट्टी आदि के बर्तन एवं लकड़ी आदि के उपकरणों के लिए मन्द बुद्धि जन पृथ्वीकाय की हिंसा करते हैं।

13. [Q.] What are the causes for violence to earth-bodied living beings ?

[Ans.] People with dormant intellect commit violence to earth-bodied living beings for agriculture, making lotus-bedded lake, ordinary lake, well, tank, wall, vedika, ditch, rest house, pillar, boundary wall, gate, main gate of the town, terrace, highway, bridge, path to cross undulating area, palace, bungalow, building, house, hut, processing level ground by cutting mountain, cave, shop, temple, canopy, memorial, temple having canopy, theatre, water hut, ashram for ascetics, basement, setting up tent and the like, for manufacturing pots of silver, gold and other metals, earthen pots and wooden pots.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में कथित वस्तुओं के नाम तो संक्षेप में संकेत मात्र हैं। इन उल्लिखित वस्तुओं के लिए ही पृथ्वीकाय की हिंसा होती है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। अतः पृथ्वीकाय का घात जिन–जिन वस्तुओं के लिए किया जाता है, उन सभी का ग्रहण यहाँ कर लेना चाहिए।

Elaboration—In the present paragraph, the articles mentioned are just an indication. It should not be understood that violence to earth-bodied living beings is caused only for such articles. In fact, one should take note of all those things which are manufactured by causing violence to each bodied living beings.

अप्काय की हिंसा के कारण CAUSES OF VIOLENCE TO WATER-BODIED

१४. जलं च मज्जण–पाण–भोयण–वत्थधोवण–सोयमाइएहिं।

१४. मज्जन–स्नान, पान–पीने, भोजन, वस्त्र धोना एवं **शौच**–शरीर, गृह आदि की शुद्धि इत्यादि विविध कारणों से जलकायिक जीवों की हिंसा की जाती है।

14. Violence to water-bodied living beings is caused for taking bath, for preparing food, for drinking, for washing clothes, for toilet and for cleaning house and the like.

तेजस्काय की हिंसा के कारण CAUSES OF VIOLENCE TO FIRE-BODIED LIVING BEINGS

१५. पयण–पयावण–जलावण–विदंसणेहिं अगणिं।

१५. भोजनादि पकाने, पकवाने, दीपक आदि जलाने तथा प्रकाश करने के लिए अग्निकाय के जीवों की हिंसा की जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

15. Violence to fire-bodied living beings is caused for cooking, lighting the lamp and for light.

वायुकाय की हिंसा के कारण CAUSES OF VIOLENCE TO AIR-BODIED LIVING BEINGS

१६. सुप्प—वियण—तालयंट—पेहुण—मुह—करयल—सागपत्त—वत्थमाईएहिं अणिलं हिंसंति।

१६. सूप—धान्यादि फटककर साफ करने का छाज आदि उपकरण, व्यंजन—पंखा, तालवृन्त—ताड़ का पंखा, मयूरपंख आदि से, मुख से, हथेलियों से, सागवान आदि के पत्ते से तथा वस्त्र—खण्ड आदि से वायुकाय के जीवों की हिंसा की जाती है।

16. The violence to air-bodied living beings is caused through planks for cleaning grains, fan, fan of palm leaves, peacock feather and also blowing with mouth, waving palms, teak leaves and pieces of cloth.

वनस्पतिकाय की हिंसा के कारण CAUSES OF VIOLENCE TO PLANT-BODIED BEINGS

१७. अगार—परियार—भक्ख—भोयण—सयणासण—फलक—मूसल—उक्खल—तत—विततातोज्ज—वहण—वाहण—मंडव—विविह भवण—तोरण—विडंग—देवकुल— जालयद्धचंद—णिज्जूहग—चंदसालिय—वेतिय—णिस्सेणि—दोणि—चंगेरी—खील—मंडक—सभा—पवावसह—गंध—मल्लाणुलेवणं, अंबर—जुयणंगल—मइय—कुलिय—संदण—सीया—रह—सगड—जाण—जोग्ग—अट्टालग—चरिय—दार—गोउर—फलिहा—जंत—सूलिय—लउड—मुसंढि—सयग्घी—बहुपहरणावरणुवक्खराणकए, अण्णेहिं य एवमाइएहिं बहूहिं कारणसएहिं हिंसंति ते तरुगणे भणियाभणिए य एवमाई।

१७. अगार—गृह, परिचार—तलवार की म्यान आदि, **भक्ष्य**—मोदक आदि, **भोजन**—रोटी वगैरह, **शयन**—शय्या आदि, **आसन**—बिस्तर—बैठका आदि, **फलक**—पाट—पाटिया, मूसल, ओखली, **तत**—वीणा आदि, **वितत**—ढोल आदि, **आतोद्य**—अनेक प्रकार के वाद्य, **वहन**—नौका आदि, **वाहन**—रथ—गाड़ी आदि, मण्डप, अनेक प्रकार के भवन, तोरण, **कपोतपाली**—कबूतरों के बैठने के स्थान, देवालय, झरोखा, अर्ध—चन्द्र के आकार की खिड़की या सोपान, **निर्यूहक**—द्वारशाखा दरवाजे के अगल—बगल में निकले हुए लकड़ी के कंगूरे, **चन्द्रशाला**—अटारी, चौबारा, वेदी, **निःसरणी**—नसैनी, **द्रोणी**—छोटी नौका, **चंगेरी**—बड़ी नौका या फूलों की डलिया, खूँटी, खम्भा, सभागार, प्याऊ, आश्रम, मठ, सुगंधित चूर्ण, माला, विलेपन, चन्दन आदि का लेप वस्त्र, जूवा, **लांगल**—हल, जमीन जोतने के पश्चात् ढेला फोड़ने के लिए काष्ठ—निर्मित औजार, जिससे भूमि समतल की जाती है, **कुलिक**—विशेष प्रकार का हल—बखर, **स्यन्दन**—युद्ध रथ, **शिविका**—पालकी, रथ, **शकट**—छकड़ा गाड़ी, यान, **युग्य**—दो हाथ का वेदिकायुक्त यानविशेष, अट्टालिका, **चरिका**—नगर और परकोटे के मध्य का आठ हाथ का चौड़ा मार्ग, **परिघ**—द्वार, फाटक, आगल, अरहट आदि, शूली, लकड़ी—लाठी, मुसुंढी बंदूक आदि, **शतघ्नी**—तोप या महासिला जिससे सैकड़ों का हनन हो सके तथा अनेकानेक प्रकार के शस्त्र, ढक्कन एवं अन्य उपकरण बनाने के लिए और इसी प्रकार के ऊपर कहे गये तथा नहीं कहे गये ऐसे बहुत—से सैकड़ों कारणों से अज्ञानी जन वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

17. People construct house, sheaths for the sword, sweat-meat balls and food. They make beds, beddings, wooden pots, wooden rods, vessels, sitar, many musical instruments, boats, carts, chariots, tent houses, buildings, gates, places for stay of pigeons temples, windows, windows of half-moon shape, stairs and handles to close the door, pointed outlets on doors (niryuhak), terrace, stair-case (nissarni), small boat (droni), large boat (changeri), flower-basket, pegs, pillars, conference hall, ashrams, places for serving water, fragrant powder, garlands, paste, paste of sandalwood, clothes, yoke, plough, wooden weapon to dig earth and level the humps after ploughing the field, Kulik (a special type of plough), chariot for battle field, palanquin, wooden cart, yugya (special transport measuring two-haath, and having a Vedika), tops of buildings, eight haath wide path at the centre of the town from its boundary wall, gates, doors, door closet, arhat and the like, stick, gun, huge armoury that could kills hundreds of people at a time. They also manufacture many types of weapons, covers and many other articles of the type above-mentioned and even not mentioned. Thus ignorant people commit violence to plant bodied living beings through many suchlike causes.

विवेचन : वनस्पतिकाय की सजीवता अब केवल शास्त्रों में ही नहीं, अपितु विज्ञान से भी सिद्ध हो चुकी है। वनस्पति का आहार करना, आहार से वृद्धिगत होना, छेदन-भेदन करने से मुरझाना आदि जीव के लक्षण प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। वनस्पति में क्रोध, मान, माया, लोभरूप कषाय हैं, आहार, भय, मैथुन, परिग्रहरूप संज्ञाएँ हैं। वे मानव की तरह सुख-दुःख का अनुवेदन करते हैं। अतएव वनस्पति की सजीवता में किंचित् भी सन्देह के लिए अवकाश नहीं है। वनस्पति का हमारे जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। तथापि निरर्थक आरम्भ का विवेकी जन सदैव त्याग करते हैं।

वृक्षों के अनाप-शनाप काटने से आज विशेषतः भारत का वायुमण्डल बदलता जा रहा है। वर्षा की कमी हो रही है। लगातार अनेक प्रान्तों में सूखा पड़ रहा है। हजारों मनुष्य और लाखों पशु मरण-शरण हो रहे हैं। जैनशास्त्र सदा से ही मानव-जीवन के लिए वनस्पति की उपयोगिता और महत्ता का प्रतिपादन करते चले आ रहे हैं। वैदिक ग्रन्थों में भी वृक्ष आदि को पुत्रवत् स्नेह करने का कथन है। वृक्ष मानव के सबसे बड़े मित्र व प्राणपोषक हैं। वनस्पति की हिंसा से पर्यावरण पर अत्यन्त दुष्प्रभाव पड़ता है।

Elaboration—Life in plants is not just a subject of scriptures. It has been established by scientific research also. It is clearly noticed that the vegetation grows when it is provided requisite food and it decays when it is cut or pierced and this fact establishes that there is life in vegetation. The plant-bodied living beings have the four passions namely anger, ego,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

deceit and greed. They have a desire for food. They have sense of fear, sensual desire of mating and also attachment. They feel pleasure and pain like human beings. So there is no scope of any doubt in believing that plant has life.

Vegetable has intimate influence on our daily life. Still discriminating people avoid violent activity towards plant life when it is without any definite purpose.

The environment of the world and of India in particular is changing adversely due to indiscriminate cutting of trees. It is causing dearth of rain-fall. Many states are experiencing famine continuously. Thousands of human beings and millions of animals are dying. Jain scriptures have always laid emphasis on benefits of plant life for human beings and its importance. Even in Vedic scriptures, it is mentioned that trees and the like should be loved like sons. The trees are the most intimate friends of mankind and provide strength to their life-force. Violence towards plant life causes the most adverse effect on the environment.

हिंसक जीवों का दृष्टिकोण APPROACH OF VIOLENT LIVING BEINGS

१८. सत्ते सत्तपरिवज्जिया उवहणंति दढमूढा दारुणमई कोहा माणा माया लोहा हस्स रई अरई सोय वेयत्थी जीय–धम्मत्थ–कामहेउं सवसा अवसा अट्ठा अणट्ठाए य तसपाणे थावरे य हिंसंति मंदबुद्धी।

सवसा हणंति, अवसा हणंति, सवसा–अवसा दुहओ हणंति। अट्ठा हणंति, अणट्ठा हणंति, अट्ठा–अणट्ठा दुहओ हणंति। हस्सा हणंति, वेरा हणंति, रईय हणंति, हस्सा–वेरा–रईय हणंति। कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति, कुद्धा–लुद्धा–मुद्धा हणंति। अत्था हणंति, धम्मा हणंति, कामा हणंति, अत्था–धम्मा–कामा हणंति।

१८. कुछ मंद बुद्धि जीव जो हिताहित के विवेक से सर्वथा शून्य अज्ञानी, दारुण मति वाले होते हैं, वे क्रोध से प्रेरित होकर, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर तथा हँसी–दिलबहलाव के लिए, रति, अरति एवं शोक के अधीन होकर, यज्ञ आदि वेदानुष्ठान के लिए जीवन, धर्म, अर्थ एवं काम के लिए, (कभी) **स्ववश**–अपनी इच्छा से और (कभी) **परवश**–पराधीन होकर, (कभी) प्रयोजन से और (कभी) बिना प्रयोजन के त्रस तथा स्थावर जीवों का घात करते हैं।

वे बुद्धिहीन क्रूर प्राणी स्ववश (स्वतंत्र) होकर घात करते हैं, विवश होकर घात करते हैं, स्ववश-विवश दोनों प्रकार से घात करते हैं। कई प्रयोजन से घात करते हैं, कई निष्प्रयोजन घात करते हैं, कई सप्रयोजन और निष्प्रयोजन दोनों प्रकार से घात करते हैं। (अनेक पापी जीव) हास्य–विनोद से, वैर से और अनुराग से प्रेरित होकर हिंसा करते हैं। कई क्रुद्ध होकर घात करते हैं, कई लुब्ध होकर हिंसा करते हैं, कई मुग्ध होकर, तथा कई क्रुद्ध–लुब्ध–मुग्ध तीनों ही कारणों वश हिंसा करते हैं। कई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ के लिए, धर्म के लिए-धर्म मानकर घात करते हैं, कामभोग के लिए घात करते हैं तथा अर्थ-धर्म-कामभोग तीनों ही प्रयोजनों से घात करते हैं।

18. Some people have intellect of low category. They are totally devoid of discrimination between welfare and disaster. They lack knowledge and are violent. Under the influence of anger, ego, deceit and greed they resort to sensual enjoyment. They like non-restraint and dislike moral restraint. They kill mobile and immobile living beings in performance of *yajna* (fire-sacrifice) willingly or under influence of others for the *purpose of long life and their desire for more wealth* and sensual pleasures and spiritual benefits. Their such actions are sometimes with a definite purpose and sometimes without any purpose.

Such cruel people of polluted bent of mind kill sometimes independently, sometimes under orders of others and sometimes under both the conditions. Many sinners commit acts of violence for their amusement, under influence of earlier enmity, or due to attachment for very dear one. Some kill in a fit of anger, some due to their greed, some due to their deep attachment and some due to all the said three causes. Some kill for mercy. Some, for spiritual award believing it as a spiritual act, some for sex and some for all the said three reasons.

विवेचन : पिछले सूत्रों में मुख्यतः हिंसा के बाह्य निमित्तों की चर्चा की गई है और प्रस्तुत सूत्र में क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति आदि अन्तरंग वृत्तियों की प्रेरणा को हिंसा के कारणरूप में अंकित किया गया है। बाह्य और आभ्यन्तर कारणों से ही कार्य की निष्पत्ति होती है। अन्तर में स्वार्थ व कषायादि दूषित वृत्तियाँ न हों तो केवल बाह्य प्रयोजनों के लिए हिंसा नहीं की जाती अथवा कम से कम अनिवार्य हिंसा ही की जाती है। इसके विपरीत अनेक सुसंस्कारहीन, कल्मषवृत्ति वाले, निर्दय मनुष्य मात्र मनोविनोद के लिए, मरते हुए प्राणियों को छटपटाते-तड़फते देखकर आनन्द अनुभव करने के लिए अत्यन्त क्रूरतापूर्वक हिरण, खरगोश आदि निरपराध भद्र प्राणियों का घात करने में भी नहीं हिचकते।

मूल में धर्म एवं वेदानुष्ठान के निमित्त भी हिंसा करने का उल्लेख किया गया है। इसमें मूढ़ता-मिथ्यात्व ही प्रधान कारण है। बकरा, भैंसा, गाय, अश्व आदि प्राणियों की अग्नि में आहुति देकर अथवा अन्य प्रकार से उनका वध करके स्वर्ग-प्राप्ति का मनोरथ करना, जहर खाकर अमर बनने के मनोरथ के समान है।

Elaboration—In the earlier Sutras (maxims) the external causes of violence have been discussed primarily. In the present maxim, the influence of inner nature represented by anger, ego, deceit, greed, mocking gestures, have been pointed out as causes of violence. A task is completed only with external and internal causes. In case there is no selfish or polluted activity in the mind, the violence is not done simply for external purpose. In such a case only the least possible violence is

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

done which is absolutely necessary in that situation. On the other hand, many persons, who are uncivilized, cruel and of polluted mind commit acts of violence simply for enjoyment. They experience great pleasure in seeing the creatures moaning due to pangs of death. They do not hesitate killing mercilessly innocent deer, rabbit and the like.

In Vedic tradition, there is a mention of committing violence even for religious practices and customs. This is due to ignorance about the true philosophical thought. The desire of attaining salvation by sacrificing goat, he-buffalo, cow, horse and like in fire or in any other way is like the desire of becoming immortal by taking poison.

हिंसक जनों के विविध प्रकार VARIOUS TYPES OF VIOLENT LIVING BEINGS

१९. [प्र.] कयरे ते ?

[उ.] जे ते सोयरिया मच्छबंधा साउणिया वाहा कूरकम्मा वाउरिया दीवित–बंधणप्पओग–तप्पगल–जाल–वीरल्लगायसीदब्भ–वग्गुरा–कूडछेलियाहत्था।

हरिएसा साउणिया य बीदंसगपासहत्था वणचरगा लुद्धगा महुघाया पोयघाया एणीयारा पएणीयारा सर–दह–दीहिय–तलाग–पल्लल–परिगालण–मलण–सोत्तबंधण–सलिलासयसोसगा विसगरलस्स य दायगा उत्तणवल्लर–दवग्गि–णिद्दया पलीवगा कूरकम्मकारी।

१९. [प्र.] वे हिंसा करने वाले पापिष्ट प्राणी कौन–कौन हैं ?

[उ.] **शौकरिक**–जो सूअर का शिकार करते हैं, **मत्स्यबन्धक**–धीवर जो मछलियों को जाल में बाँधकर मारते हैं, **बहेलिए** जो पक्षियों को जाल में फँसाकर घात करते हैं। **व्याध**–शिकारी जो, हिरणों को फँसाकर मारते हैं। क्रूरकर्मा, **वागुरिक**–मृग आदि को जाल में फँसाने के लिए घूमते हैं, जो मृगादि को मारने के लिए चीते आदि जीवों के साधन काम में लेते हैं, मृग आदि को फँसाने–बाँधने के लिए, फंदा या गुलेल रखते हैं। मछलियाँ पकड़ने के लिए, छोटी नौकाएँ, **गल**–मछलियाँ पकड़ने के लिए काँटे पर आटा या माँस, जाल, बाज पक्षी, लोहे का जाल, डाभ या नारियल की बनी रस्सी, कूटपाश, चीता आदि को पकड़ने के लिए पिंजरे आदि में अथवा किसी स्थान पर बाँधी हुई बकरी अथवा बकरा रखते हैं। इन सब साधनों को साथ में लेकर फिरने वाले–इन साधनों का प्रयोग करने वाले।

चाण्डाल, चिड़ीमार, बाज पक्षी तथा जाल को रखने वाले भील आदि वनवासी, शहद के या माँस के लिए मधुमक्खियों का घात करने वाले, **पोतघातक**–पक्षियों के बच्चों का घात करने वाले, मृगों को आकर्षित करने के लिए हरिणी को साथ लिए घूमने वाले, सरोवर, ह्रद, वापी, तालाब, क्षुद्र जलाशय को मत्स्य, शंख आदि प्राप्त करने के लिए खाली करने वाले, जलाशय को किसी उपाय से सुखाने वाले, विष अथवा अन्य वस्तु में मिले विष को खिलाने वाले, उगे हुए तृण–घास एवं खेत को निर्दयतापूर्वक जलाने वाले, ये सब क्रूरकर्मकारी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

19. [Q.] Who are the sinners indulging in such violence ?

[Ans.] Saukarik (one who hunts pig), **Matsyabandhak** (those who do fishing to kill them), baheliyas (bird hunters) and hunters of deer are the various types of sinners engaged in sinful activities. Kroorakarma (one engaged in cruel activities), Vrigarik (those who move about in order to hunt deer by catching them in the net and also take the help of leopard and the like for this purpose). They keep rope or sling-shot to tie deer. They use small boats to catch fish. They use meat or kneaded floor at the tip of sharp thorny substance to catch fish. They also use iron net, coconut rope and net to catch eagle. They keep cages to catch leopards and tie a goat at a particular place to attract it. They keep with them all the above said material and wander about in search of their prey.

There are rogues, bird-hunters, bhils and foresters who keep hawk and net for hunting, those who kill bees to collect honey or meat and also those who kill chics of birds. Some move about with a doe in order to attract deer. Some drain out tanks, lake, small collection of water in order to procure fishes and conch-shells. Some get these reservoirs dried up for the said purpose. Some serve poison or substance mixed with poison. Some brutally burn green grass. All such people are termed as those engaged in dreadful profession.

हिंसा करने वाली जातियाँ TRIBES ENGAGED IN VIOLENCE

२०. इमे य बहवे मिलक्खुजाई।

[प्र.] के ते ?

[उ.] सक–जवण–सबर–बब्बर–गाय–मुरुंडोद–भडग–तित्तिय–पक्कणिय–कुलक्ख–गोड–सीहल–पारस–कोचंध–दविल–बिल्लल–पुलिंद–अरोस–डोंब–पोक्कण–गंधहारग–बहलीय–जल्ल–रोम–मास–बउस–मलया–चुंचुया य चूलिया कोंकणगा–मेत्त–पण्हव–मालव–महुर–आभासिय–अणक्ख–चीण–लासिय–खस–खासिया–नेहुर–मरहट्ठ–मुट्ठिय–आरब–डोबिलग–कुहण–केकय–हूण–*रोमग–रुरु–मरुया–चिलायविसयवासी य पावमइणो।*

२०. उनके अतिरिक्त ये बहुती–सी म्लेच्छ जातियाँ भी हैं, जो प्राणी हिंसा में संलग्न रहती हैं।

[प्र.] वे (जातियाँ) कौन–सी हैं ?

[उ.] शक, यवन, शबर, बब्बर, काय, मुरुंड, उद, भडक, तित्तिक, पक्कणिक, कुलाक्ष, गौड़, सिंहल, पारस, क्रौंच, आन्ध्र, द्रविड़, बिल्वल, पुलिंद, आरोष, डौंब, पोकण, गान्धार (कंधारवासी), बहलीक, जल्ल, रोम, मास, बकुश, मलय, चुंचुक, चूलिक, कोंकण, मेद, पण्हव, मालव, महुर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभाषिक, अणक्क, चीन, ल्हासिक, खस, खासिक, नेहुर, महाराष्ट्र, मौष्टिक, आरब, डोबलिक, कुहण, कैकय, हूण, रोमक, रुरु, मरुक, चिलात आदि म्लेच्छ देशों के निवासी, जो पाप बुद्धि वाले हैं, (वे हिंसा में प्रवृत्त रहते हैं)।

20. In addition to the above mentioned people, there are many rustic tribes who are always engaged in violence.

[Q.] Which are those tribes ?

[Ans.] They are Shakas, Mohammadens, Shabar, Babbar, Kaya, Murund, Uda, Bhadak, Tittik, Pakkanik, Kulaksh, Gaur, Simhal, Paras, Cronch, Andhra, Dravid, Bilval, Pulind, Aarosh, Daumb, Pokan, Gandhar (natives of Kandhar), Bahaleek, Jalla, Romans, Maas, Bakush, Malaya, Chunchuk, Choolik, Konkan, Med, Panhav, Malav, Mahur, Abhashik, Anakk, Chinese, Lhasik, Khas, Khasik, Nehur, Maharashtra, Maushtik, Arabs, Daublik, Kuhan, Kaikaya, Hun, Romak, Ruru, Maruk, Chillat and the like natives of uncivilized areas. They have maligned mind (They remain engaged in violence).

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में जिन म्लेच्छ जातियों का नामोल्लेख किया गया है, वह किसी जाति विशेष पर आक्षेप नहीं है, किन्तु ये जातियाँ प्रायः संस्कारों व वातावरण के कारण खूँखार, हिंसा-प्रेमी और बर्बर स्वभाव की होती हैं। इनके अतिरिक्त जो भी हिंसा आदि क्रूर कर्म करते हैं, शास्त्रकार ने उन्हें म्लेच्छ व मन्द बुद्धि कहा है। क्योंकि वे कठोर निर्दय स्वभाव के साथ अपनी आत्मा के हिताहित के ज्ञान से शून्य होते हैं। हिंसा के कटु परिणामों से अनभिज्ञ होते हैं। इनमें से अधिकतर अपनी आजीविका के लिए हिंसा करते हैं। कुछ लोग आमोद-प्रमोद मनोरंजन के लिए तथा कुछ रसलोलुपतावश जीभ के स्वाद तथा शरीर-पोषण के लिए हिंसा करते हैं।

Elaboration—In this Sutra, the mention of some tribes as uncivilized (malechh) is not an aspersion on any particular tribe. But these tribes, primarily because of the environment and the set up in which they live, had become dreadful, addicted to violence and cruel. Further the author has called all those as malechh and of malign intellect who do activities of violence. It is because they are not only devoid of compassion but they do not have any awareness for the welfare of their soul also. They are ignorant of the consequences of the violent behaviour. Most of them engage in violence for their livelihood. Some of them commit violence for enjoyment, same for their taste and some for nourishing their physical body.

२१. जलयर–थयलर–सणप्फ–योरग–खहयर–संडासतुंड–जीवोवग्घायजीवी सण्णी य असण्णिणो पज्जत्ते अपज्जत्ते य असुभलेस्स–परिणामे एए अण्णे य एवमाई करेंति पाणाइवायकरणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावा पावाभिगमा पावरुई पाणवहकयरई पाणवहरूवाणुट्ठाणा पाणवहकहासु अभिरमंता तुट्ठा पावं करेत्तु होंति य बहुप्पगारं।

२१. ये पूर्वोक्त विविध देशों और जातियों के लोग तथा इनके अतिरिक्त अन्य जातीय और अन्य देशीय लोग भी, जो अशुभ लेश्या, परिणाम वाले, निकृष्ट विकृत धारा वाले हैं, वे जलचर, स्थलचर, नख वाले, उरग, नभचर, संडासी जैसी चोंच वाले आदि जीवों का घात करके अपनी आजीविका चलाते हैं। वे संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का हनन करते हैं।

वे पाप बुद्धि वाले पाप को ही अपनाने योग्य मानते हैं। पाप में ही उनकी रुचि–प्रीति होती है। वे प्राणियों का घात करके प्रसन्नता व आनन्द का अनुभव करते हैं। उनका काम प्राणवध करना ही होता है। प्राणियों की हिंसा की कथा–वार्त्ता में ही वे आनन्द मानते हैं। वे अनेक प्रकार के पापों का आचरण करके सन्तोष अनुभव करते हैं।

21. The natures of the above-said states and tribes and even those of other states and tribes who are of maligned thought-activity and bad attitude and who are going astray, earn their livelihood by killing aquatic creatures, the creatures living on land, and moving in the sky, the nail-bearing animals, the Urags and those who have sharp beaks. They kill the living beings who have a mind and those who do not possess it, the developed beings and those who are not fully developed.

Such people of maligned intellect, believe that it is good for them to engage in bad activities. They like to engage in sin. They feel happy and elated by killing living beings. They feel satisfied by committing sin of various types.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में कुछ पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जैसे–संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त और अपर्याप्त। उनका आशय इस प्रकार है–

संज्ञी–संज्ञा अर्थात् मनन करने की विशिष्ट चेतना आगे-पीछे के हिताहित का विचार करने की शक्ति जिन प्राणियों को प्राप्त है, ऐसे प्राणी पंचेन्द्रियों में ही होते हैं।

असंज्ञी–जिन जीवों को मन नहीं होता है असंज्ञी कहलाते हैं, एक इन्द्रिय जीवों से लेकर चार इन्द्रिय वाले सभी जीव असंज्ञी होते हैं और पंचेंद्रिय में भी होते हैं।

पर्याप्त–जिन जीवों को शरीर आदि की इन्द्रियाँ पूर्ण प्राप्त हो चुकी हैं, वे पर्याप्त कहलाते हैं।

अपर्याप्त–जिन जीवों को शरीर आदि की इन्द्रियाँ पूर्ण प्राप्त नहीं हुई हैं, वे अपर्याप्त कहलाते हैं।

Elaboration—In this paragraph, some technical terms have been used for instance sanjni, asanjni, paryapt, aparyapt. The purport of these words is as under—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sanjni—Sanjni is the special awakening that helps one to discriminate between good and bad for him. Such a trait is only in five-sensed living beings.

Asanjni—All the living beings who have only one, two, three or four senses, are asanjni.

Paryapt—Those living beings whose sense organs in the physical body have fully developed are called paryapt.

Aparyapt—Those living beings whose sense organs have not developed as yet.

हिंसा का फल CONSEQUENCES OF VIOLENCE

२२. तस्स य पावस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढंति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकाल–बहुदुक्खसंकडं णरयतिरिक्खजोणिं।

२२. हिंसा में लिप्त रहने वाले हिंसा के कटु फल–विपाक को नहीं जानते हुए, अत्यन्त भयानक एवं दीर्घकाल पर्यन्त बहुत–से दुःखों से परिपूर्ण एवं लगातार निरन्तर होने वाली दुःखरूप वेदना वाली नरकयोनि और तिर्यंचयोनि को बढ़ाते हैं, उनमें जाकर उत्पन्न होते हैं।

22. Those who are engaged in violence, they do not know the dreadful results of it. They increase the likelihood of their next span as animal life full of extremely dreadful and full of pain lasting for a long period. That life is going to cause them trouble continuously in hellish state and in animal state of existence.

विवेचन : हिंसा का फल तिर्यंचयोनि और नरकयोनि में उत्पत्ति बतलाया गया है और वह भी अतीव भयोत्पादक एवं निरन्तर दुःखों से परिपूर्ण। तिर्यंचयोनि की परिधि बहुत विशाल है। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीव तिर्यंचयोनिक ही होते हैं। पंचेन्द्रियों में चारों गति के जीव होते हैं। इनमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के दुःख तो किसी अंश में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु अन्य एकेन्द्रियादि तिर्यंचों के कष्टों को मनुष्य बहुत ही कम जानता है। एकेन्द्रियों के दुःख और वेदना तो कल्पना से भी परे हैं। नरकयोनि तो एकान्ततः दुःखमय है ही। इस योनि में उत्पन्न होने वाले प्राणी जन्मकाल से लेकर मरणकाल तक निरन्तर–एक क्षण के व्यवधान या विश्राम बिना सतत भयानक से भयानक पीड़ा भोगते ही रहते हैं। इस प्रकार घोरतम दुःखमय वेदना भोगने का जो स्थान है, वही नरकस्थान है। नरक की वेदनाओं का दिग्दर्शन मात्र ही कराया जा सकता है। शास्त्रकार ने उन दुःखों का वर्णन आगे किया है।

कुछ लोग मनुष्य और तिर्यंचयोनि में भी घोर नारकीय यातनाएँ भोगते देखे जाते हैं। इसके पीछे भी उनके कृत दुष्कृत कर्म ही हैं।

Elaboration—It is said that as a result of acts of violence, one takes re-birth either in hellish state or in animal state of existence. The condition there is extremely frightening. The sphere of animal state of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

existence is very large. All the living being who are one-sensed upto four-sensed belong to animal state of existence only. The five-sensed living beings are in all the four states of existence. The troubles of five-sensed living beings are visible to a certain extent but the troubles of other living beings who belong to one-sensed category and the like are not mostly known to the human beings. The pain of one-sensed living beings is so intense that it is beyond any imagination. The hellish state is totally troublesome. In this state right from the birth upto their end, the living beings continuously without any break even for a moment bear dreadful pain. Thus the place where one has to bear the most dreadful torture is hell. One can only have a slight glimpse of such pain. The author has mentioned these troubles in paragraphs ahead.

Some people undergo hellish troubles even in the human and animal state of existence. It is also the result of their earlier bad deeds.

नरक भूमि वर्णन **DESCRIPTION OF HELL**

२३. इओ आउक्खए चुया असुभकम्मबहुला उववज्जंति णरएसु।

हुलियं महालएसु वयरामयकुड्ड–रुद्द–णिस्संधि–दार–विरहिय–णिम्मद्दव–भूमितल–खरामरिसविसम–णिरय–घरचारएसु महोसिणसया–पतत्त दुग्गंध–विस्स–उव्वेयजणगेसु।

बीभच्छदरिसणिज्जेसु णिच्चं हिमपडलसीयलेसु कालोभासेसु य भीम–गंभीर–लोमहरिसणेसु णिरभिरामेसु णिप्पडियार–वाहि–रोग–जरा–पीलिएसु अईव णिच्चंधयार तिमिस्सेसु पइभएसु ववगय–गह–चंद–सूर–णक्खत्तजोइसेसु मेय–वसा–मंसपडल–पोच्चड–पूय–रुहि–रुक्किण्णविलीण–चिक्कण–रसिया वावण्णकुहियचिक्खल्लकद्दमेसु।

कुकू–लाणल–पलित्तजालमुम्मुर–असिक्खुरकरवत्तधारासु णिसिय–विच्छुयडंक–णिवायोवम्म–फरिसअइदुस्सहेसु य।

अत्ताणा असरणा कडुयदुक्खपरितावणेसु अणुबद्ध–णिरंतर–वेयणेसु जमपुरिस–संकुलेसु।

२३. जीवों की हिंसा करने वाले वे पापीजन–मनुष्यभव से आयु की समाप्ति होने पर, मृत्यु को प्राप्त होकर अशुभ कर्मों की बहुलता के कारण नरकों में उत्पन्न होते हैं।

क्षेत्र और आयुष्य की दृष्टि से नरक बहुत विशाल–विस्तृत हैं। उनकी भित्तियाँ वज्रमय हैं। उन भित्तियों में कोई सन्धि–छिद्र नहीं है, बाहर निकलने के लिए कोई द्वार नहीं है। वहाँ की भूमि अत्यन्त कठोर है। वह नरकरूपी कारागार विषम है। वहाँ नारकावास अत्यन्त उष्ण एवं तप्त रहते हैं। वे जीव वहाँ दुर्गंध के कारण सदैव उद्विग्न–घबराए हुए रहते हैं।

नरक का दृश्य ही अत्यन्त बीभत्स है, वे देखते ही भयंकर प्रतीत होते हैं। वहाँ (किन्हीं स्थानों में जहाँ शीत की प्रधानता है) हिम–पटल–बर्फ की पहाड़ी के सदृश शीतलता बनी रहती है। वे नरक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयंकर हैं, गम्भीर एवं रोमांच खड़े कर देने वाले हैं, घृणास्पद हैं। वे नारक जीव असाध्य कुष्ठ आदि व्याधियों, रोगों एवं जरा से पीड़ित रहते हैं। वहाँ सदैव अन्धकार रहने के कारण प्रत्येक वस्तु अतीव भयानक लगती है। ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि का प्रकाश वहाँ नहीं होता। मेद, चर्बी, माँस के ढेर होने से वह स्थान अत्यन्त घृणास्पद है। पीव और रुधिर के निरन्तर बहते रहने से वहाँ की भूमि गीली और चिकनी रहती है और कीचड़-सी बनी रहती है।

(जहाँ उष्णता की प्रधानता है) वहाँ का स्पर्श दहकती हुई करीष की अग्नि या खदिर (खैर) की अग्नि के समान उष्ण तथा तलवार, उस्तरा अथवा करौत की धार के सदृश तीक्ष्ण है। वह स्पर्श बिच्छू के डंक से भी अधिक वेदना उत्पन्न करने वाला अतिशय दुस्सह्य है। वहाँ के नारक जीव त्राण और शरणविहीन हैं-न कोई उनकी रक्षा करने वाला है, न उन्हें आश्रय देने वाला है। वे नरक कटुक दुःखों के कारण घोर परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं। वहाँ लगातार दुःखरूप वेदना चालू ही रहती है-पलभर के लिए भी चैन नहीं मिलता। वहाँ यमपुरुष अर्थात् पन्द्रह प्रकार के असुर जाति के परमाधामी देव उन्हें घेरे रहते हैं। नारकों को भयंकर-भयंकर यातनाएँ देते हैं। (जिनका वर्णन आगे किया जायेगा।)

23. The evil people who commit violence on living beings are re-born in the hell after completing their present life-span because of the bad Karmas collected by them in plenty.

So far as area and the life-span is concerned, the hell is very large. Its walls are extremely hard like Vajra. There are no holes in them. There is no door for coming out from the hell. Its ground is extremely hard. The hellish prison is undulating. The halls in the hell are extremely hot and remain scorching. The living beings there remain bewildered because of foul smell.

The hellish scene is very dreadful. It appears very drastic at the very first appearance. At those places in the hell where cold is in abundance, it is as cold as snow covered hills. Such hells are dreadful, drastic and worthy of contempt. The hellish beings suffer from incurable diseases like leprosy and others and affect of old age. Since there is always darkness in hell, every thing there appears to be extremely frightening. Planets, the moon, the sun, constellations and the like providing light are not there. There are heaps of marrow, and meat. So that place is extremely detestable. Since blood and mucus flow continuously, the ground remains greasy and slippery. It appears as if it is muddy continuously.

The touch of the hell where heat is in abundance is as burning as the fire of dung cakes or of khair wood. It is as sharp as the edge of a sword, a razor or a saw. That touch is more painful than a scorpion-bite and is extremely unbearable. The hellish beings living there are without any

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐

protection or support. There is no one to provide them shelter or to safeguard them. In view of dreadful troubles that the hellish beings undergo, they suffer miserably. The feeling of pain is continuously there, they do not feel comfort even for a moment. Fifteen types of demons, the paramadhami gods surround them. They give extreme torture to the hellish beings (which shall be described later).

विवेचन : नरकभूमियाँ केवल लम्बाई-चौड़ाई की दृष्टि से ही नहीं, किन्तु नारकों के आयुष्य की दृष्टि से भी विस्तृत हैं। मनुष्यों की आयु की अपेक्षा नारकों की आयु बहुत लम्बी है। वहाँ कम से कम आयु भी दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक तेतीस सागरोपम है। सातों नरकभूमि की संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है-

सात नरक भूमियाँ

नाम	गोत्र	पृथ्वी पिण्डमान मोटाई	आयु-जघन्य :	उत्कृष्ट	नरकावास	वेदना
१. घम्मा	रत्नप्रभा	१,८०,००० योजन	१० हजार वर्ष	१ सागर	३० लाख	क्षेत्रजा; अन्योन्या, परमाधामी कृत
२. वंशा	शर्कराप्रभा	१,३२,००० योजन	१ सागर	३ सागर	२५ लाख	क्षेत्रजा; अन्योन्या, परमाधामी कृत
३. शीला	बालुकाप्रभा	१,२८,००० योजन	३ सागर	७ सागर	१५ लाख	क्षेत्रजा; अन्योन्या, परमाधामी कृत
४. अंजणा	पंकप्रभा	१,२०,००० योजन	७ सागर	१० सागर	१० लाख	क्षेत्रजा; अन्योन्या
५. रीट्ठा	धूमप्रभा	१,१८,००० योजन	१० सागर	१७ सागर	३ लाख	क्षेत्रजा; अन्योन्या
६. मघा	तमःप्रभा	१,१६,००० योजन	१७ सागर	२२ सागर	९९,९९५	क्षेत्रजा; अन्योन्या
७. माघवइ	तमस्तमःप्रभा	१,०८,००० योजन	२२ सागर	३३ सागर	५	क्षेत्रजा; अन्योन्या
					८४ लाख	

नरकभूमि अत्यन्त कर्कश, कठोर और ऊबड़-खाबड़ है। उस भूमि का स्पर्श ही इतना कष्टकर होता है, मानो हजार बिच्छुओं के डंकों का एक साथ स्पर्श हुआ है।

नरक में वेदना

नरक में उत्पन्न होने वाले पापी जीव तीन प्रकार की वेदना भोगते हैं-(१) क्षेत्रजनित वेदना, (२) परस्परोदीरित वेदना-एक-दूसरे के द्वारा दी जाने वाली, तथा (३) परमाधामी (यम पुरुषों द्वारा दी गई) वेदना। क्षेत्र वेदना मुख्यतः १० प्रकार की है-(१) अत्यन्त शीत, (२) अत्यन्त उष्ण, (३) अति क्षुधा, (४) अत्यन्त तृष्णा, (५) घोर खुजली, (६) पराधीनता, (७) जरा (वृद्धत्व), (८) अत्यन्त दाह, (९) शोक, (१०) भय। ये दसों वेदना उस क्षेत्र में अत्यन्त उग्र असहनीय रूप में होती हैं।

क्षेत्र वेदना सातों नरकों में क्रमशः अशुभ, अशुभतर होती हैं। परस्परोदीरित वेदना दो प्रकार की हैं। परस्पर शरीर से दी जाने वाली तथा शस्त्र आदि प्रहारों से नारक जीव परस्पर झगड़ते रहते हैं। नरक में जो मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं वे अज्ञान आदि के कारण परस्पर उग्र रूप में लड़ते-झगड़ते हैं। दूसरों को पीड़ा देते हैं। सम्यक् दृष्टि जीव अपने पूर्व कर्मों को निमित्त मानकर उस वेदना को समभाव के साथ वेदते हैं। अतः मिथ्यादृष्टि जीवों की वेदना उग्र-उग्रतर होती है, सम्यक् दृष्टि की वेदना अल्प होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५ प्रकार के परमाधामी (असुर जाति के) देव हँसी, खेल, मनोरंजन के निमित्त उन्हें भयंकर यातनाएँ देते हैं। वह केवल तीसरे नरक तक ही होते हैं। सूत्र २३ में केवल क्षेत्रजनित वेदना का वर्णन किया है–

नरक में घोर अंधकार सदैव व्याप्त रहता है। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि का लेशमात्र भी प्रकाश नहीं है।

माँस, रुधिर, पीव, चर्बी आदि घृणास्पद वस्तुएँ ढेर की ढेर वहाँ बिखरी पड़ी हैं, जो अतीव उद्वेग तथा घृणा उत्पन्न करती हैं। यद्यपि माँस, रुधिर आदि औदारिक शरीर में ही होते हैं और वहाँ औदारिक शरीरधारी मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच नहीं हैं, तथापि वहाँ के पुद्गल अपनी विचित्र परिणमन शक्ति से इन घृणित वस्तुओं के रूप में परिणत होते रहते हैं। इनके कारण वहाँ सदैव दुर्गन्ध–सड़ांध फैली रहती है जो दुस्सह त्रास उत्पन्न करती है।

नरकों के कोई स्थान अत्यन्त शीतमय है तो कोई अतीव उष्णतापूर्ण है। जो स्थान शीतल हैं वे हिमखण्ड से भी असंख्यगुण शीतल हैं और जो उष्ण हैं वे खदिर की धधकती अग्नि से भी अत्यधिक उष्ण हैं।

नारक जीव ऐसी नरकभूमियों में सुदीर्घकाल तक भयानक से भयानक यातनाएँ निरन्तर, प्रतिक्षण भोगते रहते हैं। वे प्रतिक्षण १० प्रकार की वेदना भोगते रहते हैं। वहाँ उनके प्रति न कोई सहानुभूति प्रकट करने वाला, न सान्त्वना देने वाला और न यातनाओं से रक्षण करने वाला है। इतना ही नहीं, वरन् भयंकर से भयंकर कष्ट पहुँचाने वाले परमाधामी देव वहाँ हैं, जिनका उल्लेख यहाँ 'जमपुरिस' (यमपुरुष) के नाम से किया गया है। ये यमपुरुष पन्द्रह प्रकार के हैं और विभिन्न भयोत्पादक रूप बनाकर नारकों को घोर पीड़ा पहुँचाना उनके लिए मनोरंजन है। वे इस प्रकार हैं–

१. **अम्ब**–ये नारकों को ऊपर आकाश में उछालकर एकदम नीचे पटक देते हैं।

२. **अम्बरीष**–छुरी आदि शस्त्रों से नारकों के शरीर के टुकड़े–टुकड़े करके भाड़ में पकाने डाल देते हैं।

३. **श्याम**–रस्सी से या लात–घूँसों से नारकों को मारते हैं और यातनाजनक स्थानों में पटक देते हैं।

४. **शबल**–ये नारक जीवों के शरीर की आँतें, नसें और कलेजे आदि को बाहर निकाल लेते हैं।

५. **रुद्र**–भाला, बर्छी आदि नुकीले शस्त्रों में नारकों को पिरो देते हैं। इन्हें रौद्र भी कहते हैं। ये अतीव भयंकर होते हैं।

६. **उपरुद्र**–नारकों के अंगोपांगों को फाड़ने वाले, अत्यन्त ही भयंकर असुर हैं।

७. **काल**–ये नारकों को कड़ाही में पकाते हैं।

८. **महाकाल**–ये नारकों के माँस के खण्ड–खण्ड करके उन्हें जबर्दस्ती खिलाने वाले अतीव काले असुर हैं।

९. **असिपत्र**–अपनी वैक्रिय शक्ति द्वारा तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्तों वाले वृक्षों का वन बनाकर उनके पत्ते नारकों पर गिराते हैं और नारकों के शरीर के तिल जितने छोटे–छोटे टुकड़े कर डालते हैं।

१०. **धनुष**–ये धनुष से तीखे बाण फेंककर नारकों के कान, नाक आदि अवयवों का छेदन करते हैं और अन्य प्रकार से भी उन्हें पीड़ा पहुँचाकर आंनन्द मानते हैं।

११. **कुम्भ**–ये असुर नारकों को कुम्भियों में पकाते हैं।

१२. **बालु**–ये वैक्रियलब्धि द्वारा बनाई हुई कदम्ब–बालुका अथवा वज्र–बालुका–रेत में नारकों को चना आदि की तरह भूनते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. वैतरणी–ये यम पुरुष माँस, रुधिर, पीव, पिघले ताँबे-सीसे आदि अत्युष्ण पदार्थों से उबलती–उफनती वैतरणी नदी में नारकों को फेंक देते हैं और उसमें तैरने को विवश करते हैं।

१४. खरस्वर–ये वज्रमय तीक्ष्ण कंटकों से व्याप्त शाल्मली वृक्ष पर चढ़ाकर करुण आक्रन्दन करते नारकों को इधर-उधर खींचते हैं।

१५. महाघोष–ये भयभीत होकर अथवा दुस्सह यातना से बचने से भागते हुए नारक जीवों को बाड़े में बन्द कर देते हैं और भयानक गर्जना करते हुए उन्हें रोक देते हैं।

Elaboration—The hells are huge in length and breadth. Even from the point of view of life-span of hellish beings, they are extensive. No hellish beings has a life less than ten thousand years. The maximum life of a living being in hell is thirty three Sagaropam. The table below indicates in brief the data about seven hells.

Seven Hells

Name	Class	Thickness of Hell in yojan	Min. life	Max. life	Hellish Abodes	Type of Pain
1. Dhamma	Ratnaprabha	1.8 Lakhs	10000 years	1 Sagar	30 Lakhs	area specific, by others, by demons
2. Vansha	Sharkaraprabha	1.32 Lakhs	1 Sagar	3 Sagar	25 Lakhs	-do-
3. Sheela	Balukaprabha	1.28 Lakhs	3 Sagar	7 Sagar	15 Lakhs	-do-
4. Anjana	Pankprabha	1.2 Lakhs	7 Sagar	10 Sagar	10 Lakhs	area specific, by others
5. Rittha	Dhoomprabha	1.18 Lakhs	10 Sagar	17 Sagar	3 Lakhs	-do-
6. Magha	Tamprabha	1.16 Lakhs	17 Sagar	22 Sagar	99,995	-do-
7. Maaghavai	Mahatamprabha	1.08 Lakhs	22 Sagar	33 Sagar	5	-do-

The land of the hell is extremely hard, sharp and undulating. The touch of that land is as painful as a thousand scorpions biting simultaneously.

Pain in Hells—

The evil beings taking birth in hell face three types of feeling of pain—(1) Pain caused by the land, (2) Pain caused mutually, and (3) Pain caused by demons (Paramadhami gods).

The pain caused by the land is of ten types—(1) extreme cold, (2) extreme heat, (3) extreme hunger, (4) extreme thirst, (5) extreme itching, (6) slavery, (7) continuous high fever, (8) extreme burning sensation, (9) sadness, (10) fear. All the said ten feelings of pain are of extremely dreadful type and unbearable.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The feeling of pain due to land of the hell goes on increasing gradually as one moves from first hell to the second and so on. The mutual feeling of pain is of two types—one given by physical contact of the body and the other by weapons. The hellish beings go on fighting among themselves. The hellish beings who are of wrong perception (faith) fight fiercely among themselves due to their ignorance. They cause pain to others. Those hellish beings who are of right perception (faith) believe that the troubles they face are the result of their own Karmas of earlier life-span. So they bear it calmly. So the feeling of pain of hellish beings of wrong perception is more and more dreadful while the pain of hellish beings of right perception is feeble.

Fifteen types of paramadhami gods (of demon category) cause pain for their enjoyment. They exist only in first three hells. In Sutra 23, the feeling of pain due to the nature of land above has been discussed.

Always there is pitch dark in hell. There is not even minor light of the moon, the sun, planets, constellations and the like.

There are meat, blood, mucus, marrow, and other foul substances scattered all around in heaps in the hell. They produce extreme hatred and dejection. Meat, blood and the like are found only in physical (audarik) body and the human beings and five-sensed animals do not exist in hell, still the matter in hell has an unusual quality of transforming itself into foul substances. So there is always bad striking smell there which creates a great sense of frustration.

Some area in hell is extremely cold while some area is extremely hot. The area which is cold is innumerable times colder than a block of ice and the area which is hot is much more hot than a drastically burning fire.

In such hells, the hellish being continuously undergo most frightening and shocking tortures for a very long period every moment. The hellish beings bear pain of ten types. There is no one present there to show mercy, compassion or consolation towards them. Further there are demon (paramadhami) gods who give them most dreadful tortures and they have been termed here as messenger of death (yam purush). Such yam purush are of fifteen types. They transform themselves into different frightening shapes and experience enjoyment in providing extreme tortures to the hellish beings. They are as follows—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1. **Amb**—These demons hurl the hellish beings upwards and suddenly throw them downwards.

2. **Ambarish**—They cut the bodies of the hellish beings into pieces with sharp-edged weapons and then put them for cooking.

3. **Shyam**—They beat the hellish beings with ropes, legs and fists and then throw them in nasty places to undergo tortures.

4. **Shabal**—These demons take out the intestines, nerves and the like of the hellish beings from their body.

5. **Rudra**—They pierce the hellish beings with sharp points of spears and the like. They are also called raudra. They are extremely cruel and dreadful.

6. **Uparudra**—They tear the limbs of the hellish beings. They are extremely frightening demons.

7. **Kaal**—These demons roast the hellish beings in a vessel.

8. **Mahakaal**—These demons are extremely dark in complexion. They cut the flesh of hellish beings into pieces and forcibly compel the hellish beings to devour the same.

9. **Asipatra**—These demons with their fluid power create forests having sword-like sharp edged leaves. Then they hurl such leaves on the hellish beings. Thus they cut their body into pieces as small as an atom.

10. **Dhanush**—They hurl sharp arrows on the hellish beings from their bow and pierces the ears, nose and the like. They enjoy causing tortures of many types to the hellish beings.

11. **Kumbh**—These demons cook the hellish beings in vessels with long narrow mouth.

12. **Balu**—These demons create burning sand with their fluid power. That sand is very hard and burning. Then they roast the hellish beings in that sand just as grams are roasted.

13. **Vaitarni**—These demons throw the hellish beings in Vaitarni stream containing meat and boiling with blood, mucus, melted copper, melted glass and the like. Then they force them to swim in that stream.

14. **Khar Swar**—These demons force the hellish beings to climb Shalmali trees that contains extremely sharp thorns. The hellish beings then weep bitterly and pray for mercy but the demons pull them hither and thither.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

15. Mahaghosh—They imprison in the penn hellish beings who run hither and thither in a frightened state in order to save themselves from the tortoises. Thereafter the demons produce dreadful roaring sound and stop them from coming out from that prison.

नारकों का वीभत्स शरीर DREADFUL BODY OF HELLISH BEINGS

२४. तत्थ य अंतोमुहुत्तलद्धिभवपच्चएणं णिवत्तंति उ ते सरीरं हुंडं बीभच्छदरिसणिज्जं बीहणगं अट्ठि–ण्हारु–णह–रोम–वज्जियं असुभगं दुक्खविसहं।

तओ य पज्जत्तिमुवगया इंदिएहिं पंचहिं वेएंति असुहाए वेयणाए उज्जल–बल–विउल–कक्खड–खर–फरुस–पयंड–घोर–बीहणगदारुणाए।

२४. उस अत्यन्त डरावनी नरकभूमि में वे घोर पाप करने वाले पापी जीव उत्पन्न होते ही अन्तर्मुहूर्त्त (४८ मिनट से कम काल) में नरकभव की स्वाभाविक प्रकृति के कारण वैक्रियलब्धि से अपने शरीर का निर्माण कर लेते हैं। वह शरीर बेडौल, भद्दी आकृति वाला, देखने में बीभत्स, दुर्गन्धमय घृणित, भयानक, अस्थियों, नसों, नाखूनों और रोमों से रहित; अशुभ और घोरातिघोर दुःखों को सहन करने में सक्षम हुंडक संस्थान वाला होता है।

शरीर का निर्माण हो जाने के पश्चात् वे सभी पर्याप्तियों से पूर्णपर्याप्त हो जाते हैं और पाँचों इन्द्रियों से अशुभ वेदना का वेदन करते हैं। उनकी वेदना उज्ज्वल, बलवती, विपुल, उत्कट, प्रखर, परुष, प्रचण्ड, घोर, बीहनक–डरावनी और दारुण होती है।

24. In that extremely dreadful hell, the hellish beings who had committed drastic sinful activities in their previous lives develop their body fully in just 48 minutes with the natural fluid power they have in the hell. That body is grotesque, ugly and frightening to look at and does not contain bones, nerves, nails or pores. It is bad and capable of bearing most dreadful pain and troubles. It has hundak constitution.

After developing their body, the hellish beings experience bad feelings through all the five senses. Their pain is distinct, forceful, extended, dreadful, sharp, frightening, deep and heart rending.

विवेचन : वेदना प्रायः दो प्रकार की होती है–सुखरूप सातावेदना और दुःखरूप असातावेदना। नारक जीवों की वेदना असातावेदना ही होती है। उस असातावेदना की उत्कटता बताने के लिए यों तो शब्द कम ही पड़ते हैं, परन्तु फिर भी उसकी दारुणता का सामान्य बोध कराने के लिए आगम में अनेक शब्द आये हैं; जिनका भावार्थ इस प्रकार है–

उज्जल (उज्ज्वल)–जिसमें सुख का तनिक भी सम्मिश्रण नहीं।

बल–विउल (बल–विपुल)–अतिशय बलवती एवं समग्र शरीर में व्याप्त रहने के कारण विपुल।

उक्कड (उत्कट)–चरम सीमा को प्राप्त।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खर–फरुस (खर–परुष)–शिला आदि के गिरने पर होने वाली वेदना के सदृश होने से खर तथा कूष्माण्डी तलवार की धार वाले पत्ते के समान कर्कश स्पर्श वाली परुष–कठोर।

पयंड (प्रचण्ड)–शीघ्र ही समग्र शरीर में व्याप्त हो जाने वाली।

घोर (घोर)–यदि औदारिक शरीर में ऐसी वेदना हो जाये तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। वैक्रिय शरीर होने के कारण वे उसे जीवन पर्यन्त भोगते हैं।

बीहणग (भीषणक)–भयानक–भयजनक।

दारुण (दारुण)–अत्यन्त विकट।

देवों की भाँति नारकों का शरीर भी वैक्रिय होता है। आयुष्य पूर्ण हुए बिना–अकाल में इस शरीर का अन्त नहीं होता। परमाधामी उस शरीर के टुकड़े–टुकड़े कर देते हैं तथापि वह पारे की तरह फिर जुड़ जाता है।

Elaboration—Often the sufference is of two types—one that provides pleasure and the other that provides pain. The feelings of hellish beings is only full of pain. No proper words are available to express their dreadful feelings of pain. Still in order to provide some understanding about their condition many words have been used in the scriptures (Agams). The meanings of these words is as follows—

Ujjal—That which does not contain even an iota of happiness.

Bal-viyul—Very strong and spreading throughout the body.

Utkat—Reaching the extreme limit.

Khar-pharus—Dreadful like that experienced at the time of fall of a large slab on one's body and dangerous in touch like a sharp-edge leaf.

Payand—That spreads in the body very soon.

Ghor—The pain that is capable of destroying the physical body in case it occurs there. But in hell the body being fluid, the hellish beings endure it throughout their life.

Beehanak—Dreadful.

Daarim—Extremely unbearable.

The hellish beings possess fluid body like that of gods. They do not die without completing their destined life-span. The demon gods cut that body into pieces. But it again joins like particles of mercury.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. [प्र.] किं ते ?

[उ.] कंदु–महाकुंभिए पयण–पउलण–तवग–तलण–भट्ठभज्जणाणि य लोहकडाहु–कड्ढणाणि य कोट्टवलिकरण–कोट्टणाणि य।

सामलितिक्खग्ग–लोहकंटग–अभिसरणपसारणाणि फालणविदारणाणि य अवकोडकबंधणाणि लट्ठिसयतालणाणि य गलगंबलुल्लंबणाणि सूलग्गभेयणाणि य आएसपवंचणाणि खिंसणविमाणणाणि विघुट्ठपणिज्जणाणि वज्झसयमाइकाणि य।

२५. [प्र.] नारकों को जो वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं, वे कैसी हैं ?

[उ.] नारक जीवों को कंदु–लोहे की कड़ाही जैसे चौड़े मुख के पात्र में और महाकुंभी–सँकड़े मुख वाले घड़ा सरीखे महापात्र मे पकाया और उबाला जाता है। तवे पर रोटी की तरह सेका जाता है। चनों की भाँति भाड़ में भूँजा जाता है। लोहे की कड़ाही में ईख के रस के समान औटाया जाता है। जैसे देवी के सामने बकरे की बलि चढ़ाई जाती है, उसी प्रकार उनकी बलि चढ़ाई जाती है–उनकी काया के खण्ड–खण्ड कर दिये जाते हैं।

लोहे के तीखे शूल के समान तीक्ष्ण काँटों वाले शाल्मलिवृक्ष (सेंमल) के काँटों पर उन्हें इधर–उधर घसीटा जाता है। काठ के समान उनकी चीर–फाड़ की जाती है। उनके पैर और हाथ बीच में डण्डे लगाकर बाँध दिये जाते हैं। सैकड़ों लाठियों से उन पर प्रहार किये जाते हैं। गले में फंदा डालकर लटका दिया जाता है। उनके शरीर को शूली के अग्र भाग से भेदा जाता है। झूठे आदेश देकर उन्हें ठगा जाता–धोखा दिया जाता है। उनकी तीव्र भर्त्सना की जाती है, अपमानित किया जाता है। पूर्वभव में किए गये घोर पापों की घोषणा करके उन्हें वधभूमि (कत्लगाह) में घसीटकर ले जाया जाता है। वध्य जीवों को दिये जाने वाले सैकड़ों प्रकार के दुःख उन्हें दिये जाते हैं।

25. [Q.] What are the feelings of pain that the hellish beings have to undergo ?

[Ans.] The hellish beings are roasted in iron pots having wide mouth (Kandu) and in large pitchers with narrow neck (mahakumbhi). They are baked on the frying pan like a loaf. They are churned like grams on a burning fire. Just as goat sacrifice is done in front of a goddess, their sacrifice is performed. They are boiled like sugar cane juice in an iron vessel. Their body is cut into pieces.

They are pushed along the sharp thorn on a Semal tree having such sharp thorns. They are sawn like wood, they are hung with rope tied on their neck on a scaffold. Their body is pierced with the pointed tip of a sharp weapon. Their hands are tied keeping a wooden stick in between. Then they are beaten with hundreds of sticks. They are cheated with false orders. They are condemned adversely. They are dishonoured. The

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 2

Illustration No. 2

नारकों को दिये जाने वाले लोमहर्षक दुःख

हिंसा के फलस्वरूप जीव को नरक गति में अनेक भंयकर कष्ट सहने पड़ते हैं, इस योनि में उत्पन्न होने वाले प्राणी जन्म से लेकर मरण तक सतत् ही तीव्र वेदना भोगते रहते हैं। नरक की वेदना का मात्र दिग्दर्शन करने से ही हृदय काँपने लगता है, रोम खड़े हो जाते हैं तो इनको भोगने पर कितना कष्ट होता होगा ? नरक में उत्पन्न जीव तीन प्रकार की वेदनायें भोगते हैं–

(1) क्षेत्र जनित वेदना–यह दस प्रकार की होती है–(1) अत्यन्त शीत, (2) अत्यन्त उष्ण, (3) अति क्षुधा, (4) अत्यन्त तृष्णा, (5) घोर खुजली, (6) पराधीनता, (7) सतत उग्र ज्वर, (8) अत्यन्त दाह, (9) शोक, (10) भय।

(2) परमाधर्मी (यम पुरुषों द्वारा दी गई) वेदना–15 प्रकार के परमाधर्मी (असुर जाति के) देव हँसी, खेल, मनोरंजन के निमित्त नरक में उत्पन्न जीवों को भयंकर यातनाएँ देते हैं। उन्हें भाड़ की तरह गरम बालू पर भूंजते हैं। शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और लोहे की कड़ाहियों में ईख के रस के समान औटाते हैं। यह यम पुरुष केवल तीसरे नरक तक ही होते हैं।

(3) परस्परोदीरित वेदना–परस्परोदीरित वेदना दो प्रकार की हैं–परस्पर शरीर से दी जाने वाली, शस्त्रादि प्रहारों से। ये नारकीय जीव परस्पर वैक्रिय लब्धी द्वारा सिंह, बाघ आदि का रूप बनाकर एक-दूसरे को चीर-फाड़ देते हैं।

–सूत्र 25, पृ. 46

BITTER FRUITS OF VIOLENCE IN INFERNAL WORLD

As a consequence of violence a living being takes birth in hell and suffers many terrible torments. Living beings born in this genus continue to suffer acute pain throughout its life. Even imagination of the tortures of hell is heart rending, what to say of the actual suffering? Infernal beings suffer three types of pain –

(1) Area generated pain – It is of ten types – (1) extreme cold, (2) extreme heat, (3) extreme hunger, (4) extreme thirst, (5) extreme itching, (6) slavery, (7) persistent high fever, (8) extreme burning sensation, (9) melancholy, and (10) fear.

(2) Pain caused by Paramadhami gods – These divine beings of Asur class are of 15 types. They cause extreme torment to infernal beings just for their joy and entertainment. They roast these beings in hot sand. They cut their bodies into small pieces and boil them in iron cauldrons just like cane juice. These attendants of the god of death (Yama) are active only up to the third hell.

(3) Mutually caused pain – This is of two types – bodily caused and caused through weapons. These infernal beings take the form of ferocious animals including lion and tiger through their natural power of transmutation and indulge in tearing apart each other.

— Sutra-25, page-46

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

dreadful sins committed by them during earlier life-span are announced and they are dragged towards the place where scaffold is fixed. They are given hundreds of suchlike tortures as are given to those who are to be hanged.

विवेचन : क्षेत्र वेदना का वर्णन करने के बाद अब परमाधामी देवों द्वारा दी जाने वाली भयानक यातनाओं का दिग्दर्शन इस सूत्र में कराया गया है।

परमाधामी जीव जब नारकों को पीड़ा देते हैं तब वे उनके पूर्व कृत पापों की उद्घोषणा भी करते हैं, उन्हें अपने पूर्व कृत पापों का स्मरण कराते हैं और उन्हें प्रायः उसी कोटि की यातना दी जाती है। जैसे–जो लोग जीवित मुर्गा-मुर्गी को उबलते पानी में डालकर उबालते हैं, उन्हें कंदु और महाकुंभी में उबाला जाता है। जो पापी जीववध करके माँस को काटते–भूनते हैं, उन्हें उसी प्रकार काटा–भूना जाता है। जो देवी–देवता के आगे बकरा, पाड़ा आदि प्राणियों का घात करके उनके खण्ड–खण्ड करते हैं, उनके शरीर के भी नरक में परमाधामियों द्वारा तिल-तिल जितने खण्ड–खण्ड किये जाते हैं। अन्य वेदनाओं के विषय में भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए।

Elaboration—In this Sutra, the tortures given by demon gods have been narrated after describing earlier the pains due to the nature of the area.

When the demon gods torture the hellish beings, they also announce the sins committed by them in earlier life and the punishment given is often of the same type as was the sin committed by them. For instance those who boil living chicken in water, they are boiled in a pot with wide mouth or one with narrow neck. Those people who, after killing animal, cut its flesh and bake it in fire, they are cut and burnt in the same manner. Those people who sacrifice goat, buffalo and the like before the idol of a god or goddess, and then cut their flesh into pieces, the demon gods cut their bodies in the same manner when they take birth in hell. One should understand about other troubles also in the same manner.

२६. एवं ते पुव्वकम्मकयसंचयोवतत्ता णिरयग्गिमहग्गिसंपलित्ता गाढदुक्खं महब्भयं कक्कसं असायं सारीरं माणसं य तिव्वं दुविहं वेएंति वेयणं पावकम्मकारी बहूणि पलिओवम–सागरोवमाणि कलुणं पालेंति ते अहाउयं जमकाइयतासिया य सद्दं करेंति भीया।

२६. इस प्रकार वे नारक जीव अपने पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के संचय के कारण दुःखों से व्याकुल रहते हैं। महा–अग्नि के समान प्रचण्ड नरक की अग्नि से जलते रहते हैं। वे पापकृत्य करने वाले जीव प्रगाढ़ दुःखमय, घोर भय उत्पन्न करने वाली, अतिशय कर्कश एवं उग्र शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की वेदना का अनुभव करते रहते हैं। उनकी यह वेदना अनेक पल्योपम और सागरोपम काल तक रहती है। वे अपनी पूर्ण आयु के अनुसार अत्यन्त दीन व करुण अवस्था में रहते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। वे दक्षिण दिक्पाल यमदेव के आश्रित यमकायिक देवों द्वारा पीड़ा व यातना को प्राप्त होते हैं और (दुस्सह वेदना के वशीभूत होकर) भयभीत होकर रोते-चिल्लाते हैं।

26. Thus the hellish beings remain in trouble as a result of the bad Karma collected by them in earlier life or lives by committing sins. They burn in fire of the drastic hell, indeed a ferocious fire. They experience physical and mental pain, which is of extreme order, frightening and highly unbearable as they had committed sin in earlier life-span. Their pain lasts for many Palyopam or Sagaropam; they remain in extremely wretched and pitiable state throughout their life. They are tortured by ferocious gods who serve under deadly god (Yamadev) guarding the southern region. They weap and cry out of fear as result of unbearable pain they suffer.

विवेचन : जैसे सामान्य मनुष्य और तिर्यंच उपघात आदि के निमित्त प्राप्त होने पर अकालमरण से मर जाते हैं, वैसा नारकों में नहीं होता। उनकी आयु निरुपक्रम होती है। जितने काल की आयु बँधी है, नियम से उतने ही काल में वह भोगी जाती है। नारक जीव अनेकानेक पल्योपमों और सागरोपमों तक निरन्तर ये वेदनाएँ भुगतते रहते हैं।

Elaboration—Unlike ordinary human beings and animals who die without completing their total life-span as a result of hurt caused by external sources (weapons, diseases and the like), the hellish beings do not die under such conditions. There life-span cannot end in this manner as it is nir-upakram life-span. They have to complete their life as pre-determined. The hellish beings suffers the painful feeling continuously for a period running into many Palyopam and Sagaropam.

नारक जीवों की करुण पुकार **BEMOANING OF HELLISH BEINGS**

२७. [प्र.] किं ते ?

[उ.] अविभाव सामि भाय बप्प ताय जियवं मुय मे, मरामि दुब्बलो वाहिपीलिओऽहं किं दाणिऽसि एवं दारुणो णिद्दय ? मा देहि मे पहारे, उस्सासेयं मुहुत्तं मे देहि, पसायं करेह, मा रुस वीसमामि, गेविज्जं मुयह मे मरामि गाढं तण्हाइओ अहं देहि पाणीयं।

२७. [प्र.] (नारक जीव) किस प्रकार रोते-चिल्लाते क्रन्दन करते हैं ?

[उ.] हे अज्ञातबन्धु ! हे स्वामिन् ! हे भ्राता ! अरे बाप ! हे तात ! हे विजेता ! मुझे छोड़ दो। मैं मर रहा हूँ। मैं दुर्बल हूँ। मैं व्याधि से पीड़ित हूँ। आप इस समय क्यों इतने कठोर हृदय दारुण एवं निर्दय हो रहे हैं ? मेरे ऊपर प्रहार मत करो। मुझे मुहूर्त्तभर-थोड़े समय तक साँस तो लेने दीजिए। दया कीजिए। रोष न कीजिए। मैं जरा विश्राम ले लूँ। मेरा गला छोड़ दीजिए। मैं मरा जा रहा हूँ। प्यास से मेरा गला सूखा जा रहा है। मुझे थोड़ा-सा पानी दे दीजिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

27. [Q.] In what manner do the hellish beings cry and bemoan ?

[Ans.] O unknown friend ! O master ! O brother ! O father ! O saviour ! O conqueror ! Kindly make me free. I am dying. I am weak. I am suffering from illness. Why are you becoming so hard-hearted and cruel at this moment. Kindly do not attack me. Kindly allow me to give a sigh of relief for a little time—say 48 minutes. Please have mercy on me. Do not be angry with me. May I take rest for sometime. Please release my neck. My throat is becoming dry due to thirst. Please give me some water.

नारकपालों द्वारा दिया जाने वाला घोर दुःख DREADFUL TORTURE BY GUARDIANS OF HELL

२८. हंता पिय इमं जलं विमलं सीयलं त्ति घेत्तूण य णरयपाला तवियं तउयं से दिंति कलसेण अंजलीसु दट्ठूण य तं पवेवियंगोवंगा अंसुपगलंतपप्पुयच्छा–"छिण्णा तण्हाइयम्ह कलुणाणि जंपमाणा विप्पेक्खंता दिसोदिसिं अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधविप्पहूणा विपलायंति य मिया इव वेगेण भयुव्विग्गा।

२८. (जब वे पानी माँगते हैं तब नरकपाल कहते हैं) 'अच्छा, हाँ, (तुम्हें प्यास सता रही है? तो लो) यह निर्मल और शीतल जल पीओ।' इस प्रकार कहकर नरकपाल अर्थात् परमाधामी असुर नारकों को पकड़कर खौलता हुआ सीसा कलश से उनकी अंजुली में उँडेल देते हैं। उसे देखते ही उनके अंगोपांग काँपने लगते हैं। उनके नेत्रों से आँसू टपकने लगते हैं। फिर वे रोते-रोते कहते हैं-'(रहने दीजिए), हमारी प्यास शान्त हो गई !' इस प्रकार करुणाजनक हीन वचन बोलते हुए भागने-बचने के लिए इधर-उधर ताकने लगते हैं। किन्तु वहाँ उन्हें कोई त्राण (रक्षा) देने वाला, शरण देने वाला, सहारा देने वाला नहीं है। वे अरक्षित, निराश्रित, अनाथ, बन्धुविहीन एवं भय के मारे घबराकर के सिंह से आक्रान्त मृग की तरह बड़े वेग से इधर-उधर भागते हैं।

28. (When the hellish beings demand water, the guardians of hell say) well you are suffering due to thirst. So you have it. Here is clear cold water. You drink it. Saying so, the demon gods guarding the hell catch hold of the hellish beings and put hot melted lead on their cupped palms. The hellish beings start shivering at the very sight of the pot of melted lead. They start weeping bitterly and utter while weeping—'kindly keep it away. Our thirst has subsided'. Thus while seeking compassion through such words, they look hither and thither in order to run away. But there is no one to provide protection, help or security to them. The poor hellish beings run away hither and thither very fast in a state of bewilderment just as a terrified deer runs away at the sight of a lion.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : यहाँ आँसुओं के टपकने का या इसी प्रकार के जो अन्य कथन हैं, वे मात्र करुण दशात्मक आन्तरिक पीड़ा के द्योतक हैं, औदारिक शरीरधारियों (मनुष्यों) के शीघ्र ही समझ में आ जाता है, अतएव उनकी भाषा में समझाने की दृष्टि है।

Elaboration—The trickling of tears and such like statement convey simply the inner trouble, seeking compassion. The living beings who have physical body (say human beings) understand it soon. So it is a method used by the author to explain it in their language.

२९. घेत्तूणबला पलायमाणाणं णिरणुकंपा मुहं विहाडेत्तुं लोहदंडेहिं कलकलं ण्हं वयणंसि छुभंति केइ जमकाइया हसंता। तेण दड्ढा संतो रसंति य भीमाइं विस्सराइं रुवंति य कलुणगाइं पारेयवगा व एवं पलविय–विलाव–कलुण–कंदिय–बहुरुण्णरुइयसद्दो परिदेवियरुद्धबद्धय णारया–रवसंकुलो णीसिट्ठो।

रसिय–भणिय–कुविय–उक्कूइय–णिरयपाल तज्जिय गिण्हक्कम पहर छिंद भिंद उप्पाडेह उक्खणाहि कत्ताहि विकत्ताहि य भुज्जो हण विहण विच्छुब्भोच्छुब्भ–आकड्ढ–विकड्ढ।

किं ण जंपसि ? सराहि पावकम्माइं दुक्कयाइं ! एवं वयणमहप्पगब्भो पडिसुयासद्दसंकुलो तासओ सया णिरयगोयराणं महाणगरडज्झमाण–सरिसो णिग्घोसो, सुच्चइ अणिट्ठो तहियं णेरइयाणं जाइज्जंताणं जायणाहिं।

२९. वे अनुकम्पाविहीन यमकायिक (यमपुरुष) उपहास करते हुए इधर-उधर भागते हुए उन नारक जीवों को जबर्दस्ती पकड़कर और लोहे के डण्डे से उनका मुख फाड़कर उसमें उबलता हुआ सीसा डाल देते हैं। उबलते सीसे से दग्ध होकर वे नारक भयानक आर्त्तनाद करते हैं–बुरी तरह चिल्लाते हैं। वे कबूतर की तरह करुणाजनक आक्रंदन करते हैं, खूब रुदन करते हैं–चीत्कार करते हुए अश्रु बहाते हैं। विलाप करते हैं।

नरकपाल उन्हें रोक लेते हैं, बाँध देते हैं। तब नारक आर्त्तनाद करते हैं, हाहाकार करते हैं, बड़बड़ाते हैं–शब्द करते हैं, तब नरकपाल कुपित होकर और कठोर उच्च ध्वनि से उन्हें धमकाते हैं और अन्य नरकपालों को कहते हैं–"इसे पकड़ो, मारो, प्रहार करो, छेद डालो, भेद डालो, इसकी चमड़ी उधेड़ दो, नेत्र बाहर निकाल लो, इसे काट डालो, खण्ड–खण्ड कर डालो, हनन करो, फिर से और अधिक पीटो, इसके मुख में (गर्मागर्म) सीसा उँड़ेल दो, इसे उठाकर पटक दो या मुख में और सीसा डाल दो, घसीटो, उल्टा घसीटो।"

नरकपाल फिर उन्हें फटकारते हुए कहते हैं–"बोलता क्यों नहीं ! अपने पापकर्मों को, अपने कुकर्मों को स्मरण कर !" इस प्रकार नरकपालों की अत्यन्त कर्कश ध्वनि की वहाँ घोर प्रतिध्वनि होती है। नारक जीवों के लिए वह ऐसी त्रासजनक होती है कि जैसे किसी महानगर में आग लगने पर घोर शब्द–कोलाहल होता है, उसी प्रकार निरन्तर यातनाएँ भोगने वाले नारकों का अनिष्ट निर्घोष वहाँ सुना जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

29. Those demon gods (yamapurush) who laugh at the hellish beings running away hither and thither and have no compassion for them. They forcibly catch them, open their mouth with iron rod and put boiling melted lead in it. The hellish beings weep bitterly and cry vigorously when their mouth burns with melted lead. They cry like a pigeon seeking mercy. They weep bitterly, bemoan and cry.

The guardians of hell stop them, chain them and than the hellish beings weep bitterly, cry, grumble and then the guardians of hell threaten them with hard words in a loud voice. They say, "Catch him, beat him, hit him, pierce him, cut him, pull out his skin, take out his eyes, cut him into small pieces, kill him, beat him again more severely. Put extremely hot lead in his mouth. Throw him down with great force. Put more lead in his mouth, pull him, pull him facing the ground.

Later the guardians of hell tell them while threatening, 'Why don't you speak ? You recollect your sins, your bad deeds.' Thus there occurs a dreadful reaction of the extremely dreadful voice of guardians of hell. Such a sound creates such a fear in hellish beings as if there is a great disturbing sound in a city at the time of dreadful fire. Thus one hears continuously bemoaning sound of the hellish beings suffering tortures.

नारकों की विविध पीड़ाएं **VARIOUS TORTURES OF INFERNAL BEINGS**

३०. [प्र.] किं ते ?

[उ.] असिवण–दब्भवण–जंतपत्थर–सूइतल–क्खार–वावि–कलकलंत–वेयरणि–कलंब–वालुया–जलियगुह–णिरुंभण–उसिणोसिण–कंटइल्ल–दुग्गम–रहजोयण–तत्तलोहमग्गगमण–वाहणाणि।

३०. (नारक जीवों की यातनाएँ इतनी ही नहीं हैं।) [प्रश्न] वे यातनाएँ कैसी हैं ?

[उ.] नारकों को असि–वन में अर्थात् तलवार की तीक्ष्ण धार के समान पत्तों वाले वृक्षों के वन में चलने को बाध्य किया जाता है, तीखी नोंक वाले दर्भ (घास) के वन में चलाया जाता है, उन्हें कोल्हू में डालकर (तिलों की तरह) पेरा जाता है, सुई की नोंक के समान अतीव तीक्ष्ण कण्टकों के सदृश स्पर्श वाली भूमि पर चलाया जाता है, क्षारयुक्त पानी वाली बावड़ी में पटक दिया जाता है, उबलते हुए सीसे आदि से भरी वैतरणी नदी में बहाया जाता है, कदम्ब पुष्प के समान तपकर अत्यन्त उष्ण एवं कण्टकाकीर्ण–विषम–ऊबड़–खाबड़ मार्ग में रथ में (बैलों की तरह) जोतकर चलाया जाता है, तपे हुए लोह से उष्ण मार्ग में चलाया जाता है और भारी भार उठवाया जाता है।

30. [Q.] (The tortures in hell are not just the said ones) Of what type are those tortures ?

[Ans.] The hellish beings are compelled to move in the forest that is full of trees having leaves sharper than the sharp edge of a sword. They

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

are forced to move on sharp pointed grass. They are crushed like sesame. They are moved on land that has dreadful touch like extremely sharp thorns. They are thrown in a lake that contains very acidic water. They are floated in the Vaitarni river containing boiling lead and the like. They are driven like bullocks on a very hot and thorny, undulating road which is as warm as Kadamb flower. They are made to carry very great load and driven on a road as hot as burning iron.

परस्परोदीरित वेदना PAIN CAUSED MUTUALLY

३१. इमेहिं विविहेहिं आउहेहिं–

[प्र.] किं ते ?

[उ.] मुग्गर–मुसुंढि–करकय–सत्ति–हल–गय–मूसल–चक्क–कोंत–तोमर–सूल–लउड–भिंडिपाल–सद्धल–पट्टिस–चम्मेट्ठ–दुहण–मुट्ठिय–असि–खेडग–खग्ग–चाव–णाराय–कणग–कप्पिणि–वासि–परसु–टंक–तिक्खणिम्मल–अण्णेहिं य एवमाइएहिं असुभेहिं वेउव्विएहिं पहरणसएहिं अणुबद्धतिव्ववेरा परोप्परवेयणं उदीरेंति अभिहणंता।

तत्थ य मोग्गर–पहारचुण्णिय–मुसुंढि–संभग्ग–महियदेहा जंतोवपीलणफुरंतकप्पिया केइत्थ सचम्मका विगत्ता णिम्मूलुल्लूण–कण्णोट्ठणासिका छिण्णहत्थपाया, असि–करकय–तिक्ख–कोंत–परसुप्पहारफालिय–वासीसंतच्छितंगमंगा कलकलमाण–खार–परिसित्त–गाढडज्झंतगत्ता कुंतग्ग–भिण्ण–जज्जरिय–सव्वदेहा विलोलंति महीतले विसूणियंगमंगा।

३१. (नरकभव के स्वभाव से ही नारक जीव आपस में एक–दूसरे के प्रति उग्र वैर–भाव वाले होते हैं। अतएव) वे अशुभ वैक्रियलब्धि से निर्मित इन सैंकड़ों शस्त्रों से परस्पर–एक–दूसरे को वेदना उत्पन्न करते हैं।

[प्र.] वे विविध प्रकार के आयुध–शस्त्र कौन–कौन से हैं ?

[उ.] वे शस्त्र ये हैं–मुद्गर, मुसुंढि, करवत, शक्ति, हल, गदा, मूसल, चक्र, कुन्त (भाला), तोमर (बाण का एक प्रकार), शूल, लकुट (लाठी), भिंडिमाल, सद्धल (एक विशेष प्रकार का भाला), **पट्टिस**–शस्त्र विशेष, चम्मेट्ठ (चमड़े से मढ़ा पाषाण विशेष–गोफण), **द्रुघण**–वृक्षों को भी गिरा देने वाला शस्त्र विशेष, **मौष्टिक**–मुष्टि प्रमाण पाषाण, **असि**–तलवार अथवा **असिखेटक**–तलवार सहित फलक, खड्ग, धनुष, **नाराच**–बाण, **कनक**–एक प्रकार का बाण, **कप्पिणी**–कर्त्तिका–कैंची, **वसूला**–लकड़ी छीलने का औजार, परशु–फरसा और छैनी। ये सभी अस्त्र–शस्त्र तीक्ष्ण और शाण पर चढ़े जैसे चमकदार होते हैं। इनसे तथा इसी प्रकार के अन्य शस्त्रों से भी (नारक परस्पर एक–दूसरे पर प्रहार कर) वेदना की उदीरणा करते हैं।

मुद्गर के प्रहारों से उन नारकों का शरीर चूर–चूर कर दिया जाता है, मुसुंढी से टुकड़े–टुकड़े कर दिया जाता है, मथ दिया जाता है, कोल्हू आदि यंत्रों से पेरने के कारण फड़फड़ाते हुए उनके शरीर के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टुकड़े–टुकड़े कर निचोड़ दिये जाते हैं। कइयों को चमड़ी सहित विकृत कर दिया जाता है, कान, ओठ, नाक और हाथ–पैर समूल काट लिए जाते हैं, तलवार, करवत, तीखे भाले एवं फरसे से फाड़ दिये जाते हैं, वसूला से काठ की तरह छीला जाता है, उनके शरीर पर उबलता खारा जल सींचा जाता है, जिससे शरीर जल जाता है, फिर भालों की नोंक से उसको छिन्न–भिन्न किया जाता है, इस प्रकार उनके समग्र शरीर को जर्जरित कर दिया जाता है। उनका शरीर सूज जाता है और वे पृथ्वी पर लोटने लगते हैं।

31. By nature the hellish beings are minical towards each other. So they cause pain to each other with hundreds of weapons created with bad fluid power.

[Q.] What are these various types of weapons ?

[Ans.] Those weapons are dumble (mudgar), musundhi, karawat, shakti, plough, gada, moosal, wheel, spear, tomar (a kind of arrow), shool, stick, bhindimal, sadhal (a special type of spear), pattis, chammeth (a stony weapon mounted with leather), duhan (a weapon that can fell trees), mutthiya (a weapon of fist size), asikhedak (a sword with a blade), sword (khadag), bow, arrow, kanak (a type of arrow), kappini (scissor), vaasi (a weapon used to peel the wood), parasu. All these weapons were shining bright. The hellish beings attack and tear the body of each other with these weapons and with other weapons of similar type.

The body of the hellish beings is reduced to particles by striking with mudgar. It is reduced to pieces with musundhi. It is trampled. It is crushed in the oil crusher. Some of them are deformed. Their ears, lips, nose, hand and feet are chopped off totally. Their body is sprinkled with boiling salty water, which burns their body. Later with the sharp pointed edge of the spear they are torn. Thus the entire body is in tatters. Their body becomes swollen and they start moving on the earth in a bemoaning state.

विवेचन : जैसा पहले बताया है–नरकभूमियों में मुख्यतः तीन प्रकार से घोर वेदना होती है–(१) क्षेत्रजनित वेदना, (२) नरकपालों द्वारा पहुँचाई जाने वाली वेदना, और (३) परस्पर नारकों द्वारा उत्पन्न की हुई वेदना। क्षेत्रजनित वेदना नरकभूमियों के निमित्त से होती है, जैसे अतिशय उष्णता और अतिशय शीतलता आदि। इस प्रकार की वेदना का उल्लेख सूत्र २३–२४ में किया जा चुका है। नरकभूमियों में ऊपर की भूमियों में उष्णता का भयानकतम दुःख है तो नीचे की भूमियों में शीत का वचनातीत प्रकोप है। उष्णता वाली नरकभूमियों को धधकते लाल–लाल अंगारों की उपमा या अतिशय प्रदीप्त–जाज्वल्यमान पृथ्वी की उपमा दी गई है। यह उपमा मात्र समझाने के लिए है। वहाँ की उष्णता तो इनसे अनेकानेक गुणी है। वहाँ की गर्मी इतनी तीव्रतम होती है कि मेरु के बराबर का लोहपिण्ड भी उसमें गल सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन नरकभूमियों में शीत वेदना है, वहाँ की शीतलता भी असाधारण है। शीत-प्रधान नरकभूमि में से यदि किसी नारक को लाकर यहाँ बर्फ पर लिटा दिया जाये, ऊपर से बर्फ ढक दिया जाये और पार्श्व भागों में भी बर्फ रख दिया जाये तो उसे बहुत राहत का अनुभव होगा। वह ऐसी विश्रान्ति का अनुभव करेगा कि उसे निद्रा आ जायेगी। इससे वहाँ की शीतलता की थोड़ी -बहुत कल्पना की जा सकती है।

इसी प्रकार की क्षेत्रजनित अन्य वेदनाएँ भी वहाँ असामान्य उत्कट होती हैं, जिनका उल्लेख पूर्व में किया गया है।

परमाधार्मिक देवों द्वारा दिये जाने वाले घोर कष्टों का कथन भी सूत्र २५-३० में किया गया है। ज्यों ही कोई पापी जीव नरक में उत्पन्न होता है, ये असुर उसे नाना प्रकार की यातनाएँ देने के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं और जब तक नारक जीव अपनी लम्बी आयु पूरी नहीं कर लेता तब तक वे निरन्तर उसे सताते ही रहते हैं। किन्तु परमाधामियों द्वारा दी जाने वाली वेदना तीसरे नरक तक ही होती है, क्योंकि ये तीसरे नरक से आगे नहीं जाते। चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें नरक में दो निमित्तों से ही वेदना होती है-भूमिजनित और परस्परजनित। जिसका कथन सूत्र ३१-३२ में किया गया है।

नारकों को भव के निमित्त से वैक्रियलब्धि प्राप्त होती है। किन्तु वह लब्धि स्वयं उनके लिए और साथ ही अन्य नारकों के लिए यातना का ही कारण बनती है। वैक्रियलब्धि से दुःखों से बचने के लिए वे जो शरीर निर्मित करते हैं, उससे उन्हें अधिक दुःख की ही प्राप्ति होती है। भला सोचते हैं, पर बुरा होता है। इसके अतिरिक्त जैसे यहाँ श्वान एक-दूसरे को सहन नहीं करता, एक-दूसरे को देखते ही गुर्राता है, झपटता है, आक्रमण करता है, काटता-नोंचता है; उसी प्रकार नारक एक-दूसरे को देखते ही उस पर आक्रमण करते हैं, विविध प्रकार के शस्त्रों से-जो वैक्रियशक्ति से बने होते हैं-हमला करते हैं। शरीर का छेदन-भेदन करते हैं। अंगोपांगों को काट डालते हैं। इतना त्रास देते हैं जो हमारी कल्पना से भी बाहर है। यह वेदना सभी नरकभूमियों में भोगनी पड़ती है।

नरकों का वर्णन जानने के लिए जिज्ञासु जनों को सूत्रकृतांगसूत्र के प्रथम श्रुत स्कंध का 'नरक-विभक्ति' नामक पंचम अध्ययन तथा बृहत्संग्रहणी ग्रन्थ का नरक द्वार भी देखना चाहिए।

Elaboration—It has been mentioned earlier, there are three types of troubles in the hells—(1) The trouble caused by the nature of the ground, (2) The troubles caused by demon gods, (3) The troubles caused by the hellish beings mutually. The trouble caused by the area is due to the nature of its land as it is either extremely hot or extremely cold. Such trouble has been narrated in aphorisms 23 and 24. In the hells of upper region, there is dreadful trouble due to burning heat while in the hells of the lower region; there is trouble due to icy cold land. The heat of the hell is comparable with burning embers or dreadfully burning earth. This comparison is made only to make one understand the heat there. In fact the heat in such hells is many times more than the heat of such embers or fire. The heat is so severe that it is capable of melting an iron ball of the size of Meru mountain.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The hells, which experience cold, also have extraordinary cold. In case any hellish being is taken out from such a hell and laid down on a slab of ice and then covered with ice from all sides, even then he feels some relief. He shall feel such a relief that he will soon go to sleep. From this example, the cold nature of such a hell can be comprehended to a certain extent.

The other troubles caused by nature of the hellish area are also highly dreadful and they have already been mentioned earlier.

The troubles caused by demon gods have been mentioned in aphorisms 25 to 30. Immediately when a living being, who had done sin in earlier life, takes birth in hell, the demon gods become ready to cause tortures of various types. They go on troubling him till he completes his entire long life-span in hell. This torture exists only upto the third hell because the demon gods do not go beyond the third hell. In the fourth, fifth, sixth and the seventh hell there are two types of troubles—the trouble due to the nature of the area and the trouble caused by hellish beings mutually to each other. Such troubles have been mentioned in aphorisms 31 and 32.

A hellish being possesses the fluid power right from birth but this trait becomes the cause of trouble for him and for other hellish beings. The hellish beings in order to protect themselves from the impending troubles transform their body with fluid power but this transformation becomes the cause of greater trouble. They plan for their welfare but it becomes otherwise. Further just as a dog cannot tolerate presence of another dog and jumps at it, attacks it, bites it similarly a hellish beings attacks the other hellish beings with the weapons created by their fluid power. They pierce their body, cut their limbs and cause such a torture that cannot even be thought of. Such a torture has to be endured in all the hells.

In order to know the painful condition of hell, the reader should study the fifth chapter 'Narak Vibhakti' of the first volume of Sutrakritanga. He should also go though 'Narak Dwaar' in 'Brihat-sangrahni'.

३२. तत्थ य विग–सुणग–सियाल–काक–मज्जार–सरभ–दीविय–वियग्घग–सद्दूल–सीह–दप्पिय–खुहाभिभूएहिं णिच्चकालमणसिएहिं घोरा रसमाण–भीमरूवेहिं अक्कमित्ता दढदाढागाढ–डक्क–कड्ढिय–सुतिक्ख–णह–फालिय–उद्धदेहा विच्छिप्पंते समंतओ विमुक्कसंधिबंधणा वियंगियंगमंगा कंक–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुरर–गिद्ध–घोर–कट्ठवायसगणेहि य पुणो खरथिर–दढणक्ख–लोहतुंडेहिं उवइत्ता पक्खाहय–तिक्ख–णक्ख–विक्किण्ण–जिब्भंछिय–णयणणिद्दओलुग्गविगय–वयणा उक्कोसंता य उप्पयंता णिप्पयंता भमंता।

३२. नरक में मानों बहुत दिनों की भूख से पीड़ित हो, जिन्हें कभी भोजन न मिला हो, ऐसे भयावह, भयंकर रूप वाले मदोन्मत्त भेड़िये, शिकारी कुत्ते, गीदड़, कौवे, बिलाव, अष्टापद, चीते, बाघ, केसरी शेर और सिंह घोर गर्जना करते हुए उन नारकों पर टूट पड़ते हैं, अपनी मजबूत दाढ़ों से नारकों के शरीर को काटते हैं, खींचते हैं, अत्यन्त पैने नुकीले नाखूनों से फाड़ते हैं और फिर इधर–उधर चारों ओर फेंक देते हैं, जिससे उनके शरीर के जोड़ ढीले पड़ जाते हैं। उनके अंगोपांग विकृत और पृथक् हो जाते हैं। तत्पश्चात् दृढ़ एवं तीक्ष्ण दाढ़ों, नखों और लोहे के समान नुकीली चोंच वाले कंक, टिटहरी और गिद्ध आदि पक्षी तथा घोर कष्ट देने वाले काक पक्षियों के झुण्ड अपनी कठोर, दृढ़ तथा स्थिर लोहमय चोंचों से (उन नारकों के ऊपर) झपट पड़ते हैं, उन्हें अपने पंखों से घायल कर देते हैं, तीखे नाखूनों से उनकी जीभ बाहर खींच लेते हैं और आँखें बाहर निकाल लेते हैं। निर्दयतापूर्वक उनके मुख को नोंच–नोंचकर कुरेदते हैं। इस प्रकार की यातना से पीड़ित वे नारक जीव जोर–जोर से रुदन करते हैं, कभी ऊपर उछलते हैं और फिर नीचे आ गिरते हैं, इधर–उधर चक्कर काटते हैं।

32. In the hell, the ferocious, dreadful starving, intoxicated wolves, hounds, jackals, crows, cats, ashtapad, leopards, tigers, lions attack the hellish beings with a roaring sound. They pierce their body with their strong molars, pull them and tear them with their sharp nails. Later they throw their pieces hither and thither and thus loosen the joints in their body. Their limbs become deformed and get separated. Later kank, titehri and vultures and swarm of kaak birds rush towards them with their strong sharp molars, nails, iron like pointed beaks; they injure them with their wings. They take out their tongues with their sharp nails and also extract their eyes. They cruelly bite their faces. The hellish beings weep loudly, jump hither and thither or move about in pain due to such troubles.

विवेचन : वस्तुतः नरक में भेड़िया, बिलाव, सिंह, व्याघ्र आदि तिर्यंच चतुष्पद नहीं होते, किन्तु नरकपाल ही नारकों को त्रास देने के लिए अपनी वैक्रियशक्ति से भेड़िया आदि का रूप बना लेते हैं। नारकों की इस करुणाजनक पीड़ा एवं भयानक यातनाओं का शास्त्रकार ने प्रत्यक्ष देखा वर्णन किया है। इसका एक मात्र प्रयोजन यही है कि मनुष्य हिंसारूप दुष्कर्म से बचे और उसके फलस्वरूप होने वाली यातनाओं का भाजन न बने।

प्रस्तुत सूत्र में **उक्कोसंता, य उप्पयंता णिप्पयंता भमंता**–पाठ से सूचित किया है कि वे ऊँचे उठते हैं। ग्रन्थकारों ने बताया है–जिस नारक के शरीर की जितनी ऊँचाई होती है, वह उतना ही ऊँचा उठता है। जैसे सातवीं नरक के नारकों की उत्कृष्ट ऊँचाई ५०० धनुष, छठी की २५० धनुष यों क्रमशः घटती हुई प्रथम नरक के नारक जीवों की उत्कृष्ट ऊँचाई ७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकगति में हिंसा के कुफलों का वर्णन करने के पश्चात् अगले सूत्र में तिर्यंच आदि गतियों के हिंसा के कटुफलरूप यातनाओं का वर्णन करते हैं।

Elaboration—In fact there are no wolves, cats, lions, tigers or other quadruped beasts in the hell but the demon gods with their fluid power transform themselves into such shapes of wolves and the like. The author has given an eye-witness account of such merciless and ferocious troubles and tortures. The purpose of this description is that human beings should avoid bad deeds so that they may not have to suffer such tortures as a result thereof.

In the present aphorism, the words ukkosanta or uppayanta, nippayanta, bhamanta indicate that the hellish beings jump upwards. It is mentioned in the scriptures that a hellish being can jump only upto the size of his body. For instance the maximum height of a hellish beings in the seventh hell is 500 dhanush (a measure), in sixth hell it is 250 dhanush and thus becoming half respectively in secondary hells, it is just 7 dhanush 3 haath and 6 finger-thickness in the first hell.

In the succeeding aphorism, the evil consequences of violence faced in the hellish state of existence have been mentioned, the troubles faced in other states of existence such as animal state and others have been described.

नारकों की मरने के बाद की गति THE SUCCEEDING LIFE OF HELLISH BEINGS AFTER DEATH

३३. पुव्वकम्मोदयोवगया, पच्छाणुसएण डज्झमाणा णिंदंता पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं तहिं तहिं तारिसाणि ओसण्णचिक्कणाइं दुक्खाइं अणुभवित्ता तओ य आउक्खएणं उव्वट्टिया समाणा बहवे गच्छंति तिरियवसहिं।

दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्मण–मरण–जरा–वाहि–परियट्टणारहट्टं जल–थल–खहयर–परोप्पर–विहिंसण–पवंचं इमं च जगपागडं वरागा दुक्खं पावेंति दीहकालं।

३३. पूर्वजन्म में उपार्जित पापकर्मों के अधीन हुए, पश्चात्ताप (की आग) से जलते हुए, अमुक–अमुक स्थानों में, उस–उस प्रकार के पूर्वकृत कर्मों की निन्दा करते हुए, अत्यन्त चिकने–बहुत कठिनाई से छूट सकने वाले–निकाचित दुःखों को भुगतकर, तत्पश्चात् नारकीय आयु का क्षय होने पर नरकभूमियों में से निकलकर बहुत–से जीव तिर्यंचयोनि में उत्पन्न होते हैं।

किन्तु उनकी वह तिर्यंचयोनि भी अतिशय दुःखों से परिपूर्ण होती है अथवा अत्यन्त कठिनाई से पूरी की जाने वाली होती है, दारुण कष्टों वाली होती है, जन्म–मरण–जरा का अरहट उसमें घूमता रहता है। उसमें जलचर, स्थलचर और खेचर जीवों के पारस्परिक घात–प्रत्याघात का प्रपंच या दुष्चक्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चलता ही रहता है। तिर्यंचगति के दुःख जगत् में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। नरक से किसी भी भाँति निकले और तिर्यंचयोनि में जन्मे वे पापी जीव बेचारे दीर्घकाल तक इन दुःखों को प्राप्त करते हैं।

33. As a result of sinful deeds of earlier life, the hellish beings repenting bitterly and discarding their deeds of past lives, facing severe troubles and the effect of adverse Karma, which could be removed only after going through their consequences, most of them take birth in animal state of existence after completing their life in hell.

But their life as creatures in animal state of existence is extremely full of troubles. It has to be completed with great odds. They go on passing through pangs of birth, old age and death. The living beings in water, land and sky go on attacking and counter-attacking each other. The troubles of animal life are quite evident in the world. The poor creatures some how completed the span of life in hell and now for a long time they bear the pangs of animal life.

विवेचन : नारक जीव नरकायु पूर्ण होने पर ही नरक से निकलते हैं। उनका मरण 'उद्वर्त्तन' कहलाता है। पूर्व में बतलाया जा चुका है कि नारकों का आयुष्य निरुपक्रम होता है। विष, शस्त्र आदि के प्रयोग से उनकी अकालमृत्यु नहीं होती। जब नरक का आयुष्य पूर्ण रूप से भोगकर क्षीण कर दिया जाता है, तभी नारक नरकयोनि से छुटकारा पाता है।

मानव किसी कषाय आदि के आवेश से जब आविष्ट होता है तब उसमें एक प्रकार का उन्माद जागृत होता है। वह आविष्ट अवस्था में अकरणीय कार्य कर बैठता है। आन्तरिक दुर्भाव के कारण प्रगाढ़-चिकने-निकाचित कर्मों का बन्ध होता है। बँधे हुए कर्म जब अपना फल प्रदान करने के उन्मुख होते हैं-अबाधाकाल पूर्ण होने पर फल देना प्रारम्भ करते हैं तो भयंकर से भंयकर यातनाएँ उसे भोगनी पड़ती हैं।

प्रत्येक नारक जीव को भव-प्रत्ययिक अर्थात् नारक भव के निमित्त से उत्पन्न होने वाला अवधिज्ञान होता है। उस अवधिज्ञान से नारक अपने पूर्वभव में किए घोर पापों के लिए पश्चात्ताप करते हैं। किन्तु उस पश्चात्ताप से भी उनका छुटकारा नहीं होता। हाँ, नारकों में यदि कोई सम्यग्दृष्टि जीव हो तो वह कर्मफल की अनिवार्यता समझकर नारकीय यातनाएँ समभाव से सहन करता है और अपने समभाव के कारण दुःखानुभूति को किंचित् हल्का बना सकता है। मगर मिथ्यादृष्टि तो दुःखों की आग के साथ-साथ पश्चात्ताप की आग में जलते हुये अपने पूर्व आचरित पापकर्मों की निंदा करने लगते हैं कि मैंने ऐसा क्यों किया?

नारक जीव पुनः तदनन्तर भव में नरक में उत्पन्न नहीं होता। वह तिर्यंच अथवा मनुष्यगति में ही जन्म लेता है। तिर्यंचयोनि, नरकयोनि के समान एकान्त दुःखमय नहीं है। उसमें दुःखों की बहुलता के साथ किंचित् सुख भी होता है। कोई-कोई तिर्यंच तो पर्याप्त सुख की मात्रा का अनुभव करते हैं, जैसे राजा-महाराजाओं के हस्ती, अश्व अथवा समृद्ध जनों द्वारा पाले हुए कुत्ता आदि।

नरक से निकले हुए और तिर्यंचगति में जन्मे हुए घोर पापियों को सुख-सुविधापूर्ण तिर्यंचगति की प्राप्ति नहीं होती। नारक जीव नरक से निकलकर दुःखमय तिर्यंचयोनि में जन्म लेते हैं। वहाँ उन्हें विविध प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—The hellish beings come out from the hellish state of existence after completing their destined life-span there. Their death in hell is called udavartan. It has been mentioned earlier that the life-span of hellish beings is nirupakram. They cannot die earlier by poison or weapon injury. They can leave hell only after passing there span in full there.

When a man is in a fit of any passion, a sort of intoxication appears in him. In that condition he performs such activities, which are not worthy of him. Due to his inner thought activity he collects very harsh Karmas. When after the period of subsidence, the said Karmas start ripening of deliver their consequences, he has to suffer dreadful pain and tortures.

Every hellish being has transcendental knowledge (avadhi jnana) since his birth. Then seeing vividly the evil activities committed by him in the past life, he repents for those sins. But even after repentance, they are not let off. Of course, if there is any hellish being among them who has right perception, he patiently bears his pain and so his karmic burden becomes lighter to a certain extent. But those with wrong faith (or perception) suffer miserably due to pain, repenting simultaneously for their misdeeds of earlier life.

A hellish being does not take birth as hellish being immediately after his current life-span. He takes birth either in animal state of existence or as human being. The animal state of existence is not totally full of troubles as is the hell. There are many troubles in it but there is a little happiness also. Some animal beings experience sufficient happiness, for instance the elephant or horse of the king. The dog brought up by a nobleman.

Those living beings who come out from the hell and take birth in animal state of existence, they do not get such an animal existence which may be full of comforts and happiness. They take birth only in wretched animal state full of miseries. They have to undergo many troubles there.

तिर्यंच पंचेन्द्रिय योनि के दुःख **THE TROUBLE OF ANIMAL STATE**

३४. [प्र.] किं ते ?

[उ.] सीउण्ह–तण्हा–खुह–वेयण–अप्पईकार–अडवि–जम्मणणिच्च–भउव्विग्गवास–जग्गण–वह–बंधण–ताडण–अंकण–णिवायण–अट्ठिभंजण–णासाभेय–प्पहारदूमण–छविच्छेयण–अभिओग–पावण–कसंकुसारणिवाय–दमणाणि–वाहणाणि य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. [प्र.] वे तिर्यंचयोनि के दुःख कैसे हैं ?

[उ.] सर्दी, गर्मी, प्यास, भूख, वेदना का प्रतीकार करने की क्षमता का अभाव, घोर जंगल में जन्म लेना, निरन्तर भय से घबड़ाते रहना, जागते रहना, मारपीट सहना, बाँधा जाना, ताड़न, दागना–लोहे की शलाका, चीमटा आदि को गर्म करके निशान बनाना–डामना, गड्ढे आदि में गिराना, हड्डियाँ तोड़ देना, नाक छेदना, चाबुक, लकड़ी आदि के प्रहार सहन करना, संताप सहना, **छविच्छेदन**–अंगोपांगों का छेदन जबर्दस्ती भारवहन आदि कामों में लगना, **कोड़ा**–चाबुक, अंकुश एवं डण्डे के अग्र भाग में लगी हुई नोंकदार कील आदि से दमन किया जाना, भार वहन करना आदि–आदि।

34. [Q.] What are the sorrows of animal state of existence ?

[Ans.] They are not capable of safeguarding themselves from cold, hot, thirst, hunger and pain. They take birth in dense forest. They continuously remain in a frightened sleepless state. They have to suffer beating. They are tied, lashed, branded with hot iron rod, marked with hot pair of tongs. They are thrown in a pit. Their bones are broken. Their nose is pierced. They have to bear the blows of lashes and sticks. They are oppressed with the sharp nail fixed on a stick. They are used to carry heavy load and the like.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित दुःख प्रायः पंचेन्द्रिय तिर्यंचों सम्बन्धी हैं। तिर्यंचों में कोई पंचेन्द्रिय होते हैं, कोई चार, तीन, दो या एक इन्द्रिय वाले होते हैं। चतुरिन्द्रिय आदि के दुःखों का वर्णन आगे किया जायेगा।

मनुष्य में बुद्धि एवं विवेक होता है, वह सर्दी–गर्मी से अपना बचाव करने के लिए अनेकानेक उपाय करने में समर्थ है, तिर्यंचों में विवेक–बुद्धि का अभाव होता है। अज्ञान व मूढ़ता के कारण तथा वाणी से स्पष्ट बता भी नहीं सकते, उन्हें विवश होकर सर्दी–गर्मी आदि अनेकानेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

भूख–प्यास की पीड़ा होने पर वे उसे असहाय होकर सहते हैं। कभी–कभी पापी हिंसक उन्हें पकड़कर कत्ल करके उनके माँस एवं अस्थियों को बेच देते हैं।

कतिपय पालतू पशुओं को छोड़कर तिर्यंचों की वेदना का प्रतिकार (चिकित्सा) करने वाला कौन है ?

तिर्यंचों में जो जन्मजात वैर वाले अनेक जीव हैं, उन्हें परस्पर एक–दूसरे से निरन्तर भय बना रहता है, शशक, हिरण आदि शिकारियों के भय से ग्रस्त रहते हैं और पक्षी व्याधों (शिकारियों)–बहेलियों के डर से घबराते हैं। इसी प्रकार अशरण एवं साधनहीन होने के कारण सभी पशु–पक्षी निरन्तर भयग्रस्त बने रहते हैं।

इसी प्रकार अन्य पीड़ाएँ भी उन्हें चुपचाप पराधीन होकर सहनी पड़ती हैं। स्पष्ट वाणी का अभाव होने के कारण वे अपनी वेदना व्यक्त नहीं कर सकते।

कुछ माँसभक्षी और मिथ्यादृष्टि पापी जीव पशु–पक्षियों का अत्यन्त निर्दयतापूर्वक वध करते हैं। बेचारे पशु तड़फते हुए चीत्कारें करते हुए मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। कुछ अधम मनुष्य तो माँस–विक्रय का धंधा ही चलाते हैं। कुछ अत्यन्त क्रूर धनलोभी मानव उद्योग के रूप में प्रतिदिन लाखों जीवों की निर्मम हत्या करवाते हैं। इस प्रकार तिर्यंचों की वेदना भी अत्यन्त दुसह और भयावह होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 3

Illustration No. 3

पंचेन्द्रिय से ऐकेन्द्रिय गतियों में हिंसा के कुफल

यहाँ मनुष्य भव से लेकर ऐकेन्द्रिय जीवों तक के दुःखों का वर्णन किया गया है। हिंसा के फलस्वरूप उन्हें विभिन्न योनियों में कितने दारुण कष्ट सहने पड़ते हैं।

(1) **तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दुःख**—तिर्यंच योनि के जीव अपना दुःख, वेदना बोलकर नहीं बता सकते। उन पर भारी बोझ लादा जाता है। नाक-मुँह का छेदन-भेदन किया जाता है। पक्षियों को पिंजरे में बन्द कर दिया जाता है। कुछ जीवों को तो प्रयोगशालाओं में जागृत अवस्था में ही काटकर उनके शरीर के अन्दर की आँते, हृदय, यकृत आदि निकाल लिये जाते हैं। इस प्रकार तिर्यंच योनि में मिलने वाली वेदनायें भी अत्यन्त दुस्सह और भयानक होती हैं। *—सूत्र 34-36, पृ. 59*

(2) **चौरेन्द्रिय से बेइन्द्रिय जीवों के दुःख**—उपरोक्त पंचेन्द्रिय जीवों की तरह चौरेन्द्रिय से बेइन्द्रिय जीव भी अपने-अपने कुल कोटियों में जन्म लेकर अपने पूर्वकृत पाप कर्मों की अनेकों प्रकार की वेदनायें पाते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं। *—सूत्र 37-39, पृ. 63*

(3) **ऐकेन्द्रिय जीवों के दुःख**—पृथ्वीकाय में उत्पन्न जीवों को कुदाल व हल से विदारण किया जाता है। तेउकाय और वायुकाय में जीवों का स्वकाय और परकाय रूप विविध शस्त्रों से हनन किया जाता है। अप्काय जीवों का जल के प्रवाह को रोककर रुंधन किया जाता है, जल का मंथन किया जाता है। पेड़ आदि वनस्पति को काटा जाता है। इस प्रकार अनेक ऐकेन्द्रिय जीव अपने दुष्कर्मों के उदय से प्राप्त होने वाले दुःख भोगते हैं। *—सूत्र 40, पृ. 66*

(4) **मनुष्य भव के दुःख**—हिंसा करने वाले जीव नरक योनि में घोर दुःख पाकर वहाँ से निकलते हैं और तिर्यंच योनि में होकर फिर मनुष्य बनते हैं। वे प्रायः विकृत शरीर, विकलांगी, कूबड़े, वामन, बहरे, गूँगे, काने, अन्धे, टूटे हाथ और लंगड़ी टाँग वाले होते हैं। कई कुष्टादि व्याधि और ज्वरादि रोग से पीड़ित होते हैं। कोई शस्त्र-प्रहार से वध किये जाते हैं। कई दुर्बल, दीन, हीन एवं शक्तिरहित होते हैं। *—सूत्र 42, पृ. 70*

नोट—पिछले पृष्ठ पर जीवों की वेदनाओं के कुछ उदाहरण दिये गये हैं। इसके अलावा भी वे अनेकों प्रकार से वेदनायें भोगते हैं।

ILL FRUITS OF VIOLENCE IN FIVE TO ONE-SENSED BEINGS

The miseries of living beings from humans to one-sensed beings have been described here. How acute is the pain they have to suffer in different forms of life is detailed here.

(1) Miseries of human life – After suffering great pain in hell the living beings indulging in violence leave the hell and reincarnate as humans after getting born once as animals. They are generally with deformed and disabled bodies, or hunchbacked, dwarfs, deaf and dumb, one-eyed or blind, or with damaged limbs. Many of them suffer from leprosy, fever or other diseases. Some are killed with weapons. Many are weak, destitute, lowly and deprived. ***— Sutra-23-25, page-37***

(2) Miseries of five sensed animals – Living beings of animal class cannot express their sorrow and pain by speaking. They are burdened with heavy load. Their nose and mouth are pierced. Birds are trapped in cages. Some animals are even cut and body parts including intestines, heart and lever are removed without using anesthesia. Thus the pain suffered as animal is also terrible and intolerable. ***— Sutra-34-36, page-59***

(3) **Miseries of four to two sensed beings** – Like the five sensed animals the four to two-sensed living beings also suffer the fruits of their karmas acquired due to sinful activities of the past when born in their respective categories. They suffer numerous types of torments and die. ***— Sutra-37-39, page-63***

(4) Miseries of one-sensed beings – Earth-bodied beings are crushed with axe and plough. Fire-bodied and air-bodied beings are killed with weapons made of their own class as well as others. Water-bodied beings are killed by blocking the flow of water as well as by agitating water. Trees and other plant-bodied beings are cut and destroyed in different ways. Thus one-sensed beings suffer miseries due to their acquired karmas. ***— Sutra-40, page-66***

Note: Preceding pages contain only a few examples of the miseries of living beings. Besides these, there are many more.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—The miseries mentioned in this aphorism are mostly related to five sensed animals. There are also many four, three, two or one sensed beings. Their miseries will be discussed later.

Human beings have intelligence and commonsense. They are capable of protecting themselves from heat or cold by employing various means. But animals are devoid of this ability. They have to suffer many such miseries due to the lack of intelligence and absense of the faculty of speech.

When they feel pangs of hunger or thirst, they helplessly endure it. Sometimes violent parsons catch them, kill them and sell their meat and bones.

Except some domesticated animals, there is no one to provide medical care to reduce the pain of animals.

There are many living beings in the animal state who are by birth inimical to others. They remain continuously in a sense of fear from others. Rabbits, deer and the like are afraid of hunters. Birds are afraid of bird catchers and hunters. Thus animals in a protectionless state always feel frightened.

In the same manner, they have to patiently bear other troubles in a state of slavery. They cannot clearly express their pain as they do not have the ability of distinct expression.

Some violent people who take meat and who have wrong perception kill birds and animals in an extremely brutal manner. Animals die while crying because of dreadful suffering. Some low-class people deal in meat. Some persons who are extremely greedy run such an industry wherein millions of animals are mercilessly killed daily. Thus the suffering of animals in extremely unbearable and frightening.

३५. मायापिइ–विप्पओग–सोय–परिपीलणाणि य सत्थग्गि–विसाभिघाय–गल–गवलावलण–मारणाणि य गलजालुच्छिप्पणाणि य पउलण विकप्पणाणि य जावज्जीविगबंधणाणि य, पंजरणिरोहणाणि य सयूहणिग्घाडणाणि य धमणाणि य दोहिणाणि य कुदंडगलबंधणाणि य वाडगपरिवारणाणि य पंकजलणिमज्जणाणि य वारिप्पवेसणाणि य ओवायणिभंग–विसमणिवडणदवग्गिजालदहणाई य।

३६. एयं ते दुक्ख–सय–संपलित्ता णरगाओ आगया इहं सावसेसकम्मा तिरिक्ख–पंचिंदिएसु पाविंति पावकारी कम्माणि पमाय–राग–दोस–बहुसंचियाइं अईव अस्साय–कक्कसाइं।

३५. (पूर्वोक्त दुःखों के अतिरिक्त तिर्यंचगति में) इन दुःखों को भी सहन करना पड़ता है–माता–पिता का वियोग, शोक से अत्यन्त पीड़ित होना या नासिका आदि श्रोतों–नथुनों आदि के छेदन से पीड़ित होना, शस्त्रों से, अग्नि से और विष से आघात पहुँचना, गले एवं सींगों का मोड़ा जाना, मारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाना, मछली आदि को गल–काँटे में या जाल में फँसाकर जल से बाहर निकालना, आग पर भूनना, छुरी आदि से काटा जाना, जीवन पर्यन्त बन्धन में बँधे रहना, पिंजरे में बन्द रहना, अपने टोले से पृथक् किया जाना, भैंस आदि को फूँका लगाना अर्थात् ऊपर में वायु भर देना (या इंजेक्शन आदि लगाना) और फिर उसे दुहना–जिससे दूध अधिक निकले, गले में डण्डा बाँध देना, जिससे वह भाग न सके, बाड़े में घेरकर रखना, कीचड़–भरे पानी में डुबोना, जल में घुसेड़ना, गड्ढे में गिरने से अंग–भंग हो जाना, पहाड़ के विषम–ऊँचे–नीचे–ऊबड़–खाबड़ मार्ग में गिर पड़ना, दावानल की ज्वालाओं में जलना या जल मरना; आदि–आदि अगणित कष्टों से परिपूर्ण तिर्यंचगति में हिंसाकारी पापी जीव नरक से निकलकर उत्पन्न होते हैं।

३६. इस प्रकार वे हिंसा का पाप करने वाले पापी जीव सैकड़ों पीड़ाओं से पीड़ित होकर, नरकगति से आये हुए, घोर प्रमाद, तीव्र राग और तीव्र द्वेष के कारण बहुत संचित किए और नरकगति में भोगने से शेष रहे कर्मों को भोगने के लिए अत्यन्त कर्कश असाता को उत्पन्न करने वाले कर्मों से उत्पन्न दुःखों को पाते हैं।

35. In addition to the above mentioned sufferings of animal life they have to suffer other pains also. They suffer separation from their parents. They remain in extreme agony due to sadness. They bear pain when their nose and the like are pierced. They are troubled by weapons, through fire and poison. Their necks and the horns are bent. They are killed. Fish and the like are caught in the net and then taken out from water. They are parched on the fire. They are cut with a sharp knife. They are kept in control throughout their life. They are put in cages. They are separated from their group. Buffalo and the like are administered injection and then milked so that one may get more milk. A stick is tied on the neck. They are dropped in muddy water. They are pushed forcibly in water. There limbs get disjointed when they fall in a ditch. They are forced into an enclosure so that they may not run away. They fall on the undulating hilly path. They are burnt in deadly fire. Those who have committed sin take birth in such an animal state of existence, which is full of innumerable troubles.

36. Thus the violent human beings who had committed sinful activities suffer hundreds of tortures in hell and then suffer the fruits of remaining bad Karmas collected by them through slackness, extreme attachment and intense hatred. They undergo extreme painful condition as a result of their evil deeds.

विवेचन : पिछले सूत्र में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को होने वाली यातनाओं का उल्लेख किया था। प्रस्तुत सूत्र में नारकीय जीवों की तिर्यंचगति में उत्पत्ति के कारण का निर्देश किया गया है। पहला कारण है कर्मों का शेष रहना। इतने कर्म भोगने के बाद भी कर्म शेष क्यों रहते हैं। इसका दूसरा कारण बताया है– **'पमाय–राग–दोस**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुसंचियाइं' अर्थात् घोर प्रमाद, राग और द्वेष के कारण पापकर्मों का बहुत संचय किया गया था। संचित कर्म ज़ब अधिक होते हैं और उनकी स्थिति भी आयुकर्म की स्थिति से अत्यधिक होती है तब उसे भोगने के लिए पापी जीवों को तिर्यंचयोनि में उत्पन्न होना पड़ता है। नारक जीव नरक से निकलकर सर्वप्रथम तिर्यंच पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं; अतएव यहाँ पंचेन्द्रिय जीवों-तिर्यंचों के दुःख का वर्णन किया गया है। तिर्यंच पंचेन्द्रियों की ५३।। लाख कुल कोटियों में परिभ्रमण करता हुआ पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच मरकर फिर चतुरिन्द्रिय आदि तिर्यंचों में भी उत्पन्न हो सकता है। अतएव आगे चतुरिन्द्रिय आदि तिर्यंचों के दुःखों का भी वर्णन किया जायेगा।

Elaboration—The miseries of five sensed animals have been mentiioned in the preceding aphorism. In this aphorism two causes of rebirth of infernal beings as animals have been stated. First is the residual karmas and the second is excessive acquisition of karmas due to intense stupor, attachment and aversion. When the accumulated karmas are excessive and they outlive the life span, the soul has to be reborn in the animal genes to suffer the fruits. Leaving the hells, the infernal beings first of all reincarnate as five sensed animals, Passing through the 5.35 million species of five sensed animals a soul can also take rebirth as four or lesser sensed beings. As such the miseries of these will also be discussed later.

चतुरिन्द्रिय जीवों के दुःख THE PAIN OF FOUR-SENSED LIVING BEINGS

३७. भमर–मसग–मच्छिमाइएसु य जाइकुलकोडि–सयसहस्सेहिं णवहिं चउरिंदियाणं तहिं तहिं चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखिज्जं भमंति णेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फरिसरसण–घाण–चक्खु–सहिया।

३७. चार इन्द्रियों वाले भ्रमर, मशक–मच्छर, मक्खी आदि पर्यायों में, उनकी नौ लाख जाति–कुलकोटियों में बारंबार जन्म–मरण (के दुःखों) का अनुभव करते हुए, नारकों के समान तीव्र दुःख भोगते हुए (१) स्पर्शन, (२) रसना, (३) घ्राण, और (४) चक्षु से युक्त होकर वे पापी जीव संख्यात काल तक भ्रमण करते रहते हैं।

37. There are 0.9 million kulakotis (different types in families of insects) of four-sensed creatures namely moth, mosquitoes, flies and others. In this condition they suffer badly the pangs of death and rebirth like hellish beings. They have four senses namely sense of touch, sense of taste, sense of smell and sense of sight and in this state they suffer for a period of numerable years passing from one state of four-sensed creature to another state of four-sensed living beings.

विवेचन : चतुरिन्द्रिय जीवों को पूर्वोक्त चार इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं। इन चारों इन्द्रियों के माध्यम से उन्हें विविध प्रकार की पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं। भ्रमर, मच्छर, मक्खी आदि जीव चार इन्द्रियों वाले हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योनि : एक समान वर्ण गंध रस स्पर्श वाले उत्पात्त स्थान को योनि कहते हैं। एक ही योनि में अलग-अलग रंग के, अलग अलग प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं, उसे कुल कहते हैं। इसलिए योनि से कुल ज्यादा ही होते हैं। सभी जीवों की ८४ लाख योनि हैं –

कुलकोटि क्या हैं? गोत्र कर्म के उदय से प्राप्त वंश 'कुल' कहलाते हैं। उन कुलों की विभिन्न कोटियाँ (श्रेणियाँ) कुलकोटि कही जाती हैं। एक जाति में विभिन्न अनेक कुल होते हैं। केवल मनुष्यों में ही नहीं, अपितु प्रत्येक जीव योनि में 'कुल' होते हैं। समस्त संसारी जीवों के मिलकर एक करोड़ साढ़े सत्तानवे लाख करोड़ कुल शास्त्रों में कहे गये हैं।

कुलों की संख्या इस प्रकार है –

मनुष्य		१२ लाख कुलकोटियाँ
देव		२६ लाख कुलकोटियाँ
नारक		२५ लाख कुलकोटियाँ
जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच	तिर्यंच पंचेन्द्रिय ५३½ लाख करोड़ कुल	१२½ लाख कुलकोटियाँ
स्थलचर चतुष्पद पंचेन्द्रिय		१० लाख कुलकोटियाँ
स्थलचर उरपरिसर्प पंचेन्द्रिय		१० लाख कुलकोटियाँ
स्थलचर भुजपरिसर्प पंचेन्द्रिय		९ लाख कुलकोटियाँ
खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच		१२ लाख कुलकोटियाँ
चतुरिन्द्रिय तिर्यंच	२४ लाख करोड़ कुल	९ लाख कुलकोटियाँ
त्रीन्द्रिय तिर्यंच		८ लाख कुलकोटियाँ
द्वीन्द्रिय तिर्यंच		७ लाख कुलकोटियाँ
पृथ्वीकायिक स्थावर	स्थावर ५७ लाख करोड़ कुल	१२ लाख कुलकोटियाँ
अप्कायिक स्थावर		७ लाख कुलकोटियाँ
तेजःकायिक स्थावर		३ लाख कुलकोटियाँ
वायुकायिक स्थावर		७ लाख कुलकोटियाँ
वनस्पतिकायिक स्थावर		२८ लाख कुलकोटियाँ
		योग–१,९७,५०,००० करोड़

इनमें से चतुरिन्द्रिय जीवों की यहाँ नव लाख कुलकोटियाँ बताई हैं। जैसे नारक जीव नारक पर्याय का अन्त हो जाने पर पुनः तदनन्तर भव में नरक में जन्म नहीं लेते, वैसा नियम तिर्यंच पंचेन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय आदि के लिए नहीं है। ये जीव मरकर बार-बार चतुरिन्द्रिय आदि में जन्म लेते रहते हैं। संख्यात काल तक अर्थात् संख्यात हजार वर्षों जितने सुदीर्घ काल तक वे चतुरिन्द्रिय पर्याय में ही जन्म-मरण करते रहते हैं।

Elaboration—A place of origin having same appearance, smell, taste and touch in called **Yoni**. Different types of living beings with change of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

colour and other attributes are born in the same Yoni. They are called different Kulas (clans). Thus the total number of Kulas is more than that of yonis. In total there are 84 lac yonis of living beings.

What is a Kulakotis ? The family in which a living being takes birth due to his status (gotra), Karma is called kul. Various categories of those kuls are called Kulakotis. There are many kuls in a jati. Not only in human beings, but in every family of birth there are kuls. All the world being have in all 19.75 million billion kuls according to scriptures.

The number of kuls is as under—

Human beings		1.2 million Kulakotis
Celestial beings		2.6 million Kulakotis
Hellish beings		2.5 million Kulakotis
Five sense aquatic beings	Five sensed	1.25 million Kulakotis
Quadrupeds on land (Five-sensed)	animals	1 million Kulakotis
Five-sensed being moving on heart	5.35 million-	1 million Kulakotis
Five-sensed moving on arms	billion	0.9 million Kulakotis
Five-sensed moving in air	kulas	1.2 million Kulakotis
Four-sensed living beings	2.4 million-	0.9 million Kulakotis
Three-sensed living beings	billion	0.8 million Kulakotis
Two-sensed living beings	kulas	0.7 million Kulakotis
Earth-bodied living beings	Immobile	1.2 million Kulakotis
Water-bodied immobile beings	beings	0.7 million Kulakotis
Fire-bodied beings	5.7 million-	0.3 million Kulakotis
Air-bodied beings	billion	0.7 million Kulakotis
Plant-bodied beings	kulas	2.8 million Kulakotis

Total 19.75 million billion Kulakotis

Out of them 0.9 million Kulakotis of four-sensed living beings have been mentioned here. Just as the hellish beings after completing their span of life in hell, do not immediately take re-birth in hell, the same principle does not apply to animal beings having five senses, four senses and so on. These living beings go on taking birth again and again in four-sensed category of living beings after their present life as four-sensed living being. They continue taking birth in the class of four-sensed living being for a countable period which means for a period as long as numerable thousand years.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रीन्द्रिय जीवों के दुःख PAIN OF THREE-SENSED LIVING BEINGS

३८. तहेव तेइंदिएसु कुंथु-पिप्पीलिया-अवधिकादिएसु य जाइकुलकोडिसयसहस्सेहिं अट्ठहिं अणूणएहिं तेइंदियाणं तहिं तहिं चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखेज्जगं भमंति णेरइयसमाण-तिव्वदुक्खा फरिस-रसण-घाण-संपउत्ता।

३८. इसी प्रकार कुंथु, **पिपीलिका**-चींटी, दीमक आदि त्रीन्द्रिय जीवों की पूरी आठ लाख कुलकोटियों में से विभिन्न योनियों एवं कुलकोटियों में जन्म-मरण का अनुभव करते हुए (वे पापी प्राणी) संख्यात काल अर्थात् संख्यात हजार वर्षों तक नारकों के सदृश तीव्र दुःख भोगते हैं। ये त्रीन्द्रिय जीव स्पर्शन, रसना और घ्राण-इन तीन इन्द्रियों से युक्त होते हैं।

38. The ants, white ants, worms and the like are the three-sensed living beings. They have 0.8 million Kulakotis and continuously they take birth for a total period running upto numerable thousand years in these categories. They suffer pain and tortures like hellish beings. These living beings have three senses namely those of touch, taste and smell.

विवेचन : त्रीन्द्रिय-पर्याय में उत्पन्न हुए जीव भी उत्कर्षतः संख्यात हजार वर्षों तक बार-बार जन्म-मरण करता हुआ त्रीन्द्रिय पर्याय में ही बना रहता है।

Elaboration—A three-sensed living being taking birth again and again spends maximum period of numerable thousand years in the category of three-sensed living beings.

द्वीन्द्रिय जीवों के दुःख PAIN OF TWO-SENSED LIVING BEING

३९. गंडूलय-जलूय-किमिय-चंदणगमाइएसु य जाइकुलकोडिसयसहस्सेहिं सत्तहिं अणूणएहिं बेइंदियाणं तहिं तहिं चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखेज्जगं भमंति णेरइयसमाण-तिव्वदुक्खा फरिस-रसण-संपउत्ता।

३९. गंडूलक-गिंडोला, **जलौक**-जोंक, कृमि, चन्दनक आदि द्वीन्द्रिय जीव पूरी सात लाख कुलकोटियों में से वहीं-वहीं अर्थात् विभिन्न कुलकोटियों में जन्म-मरण की वेदना का अनुभव करते हुए संख्यात हजार वर्षों तक भ्रमण करते रहते हैं। वहाँ भी उन्हें नारकों के समान तीव्र दुःख भुगतने पड़ते हैं। ये द्वीन्द्रिय जीव स्पर्शन और रसना-जिह्वा, इन दो इन्द्रियों वाले होते हैं।

39. Snails, earthworms and the like two-sensed creatures have 0.7 million Kulakotis and they take birth again and again in them spending a maximum period of numerable thousand years. They experience sever suffering like those in hell. These living beings have two senses-sense of touch and sense of taste.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिय जीवों के दुःख PAIN OF ONE-SENSED LIVING BEINGS

४०. पत्ता एगिंदियत्तणं वि य पुढवि–जल–जलण–मारुय–वणप्फइ–सुहुम–बायरं च पज्जत्तमपज्जत्तं पत्तेयसरीरणाम–साहारणं च पत्तेयसरीरजीविएसु य तत्थवि कालमसंखेज्जगं भमंति अणंतकालं च अणंतकाए फासिंदियभावसंपउत्ता दुक्खसमुदयं इमं अणिट्ठं पावंति पुणो पुणो तहिं तहिं चेव परभव–तरुगणगहणे।

४०. एकेन्द्रिय अवस्था को प्राप्त हुए पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के दो–दो भेद हैं–सूक्ष्म और बादर, अर्थात् सूक्ष्मपृथ्वीकाय और बादरपृथ्वीकाय, सूक्ष्मजलकाय और बादरजलकाय आदि। इनके अन्य प्रकार से भी दो–दो प्रकार होते हैं, यथा–पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन भेदों के अतिरिक्त वनस्पतिकाय में दो भेद और भी हैं–प्रत्येकशरीरी और साधारणशरीरी। इन भेदों में से प्रत्येकशरीर (एक शरीर में एक जीव) पर्याय में उत्पन्न होने वाले पाप–हिंसक जीव असंख्यात काल तक उन्हीं–उन्हीं पर्यायों में परिभ्रमण करते रहते हैं और अनन्तकाय अर्थात् साधारण–शरीरी (एक शरीर में अनन्त जीव) जीवों में अनन्त काल तक पुनः–पुनः जन्म–मरण करते हुए भ्रमण करते हैं। ये सभी जीव एक स्पर्शनेन्द्रिय वाले होते हैं। इनके दुःख अतीव अनिष्ट (पीड़ाकारी) होते हैं। वनस्पतिकाय रूप एकेन्द्रिय पर्याय में कायस्थिति सबसे अधिक–अनन्तकाल की है। *(टीका, पृ. २४)*

40. The one-sensed living beings are earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied and plant-bodied living beings and each is of two types—namely subtle and gross. In other words these are subtle earth-body living beings and gross earth-bodied living beings, subtle water-bodied living beings and gross water-bodied living beings and so on. Again each of them is of two types—complete in capability of their category (paryaptak) and incomplete (aparyaptak). In addition, the plant-bodied living beings have two more types—namely one living being in one body (pratyek shariri) and infinite number of living beings in one body (sadharan shariri). The sinner living beings who take birth in pratyek shariri category go on taking birth in that category for a maximum period of innumerable years. The living beings who take birth in sadharan shariri category go on taking birth again and again in that category for a total period of infinite number of years. All these beings are one-sensed living beings and have only one sense namely sense of touch. Their sufferings are extremely troublesome. The maximum period a one-sensed living being (by taking birth again and again) can spend is infinite period.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : एकेन्द्रिय जीव मूलतः पाँच प्रकार के हैं-पृथ्वीकाय आदि। इनमें से प्रत्येक सूक्ष्म और बादर तथा पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। वनस्पतिकाय के इन दो भेदों में बादर वनस्पति के साधारणशरीरी और प्रत्येकशरीरी, ये दो भेद होते हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

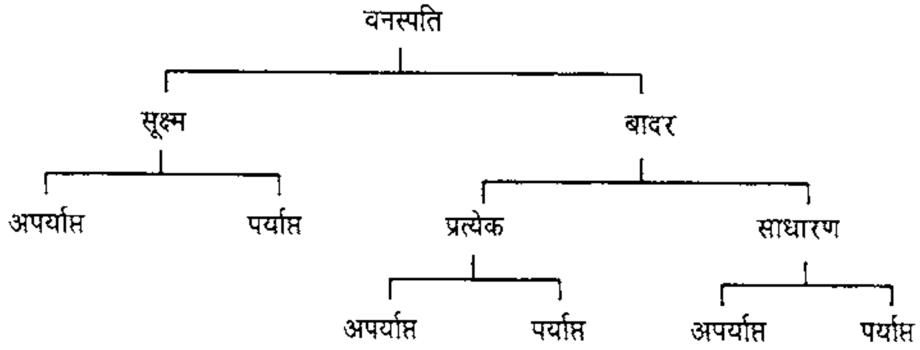

सूक्ष्म-सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जिन स्थावर जीवों का शरीर अतीव सूक्ष्म हो, चर्मचक्षु से दिखाई न देता हो, सिर्फ अतिशयज्ञानी ही जिसे देख सकते हैं, ऐसे सूक्ष्म जीव सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं।

बादर-बादर नामकर्म के उदय से जिनका शरीर अपेक्षाकृत बादर हो। यद्यपि सूक्ष्म और बादर शब्द किसी एक ही अपेक्षा से नहीं हैं, एक की अपेक्षा जो सूक्ष्म है वह दूसरे की अपेक्षा बादर (स्थूल) हो सकता है और जो किसी की अपेक्षा बादर है वह अन्य की अपेक्षा सूक्ष्म भी हो सकता है। किन्तु यहाँ सूक्ष्म और बादर का भेद समझना चाहिए। नामकर्म के उदय पर ही यहाँ सूक्ष्म और बादर का भेद बताया है। कोई-कोई त्रसजीव भी अत्यन्त सूक्ष्म शरीर वाले होते हैं। उनका शरीर भी चक्षुगोचर नहीं होता। सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का शरीर भी इतना सूक्ष्म होता है कि दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। फिर भी यहाँ गृहीत नहीं हैं, क्योंकि उनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय नहीं होता।

प्रत्येकशरीर-यह वनस्पतिकाय का भेद है। जिस जीव के एक शरीर का स्वामी एक ही हो, वह प्रत्येकशरीर या प्रत्येकशरीरी जीव कहलाता है।

साधारणशरीर-ऐसे जीव जो एक ही शरीर में, उसके स्वामी के रूप में एक साथ अनन्त हों। ऐसे जीव निगोदकाय के जीव भी कहे जाते हैं। सूक्ष्म निगोद के जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हैं। बादर निगोद के जीव कन्दमूल आदि वनस्पतियों में होते हैं। लोकाकाश में असंख्यात गोल हैं। एक-एक गोल में असंख्यात-असंख्यात निगोद हैं और एक-एक निगोद में अनन्त-अनन्त जीव हैं।

साधारणशरीर वाले जीवों के विषय में कहा गया है कि वे एक शरीर में अर्थात् एक ही शरीर के स्वामी के रूप में अनन्त जीव होते हैं। किन्तु उन सबका शरीर एक ही होता है। जब शरीर एक ही होता है तो उनका आहार और श्वासोच्छ्वास आदि भी एक साथ ही होता है। किन्तु उनके तैजस् और कार्मण शरीर भिन्न-भिन्न ही होते हैं। ये साधारणशरीरी अथवा निगोदिया जीव अनन्त काल तक अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल पर्यन्त उसी पर्याय में लगातार जन्म-मरण की वेदना का अनुभव करते रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—One-sensed living beings are basically of five types—earth-bodied and the like. Out of them every subtle and every gross living being is of two types. The plant-bodied living beings have two more categories—namely one living being in one body and infinite number of living beings in one body.

They are described as under—

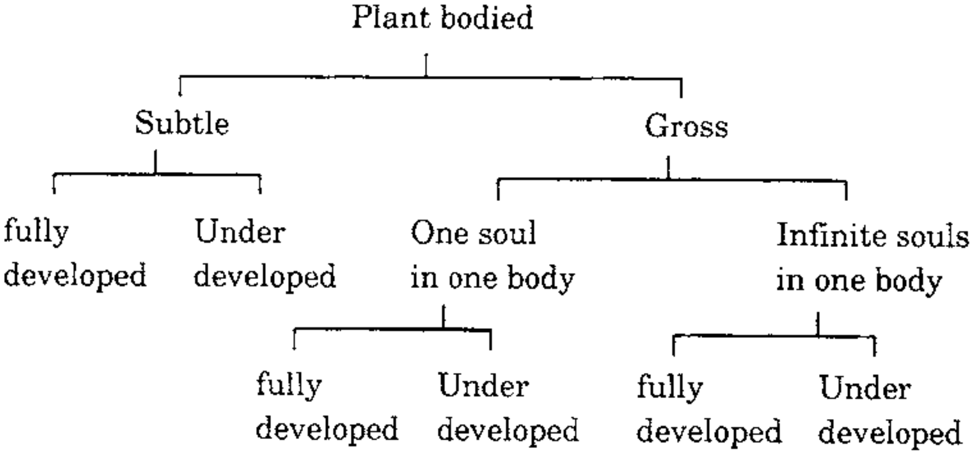

Subtle—Due to subtle name bearing Karma, the immobile living being that have extremely subtle body which cannot be seen by the naked eye. They can be seen only by those who have transcendental knowledge (Avadhi Jnani). The entire world is full of such living beings.

Gross (Badar)—Due to gross name bearing Karma, the body of these living beings is comparatively gross. One can be subtle compared to one living being and gross compared to another living being. A living being may have gross body compared to that of one living being and a subtle body compared to another living being. But the distinction between subtle and gross should be clearly understood. The distinction here is because of the prevalence of name bearing Karma. Some mobile living beings have extremely subtle body. Their body cannot be seen with the naked eye. The body of sammurchhim human beings is also so subtle that they cannot be seen with the eye. But here those living beings are not considered because they do not fall in this category of subtle name-bearing Karma.

Pratyek Sharir—It is a type of plant-bodied living being. A living being that is having one soul in one body is called pratyek shariri living being.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sadharan Sharir—When infinite souls are in one body, they are called Sadharan Shariri. They are also called Nigod-kaya Jivas. Subtle Nigod Kaya Jiva are in the entire space. Gross Nigod Jiva are vegetables growing under the ground namely Kand-mool.

In the worldly space there are innumerable number of tiny balls (round tiny drop like things). Each such ball has innumerable nigod. Each nigod has infinite number of Jiva.

About Sadharan Sharir Jiva, it is said that in one body there are infinite number of Jiva. But all of them combinedly have just one body. When they have one physical body, they take food and breath simultaneously. But each of them has a separate electric body and separate Karmic body.

४१. कुद्दाल–कुलिय–दालण–सलिल–मलण–खुंभण–रुंभण–अणलाणिल–विविहसत्थघट्टण–परोप्पराभिहणण–मारणविराहणाणि य अकामकाइं परप्पओगोदीरणाहि य कज्जप्पओयणेहिं य पेस्सपसुणिमित्तं ओसहाहारमाइएहिं उक्खणण उक्कत्थण–पयण–कुट्टण–पीसण–पिट्टण–भज्जण–गालण–आमोडण–सडण–फुडण–भंजण–छेयण–तच्छण–विलुंचण–पत्तज्झोडण–अग्गिदहणाइयाइं, एवं ते भवपरंपरादुक्ख–समणुबद्धा अडंति संसारबीहणकरे जीवा पाणाइवायणिरया अणंतकालं।

४१. कुदाल (कुल्हाड़ी) और हल से पृथ्वी का विदारण करना, जल का मथना और रोकना, अग्नि तथा वायु का विविध प्रकार के शस्त्रों से टकराना, पारस्परिक आघातों से एक–दूसरे को पीड़ा पहुँचाना, मारना, शरीरादि प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाली विराधना की व्यथा सहन करना, नौकर–चाकरों तथा गाय–भैंस–बैल आदि पशुओं की दवा और आहार आदि के लिए जड़ से खोदना, छानना, मोड़ना, सड़ जाना, स्वयं टूट जाना, मसलना–कुचलना, छेदन करना, छीलना, रोमों का उखाड़ना, पत्ते आदि तोड़ना, अग्नि से जलाना, इस प्रकार भव–परम्परा में दुःखों से घिरे वे पापी जीव भीषण संसार में अनन्त काल तक परिभ्रमण करते रहते हैं।

41. The violent human beings dig the earth with an axe or a plough. They churn and stop the flowing water. They strike fire and air with weapons of various types. They cause hurt by striking them. They bear the suffering, resulting from the physical activities against prescribed code. They cut the plants from the very root for the food and medicine of their servants, employees, cows, buffaloes, bullocks and the like. They bend these plants, rot them and pass the powder through a sieve. Some plants break themselves. They crush them, pierce them, pull out their skin and pores. They pluck the leaves and burn them. Thus they pass through sufferings of birth again and again in this dreadful word for an infinite period.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में उन हिंसक जीवों के दुःख का वर्णन किया गया है जो पहले नरक की यातनाएँ भोगकर आदि में तत्पश्चात् पापकर्मों का फल भोगना शेष रह जाने के कारण तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याय में, फिर विकलेन्द्रिय अवस्था में और फिर एकेन्द्रिय अवस्था में उत्पन्न होते हैं। जब वे पृथ्वीकाय में जन्म लेते हैं तो उन्हें कुदाल हल फावड़ा आदि द्वारा विदारण किये जाने का कष्ट भोगना पड़ता है। जलकाय में जन्म लेते हैं तो उनका मंथन विलोडन आदि किया जाता है। तेजस्काय और वायुकाय में स्वकाय शस्त्रों से विविध प्रकार से घात किया जाता है। वनस्पतिकाय में उनका छेदन-भेदन किया जाता है। इतना ही नहीं वनस्पतिकाय के जीवों को तो वनस्पतिकाय में ही बारम्बार जन्म-मरण करते-करते अनन्त काल तक इस प्रकार की वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं। ये समस्त दुःख हिंसा करके प्रसन्न होने वाले प्राणियों को भोगने पड़ते हैं।

Elaboration—In the present aphorism, the sufferings of those violent living beings have been narrated who first pass through sufferings in the hell. Thereafter due to the fact that still some fruit of their bad Karmas exist, they take birth in five-sensed animal life, then in four-sensed and so on, ultimately in one-sensed beings as earth-bodied living beings. When they take birth in plant-bodied living beings they have to take birth again and again for infinite period. Thus they suffer for an infinite period. All these sufferings are borne by those living beings who feel happy and elated after doing violent activities.

मनुष्यभव के दुःख **SUFFERINGS OF HUMAN LIFE**

४२. जे वि य इह माणुसत्तणं आगया कहिं वि णरगा उव्वट्टिया अधण्णा ते वि य दीसंति पायसो विकयविगलरूवा खुज्जा वडभा य वामणा य बहिरा काणा कुंटा पंगुला विगला य मूका य मम्मणा य अंधयगा एगचक्खू विणिहयसंचिल्लया वाहिरोगपीलिय-अप्पाउय-सत्थबज्झबाला कुलक्खण-उक्किण्णदेहा दुब्बल-कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया कुरूवा किविणा य हीणा हीणसत्ता णिच्चं सोक्खपरिवज्जिया असुहदुक्खभागी णरगाओ इहं सावसेसकम्मा उव्वट्टिया समाणा।

४२. हिंसारूप घोर पापकर्म करने वाले जीव बड़ी कठिनाई से नरक से निकलकर किसी भाँति मनुष्य-पर्याय में उत्पन्न होते हैं, किन्तु जिनके पापकर्म भोगने से शेष रह जाते हैं, वे भाग्यहीन प्राणी विकृत एवं मूर्ख रूप-स्वरूप वाले, कुबड़े, टेढ़े-मेढ़े शरीर वाले, बौने, बहरे, काने, टूटे हाथ वाले, लँगड़े, अंगहीन, गूँगे, तुतलाने वाले या मरुमय उच्चारण करने वाले, अंधे, काने, दोनों खराब आँखों वाले या पिशाचग्रस्त, कुष्ठ आदि व्याधियों और ज्वर आदि रोगों से अथवा मानसिक एवं शारीरिक रोगों से पीड़ित, अल्प आयुष्य वाले, शस्त्र आदि द्वारा चोटें खाये हुए या मारे जाने योग्य, मूढ़ मूर्ख लक्षणों से भरपूर शरीर वाले, दुर्बल, अप्रशस्त संहनन, बहुत छोटे या बहुत मोटे, लम्बे कद के बेडौल अंगोपांगों वाले, खराब संस्थान-आकृति वाले, कुरूप, दीन, हीन, सत्त्वविहीन, सुख से सदा वंचित रहने वाले और अशुभ दुःखों के भाजन होते हैं।

42. After committing extremely violent deeds and thus collecting bad Karmas as a result of their sins, with great difficulty such living beings

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

take birth as human state of existence. But those who have yet to bear the fruit of some of their violent sinful activities take birth as wretched persons. They are abnormal. They are hunch-backed. Their body is disproportionate. They are dwarf, deaf, one-eyed, one-legged, with broken hands. Some of them are without some limbs, dumb and indistinct in faculty of speech. Some are blind or having diseased eyes. Some are under influence of demon gods. Some suffer from leprosy like diseases, fever, mental and physical diseases. Some have very short life-span. Some suffer from hurts and injuries. Some are tall but disproportioned. Some have very irritating, unpleasant look. Some are dependent and without normal strength. They are always devoid of happiness and are the subject of sufferings.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में ऐसे प्राणियों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है जो हिंसा के फलस्वरूप नरक में उत्पन्न हुए थे और फिर नरक से किसी तरह कठिनाई से निकलकर सीधे मनुष्यभव को प्राप्त हुए हैं अथवा पहले तिर्यंचगति की यातनाएँ भुगतकर फिर मानवभव को प्राप्त हुए हैं, किन्तु जिनके घोरतर पापकर्मों का अन्त नहीं हो पाया है। जिनको पापों का फल भोगना बाकी रह गया है। उस बाकी रहे पापकर्म का फल उन्हें मनुष्ययोनि में भोगना पड़ता है। उसी फल का यहाँ किंचित् दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

ऐसे पापी प्राणी प्रायः भाग्यहीन होते हैं। उन्हें सर्वत्र निन्दा, अपमान, तिरस्कार और धिक्कार ही मिलता है। शरीर से विकृत बेडौल होते हैं। कुष्ठादि भीषण व्याधियों से और ज्वरादि रोगों से तथा मानसिक रोगों से पीड़ित रहते हैं। वे ज्ञानहीन, मूर्ख होते हैं। वे मनुष्यभव में भी दुःखों के ही पात्र बनते हैं।

क्या नरक से निकले हुए सभी जीव मनुष्य-पर्याय पाकर पूर्वोक्त दुर्दशा के पात्र बनते हैं? इस प्रश्न का उत्तर मूल पाठ से ही मिल जाता है। मूल पाठ में **'पायसो'** और **'सावसेसकम्मा'** ये दो पद ध्यान देने योग्य हैं। इनका तात्पर्य यह है कि सभी जीवों की ऐसी दुर्दशा नहीं होती, वरन् प्रायः अर्थात् अधिकांश जीव जिनके पापकर्मों का फल-भोग पूरा नहीं हुआ है, अपितु कुछ शेष है, वे इस प्रकार के दुःखों के भागी होते हैं।

जिन प्राणियों का फल-भोग परिपूर्ण हो जाता है, वे कुछ जीव नरक से सीधे निकलकर लोकपूज्य, आदरणीय, सम्माननीय एवं यशस्वी भी होते हैं, यहाँ तक कि कोई-कोई अत्यन्त विशुद्धि-प्राप्त जीव तीर्थंकर पद भी प्राप्त करता है।

Elaboration—In the present aphorism, the sad state of such living beings has been narrated who, as a result of their sinful acts involving violence, had taken birth among hellish beings and from the hellish life with great difficulty sometimes were re-born as human beings or after going through sufferings in animal state of existence took birth as human beings. However, there had not been an end to the consequences of there dreaded sinful activities. They have yet to suffer some fruit of their bad karmas. They suffer it in the human state of existence. Here that condition as a result of their earlier sins has been described to a certain extant.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Such living beings generally are ill-fated. They are cursed, dishonoured and hated everywhere. Every one talks ill of them. They have unattractive physical body. They suffer from dreadful diseases like leprosy, fever and the like. They suffer from mental diseases. They are dullards and without proper knowledge. They bear sufferings even in human life.

Do all living beings who take birth as human beings after their earlier life in hell suffer such a sad state ? The reply to this question is available in the text itself. The words 'payaso' and 'saavasesakamma' in the original text need to be understood clearly. Their purport is that all the living being do not meet such a fate. Only those living beings, the consequences of whose sins have not been suffered by them in full, undergo such sufferings.

Some living beings who have suffered the total fruit of their bad deeds in hell, take birth as human beings directly from hell. They become honoured persons and are loved and respected. Some of them who have purified their mundane soul almost completely, become even Tirthankar.

उपसंहार CONCLUSION

४३. एवं णरगं तिरिक्ख-जोणिं कुमाणुसत्तं च हिंडमाणा पावंति अणंताइं दुक्खाइं पावकारी। एसो सो पाणवहस्स फलविवागो। इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भयो बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुंचई ण य अवेदयित्ता अत्थि हु मोक्खो त्ति एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरणामधेज्जो कहेसी य पाणवहस्स फलविवागं।

एसो सो पाणवहो चंडो रुद्दो खुद्दो अणारिओ णिग्घिणो णिसंसो महब्भओ बीहणओ तासणओ अणज्जाओ उव्वेयणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो णिप्पिवासो णिक्कलुणो णिरयवासगमणणिधणो मोहमहब्भयपवड्ढओ मरण-वेमणसो।

पढमं अहम्मदारं सम्मत्तं त्ति बेमि॥ १॥

४३. इस प्रकार (हिंसारूप) प्राणवध करने वाले प्राणी नरक और तिर्यंच योनि में तथा कुमानुष-अवस्था में भटकते हुए अनन्त दुःखों को भोगते हैं।

यह (उपर्युक्त) प्राणवध (हिंसा) का फलविपाक (भोग) है, जो इहलोक (मनुष्यभव) और परलोक (नारकादि भव) में भोगना पड़ता है। यह फलविपाक अल्प सुख किन्तु (भव-भवान्तर में) अत्यधिक दुःख वाला है। महा भय पैदा करने वाला है और अतीव गाढ़ कर्मरूपी रज से युक्त है। अत्यन्त दारुण है, अत्यन्त कठोर है और अत्यन्त असाता को उत्पन्न करने वाला है। हजारों वर्षों (सुदीर्घ काल) में इससे छुटकारा मिलता है। किन्तु इसे भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता। हिंसा का यह फलविपाक ज्ञातकुल-नन्दन महात्मा महावीर नामक जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसका फल विपाक इतना भयानक है, वह प्राणवध क्रोध रूप उग्र रौद्र ध्यान से उत्पन्न है। क्षुद्र और अनार्य जनों का आचरण है। यह घृणारहित, नृशंस, महाभयों का कारण, भयानक, त्रासदायंक और अन्यायरूप है। यह उद्वेगजनक, दूसरे के प्राणों की परवाह न करने वाला, धर्महीन, स्नेह-पिपासा से शून्य और करुणाहीन है। इसका अन्तिम परिणाम नरक में गमन करना है अर्थात् यह नरकगति में जाने का कारण है। मोह और महाभय को बढ़ाने वाला और मरण के समय दीनता उत्पन्न करने वाला है।

43. Thus the persons who engage in violence, they as a result thereof are re-born in hell, in animal state or in bad category of human beings, wander there and undergo numberless sufferings there.

Thus is the result of their violence that they have to suffer in this life (as human beings) and in the other state of existence (hell and others). It provides little pleasure and much greater pain. It produces great fear and is smeared with extremely thick karmic molecules. This condition is extremely pitiable, severe and produces very deep pain. It continues for thousands of years (a very long period). It is not possible to overcome it without undergoing requisite suffering. Tirthankar Mahavir who was of Jnat clan has mentioned about this fruit of violent activities.

The violence which collects Karma producing such a dreadful result when they fructify is caused by anger or harsh and drastic thought actively. It is the conduct followed by rustic and uncivilized people. It is the conduct of those people who are inhuman, ferocious, unjust, dreadful and in a fit of state fear. It produces terror. It does not take care of the life force of others. It is irreligious. It is devoid of love and compassion. Its ultimate result is re-birth in hell. It increases delusion and fear. It causes pitiable state at the time of death.

विवेचन : नरक सम्बन्धी यह फलविपाक शास्त्रकार ने अपनी बुद्धि या कल्पना से नहीं बताया है, किन्तु ज्ञातपुत्र सर्वज्ञ देव श्री महावीर ने कहा है, यह उल्लेख करके प्रस्तुत प्ररूपणा की पूर्ण प्रामाणिकता प्रकट की गई है। श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा-जैसा मैंने श्रमण भगवान महावीर से सुना है, वैसा ही तुम्हारे समक्ष प्रतिपादन किया है।

Elaboration—The author has not mentioned these conditions in hell from his own imagination but omniscient Mahavir has mentioned it. So it is undisputable. Sudharma Swami told Jambu that he has told exactly what he heard from Bhagavan Mahavir.

• END OF THE FIRST CHAPTER •

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्ययन : मृषावाद
SECOND CHAPTER : FALSEHOOD

प्रथम अध्ययन में प्राणवध रूप हिंसा को सांगोपांग निरूपण करके अब हिंसा के प्रेरक कारणों का कथन अगले अध्ययनों में किया जा रहा है। हिंसा के साथ मृषावाद (झूठ) का सम्बन्ध जुड़ा है। क्योंकि मृषावाद क्रोध, भय, लोभ, स्वार्थ, हास्य आदि के कारण बोला जाता है। यह सब क्रोधादि भाव हिंसा के मुख्य कारण हैं।

After describing violence in the form of destruction of life force in an exhaustive manner, the causes that lead to such violence are being narrated in the following chapters. Falsehood is deeply connected with violence because it is due to anger, fear, greed, selfishness, mockery and the like. Anger and all such like thought activity is primary cause of violence (himsa).

मृषावाद का स्वरूप NATURE OF FALSEHOOD

४४. "इह खलु जंबू" ! बिइयं अलियवयणं लहुसग-लहुचवल-भणियं भयंकरं दुहकरं अयसकरं वेरकरगं अरइ-रइ-रागदोस-मणसंकिलेस-वियरणं अलियणियडिसाइजोयबहुलं णीयजणणिसेवियं णिस्संसं अप्पच्चयकारगं परमसाहुगरहणिज्जं परपीलाकारगं परमकिण्हलेस्ससेवियं दुग्गइविणिवायविवड्ढणं भवपुणब्भवकरं चिरपरिचिय-मणुगयं दुरंतं कित्तियं बिइयं अहम्मदारं।

४४. हे जम्बू ! अलीकवचन अर्थात् मिथ्याभाषण दूसरा (आस्रवद्वार) है। यह गुण-गौरव से हीन, हल्के, अति उतावले और चंचल लोगों द्वारा बोला जाता है, यह स्व एवं पर के लिए भय उत्पन्न करने वाला, दुःखोत्पादक, अपयशकारी एवं वैर बढ़ाने वाला है। यह अरति, रति, राग, द्वेष और मानसिक संक्लेश को देने वाला है। शुभ फल से रहित है। धूर्त्तता एवं अविश्वसनीय वचनों से भरपूर है। नीच जन इसका सेवन करते हैं। यह नृशंस, क्रूर अथवा निन्दित है। अप्रतीतिकारक है-विश्वसनीयता का नाश करने वाला है। उत्तम साधुजनों-सत्पुरुषों द्वारा निन्दित है। दूसरों को-जिनके लिए असत्यभाषण किया जाता है, उनको पीड़ा उत्पन्न करने वाला है। उत्कृष्ट कृष्णलेश्या से युक्त है अर्थात् कृष्णलेश्या वाले लोग इसका प्रयोग करते हैं। यह बारम्बार दुर्गतियों में ले जाने वाला है। जन्म-मरण की वृद्धि करने वाला है। यह चिरपरिचित है-अनादि काल से जीव इसके अभ्यासी हैं। निरन्तर साथ रहने वाला है और बड़ी कठिनाई से इसका अन्त होता है अथवा इसका परिणाम अतीव अनिष्ट होता है।

44. Jambu ! Untrue talk or false speech is the second entrance for the inflow (Aasrav Dvar) of Karma. It is devoid of the characteristic of respect. It is mean. It is spoken by mischievous persons who have no stable approach. It creates fear trouble, dishonour and increases enmity among people. It produces distaste for self-restraint, liking for worldly

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

objects, attachment, hatred and mental disturbance. It is devoid of meritorious result. It is full of deceit and non-trust worthy words. Mean people adopt it. It is inhuman, dis-compassionate and condemned. It destroys mutual affection and trust. It is disliked by the noble and cultured people. It causes pain to those for whom it is used. It is full of extremely worst thought activity. In other words only such people use such words who are in heinous thought activity. It causes birth again and again in demerit state of existence. It increases the circle of life, death and re-birth in the mundane world. Jiva has been experiencing it since beginningless period. It has been accompanying the living being continuously. So it can be finished only with great effort. Its result is extremely deplorable.

विवेचन : असत्य वचनों का प्रयोग ऐसे मनुष्य ही करते हैं जिनमें गुणों की गरिमा नहीं होती, जो क्षुद्र, हीन, तुच्छ या लुच्चे होते हैं। जो अपने वचनों का स्वयं ही मूल्य नहीं जानते, उतावल में सोचे बिना चंचलतापूर्वक जो वचन बोले जाते हैं, वे स्व-पर के लिए भयंकर सिद्ध होते हैं। उनके फलस्वरूप अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। साधुजन-सत्पुरुष सुविचारित सत्य तथ्य का ही प्रयोग करते हैं और वह भी ऐसा कि जिससे किसी को पीड़ा न हो, क्योंकि पीड़ाजनक वचन तथ्य होकर भी सत्य नहीं कहलाता।

असत्यभाषी को संसार में निन्दा और तिरस्कार का पात्र बनना पड़ता है। असत्यभाषण करके जिन्हें धोखा दिया जाता अथवा हानि पहुँचाई जाती है, उनके साथ वैर बँध जाता है और कभी-कभी उस वैर की परम्परा अनेकानेक भवों तक चलती रहती है। असत्यभाषी के अन्तर में यदि स्वल्प भी उज्ज्वलता का अंश होता है तो उसके मन में भी संक्लेश बोलने पर पश्चात्ताप उत्पन्न होता है। जिसे ठगा जाता है उसके मन में तो संक्लेश होता ही है।

असत्यभाषी को अपनी प्रामाणिकता प्रकट करने के लिए अनेक प्रकार के जाल रचने पड़ते हैं, धूर्त्तता, कपट का आश्रय लेना पड़ता है।

असत्य दुर्गति में ले जाता है और संसार-परिभ्रमण की वृद्धि करने वाला है।

असत्यभाषी अपने असत्य को छिपाने के लिए कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, अन्त में प्रकट हो जाता है। जब प्रकट हो जाता है तो असत्यभाषी की सच्ची बात पर भी कोई विश्वास नहीं करता। उसकी विश्वसनीयता खत्म हो जाती है।

'परपीडाकारगं' कहकर शास्त्रकार ने बताया है। असत्य एक प्रकार की हिंसा का ही रूप है।

Elaboration—Only such people use false speech who command no trust; who are mean, and uncivilised; who do not understand the worth of their words, and who prove to be dreadful for themselves and others. As a result of it, they suffer adversely. The noble cultured people use only true mode of speech. They use such words, which do not hurt

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

anyone because the words, which cause pain to others, are not considered true even if they relate factual position.

A person who utters false words becomes subject of non-praise and disrespect. He develops enmity with those whom he has deceived by making false statement. Sometimes this inimical relationship continues for many lives. In case a false person has even the slightest element of respect for truth in him, on making a false statement he repents in his mind. The person who is cheated mentally feels disturbed.

A false person has to adopt many types of conjunctives in order to prove that he is trustworthy. He has to take shelter of deceit and non-straight forwardness.

As a result of falsehood one takes re-birth in demerit state of existence. His wandering in the cycle of birth and death in the mundane world increases. Howsoever hard a false speaking person may try to conceal falsehood, it ultimately reveals. After the truth appears, one shall no longer believe even the true statement of that person. He loses his trustworthiness.

By using the word 'Parpeedakaragam' the author has pointed out that falsehood is a type of violence.

मृषावाद के नामान्तर SYNONYMS OF FALSEHOOD

४५. तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं। तं जहा–

१. अलियं, २. सढं, ३. अणज्जं, ४. मायामोसो, ५. असंतगं, ६. कूडकवडमवत्थुगं च, ७. णिरत्थयमवत्थयं च, ८. विद्देसगरहणिज्जं, ९. अणुज्जुगं, १० कक्कणा य, ११. वंचणा य, १२. मिच्छापच्छाकडं च, १३. साई उ, १४. उच्छण्णं, ११. उक्कूलं च, १६. अट्टं, १७. अब्भक्खाणं च, १८. किव्विसं, १९. वलयं, २०. गहणं च, २१. मम्मणं च, २२. णूमं, २३. णिययी, २४. अपच्चओ, २५. असमओ. २६. असच्चसंधत्तणं, २७. विवक्खो, २८. अवहीयं, २९. उवहिअसुद्धं, ३०. अवलोवोत्ति।

अवि य तस्स एयाणि एवमाइयाणि णामधेज्जाणि होंति तीसं, सावज्जस्स अलियस्स वइजोगस्स अणेगाइं।

४५. उस असत्य के गुणनिष्पन्न अर्थात् सार्थक तीस नाम हैं। वे इस प्रकार हैं–

(१) **अलीक**–झूठ, मिथ्यावचन।

(२) **शठ**–धूर्त्त, मायावी जनों द्वारा आचरित।

(३) **अनार्य (अन्याय्य)**–अनार्य पुरुषों का वचन होने से अनार्य है अथवा अन्याययुक्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) **माया-मृषा**-माया रूप कषाय से युक्त और मृषा झूठ होने से इसे माया-मृषा कहा जाता है।

(५) **असत्क**-असत् पदार्थ को कहने वाला।

(६) **कूट-कपट-अवस्तुक**-दूसरों को ठगने से कूट, भाषा का विपर्यास होने से कपट, तथ्य-वस्तुशून्य होने से अवस्तुक है।

(७) **निरर्थक-अपार्थक**-प्रयोजनहीन होने के कारण निष्प्रयोजन और सत्यहीन होने से अपार्थक है।

(८) **विद्वेषगर्हणीय**-विद्वेष और निन्दा का कारण।

(९) **अनृजुक**-कुटिलता-सरलता का अभाव, वक्रता से युक्त।

(१०) **कल्कना**-मायाचारमय।

(११) **वंचना**-दूसरों को ठगने का कारण।

(१२) **मिथ्यापश्चात्कृत**-न्यायी पुरुष झूठा समझ कर पीछे कर देते हैं, अतः मिथ्यापश्चात्कृत है।

(१३) **साति**-अविश्वास का कारण।

(१४) **उच्छन्न**-अपने दोषों और दूसरे के गुणों को ढकने वाला है। इसे 'अपच्छन्न' भी कहते हैं।

(१५) **उत्कूल**-सन्मार्ग की मर्यादा लाँघने वाला अथवा न्याय रूपी नदी के तट से गिराने वाला है।

(१६) **आर्त्त**-पाप से पीड़ित जनों का वचन।

(१७) **अभ्याख्यान**-दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण करने वाला है।

(१८) **किल्विष**-पाप या पापका जनक है।

(१९) **वलय**-गोलमोल-टेढ़ा-मेढ़ा, चक्करदार वचन।

(२०) **गहन**-जिसे समझना कठिन हो, जिस वचन से असलियत का पता न चले।

(२१) **मन्मन**-स्पष्ट न होने के कारण, अस्पष्ट वचन।

(२२) **नूम**-सचाई को ढकने वाला।

(२३) **निकृति**-किये हुए मायाचार को छिपाने वाला वचन।

(२४) **अप्रत्यय**-अविश्वास उत्पन्न करने वाला होने से अप्रत्यय है।

(२५) **असमय**-सम्यक् आचार से रहित अथवा शिष्ट जनों द्वारा असंमत है।

(२६) **असत्यसंधता**-झूठी प्रतिज्ञाओं कसमों का कारण है।

(२७) **विपक्ष**-सत्य और धर्म का विरोधी।

(२८) **अपधीक**-निन्दित या तुच्छ क्षुद्र बुद्धि से उत्पन्न।

(२९) **उपधि**-अशुद्ध-मायाचार से अशुद्ध।

(३०) **अवलोप**-वस्तु के वास्तविक स्वरूप का लोप करने वाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

45. Falsehood has thirty synonyms based on its real characteristics. They are as mentioned below—

(1) **Aleek**—Untrue, untrue words.

(2) **Shath**—Conduct of cunning and crooked persons.

(3) **Anarya**—Speech used by uncivilised people; speech full of injustice.

(4) **Maya-mrisha**—Crooked speech under influence of passion and besemeared with falsehood.

(5) **Asatk**—One which defines a substance that actually does not exist at all.

(6) **Koot-kapat-avastuck**—Averse (koot), as it is spoken to deceive others; it is indistinct (kapal) as it has different interpretations; it is not real (avastuck).

(7) **Nirarthak-aparthak**—It is without any purpose (nirarthak); it is not true so it is aparthak.

(8) **Vidvesh-garhaniya**—As it is the cause of hatred and ill talk.

(9) **Anrijuk**—As it is crooked.

(10) **Kalkana**—As it is saturated with deceit.

(11) **Vanchana**—As it is used to cheat others.

(12) **Mithya-pashchatakrit**—Since the right persons ignore it considering it as false.

(13) **Saati**—Since it leads to mistrust.

(14) **Uchhann**—Since it sidetracks one's faults and good qualities of others.

(15) **Utkool**—Since it oversteps the sanctions of the true path.

(16) **Artt**—Since it is the language of those who are suffering from fruits of their sins.

(17) **Abhyakhyan**—Since it levels false allegations against others.

(18) **Kilvish**—Since it is a sin or generates sins.

(19) **Valaya**—Since it is a talk leading to more than one different interpretation.

(20) **Gahan**—Since it is difficult to be understood. Reality cannot be known with such words.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(21) **Manman**—Since it is indistinct, vague.

(22) **Noom**—Since it betrays truth.

(23) **Nikriti**—Since it conceals deceitful conduct.

(24) **Apartyaya**—Since it generates mistrust.

(25) **Asamaya**—Since it is devoid of right conduct. Civilised people do not support it.

(26) **Asatya-Sandhata**—Since it is the cause of false oaths.

(27) **Vipaksh**—Since it is opponent of truth and dharma.

(28) **Apadhik**—Since it is the creation of persons having mean and pervert intellect.

(29) **Upadhi-Ashudh**—It is impure because of deceitful nature.

(30) **Avalope**—It conceals the real nature of a thing.

मृषावादी THE FALSE

४६. तं च पुण वयंति केई अलियं पावा असंजया अविरया कवड–कुडिल–कडुय–चडुलभावा कुद्धा लुद्धा भया य हस्सट्ठिया य सक्खी चोरा चारभडा खंडरक्खा जियजूयकरा य गहियगहणा कक्क–कुरुग–कारगा, कुलिंगी, उवहिया वाणियगा य कूडतुल–कूडमाणी कूडकाहावणोवजीविया पडगारका, कलाया, कारुइज्जा वंचणपरा चारियचाडुयार–णगरगुत्तिय–परिचारगा दुट्ठवाइसूयग–अणबल–भणिया य पुव्वकालियवयणदच्छा साहसिया लहुस्सगा असच्चा गारविया असच्चट्ठावणाहिचित्ता उच्चच्छंदा अणिग्गहा अणियत्ता छंदेणमुक्कवाया भवंति अलियाहिं जे अविरया।

४६. यह असत्य कितनेक पापी रात–दिन पापकर्म करने वाले संयमहीन, सर्वविरति और देशविरति से रहित,कपट के कारण कुटिल, कटु स्वभाव वाले और चंचल चित्त वाले, क्रोध से अभिभूत, लोभ के वशीभूत, अनेक प्रकार के भयों से त्रस्त स्वयं भयभीत और अन्य को भय उत्पन्न करने वाले, हँसी–मजाक करने वाले, झूठी गवाही देने वाले, चोर, गुप्तचर–जासूस, खण्डरक्ष–राजकर या चुंगी वसूल करने वाले, जुआ में हारे हुए–जुआरी, गिरवी माल को हजम करने वाले, कपट से किसी बात को बढ़ा–चढ़ा कर कहने वाले, मिथ्या मत वाले वेषधारी, छल करने वाले, वणिक्, खोटा नापने–तोलने वाले, नकली सिक्कों से आजीविका चलाने वाले, जुलाहे, सुनार–कारीगर, दूसरों को ठगने वाले, दलाल, चाटुकार–खुशामदी, नगररक्षक मैथुन–सेवी–स्त्रियों को बहकाने वाले, खोटा पक्ष लेने वाले, चुगलखोर, साहूकार के ऋण सम्बन्धी तकाजे से दबे हुए, कर्जदार, किसी के बोलने से पूर्व ही उसके अभिप्राय को ताड़ लेने वाले, साहसिक–सोच–विचार किये बिना ही प्रवृत्ति करने वाले, निस्सत्त्व हीन–अधम, हीन, सत्पुरुषों का अहित करने वाले–दुष्ट जन, अहंकारी, असत्य की स्थापना में चित्त को लगाये रखने वाले, अपने को उत्कृष्ट बताने वाले, निरंकुश, नियमहीन और बिना विचारे मनमाना असंबद्ध बोलने वाले लोग, जो असत्य से विरत नहीं हैं, वे (असत्य) बोलते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

46. Falsehood is in the nature of several sinners who are devoid of self-restraint. They have adopted neither ascetic discipline nor vows of a householder. They are crooked because of deceitful nature. They are harsh by nature and have a wavering mind. They remain engrossed in anger and greed. They are under influence of many types of fear and create fear in others also. They are clowns. They depose falsely as a witness. They are thieves, spies, collectors of octroi duty and taxes. They are gamblers who have incurred losses. They are dishonest as they misappropriate property pledged by others. They in a deceitful manner, make mountain of a molehill. They wear the dress of a true saint but have wrong faith. They are cheaters. They measure and weigh things in an untrue manner. They earn their livelihood by passing counterfeit coins. They are weavers or goldsmiths, who deceive others. They are brokers. They falsely praise others. They are guardians of the town engaged in sex by misleading the women. They support the wrong side. They backbite. They are under debt. They understand the purport of others attitude before he speaks. They act without properly considering its likely consequences. They are mean. They do injustice to the lovers of true. They are haughty. They keep engaged in establishing falsehood. They show themselves as most worthy persons. They are without any control of elders. They do not follow any code. They talk incoherently and without prior consideration. They are not liberated from the clutches of falsehood. Such people embrace falsehood.

मृषावादी–नास्तिकवादी का मत **PHILOSOPHY OF SPEAKERS OF FALSEHOOD**

४७. अवरे णत्थिगवाइणो वामलोयवाई भणंति–सुण्णं ति, णत्थि जीवो, ण जाइ इह परे वा लोए, णय किंचिवि फुसइ पुण्णपावं, णत्थि फलं सुकयदुक्कयाणं, पंचमहाभूइयं सरीरं भासंति, हे वायजोगजुत्तं।

पंच य खंधे भणंति केइ, मणं य मणजीविया वदंति, वाउजीवोत्ति एवमाहंसु, सरीरं साइयं सणिधणं, इह भवे एगभवे तस्स विप्पणासम्मि सव्वणासोत्ति, एवं जंपंति मुसावाई।

तम्हा दाण–वय–पोसहाणं तव–संजम–बंभचेर–कल्लाणमाइयाणं णत्थि फलं, ण वि य पाणवहे अलियवयणं ण चेव चोरिक्ककरणं परदारसेवणं वा सपरिग्गह–पावकम्मकरणं वि णत्थि किंचि ण णेरइय–तिरिय–मणुयाण जोणी, ण देवलोगो वा अत्थि, ण य अत्थि सिद्धिगमणं, अम्मापियरो णत्थि, ण वि अत्थि पुरिसकारो, पच्चक्खाणमवि णत्थि, ण वि अत्थि कालमच्चू य, अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा णत्थि, णेवत्थि केइ रिसओ धम्माधम्मफलं च णवि अत्थि किंचि बहुयं च थोवगं वा, तम्हा एवं विजाणिऊण जहा सुबहु इंदियाणुकूलेसु सव्वविसएसु वट्टह, णत्थि काइ किरिया वा अकिरिया वा एवं भणंति णत्थिगवा–इणो वामलोयवाई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. दूसरे, नास्तिकवादी, जो लोक में विद्यमान वस्तुओं को भी अवास्तविक अथवा विपरीत रूप में कहने के कारण-'वामलोकवादी' कहलाते हैं। उनका कथन इस प्रकार है-''यह जगत् शून्य (सर्वथा असत्) है, क्योंकि जीव का अस्तित्व नहीं है। वह मनुष्यभव में या देवादि-परभव में नहीं जाता। वह पुण्य-पाप का किंचित् भी स्पर्श नहीं करता। सुकृत-पुण्य या दुष्कृत-पाप का (सुख-दुःख रूप) फल भी नहीं है। यह शरीर पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से बना हुआ है। वायु के निमित्त से वह सब क्रियाएँ करता है। कुछ लोग कहते हैं-श्वासोच्छ्वास की हवा ही जीव है।

कुछ (बौद्ध) लोगों का कथन है कि यह आत्मा पाँच स्कन्ध रूप हैं। कोई मन को ही जीव (आत्मा) मानते हैं। कोई वायु को ही जीव के रूप में स्वीकार करते हैं। किन्हीं-किन्हीं का मन्तव्य है कि शरीर सादि और सान्त है-शरीर का उत्पाद और विनाश हो जाता है। यह भव ही एक मात्र भव है। इस भव का समूल नाश होने पर सर्वनाश हो जाता है। अर्थात् आत्मा जैसी कोई वस्तु शेष नहीं रहती। इस प्रकार मृषावादी लोग कहते हैं। दान देना, व्रतों का आचरण करना, पौषध की आराधना करना, तपस्या करना, संयम का आचरण करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना आदि कल्याणकारी अनुष्ठानों का (कुछ भी) फल नहीं होता। प्राणवध और असत्यभाषण भी अशुभ फलदायक नहीं हैं; चोरी और परस्त्री सेवन भी कोई पाप नहीं हैं। परिग्रह और अन्य पापकर्म भी निष्फल हैं अर्थात् उनका भी कोई अशुभ फल नहीं होता। नारकों, तिर्यंचों और मनुष्यों की योनियाँ नहीं हैं। देवलोक भी नहीं है। मोक्ष-गमन या मुक्ति भी नहीं हैं। माता-पिता भी नहीं हैं। पुरुषार्थ भी कोई चीज नहीं हैं अर्थात् पुरुषार्थ कार्य की सिद्धि में कारण नहीं है। प्रत्याख्यान त्याग भी नहीं है। भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल नहीं हैं और न मृत्यु है। अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी कोई नहीं होते। न कोई ऋषि है, न कोई मुनि है। धर्म और अधर्म का थोड़ा या बहुत-किंचित् भी फल नहीं होता। इसलिए ऐसा जानकर इन्द्रियों के अनुकूल (रुचिकर) सभी विषयों में प्रवृत्ति करो-किसी प्रकार के भोग-विलास से परहेज मत करो। न कोई शुभ क्रिया है और न कोई अशुभ क्रिया है। इस प्रकार लोक के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ विपरीत मान्यता वाले नास्तिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए इस प्रकार का मिथ्या कथन करते हैं।

47. The second category is Nastikavadi. The people who pronounce imaginary even these substances, which are actually existing in the world, or describe them in an opposite manner are called vaamalokavadi. Their philosophy is that this world was always unreal because Jiva has no existence. The soul does not transmigrate to human state or celestial state of existence. It does not commit any merit or demerit. There is no cosequence of good deeds or bad deeds. This body is made of five elements—earth, water, fire, air and space. It does various activities because of the air. Some people say the air we breath is Jiva.

Some people (the Buddhists) say that the soul is a formation of five skandhas. Some believe that only mind is Jiva. Some accept air as Jiva. Some believe that the body has a beginning and an end. The body takes

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 4

Illustration No. 4

मृषावाद का स्वरूप (1)

मृषावाद का स्वरूप बताते हुए शास्त्रकार ने सर्वप्रथम नास्तिकवाद का वर्णन किया है।

नास्तिकवाद—नास्तिक मतावलम्बी जीव (आत्मा) को नहीं मानते। उनकी मान्यता है कि आत्मा जैसी कोई भी सत्ता इस जगत् में नहीं है। यह शरीर—**पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश**—इन पाँच पंचभूतों से मिलकर बना है। **पृथ्वी से हड्डी, जल से रक्त, तेजस् (अग्नि) से पाचन तन्त्र, वायु से श्वासोच्छ्वास और आकाश से रोम छिद्रों का** निर्माण हुआ है। वे नास्तिकवादी स्वर्ग, नरक, जीवात्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते हैं। *—सूत्र 47, पृ. 81*

असद्भाववाद—इन मतावलम्बियों का यह मानना है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा ने जल का निर्माण किया और उसमें बीज डाला, बीज सूर्य के सदृश्य स्वर्णमय अण्डा बना। फिर स्वयं ही संकल्प रूप ध्यान से अण्डे के दो टुकड़े किये। उन दो टुकड़ों में से ऊपर के टुकड़े से स्वर्ग और नीचे के टुकड़े से पृथ्वी बनाई। अण्डे के मध्य भाग से आकाश, आठों दिशाएँ और समुद्र का निर्माण किया।

कुछ प्राचीन शास्त्रों में असद्भाववाद की व्याख्या इस प्रकार दी गई है—सर्वप्रथम इस असत् जगत् में अंकुरित बीज रूपी स्थूल आकार की रचना हुई। वह बीज आगे चलकर अण्डा बना। अण्डे के दो टुकड़े हुये। एक टुकड़ा (कपाल) चाँदी का और एक टुकड़ा (कपाल) स्वर्णमय बना। चाँदी के टुकड़े से पृथ्वी बनी, स्वर्ण के टुकड़े से स्वर्ग बना। गर्भ के वेष्टन से पर्वत बने, थोड़े पतले वेष्टन से मेघ और तुषार बने, अत्यन्त पतले वेष्टन से नदियों का निर्माण हुआ। अण्डे के अन्दर से जो गर्भ रूप उत्पन्न हुआ, वह सूर्य बना। *—सूत्र 48, पृ. 90*

FALACIOUS DOCTRINES EXPLAINED (1)

Explaining falsity or wrong faith, the author has described many doctrines. First of them is Nastikavad.

Nastikavad – The followers of this school do not believe in soul (jiva). They believe that anything like soul does not exist in this world. This body is made up of five elements - earth, water, fire, air and space. Bones are made from earth element, blood from water, breathing from air, digestive system from fire and body pores from space. Like that of soul, the Nastikavadis do not accept the existence of any heaven and hell. — ***Sutra-47, page 81***

Asadbhavavad – The followers of this doctrine believe that Brahma first of all created water and put a seed in it. That seed turned into a golden egg like the sun. Brahma then did penance within that egg for one year. He broke the egg into two parts with the power of his meditation. He turned the upper part into heaven and made the earth from the lower part. Sky, eight cardinal directions and the oceans, the eternal place of water, were created from the middle part of the egg.

Some ancient texts define Asadbhavavad as -- In this universe first of all a gigantic sprouted seed was created. This seed turned into an egg and then it split into two pieces, one of silver and the other of gold. The silver piece turned into the earth and the golden one into heaven. The thicker yoke matter turned into mountains and thinner into clouds and snow. Even more thin matter turned into rivers. The fetus born out of the egg became the sun.

— ***Sutra-48, page 90***

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

birth and also comes to an end. The present life is the only life-span. *With the end of this life-span there is the total extinction of that Jiva.* In other words nothing like soul exists thereafter. The people who are Mrishavadi (the pronouncers of falsehood) speak in this manner. They say that giving in charity, adopting vows, observing paushadh fast, following ascetic discipline, observing celibacy and the like which are normally considered as practices of public welfare, do not lead to any result. Even violence, killing and speaking false does not produce any bad result. There are no states of hellish beings, human beings and animal life; there is no abode of celestial beings. There is nothing like liberation or salvation. There is no mother or father. There is nothing like human effort. In other words human effort is not the cause of any success. There is no reality in taking vow of discarding any thing or activity (pratyakhyan). There is nothing that can be termed as past, present or future. There is nothing like death. There never occur omniscient (Arihant), Chakravarti, Baladev or Vasudev. No one is a rishi or a muni. There is no fruit big or small of any religious activity or of irreligious activity; so keeping these facts in mind, one should behave as one's sense organs desire. Never discard any opportunity of enjoyment. No activity is good or bad. Thus these people are ignorant about the real nature of the universe. They have a wrong belief. They follow untrue path (nastik) and they make false pronouncement.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में नास्तिकवादियों की मान्यताओं का दिग्दर्शन कराया गया है। इससे पूर्व के सूत्र में विविध प्रकार के लौकिक जनों का, जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए, आजीविका, व्यापार-धंधा, परिवार-पालन आदि के लिए असत्यभाषण करते हैं, उनका कथन किया गया था।

एक व्यक्ति किसी कारण स्वार्थ आदि से जब असत्य भाषण करता है तब वह प्रधानतः अपना ही अहित करता है। किन्तु जब कोई दार्शनिक असत्य पक्ष की स्थापना करता है, असत्य को सिद्धान्त रूप में स्थापित करता है। तब यह असत्य विराट रूप धारण कर लेता है। वह मृषावाद दीर्घकाल पर्यन्त प्रचलित रहता है और उससे अगणित लोग भ्रान्त होकर दुराचरण की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार की प्ररूपणा करने वाला न जाने कितने लोगों को, कितने काल तक मिथ्या धारणाओं का शिकार बनाता रहता है। ऐसी धारणाएँ व्यक्ति के अपने जीवन को तो कलुषित करती ही हैं और साथ ही सामाजिक जीवन को भी निरंकुश, स्वेच्छाचारी बना देती हैं। अतएव वैयक्तिक असत्य की अपेक्षा दार्शनिक असत्य हजारों-लाखों गुणा अनर्थकारी है।

शून्यवादी-बौद्ध दर्शन की अनेक शाखाओं में एक 'शून्यवादी' शाखा या सम्प्रदाय है। इसके मतानुसार किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं है। जैसे स्वप्न में अनेकों दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु जागृत होने पर या वास्तव में उनकी कहीं भी सत्ता नहीं होती। इसी प्रकार प्राणी भ्रम के वशीभूत होकर नाना पदार्थों का अस्तित्व समझता है, किन्तु भ्रमभंग होने पर वह सभी कुछ शून्य मानता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीकाकार ने शून्यवाद का खण्डन करते हुए कहा है-कि यदि समग्र विश्व शून्य रूप है तो शून्यवादी स्वयं भी शून्य है या नहीं ? शून्यवादी यदि शून्य है तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि शून्यवादी कोई है ही नहीं। इसी प्रकार उसके द्वारा प्ररूपित शून्यवाद यदि सत् है तो शून्यवाद समाप्त हो गया और शून्यवाद असत् है तो भी उसकी समाप्ति ही समझनी चाहिए। इस प्रकार शूंन्यवाद युक्ति से विपरीत तो है ही, प्रत्यक्ष अनुभव से भी विपरीत है।

नास्तिकवाद-शून्यवाद के पश्चात् अनात्मवादी नास्तिकों के मत का उल्लेख किया गया है। अनात्मवादियों की मान्यता है कि जीव अर्थात् आत्मा की स्वतन्त्र कोई सत्ता नहीं है। जो कुछ भी है वह पाँच भूत ही हैं। पृथ्वी, जल, तेजस् (अग्नि), वायु और आकाश, ये पाँच भूत हैं। इनके संयोग से शरीर का निर्माण होता है। इन्हीं से चैतन्य की उत्पत्ति हो जाती है। चैतन्य शरीराकार परिणत भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं के साथ नष्ट हो जाता है। जैसे जल का बुलबुला जल से उत्पन्न होकर जल में ही विलीन हो जाता है, उसका पृथक् अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार चैतन्य का भी पंच भूतों से अलग अस्तित्व नहीं है।

जब आत्मा की ही पृथक् सत्ता नहीं है तो परलोक के होने की बात ही निराधार है। अतएव न जीव मरकर फिर जन्म लेता है, न पुण्य और पाप का अस्तित्व है। सुकृत और दुष्कृत का कोई फल किसी को नहीं भोगना पड़ता।

नास्तिकवादियों की उक्त मान्यता को असत्य ठहराते हुए टीकाकार कहते हैं-

नास्तिकों की यह मान्यता प्रत्यक्ष अनुभव से भी अप्रमाणिक है। अनुमान और आगम प्रमाणों से भी वह असत्य सिद्ध होती है।

यह निर्विवाद है कि कारण में जो गुण विद्यमान होते हैं, वही गुण कार्य में आते हैं। ऐसा कदापि नहीं होता कि जो गुण कारण में नहीं हैं, वे अकस्मात् कार्य में उत्पन्न हो जायें। मिष्ठान्न तैयार करने के लिए गुड़, शक्कर आदि मिष्ट पदार्थों का प्रयोग किया जाता हैं। गुड़-शक्कर के बदले राख या धूल से मिठाई नहीं बनती।

इस सिद्धान्त के आधार पर पाँच भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति की मान्यता पर विचार किया जाये तो यह मान्यता कपोल-कल्पित ही सिद्ध होती है। नास्तिकों से पूछना चाहिए कि जिन पाँच भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति कही जाती है, उनमें पहले से चैतन्यशक्ति विद्यमान है अथवा नहीं? यदि विद्यमान नहीं है तो उनसे चैतन्यशक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। क्योंकि जो गुण, वस्तु में नहीं होता वह उसके फल में भी नहीं हो सकता। यदि बीज में अंकुरित होने की क्षमता नहीं है, तो उससे कोई भी फसल उत्पन्न नहीं हो सकती।

अनात्मवादी कहते हैं-आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। इन्द्रियों से उसका परिज्ञान नहीं होता। अतएव मन से भी वह नहीं जाना जा सकता, क्योंकि इन्द्रियों द्वारा जाने हुए पदार्थ को ही मन जान सकता है। अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। इस प्रकार किसी भी रूप में आत्मा का प्रत्यक्ष न होने से वह अनुमान के द्वारा भी नहीं जाना जा सकता। आगम परस्पर विरोधी प्ररूपणा करते हैं, आत्मा के अस्तित्व को कैसे प्रमाणित कर सकते हैं ?

टीकाकार का प्रत्युत्तर है-अनात्मवादियों का यह कथन तर्क और अनुभव से असंगत है। सर्वप्रथम तो 'मैं हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ' इस प्रकार जो अनुभूति होती है, उसी से आत्मा की सिद्धि हो जाती है। घट, पट आदि चेतनाहीन पदार्थों को ऐसी प्रतीति नहीं होती। अतएव 'मैं' की अनुभूति से उसका कोई विषय सिद्ध होता है और जो 'मैं' शब्द का विषय (वाच्य) है, वही आत्मा कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुमान और आगम प्रमाण से भी आत्मा का अस्तितव सिद्ध होता है। एक ही माता-पिता के एक समान वातावरण में पलने वाले दो पुत्रों में अनेक प्रकार की विषमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, वह किसी अदृष्ट कारण से ही होती है। वह अदृष्ट कारण पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्म ही हो सकता है और पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्म का फल आत्मा का पूर्व जन्म में अस्तित्व माने बिना नहीं सिद्ध हो सकता।

आत्मा की सिद्धि हो जाने पर परलोक-पुनर्जन्म, पाप-पुण्य, पाप-पुण्य का फल, विविध योनियों में जन्म लेना आदि भी सिद्ध हो जाता है।

पूर्वजन्म की स्मृति की घटनाएँ आज भी अनेकानेक घटित होती रहती हैं। ये घटनाएँ आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को अभ्रान्त रूप से सिद्ध करती हैं।

पंचस्कन्धवाद-बौद्ध दर्शन में पाँच स्कन्ध माने गये हैं-

(१) **रूप**-पृथ्वी, जल आदि तथा इनके रूप, रस आदि।

(२) **वेदना**-सुख, दुःख आदि का अनुभव।

(३) **विज्ञान**-विशिष्ट ज्ञान अर्थात् रूप, रस, घट, पट आदि का ज्ञान।

(४) **संज्ञा**-प्रतीत होने वाले पदार्थों का अभिधान-नाम।

(५) **संस्कार**-पुण्य-पाप आदि धर्मसमुदाय।

बौद्ध दर्शन के अनुसार समस्त जगत् इन पाँच स्कन्धों का ही प्रपंच है। इनके अतिरिक्त आत्मा का पृथक् रूप से कोई अस्तित्व नहीं है। यह पाँचों स्कन्ध क्षणिक हैं।

बौद्धों में चार परम्पराएँ हैं-(१) वैभाषिक, (२) सौत्रान्तिक, (३) योगाचार और, (४) माध्यमिक। वैभाषिक सभी पदार्थों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, किन्तु सभी को क्षणिक मानते हैं। क्षण-क्षण में आत्मा का विनाश होता रहता है, परन्तु उसकी सन्तति-सन्तानपरम्परा निरन्तर चालू रहती है। उस सन्तानपरम्परा का सर्वथा उच्छेद हो जाना-बन्द हो जाना ही मोक्ष है। सौत्रान्तिक सम्प्रदाय के अनुसार जगत् के पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। उन्हें अनुमान द्वारा ही जाना जाता है। योगाचार पदार्थों को असत् मानकर सिर्फ ज्ञान की ही सत्ता स्वीकार करते हैं और वह ज्ञान क्षणिक है। माध्यमिक सम्प्रदाय ज्ञान की भी सत्ता नहीं मानता। वह शून्यवादी है। वह मानता है न ज्ञान है और न ज्ञेय है। शून्यवाद के अनुसार वस्तु सत् नहीं, असत् भी नहीं, सत्-असत् भी नहीं और सत्-असत् नहीं ऐसा भी नहीं। तत्त्व इन चारों कोटियों से विनिर्मुक्त है।

वायु-जीववाद-कुछ लोग वायु को-प्राणवायु को ही जीव स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि जब तक श्वासोच्छ्वास चालू रहता है तब तक जीवन है और श्वासोच्छ्वास का अन्त हो जाना ही जीवन का अन्त हो जाना है। उसके पश्चात् परलोक में जाने वाला कोई जीव-आत्मा शेष नहीं रहता।

किन्तु विचारणीय है कि वायु जड़ है और जीव चेतन है। वायु में स्पर्श आदि जड़ के धर्म स्पष्ट प्रतीत होते हैं, जबकि जीव स्पर्श आदि से रहित है। ऐसी स्थिति में वायु को ही जीव कैसे माना जा सकता है?

आत्मा की सत्ता या नित्य सत्ता न मानने के फलस्वरूप इस प्रकार की आत्मघाती व समानघाती धारणाएँ पनपती हैं कि परभव नहीं है। शरीर का विनाश होने पर सर्वनाश हो जाता है। अतएव दान, व्रत, पौषध, तप,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयंम, ब्रह्मचर्य आदि का आचरण निष्फल है। इनके करने का कुछ भी शुभ फल नहीं होता। साथ ही हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि कुकृत्यों का भी कोई दुष्फल नहीं होता।

नरक है, स्वर्ग है, मोक्ष है, इत्यादि मान्यताएँ कल्पनामात्र हैं। अतएव इन्द्रियों के विषयों का सेवन करने में संकोच मत करो-मौज करो, मस्त रहो, धर्म-अधर्म का विचार त्याग दो।

इस प्रकार आत्मा का सनातन अस्तित्व स्वीकार न करने से जो विचारधारा उत्पन्न होती है, वह कितनी भयावह है ! आत्मा को घोर पतन की ओर ले जाने वाली तो है ही, सामाजिक सदाचार, नैतिकता, प्रामाणिकता और शिष्टाचार के लिए भी चुनौती है ! यदि संसार के सभी मनुष्य इस नास्तिकवाद को मान्य कर लें तो संसार में अव्यवस्था और अशान्ति फैल जायेगी। सामाजिक मर्यादाएँ ध्वस्त हो जायेंगी।

Elaboration—In the present lesson, the beliefs of the followers of Nastikavad (philosophy of non-existence) has been depicted. In the earlier aphorism, the conduct of those people who adopt falsehood for personal benefit, livelihood, trade and commerce, nourishment of their family and the like was narrated.

When a person speaks untrue due to any selfish motive and the like he primarily incurs his own loss in welfare. But when a philosopher establishes a wrong thought or supports a wrong philosophical diction, his falsehood takes a gigantic shape. That wrong philosophical thought remains prevalent for a very long period and, misled by it, many people engage themselves in bad conduct. Thus propounders of such a philosophical thought influence indefinite number of people for an indefinite period with their wrong notions. Such a false philosophy spoils their life and also turns the social life uncontrollable and irresponsible in the set up. So philosophical falsehood is million times more dangerous as compared to personal falsehood.

Shunyavadi—The Buddhist philosophy has many branches. One of them is Shunyavadi. According to it there is nothing in existence. Just as one sees many things in dream but when one wakes up he finds that actually there is nothing in existence, similarly human beings out of ignorance consider the existence of various substances; when that ignorance withers away, they start believing that all that was simply nothing (Shunya).

Disapproving Shunyavad, the commentator has said, 'In case the entire world is by nature nothing, the propounder of this philosophy is also nothing himself. It would mean, in other words, that there is no such person. So the philosophy propounded by him is also non-existent. Then the philosophy of Shunyavad dies its own death. In case

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Shunyavad is unreal, than also it should be understood that it has ended. Thus Shunyavad does not stand the test of reason. It is against the practical experience also.

Nastikavad—(Philosophy of disbelief in existence of soul) after describing Shunyavad, the philosophy of those who do not believe in existence of soul has been narrated. They believe that Jiva or soul has no independent existence. Whatever is there, it is five elements. Earth, water, fire, air and space are the said five elements with the mixture of these elements, the body is formed. Consciousness also is the product of these elements. Awakening generates from the five elements transformed in the form of physical body and is destroyed with the destruction of the body. Just as a bubble of water generates from water and ends in the water itself and has no independent existence, similarly consciousness (soul) has no existence independent from the five elements.

When the soul has no independent existence, the theory of existence of the next world is reasonless. So, after death, Jiva does not take birth again and there is no existence of piety (punya) and sins (paap). There is no fruit of good and bad deeds and nobody has to bear any such fruit.

Regarding this belief of disbelievers in the existence of soul (Nastikavadis), the commentator states as follows—

Even by practical experience, we see that this belief is irrational. Agams and logic also hold it untrue.

It is accepted beyond doubt that the traits, which are formed in any work exist in its cause. It is never true that the qualities, which are not present in the cause, all of a sudden appear in the work resulting from that cause. To prepare sweets, sugar and the like are needed. Sweets cannot be prepared by using ash or dust instead of sugar.

In case the belief of generation of soul from five elements is considered on the basis of this principle, it shall be quite evident, that the said theory does not hold good. We should ask Nastikavadis whether consciousness already exists or not in five elements that according to them generate soul (consciousness). In case the consciousness is not in them, they cannot produce consciousness because only those qualities, which are in the cause can be in the result. If the seed does not possess the capability of generating, it cannot produce any crop.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Disbelievers of soul (Anatmavadis) say that there is no proof to establish independent existence of soul. Sense organs do not provide its knowledge. So it cannot be known through the mind also since the mind can only think of those objects, which are known by senses. There is no such substance which is visible beyond the field for senses. Since soul is not directly visible in any form, it can be known through estimate. Scriptures are giving description, which contradict themselves. So how can the existence of soul be established.

The commentator in reply states. This statement of non-believers of soul is against logic and practical experience. First of all the experience 'I am, I am happy, I am unhappy' and the like itself proves the existence of soul. The substances like pot, cloth and others, which do not possess consciousness cannot have such a feeling. So the existence of soul is established with the very experience of I. The subject of 'I' is in fact the soul.

Even logic and Agams prove the existence of soul. Two sons who belong to the same father and mother and who have been brought up in the same or similar environment are not identical. Disparities are noticed in them. There must be some latent cause for it. That cause can only be the Karmas collected in earlier lives, merit Karma or demerit Karma. The existence of merit or demerit Karmas of earlier lives cannot be proved without accepting the existence of soul in earlier life.

After proving the existence of soul, the life after death, rebirth, merit and demerit, consequences of merit and demerit Karmas, taking birth in different states of existence and the like also stands established.

Even now many events reminding the memories of previous lives are seen. Such events establish beyond doubt independent existence of soul.

Buddhism believes in five Skandhas—

(1) **Appearance (Roop)**—Earth, water and the like and their appearance, taste and the like.

(2) **Feeling (Vedana)**—Experience of pleasure pain and the like.

(3) **Vijnan (Special Knowledge)**—Knowledge of appearance, taste, pot, cloth and the like.

(4) **Name (Sanjna)**—The name or caption of substances, which are experienced or felt.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(5) **Sanskar (Impressions)**—Merit, demerit and other religious activities.

According to Buddhist thought the entire world is based on these five Skandhas. There is no existence of soul beyond these Skandhas. These five Skandhas are momentary.

There are four traditions among the Buddhists—(1) Vaibhavik, (2) Sautrantik, (3) Yogachar, and (4) Madhyamik. Vaibhavik believe in the existence of all the substances but according to them all of these are momentary. The soul is dying every moment but its tradition of generation continues uninterrupted. The total extinction or stoppage of that tradition is liberation (mokhsa). According to Sautrantik branch of Buddhism, the substaces in the world cannot be directly visible but they can be known through logical estimation (Anumaan). Yogachar believes that all the substances are unreal. Only knowledge is real and that knowledge is momentary. According to Madhyamik branch, there is no existence of even knowledge. It is Shunyavadi. It believes that there is neither knowledge nor substance to be known. According to Shunyavad, the substance is neither existent nor non-existent. It is not even existent and non-existent. It cannot also be said that it is not existent and non-existent. It is beyond all these four interpretations.

A detailed discussion of these disturbing beliefs is not being done here, as it needs exhaustive narration. In the scriptures, it has been proved that this view does not hold good.

Vayu-Jivavad—Some people believe that the air, the breath is itself Jiva. According to them the life exists till one breathes. With the end of breathing process, the life also ends. Thereafter there is no soul that is to go to the next world for re-birth.

But it is worth consideration that air is matter while Jiva is consciousness. Air has qualities like touch and the taste; which are qualities of matter, whereas, Jiva does not have these physical attributes like touch. In such a condition how can it be believed that air itself is Jiva.

Such self-distinctive beliefs arise due to disbelief in the existence of soul or permanent existence of soul and that there is no life after death. They believe that with the destruction of the body, there is destruction of every thing. So charity, ascetic practice, paushadh-fast, vows, ascetic

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

restraint, celibacy and the like are all useless. They do not produce any good result. Simultaneously violence, falsehood, stealing, non-celibacy, attachments and the like which are considered bad also go in vain without awarding any ill fruit of such a conduct.

The belief in existence of hell, heavenly abode, liberation and the like is all a creation of imagination. So one should not hesitate in satisfying his senses. He should enjoy life. He should remain absorbed in physical and sensual enjoyments. He should discard pondering over what is dharma and what is adharma.

The thinking process that arises by not accepting the age-old existence of soul is extremely frightening. It causes downfall of the soul. It is a challenge to social conduct, morality, ethical behaviour and good conduct. In case all the human beings start believing this philosophy of Nastikavad, there shall be disorder all around in the world. All the social restraints and code of conduct shall wither away.

मृषावादी–असद्भाववादी का मत BELIEF OF ASADBHAVAVADI

४८. इमं वि बितियं कुदंसणं असब्भाववाइणो पण्णवेंति मूढा–संभूओ अंडगाओ लोगो।

सयंभुणा सयं य णिम्मिओ।

एवं एयं अलियं पयंपंति।

४८. (वामलोकवादी नास्तिकों के अतिरिक्त) कोई–कोई असद्भाववादी–मिथ्यावादी मूढ़ जन दूसरा कुदर्शन–मिथ्यामत इस प्रकार कहते हैं–

यह लोक अण्डे से उद्भूत–प्रकट हुआ है।

इस लोक का निर्माण स्वयं स्वयंभू ने किया है।

इस प्रकार वे मिथ्या कथन करते हैं।

48. (In addition to Vamlokavadi nastiks there are non-believers in existence of soul). These are believers in wrong faith namely asadbhavavadi. They propound as follows—

This world has originated from an egg.

Svayambhu himself has created this world.

Thus they speak false doctrine.

विवेचन : सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीनकाल से भिन्न–भिन्न धारणाएँ, मान्यताएँ चलती रहीं हैं। उसमें से यहाँ दो मतों का उल्लेख किया गया है तथा यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यह वाद–कथन वास्तविक नहीं है। अज्ञानी जन इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी-किसी की मान्यता है कि यह समग्र जगत् अण्डे से उत्पन्न हुआ है और स्वयंभू ने इसका निर्माण किया है। अंडसृष्टि के मुख्य दो प्रकार हैं-एक प्रकार छान्दोग्योपनिषद् (३/१९) में बतलाया गया है और दूसरा प्रकार मनुस्मृति में दिखलाया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार सृष्टि से पहले प्रलयकाल में यह जगत् असत् अव्यक्त था। फिर वह सत् अर्थात् नाम रूप कार्य की ओर अग्रसर हुआ। तत्पश्चात् यह अंकुरित बीज के समान कुछ-कुछ स्थूल बना। आगे चलकर वह जगत् अण्डे के रूप में बन गया। एक वर्ष तक वह अण्डे के रूप में बना रहा। एक वर्ष बाद अण्डा फूटा। अण्डे के कपालों (टुकड़ों) में से एक चाँदी का और दूसरा सोने का बना। जो टुकड़ा चाँदी का था उससे यह पृथ्वी बनी और सोने के टुकड़े से ऊर्ध्वलोक-स्वर्ग बना। गर्भ का जो जरायु (वेष्टन) था उससे पर्वत बने और जो सूक्ष्म वेष्टन था वह मेघ और तुषार रूप में परिणत हो गया। उसकी धमनियाँ नदियाँ बन गईं। जो मूत्राशय का जल था वह समुद्र बन गया। अण्डे के अन्दर से जो गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ वह सूर्य बना।

यह स्वतन्त्र अंडे से बनी सृष्टि है। दूसरे प्रकार की अंडसृष्टि का वर्णन मनुस्मृति में पाया जाता है वह भी लगभग इसी के समान हैं, जैसे-

पहले यह जगत् अन्धकार रूप था। यह तर्क-विचार से अतीत और पूरी तरह से प्रसुप्त-सा अज्ञेय था।

तब अव्यक्त रहे हुए भगवान स्वयंभू पाँच महाभूतों को प्रकट करते हुए स्वयं प्रकट हुए।

उसने ध्यान करके अपने शरीर से अनेक प्रकार के जीवों को बनाने की इच्छा से सर्वप्रथम जल का निर्माण किया और उसमें बीज डाल दिया। वह बीज सूर्य के समान प्रभा वाला स्वर्णमय अण्डा बन गया। उससे सर्वलोक के पितामह ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए। एक वर्ष तक उस अण्डे में रहकर उस भगवान ने स्वयं ही अपने ध्यान से उस अण्डे के दो टुकड़े कर दिये। उन दो टुकड़ों से उसने स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण किया। मध्यभाग से आकाश, आठ दिशाओं और जल का शाश्वत स्थान निर्मित किया।

इस क्रम के अनुसार पहले भगवान स्वयंभू प्रकट हुए और जगत् को बनाने की इच्छा से अपने शरीर से जल उत्पन्न किया। फिर उसमें बीज डालने से वह अण्डाकार हो गया। ब्रह्मा या नारायण ने अण्डे में प्रकट होकर उसे फोड़ दिया, जिससे समस्त संसार प्रकट हुआ। (चित्र पृष्ठ 82 के सामने देखें)

इन सब मान्यताओं को यहाँ मृषावाद में कहा गया है।

Elaboration—About the origin of the world, since ancient times, there have been different beliefs. Some of those beliefs have been narrated here. Further it has been clarified that there is no truth in these beliefs. Persons who lack real knowledge, say as under—

Some believe that the entire world has originated from an egg and Svayambhu has created it.

Creation from an egg has been primarily in two forms—one is mentioned in Chhandogyopanishad (3/9) and the other in Manu Smriti.

According to Chhandogyopanishad, before the creation of the world, it was non-substantive and invisible at the time of the holocast. Later it proceeded to have a substantive name. Later it became somewhat gross

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

just as a germinated seed. Further, it took the shape of an egg. For a year, it remained in the form of an egg. Thereafter that egg burst into two pieces—one part became that of silver and the other part bacome that of gold. The earth was formed from the silver external part of the egg and the higher world (the heavenly abode) was formed from the gold part of the egg. From the gross inner material in the egg, the mountains were formed and from the subtle matter the clouds and rain evolved. The nerves turned into rivers and the ocean was formed from the water in the urinary portion of the egg. The fetus which grew from the egg became the sun.

This is the description of creation from the egg independently.

The second description of creation of the world from the egg is in Manu Smriti which is also almost similar as the first instance. For instance—

At first the world was in the form of darkness. It was totally unknown, beyond any reason or thinking and completely asleep.

Then Lord Svayambhu who was till then invisible, appeared along with five elements (Bhutas).

With a desire to form various types of Jivas from his body, he first of all created water and put a seed in it. That seed took the shape of a golden egg shining like the sun. From it Brahma, the grandfather of the universe, appeared himself. He remained in that egg for a year and then with his thought-activity split that egg into two pieces. From the said two pieces, he created heaven and the earth. From the central portion he created space, eight directions and eternal place for water.

Thus, according to it, first of all Lord Swayambhu appeared and then with a desire to create the universe, he produced water from his body. Later when seed was put in it, it took the shape of an egg. Brahma (God) or Narayan appeared in it and then broke the egg. From it the entire Universe was created.

All these beliefs are termed here as concepts of falsehood.

प्रजापति द्वारा सृष्टि–सर्जन की मान्यता BELIEF OF CREATION BY PRAJAPATI

४९. पयावइणा इस्सरेण य कयं ति केई। एवं विण्हुमयं कसिणमेव य जगं ति केइ। एवमेगे वयंति मोसं एगे आया अकारओ वेदओ य सुकयस्स दुक्कयस्स य करणाणि कारणाणि सव्वहा सव्वहिं च णिच्चो य णिक्किओ णिग्गुणो य अणुवलेवओ त्ति विय एवमाहंसु असब्भावं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 5

Illustration No. 5

मृषावाद का स्वरूप (2)

प्रजापति द्वारा सृष्टि-सर्जन—मनुस्मृति में कहा गया है कि ब्रह्मा ने अपने देह के दो टुकड़े किये। एक से स्त्री बनी और एक से पुरुष। स्त्री ने एक विराट् पुरुष का निर्माण किया। उस विराट् पुरुष ने तप करके मनु का निर्माण किया। मनु से सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई।

ईश्वरवाद—ईश्वरवादी 'एक सर्वव्यापी स्वतन्त्र सत्ता को' ईश्वर मानते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर द्वारा जगत् का निर्माण किया गया है। वह मनुष्यों को उनके अच्छे-बुरे कर्मों का फल देता है। जिससे प्रेरित होकर मनुष्य स्वर्ग-नरक में जाता है और पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के सुख-दुःख पाता है। ईश्वर द्वारा दिये गये कर्म फलस्वरूप ही (प्राणी) जीव मनुष्य और पशु आदि योनियों में उत्पन्न होता है।

विष्णुमय जगत्—मृषावाद के एक और स्वरूप की व्याख्या करते हुये विष्णुमय जगत् की मान्यता के बारे में बताया गया है—**सर्व विष्णु मयं जगत्**—यह जल, स्थल, अग्नि, वायु व आकाश आदि सभी में विष्णु व्याप्त हैं यानि यह सारा जगत् ही विष्णुमय है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ विष्णु न हों।

उपरोक्त मान्यताओं को पिछले पृष्ठ पर चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

—सूत्र 49, पृ. 92

FALACIOUS DOCTRINES EXPLAINED (2)

Creation by Prajapati – Manusmriti states that Brahma divided his body into two parts; one became a woman and other a man. That woman created a gigantic man who in turn created Manu with the help of his penance. Manu then created the whole universe.

Ishwaravad – The followers of this doctrine believe in an all-pervading independent power called the God. The universe was created by the God. who is the instrumental cause of this universe. He awards fruits of good and bad deeds of humans. As a consequence man goes to the heaven or hell as well as enjoys or suffers in different ways on this earth. It is due to the God's will that a soul is born as a human or an animal according to its deeds.

Vishnu pervaded universe – Another fallacious doctrine described is the universe pervaded by Vishnu. It conveys that Vishnu pervades all this water, earth, fire, air and sky. There is nothing devoid of Vishnu.

— Sutra-49, page-92

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. कोई–कोई कहते हैं कि यह जगत् प्रजापति या ब्रह्मा ने बनाया है। किसी का कहना है कि यह समस्त जगत् विष्णुमय है। किसी की मान्यता है कि आत्मा अकर्त्ता है किन्तु (उपचार से) पुण्य और पाप (के फल) का भोक्ता है। सर्व प्रकार से तथा सर्वत्र देश–काल में इन्द्रियाँ ही कारण हैं। आत्मा (एकान्त) नित्य है, निष्क्रिय है, निर्गुण है और निर्लेप है। असद्‌भाववादी इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं।

49. Some thinkers declare that this world has been created by Prajapati or Brahma. Some say that the entire world is Lord Vishnu itself. Some believe that soul is not the doer but by default it has to experience the fruit of good and bad Karmas. In every form and every where during every period senses are the root cause of all activity. Soul is totally (throughout) permanent, non-doer (passive), free from all traits and without the influence of anything. Such a statement is made by Asadbhavavadi.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में अनेक मिथ्या मान्यताओं का उल्लेख किया गया है। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

प्रजापतिसृष्टि–मनुस्मृति में कहा है–ब्रह्मा ने अपने देह के दो टुकड़े किये। एक टुकड़े को पुरुष और दूसरे टुकड़े को स्त्री बनाया। फिर स्त्री में विराट् पुरुष का निर्माण किया। उस विराट् पुरुष ने तप करके जिसका निर्माण किया, वही मैं (मनु) हूँ, अतएव हे श्रेष्ठ द्विजो ! सृष्टि का निर्माणकर्त्ता मुझे समझो।

ईश्वरसृष्टि–ईश्वरवादी एक–अद्वितीय, सर्वव्यापी, नित्य, स्वतंत्र ईश्वर के द्वारा सृष्टि का निर्माण मानते हैं। ये ईश्वर को जगत का उपादानकारण नहीं, निमित्तकारण कहते हैं। ईश्वर को ही कर्मफल का प्रदाता मानते हैं। ईश्वर द्वारा प्रेरित होकर ही संसारी जीव स्वर्ग या नरक में जाता है।

किन्तु सृष्टि–रचना की मूल कल्पना ही कल्पना मात्र है। वास्तव में यह जगत् सदा काल से है और सदा काल विद्यमान रहेगा। कई दार्शनिक इस जगत् को विष्णुमय मानते हैं–**सर्वं विष्णु मयं जगत्**–अर्थात् जल–स्थल–पर्वत–अग्नि आदि में सर्वत्र विष्णु व्याप्त हैं।

विष्णुमय जगत् की मान्यता भी किसी युक्ति और प्रमाण से सिद्ध नहीं होती। अतः कल्पना मात्र है, क्योंकि जब जगत् नहीं था तो विष्णु कहाँ रहते थे ? उन्हें जगत्–रचना की इच्छा और प्रेरणा क्यों हुई ? अगर वे घोर अन्धकार में रहते थे, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था तो बिना उपादान–सामग्री के ही उन्होंने इतने विराट् जगत् की सृष्टि किस प्रकार कर डाली ?

सृष्टि रचना के विषय में अन्य अनेक प्रकार के मन्तव्य भी यहाँ बतलाए गये हैं। उन पर अन्यान्य दार्शनिक ग्रन्थों में विस्तार से चर्चाएँ की गई हैं। अतएव जिज्ञासुओं को उन ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए।

इस प्रकार ये सारी कल्पनाएँ ईश्वर के स्वरूप को दूषित करने वाली हैं। सब मृषावाद हैं।

एकात्मवाद–प्रस्तुत सूत्र में वेदान्त दर्शन सम्मत एकात्मवाद की मान्यता का उल्लेख करके उसे मृषावाद बतलाया गया है। एकात्मवादियों का कथन है–**एक एव हि भूतात्मा भूते–भूते व्यवस्थितः** अर्थात् संसार में आत्मा तो एक ही है, किन्तु वह अनेक रूपों में प्रतीत होता है–जिस प्रकार आकाश में चन्द्रमा एक होने पर भी भिन्न–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न पात्रों व जलाशयों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रतिभासित होता है। स्पष्टीकरण-एकान्तरूप से आत्मा को एक मानना प्रत्यक्ष से और युक्तियों से भी बाधित है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़ा-मकोड़ा, वनस्पति आदि के रूप में आत्मा का अनेकत्व प्रत्यक्षसिद्ध है। अगर आत्मा एकान्ततः एक ही हो तो एक का मरण होने पर सबका मरण और एक का जन्म होने पर सबका जन्म होना चाहिए। एक के सुखी या दुःखी होने पर सबको सुखी या दुःखी होना चाहिए। किसी के पुण्य-पाप पृथक् नहीं होने चाहिए। इस प्रकार सभी लौकिक एवं लोकोत्तर व्यवस्थाएँ नष्ट हो जायेंगी। अतएव एकान्त एकात्मवाद भी मृषावाद है।

अकर्तृवाद-सांख्यमत के अनुसार आत्मा अमूर्त्त, चेतन, भोक्ता, नित्य, सर्वव्यापक और अक्रिय है। वह अकर्त्ता है, निर्गुण है और सूक्ष्म है।

वे कहते हैं-न तो आत्मा बद्ध होता है, न उसे मोक्ष होता है और वह संसरण करता-एक भव से दूसरे भव में जाता है। मात्र नाना पुरुषों के आश्रित प्रकृति को ही संसार, बन्ध और मोक्ष होता है।

सांख्यमत में मौलिक तत्त्व दो हैं-पुरुष अर्थात् आत्मा तथा प्रधान अर्थात् प्रकृति। सृष्टि के आविर्भाव के समय प्रकृति से बुद्धितत्व, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, और पाँच तन्मात्र अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द तथा इन पाँच तन्मात्रों से पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों का उद्‌भव होता है। यह सांख्यसृष्टि की प्रक्रिया है।

सांख्य पुरुष (आत्मा) को नित्य, व्यापक और निष्क्रिय कहते हैं। अतएव वह अकर्त्ता भी है।

विचारणीय यह है कि यदि आत्मा कर्त्ता नहीं है तो भोक्ता कैसे हो सकता है? जिसने शुभ या अशुभ कर्म नहीं किये हैं, वह उनका फल क्यों भोगता है?

पुरुष चेतन और प्रकृति जड़ है और प्रकृति को ही संसार, बन्ध और मोक्ष होता है। जड़ प्रकृति में बन्ध-मोक्ष-संसार मानना मृषावाद है। उससे बुद्धि की उत्पत्ति कहना भी विरुद्ध है।

सांख्यमत में इन्द्रियों को पाप-पुण्य का कारण माना है, किन्तु वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ नामक उनकी मानी हुई पाँच कर्मेन्द्रियाँ जड़ हैं। वे पाप-पुण्य का उपार्जन नहीं कर सकतीं। स्पर्शन आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी द्रव्य और भाव के भेद से दो-दो प्रकार की हैं। द्रव्येन्द्रियाँ जड़ हैं। वे भी पुण्य-पाप का कारण नहीं हो सकतीं। भावेन्द्रियाँ आत्मा से कथंचित् अभिन्न हैं। उन्हें कारण मानना आत्मा को ही कारणा मानना कहलायेगा।

पुरुष (आत्मा) को एकान्त नित्य (कूटस्थ अपरिणामी), निष्क्रिय, निर्गुण और निर्लेप मानना भी प्रमाण विरुद्ध है। जब आत्मा सुख-दुःख का भोक्ता है तो अवश्य ही उसमें परिणाम-अवस्था-परिवर्तन मानना पड़ेगा। अन्यथा वह कभी सुख का भोक्त और कभी दुःख का भोक्त कैसे हो सकता है? एकान्त अपरिणामी (अपरिवर्तनशील) होने पर जो सुखी है, वह सदैव सुखी ही रहना चाहिए और जो दुःखी है, वह सदैव दुःखी ही रहना चाहिए।

आत्मा को क्रियारहित मानना भी मिथ्या है। प्रत्यक्ष आत्मा में गमनागमन, जानना-देखना आदि क्रियाएँ तथा सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि की अनुभूतिरूप क्रियाएँ प्रत्यक्ष देखी जाती हैं।

आत्मा को निर्गुण मानना किसी अपेक्षाविशेष से ही सत्य हो सकता है, सर्वथा नहीं। अर्थात् प्रकृति के गुण यदि उसमें नहीं हैं तो ठीक, मगर पुरुष के गुण ज्ञान-दर्शनादि से रहित मानना योग्य नहीं है। ज्ञानादि गुण यदि चैतन्यस्वरूप आत्मा में नहीं होंगे तो किसमें होंगे? जड़ में तो चैतन्य का होना असम्भव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

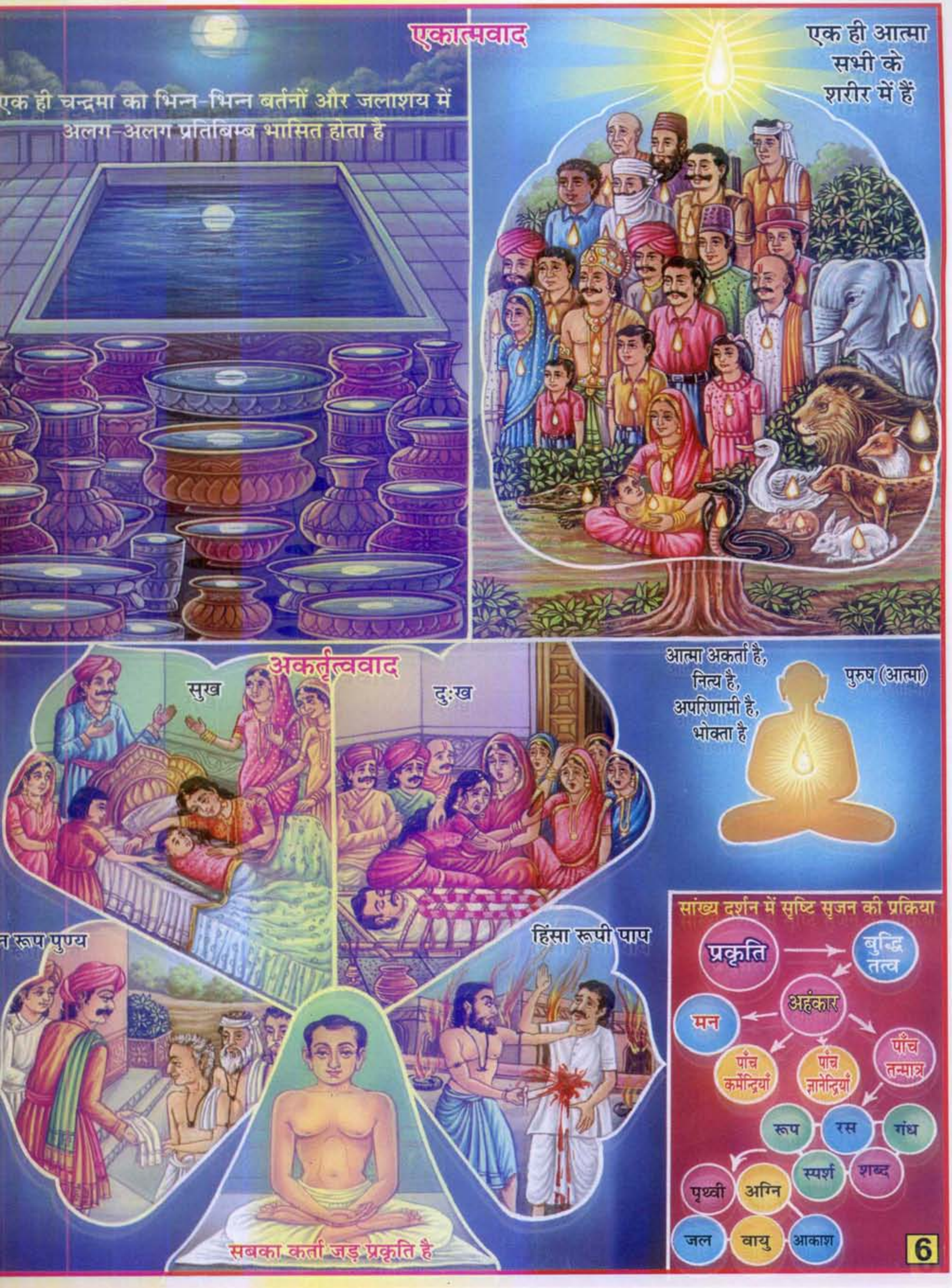

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 6

Illustration No. 6

मृषावाद का स्वरूप (3)

मृषावाद के अन्य स्वरूप निम्नोक्त हैं—

एकात्मवाद—एकात्मावादियों का कथन है कि जिस प्रकार चन्द्रमा एक होने पर भी अलग-अलग पात्रों व जलाशयों में उसका प्रतिबिम्ब अलग-अलग रूप में प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार इस संसार में एक ही आत्मा है। वह संसार के सभी जीवों में अलग-अलग प्रतिभासित होती है। चाहे वह हाथी जैसा विशाल जीव हो या चींटी जैसा नन्हा जीव हो। चाहे मनुष्य हो या देव, नारक हो या तिर्यंच, कीड़े-मकोड़े, वनस्पति आदि सभी में एक ही आत्मा है। बस शरीर अलग-अलग हैं।

अकर्तृत्ववाद—अकर्तृत्ववाद का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—सांख्यदर्शन में दो तत्त्व माने गये हैं—(1) आत्मा अर्थात् पुरुष, (2) प्रकृति अर्थात् प्रधान। सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति से बुद्धितत्व की उत्पत्ति हुई। बुद्धि से अहंकार और अहंकार से मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्र की उत्पत्ती हुई। पाँच तन्मात्र से पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों का उद्‌भव हुआ।

सांख्यदर्शन में आत्मा को अकर्त्ता, अमूर्त्त, चेतन्य और भोक्ता माना गया है तथा सुख-दु:ख, पाप-पुण्य इन सबका कर्ता प्रकृति को बताया है। इन्द्रियों को दानादि रूप पुण्य, हिंसा रूप पाप एवं सुख और दु:ख का कारण माना गया है।

—सूत्र 49, पृ. 92

FALACIOUS DOCTRINES EXPLAINED (3)

Other fallacious doctrines described are as follows –

Ekatmavad – The followers of this doctrine believe that there is only one soul in this universe. Like the reflection of the moon in different water bodies like rivers, seas, ponds and pots, the same soul is reflected separately in all beings. It could be a large animal like an elephant or a tiny one like an ant. Whether it is human beings, divine beings, infernal beings, animals, insects or plants, only bodies are different, the soul is just one.

Akartritvavad – According to this doctrine, the Sankhya philosophy, there are two fundamental elements – (1) Purush (soul) and (2) Pradhan (nature). At the time of the origin of the universe first of all nature created intellect, which in turn created ego. From ego came five senses of action, five senses of knowledge and five tanmatras (subtle powers). The five tanmatras created five bhutas, namely earth, water, fire, air and space.

Sankhya school believes that soul is non-doer, formless, sentient and sufferer. Nature is said to be the creator of pleasure, pain, sin and piety. The sense organs are said to be the cause of merits including charity, sin including violence as well as happiness and misery.

— Sutra-49, page-92

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन के अनुसार आत्मा चेतन है, द्रव्य से नित्य--अपरिणामी होते हुए भी पर्याय से अनित्य–परिणामी है, अपने शुभ और अशुभ कर्मों का कर्त्ता है और उनके फल सुख–दुःख का भोक्ता है। अतएव वह सर्वथा निष्क्रिय और निर्गुण नहीं हो सकता। आत्मा अमूर्त्त भी नहीं है।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में जगत् की उत्पत्ति और आत्मा सम्बन्धी भिन्न–भिन्न दर्शनों की कल्पित मान्यताओं को मृषावाद बताया गया है।

Elaboration—In the present aphorism, many false beliefs have been mentioned. They are clarified as under—

Prajapati Srishti (creation of Prajapati)—It is mentioned in Manu Smriti that Lord Brahma cut his body into two pieces. He turned one piece into a man and the other piece into a woman. Then through the woman, he created a gigantic man. That man observed austerities and created Manu (me). So you should consider me as the creator of the Universe.

Ishwar Srishti (Creation by Ishwar or God). Ishwarvadis believe that the universe has been created by Ishwar who is unique, all prevalent, permanent and totally independent. They do not believe that Ishwar took the form of creation (Upadan cause). They believe that Ishwar is the secondary cause (Nimitt Cause) of creation of the Universe. They believe that it is Ishwar alone who awards fruit of the Karmas (activities good or bad committed by living beings). The living beings after their current life-span are re-born in heaven or hell as directed by Ishwar.

But the real fact is that the very thought about the very creation of the Universe is simply the flight of imagination. In reality this Universe had always been in existence and shall exist always.

Some philosophers believe that this Universe is throughout Vishnu. In other words Vishnu is all prevalent everywhere in water, land, mountain, fire and the like.

This belief that the Universe is all Vishnu is also not established by any logical reasoning. It is also simply a flight of imagination because where was Vishnu when there was no Universe (Jagat). Why did he have the desire to create the world or what was there that inspired him to create the world ? If He (Vishnu) was living in thick darkness and there was nothing else except Him, how then He created this gigantic Universe without any material (upadan).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Many other theories about the creation of the Universe have also been mentioned here. They have been discussed in detail in several philosophical texts. So the reader should study them from there.

Thus all such theories based simply on imagination, spoil the very nature of Ishwar. They are products of falsehood.

Ekatamavad (belief in one soul)—In the present aphorism the philosophy of prevalence of one soul as propounded by Vedanta has been discussed and it has been proved that it is not true. Ekatamavadis believe that in the entire world, the soul is only one but it appears in different forms just as moon is one but in different vessels and collections of water it appears in different forms. To believe that there is absolutely one soul is directly not established and it does not hold good even in the test of logic. It is quite evident that souls are numberless in the form of man, animal, bird, ants, plant life and so on. In case the soul had been only one, with the death of any one living being, all world would have died and with the birth of any one all world have taken birth. Further in case one was happy, every one should have been happy and in case one was in pain, every one should have been in pain. The good and bad fruit (punya and paap) should not have been separate. Thus with the acceptance of this theory, all the worldly set up and metaphysical set up shall dwindle. So theory of existence of just one soul (Ekatamavad) is also untrue.

Akartrivad—According to Sankhya philosophy, soul is formless, conscious, experiencer, permanent, all pervading and non-doer. It is subtle and free of all traits.

They say—soul never gets bound. It never gets liberated. It does not transmigrate from one life-span to another. The bondage, liberation and wandering in the mundane world is there only in the case of prakriti (nature) dependent on many souls (purushas).

In Sankhya school of thought, there are two fundamental elements—purush (the soul) and pradhan (prakriti). At the time of the origin of the Universe first of all prakriti produced intellect, intellect produced ego, ego created five senses of Karmas, five senses, of knowledge and five tanmatra (senses of sight, taste, smell, touch and hearing). The said five Tanmatras created five bhutas namely earth, water, fire, air and space. This is the theory of creation according to Sankhya School.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sankhya School declares that soul (purush) is permanent, all prevalent and non-deor.

It is worth consideration that in case soul is not the doer, how can it be the experiencer of the fruit of activities in the Universe. A person who has not done good or bad Karma, why should he bear the fruit of those Karmas.

Purush is consciousness while prakriti is matter. Bondage, liberation and transmigration occurs only in respect of prakriti. It is falsehood to believe that non-conscious prakriti can go in bondage, liberation and transmigration. It is also against its nature that intellect is produced by prakriti.

Sankhya School believes that sense orgrans are the cause of good and bad Karmas but the tongue, hand, feet, paryu and upasth which are Karmendrya (the organs with which they performs deeds) are matter. They cannot collect merit or demerit. Senses such as sense of touch and the like, the said five Jnanendriya, are also of two types each—the external sense organs on the basis of their shape (Dravya) and inner centre capable of being conscious (bhavendriya). Dravya Indriya is matter. So it cannot be the cause of good and bad deeds. Bhava Indriyas are to a certain extent non-different from the soul. To believe them as cause would mean that the soul is believed to be the cause of merit and demerit.

It is also against available evidence that purush (soul) is absolutely permanent, non-doer, devoid of traits and without any influence (or taint). When soul experiences pleasure and pain, it shall have to be admitted that its state is changing. Otherwise how can it be possible that it is sometimes in a state of happiness and sometimes in pain. In case it is absolutely unchanging, if it is in a state of happiness, it should remains always happy and in case it is unhappy, it should always be so.

It is also untrue to believe that soul does not perform any activity. It is quite evident that it performs the activities of going and coming, seeing and knowing. It experiences pleasure and pain, happiness and sorrow and such experiences are directly visible in it.

To believe that soul is without any attribute can be true only in certain context and not totally. In other words, it is correct that it does not have the attributes of prakriti. But it is not proper to believe that it

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

does not have the qualities of knowing and seeing. In case the soul does not have the qualities of knowing and others, then who else shall have these qualities. It is impossible that matter may have consciousness.

According to Jainism, soul is consciousness. From the substantive point of view it is permanent and unchanging but from the point of view of modes, it is impermanent and changing. It is the doer of its good and bad Karmas and also the experiencer of the fruits of those Karmas. So it is not absolutely non-doer and devoid of qualities. It is also not non-existent (amurat).

Thus in this aphorism it is stated that different beliefs of other schools of thought about creation of the Universe and the soul are not true.

मृषावाद **FALSEHOOD (MRISHAVAD)**

५०. जं वि इहं किंचि जीवलोए दीसइ सुकयं वा दुकयं वा एयं जदिच्छाए वा सहावेण वावि दइवतप्पभावओ वावि भवइ। णत्थेत्थ किंचि कयगं तत्तं लक्खणविहाणणियत्तीए कारियं एवं केइ जंपंति इड्ढि-रस-सायागारवपरा बहवे करणालसा परूवेंति धम्मवीमंसएणं मोसं।

५०. कोई-कोई वादी ऋद्धि, रस और साता के गर्व (अहंकार) से लिप्त या इनमें अनुरक्त बने हुए और क्रिया करने में आलसी होते हैं, वे धर्म की मीमांसा (विचारणा) करते हुए इस प्रकार मिथ्या प्ररूपणा कहते हैं-

इस जीवलोक में जो कुछ भी सुकृत या दुष्कृत दिखाई देता है, वह सब यदृच्छा (अकस्मात्) ईश्वर की इच्छा से, स्वभाव से अथवा दैव प्रभाव-विधि के प्रभाव से ही होता है। इस लोक में कुछ भी ऐसा नहीं है जो पुरुषार्थ से किया गया तत्त्व (सत्य) हो। लक्षण (वस्तुस्वरूप) और विद्या (भेद) की कर्त्री नियति ही है, ऐसा कोई कहते हैं। पदार्थ के लक्षण - स्वरूप और भेदों की उत्पत्ति करने वाली नियति ही है।

50. Some scholars are under the influence of the ego of wealth, comforts and pleasures so they are slack in activity. While describing dharma, they depict it in the following wrong manner—

Whatever is seen in this world inhabited by living beings as good or bad act, it is all due to such a desire of Ishwar, or due to the very nature or due to the influence of fate. There is nothing in this world, which is due to efforts. The cause of the attributes of things and variations in them is fate is what they say.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में एकान्त यदृच्छावादी, स्वभाववादी, दैव या द्वैतवादी एवं नियतिवादी के मन्तव्यों का उल्लेख करके उन्हें मृषा (मिथ्या) बतलाया गया है। आचार्य अभयदेव सूरि कृत टीका के अनुसार उल्लिखित वादों का आशय संक्षेप में इस प्रकार है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदृच्छावाद–अर्थात् जैसी ईश्वर की इच्छा थी वैसा स्वतः हो जाना। यदृच्छावाद का मन्तव्य है–प्राणियों को जो भी सुख या दुःख होता है, वह सब अचानक–अतर्कित ही उपस्थित हो जाता है। जैसे–कौआ आकाश में उड़ता–उड़ता अचानक किसी ताड़ वृक्ष के नीचे पहुँचा और अचानक ही ताड़ का फल टूटकर गिरा और कौआ उससे घायल हो गया। सब कुछ अकस्मात् हो गया। इसी प्रकार जगत् में जो घटनाएँ घटित होती हैं, वे सब बिना इरादे के सहज ही घट जाती हैं। बुद्धिपूर्वक कुछ भी नहीं होता। अतएव अपने प्रयत्न एवं पुरुषार्थ का अभिमान करना वृथा है।

स्वभाववाद–पदार्थ का स्वतः ही भिन्न–भिन्न रूपों में परिणमन होना स्वभाववाद कहलाता है। स्वभाववादियों का कथन है–जगत् में जो कुछ भी होता है, सब स्वभाववश स्वतः ही हो जाता है। मनुष्य के करने से कुछ भी नहीं होता। काँटे की तीक्ष्णता, मयूर–पंखों की विचित्रता और मुर्गे के पंखों के रंग, कौन बनाने वाला है? वस्तुतः यह सब स्वभाव से ही होता है। गन्ने में मिठास, मिर्च में तीखा चटपटापन, इत्यादि सब कार्य स्वभाव से होते रहते हैं। इसमें न किसी की इच्छा काम आती है, न कोई इसके लिए प्रयत्न या पुरुषार्थ करता है। इसी प्रकार जगत् के समस्त कार्यकलाप स्वभाव से ही हो रहे हैं। पुरुषार्थ को कोई स्थान नहीं है। लाख प्रयत्न करके भी कोई वस्तु के स्वभाव में तनिक भी परिवर्तन नहीं कर सकता।

विधिवाद–जगत् में कुछ लोग एकान्त विधिवाद–भाग्यवाद का समर्थन करते हैं। उनका कथन है कि प्राणियों को जो भी सुख–दुःख होता है, जो हर्ष–विवाद के प्रसंग उपस्थित होते हैं, न तो यह इच्छा से और न स्वभाव से होते हैं, किन्तु विधि या भाग्य–दैव से ही होते हैं। दैव की अनुकूलता हो तो बिना पुरुषार्थ किये इष्ट वस्तु प्राप्त हो जाती है और जब भाग्य प्रतिकूल होता है तो हजार–हजार प्रयत्न करने पर भी कुछ प्राप्ति नहीं होती। अतएव संसार में सुख–दुःख का जनक भाग्य ही है।

विधिवादी कहते हैं–जिस वस्तु की प्राप्ति होनी होती है वह हो ही जाती है, क्योंकि दैव सर्वोपरि है, उसकी शक्ति अप्रतिहत है। अतएव दैववश जो कुछ होता है, उसके लिए मैं न तो शोक करता हूँ और न विस्मय में पड़ता हूँ। जो हमारा है, वह हमारा ही होगा। वह किसी अन्य का नहीं हो सकता।

नियतिवाद–विधिवाद से मिलता–जुलता ही नियतिवाद है। भवितव्यता अथवा होनहार नियति कहलाती है। कई प्रमादी मनुष्य भवितव्य के सहारे निश्चिन्त रहने को कहते हैं। उनका कथन होता है–आखिर हमारे सोचने और करने से क्या हो जाता है ! जो होनहार है, वह होकर ही रहता है और अनहोनी कभी होती नहीं।

पुरुषार्थवाद–एकान्त पुरुषार्थवादी स्वभाव, दैव आदि का निषेध करके केवल पुरुषार्थ से ही सर्व प्रकार की कार्यसिद्धि स्वीकार करते हैं। उनका कथन है–लक्ष्मी उद्योगी पुरुष को ही प्राप्त होती है। लक्ष्मी की प्राप्ति भाग्य से होती है, ऐसा कहने वाले पुरुष कायर हैं। अतएवं दैव को ठोकर मारकर अपनी शक्ति के अनुसार पुरुषार्थ करो। प्रयत्न किये जाओ। प्रयत्न करने पर भी यदि सिद्धि न हो तो इसमें क्या दोष–बुराई है।

कालवाद–कुछ वादी उक्त कारणों को नकारते हुए 'काल' को ही महत्त्व देते हैं। एकान्त कालवादियों का कथन है कि स्वभाव, नियित, पुरुषार्थ आदि कुछ नहीं, किन्तु काल से ही कार्य की सिद्धि होती है। सब अनुकूल कारण विद्यमान होने पर भी जब तक काल परिपक्व नहीं होता तब तक कार्य नहीं होता। अमुक काल में ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गेहूँ, चना आदि धान्य पकते हैं। समय आने पर ही सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि होती है। अतएव एक मात्र कारण काल ही है।

ये सब एकान्तवादी कथन होने से मृषावाद हैं। जैन दर्शन पंच समन्वयवादी है अर्थात् इन सबको अलग-अलग नहीं मानकर कहता है-वास्तव में काल, स्वभाव, नियति, दैव और पुरुषार्थ, सभी यथायोग्य कार्यसिद्धि के सम्मिलित कारण हैं। कार्यसिद्धि एक कारण से नहीं, अपितु समग्र कारणों के समूह से होती है। जैसा कि कहा गया है-

कालो सहाव नियई, पुव्वकयं पुरिसकारणेगंता।
मिच्छत्तं ते चेव, उ समासओ होंति सम्मत्तं॥

काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत (दैव-विधि) और पुरुषकार (पुरुषार्थ) को एकान्त कारण मानना अर्थात् इन पाँच में से किसी भी एक को कारण स्वीकार करना और शेष को कारण न मानना मिथ्यात्व है। ये सब मिलकर ही यथायोग्य कारण होते हैं, ऐसी मान्यता ही सम्यक्त्व है।

Elaboration—In the present aphorism, after explaining the beliefs of various schools of thought namely 'all according to desire of God' (yadrichhavadi), 'all according to nature of the thing' (Svabhavavadi), 'all according to fate or super power' (Daive or daivatawadi) and 'all according to destiny' (niyativadi), it has been established that all the said theories are false (wrong). The purports of the said schools of thought according to the commentary by Acharya Abhayadev Suri are in brief as follows—

Yadrichhavad—It means to happen itself as desired by God (Ishwar). In brief, it believes that whatever pleasure or pain that the living beings experience, occurs all of a sudden (without any effort). Just as a crow while flying suddenly arrives under a deodar tree and all of a sudden a fruit falls from the tree and injures the crow. Everything happens all of a sudden; similarly various events occur in the world in a natural way and without any prior planning. No occurrence is the result of any proper planning though the intellect. So it is useless to have any ego of one's efforts.

Svabhavavad—The transforming of a substance in different shapes naturally is called Svabhavavad. The philosophers of this school say that whatever happens in the world is happening itself according to its very nature. Nothing happens by effort or activity of any human being. Who produces sharpness in thorns, strange design in peacock feathers and colours of cock feathers? We see different shapes and structure of animals and birds. Who is the maker of them? In reality, all this happens by nature. Sweetness in the sugarcane, pungent taste in chillies,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

bitterness in ginger and so on—all this is in these substances by their very nature. In its making, neither the desire nor the effort of any one functions. Similarly everything is happening in this Universe by its very nature. Effort has no scope in it. Even by persistent effort, no change in the nature of a substance can be brought about.

Vidhivad—Some people in the world support the theory that every thing happens according to fate. They believe that all the occasions that arise in the world providing pleasure or pain, enjoyment or sadness, they are not the result of any desire or by nature but they are all the result of one's fate. In case the fate is in one's favour, one gets the desired substance even without efforts. When the fate is against him, he does not achieve anything even after persistent efforts. So fate is the generator of pleasure and pain in this world.

Vidhivadis declare that fate is supreme. One certainly gets whatever is destined in his fate. The power of fate is unchallengeable. So I do not feel sad or wonder-struck at anything which happens in the world. Whatever is mine, it shall be mine. It cannot be of anyone else.

Niyativad—Niyativad is almost similar to vidhivad. Destiny is called niyati. Some indolent people remain carefree depending on destiny. There belief is that nothing is going to happen with their planning or efforts. Whatever is in our destiny that shall certainly happen. Nothing happens which is not in destiny.

Purusharthavad—Absolute believers in efforts, deny the influence of nature, destiny and the like. They believe that success in any activity can be achieved only by efforts. They say that only that person can get wealth who makes efforts. Those who say that wealth gained only if it is in destiny, they are coward. So one should discard any thought about destiny and should make efforts according to his capacity. One should go on making persistent efforts. There is no fault if one does not succeed even after making efforts.

Kaalavad—Some thinkers deny the above mentioned causes and give importance only to Kaal (Time). It is the theory of believers of absolute Kaal that nothing lies in nature, destiny or efforts. But success is obtained if, it is the right time for it. Wheat, rice and the like ripen at a particular time. Winter, summer, rainy seasons appear within their respective time frame so only time is the cause of success.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

All these theories are false as they are one-sided. Jainism brings about cohesion in these five theories. It does not believes in them individually. It declares that in fact all the five namely time, nature, destiny, fate and efforts are jointly the cause of any success in any activity. The success is not dependent on one cause alone but it is the result of all of them jointly.

It is wrong to believe that time, nature, fate, destiny and efforts are individually the cause of success. In other words to believe that only one of them and not the remaining four is the cause of the result is wrong belief. All these jointly are the causes of the result. Such a belief is the right belief.

ईर्ष्या–द्वेषवश झूठा दोषारोपण करने वाले FALSE ALLEGATIONS OUT OF JEALOUSY

५१. अवरे अहम्मओ रायदुट्ठं अब्भक्खाणं भणंति अलियं चोरोत्ति अचोरयं करेंतं, डामरिउत्ति वि य एमेव उदासीणं, दुस्सीलोत्ति य परदारं गच्छइत्ति मइलिंति सीलकलियं, अयं वि गुरुतप्पओ त्ति। अण्णे एमेव भणंति उवाहणंता मित्तकलत्ताइं सेवंति अयं वि लुत्तधम्मो, इमोवि विस्संभवाइओ पावकम्मकारी अगम्मगामी अयं दुरप्पा बहुएसु य पावगेसु जुत्तोत्ति एवं जंपंति मच्छरी।

भद्दगे वा गुणकित्ति–णेह–परलोय–णिप्पिवासा। एवं ते अलियवयणदच्छा परदोसुप्पायणप्पसत्ता वेढेंति अक्खाइयबीएणं अप्पाणं कम्मबंधणेण मुहरी असमिक्खियप्पलावा।

५१. कोई-कोई लोग राज्यविरुद्ध (वर्तमान शासक पक्ष को बदनाम करने की नीयत से) मिथ्या दोषारोपण करते हैं। यथा-चोरी न करने वाले को चोर कहते हैं। जो उदासीन है–लड़ाई–झगड़ा नहीं करता, उसे लड़ाईखोर या झगड़ालू कहते हैं। जो सुशील है-शीलवान् है, उसे दुःशील–व्यभिचारी बताते हैं, यह परस्त्रीगामी है, ऐसा कहकर उसे बदनाम करते हैं। उस पर ऐसा आरोप लगाते हैं कि यह तो गुरु–पत्नी के साथ अनुचित सम्बन्ध रखता है। कोई–कोई किसी की कीर्ति अथवा आजीविका को नष्ट करने के लिए इस प्रकार मिथ्या दोषारोपण करते हैं कि यह अपने मित्रों की पत्नियों का सेवन करता है। यह अधार्मिक है, यह विश्वासघाती है, पापकर्म करता है, नहीं करने योग्य कृत्य करता है, यह अगम्यगामी है अर्थात् भगिनी, पुत्रवधू आदि अगम्य स्त्रियों के साथ सहवास करता है, यह दुष्टात्मा है, बहुत-से पापकर्मों को करने वाला है। इस प्रकार ईर्ष्यालु लोग मिथ्या प्रलाप करते हैं।

भद्र पुरुष के परोपकार, क्षमा आदि गुणों की तथा कीर्ति, स्नेह एवं परभव की लेश मात्र परवाह न करने वाले वे असत्यवादी, असत्य भाषण करने में कुशल, दूसरों के कल्पित दोषों को बताने में संलग्न रहते हैं। वे विचार किये बिना बोलने वाले वाचाल लोग प्रगाढ़ दुःख के कारणभूत अत्यन्त दृढ़ कर्मबन्धनों से अपनी आत्मा को बद्ध करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

51. Some people (in order to condemn the present administration) level false allegations against the government. They call one a thief who actually has not committed any theft. They name one quarrelsome who is quiet and humble. They pronounce one a loafer who is actually of good character. Thus they adversely affect one's reputation. They level allegation that one has improper relation with the wife of the teacher. Some level false allegation in order to affect one's reputation or to spoil his sources of livelihood. They say that the particular person is having sex with the wives of his friends, he is irreligious, untrustworthy and commits sins. He does such acts, which are not worthy to be performed. He is a vagabond. He has illicit relation with his sister, daughter-in-law and women of bad character. He is a bad character and commits many sins. Thus the jealous people level false allegations.

They have little care for the noble deeds and acts of compassion of good people. They are expert in making false speeches. They remain busy in narrating imaginary faults of others. They talk without proper knowledge. Thus they acquire extremely severe bondage of bad Karmas, which result in extreme trouble to their souls.

विवेचन : विविध वादियों की मिथ्या मान्यताओं की चर्चा करने के पश्चात् अन्य दूसरे कारणों से झूठ बोलने वालों की चर्चा प्रस्तुत पाठ में है। कुछ लोग ईर्ष्यालु होते हैं। कोई अच्छा शासनकर्त्ता है, तो उसकी कीर्ति में ईर्ष्या व द्वेष करके उन्हें बदनाम करने का या चरित्र हनन करने का प्रयत्न करते हैं। किसी की बढ़ती प्रतिष्ठा देखकर उन्हें घोर कष्ट होता है। दूसरों के सुख को देखकर जिन्हें तीव्र दुःख व जलन का अनुभव होता है। ऐसे लोग भद्र पुरुषों को अभद्रता से लांछित करते हैं। उन पर झूठे आरोप लगाते हैं। तटस्थ रहने वाले को लड़ाई-झगड़ा करने वाला कहते हैं। जो सुशील-सदाचारी हैं, उन्हें वे कुशील कहने में संकोच नहीं करते। उनकी धृष्टता इतनी बढ़ जाती है कि वे उन सदाचारी पुरुषों को मित्र-पत्नी अथवा गुरु-पत्नी-जो माता की कोटि में गिनी जाती है, उनके साथ गमन करने वाला तक कहते नहीं हिचकते। पुण्यशील पुरुष को पापी कहने की धृष्टता करते हैं। ऐसे व्यक्ति असत्य भाषण में कुशल, ईर्ष्या से प्रेरित होकर किसी को कुछ भी लांछन लगा देते हैं। वे यह भी नहीं सोचते कि मुझे परलोक में जाना है और इस मृषावाद मिथ्या दोषारोपण का कितना दुष्परिणाम भुगतना पड़ेगा। ऐसे लोग दूसरों को लांछित करके, अपमानित करके, उनकी प्रतिष्ठा को मलीन करके ऐसे घोरतर पापकर्मों का संचय करते हैं जो बड़ी कठिनाई से भोगे बिना नष्ट नहीं हो सकते। ऐसा असत्य भाषण करने वालों को नारकीय यातनाओं से बचाने की सद्भावना के साथ शास्त्रकार ने मृषावाद के अनेक प्रकारों तथा उसके दुष्परिणामों का यहाँ उल्लेख किया है और आगे भी करेंगे।

Elaboration—After discussing the false beliefs of various thinkers (schools of thought), the falsehood of others is discussed in this aphorism. Some people are jealous. Some are jealous of good administration and want to dishonour it due to their hatred towards it.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

They say to level allegation against a good ruler's character also. A jealous person feels highly perturbed at the rising respect and fame of others. He feels extreme pain and jealousy when he see others in a state of happiness. Such people dishonour respectable by leveling false allegations. They call the impartial people as quarrelsome. They do not hesitate in calling the chaste as sexy. They are so much rude that they do not hesitate in levelling the allegations on noble persons that they engage in sex with the wife of their friend or wife of the teacher who is considered just as mother. They do the unwarranted act of calling a noble person as sinner. Such a person levels any accusation to any one under the influence of jealousy as he is expert in making false speechs. They do not try to understand that they have to go the next world after the present life-span and that they shall have to bear extremely drastic consequences there for levelling false allegations. Such persons, by levelling false accusation, by insulting others, by adversely affecting the image of others, acquire extremely thick layer of bad Karmas, which cannot be destroyed without very severe sufferings. The author has described in detail the bad results of their Karmas. In order to save, such persons who make false statements from hellish tortures, the author has for their welfare mentioned in detail various kinds of falsehood and its bad results and he shall discuss them later also.

लोभजन्य अनर्थकारी झूट FALSEHOOD ARISING FROM GREED

५२. णिक्खेवे अवहरंति परस्स अत्थम्मि गढियगिद्धा अभिजुंजंति य परं असंतएहिं। लुद्धा य करेंति कूडसक्खित्तणं असच्चा अत्थालियं च कण्णालियं च भोमालियं च तह गवालियं च गरुयं भणंति अहरगइगमणं।

अण्णं पि य जाइरूवकुलसीलपच्चयं मायाणिउणं चवलपिसुणं परमट्ठभेयगमसंतगं विद्देसमणत्थकारगं पावकम्ममूलं दुद्दिट्ठं दुस्सुयं अमुणियं णिल्लज्जं लोयगरहणिज्जं वहबंधपरिकिलेसबहुल जरामरणदुक्खसोयणिम्मं असुद्धपरिणामसंकिलिट्ठं भणंति।

५२. वे (मृषावादी लोभी) पराये धन में अत्यन्त आसक्त होकर, दूसरों की धरोहर को हड़प जाते हैं तथा दूसरे सत्पुरुषों को ऐसे दोषों से दूषित करते हैं जो दोष उनमें विद्यमान भी नहीं होते। धन के लोभी झूठी साक्षी देते हैं। वे असत्यभाषी धन के लालच में, कन्या (मातृ जाति) के लिए, भूमि (भूमि सम्बन्धी) के लिए तथा गाय-बैल आदि पशुओं के निमित्त असत्य भाषण करते हैं, जो उन्हें अधोगति में ले जाता है।

इसके अतिरिक्त वे मृषावादी जाति, कुल, रूप एवं शील के विषय में असत्य भाषण करते हैं। मिथ्या षड्यंत्र रचने में कुशल, परकीय असद्गुणों के प्रकाशक, सद्गुणों के विनाशक, पुण्य-पाप के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप से अनभिज्ञ, असत्याचरण-परायण लोग अन्यान्य प्रकार से भी असत्य बोलते हैं। वह असत्य चपलता से युक्त हैं, (पैशुन्य) चुगलखोरी से परिपूर्ण हैं, परमार्थ को नष्ट करने वाला, असत्य अर्थ वाला अथवा सत्त्व से हीन, द्वेषमय, अप्रिय, अनर्थकारी पापकर्मों का मूल एवं मिथ्यादर्शन से युक्त है। वह कर्णकटु, सम्यग्ज्ञानशून्य, लज्जाहीन, लोक-निन्दित, वध-बन्धन और क्लेशों से परिपूर्ण, जरा, मृत्यु, दुःख और शोक का कारण है, मिथ्या भाषण बुरे परिणाम तथा संक्लेश का कारण है।

52. Greedy persons making false statement grab things belonging to others as they are extremely attached to others property. They point out such faults in noble persons which actually are not in them. Greedy persons give false evidence. Those persons tell lies in a fit of greed for money, and in respect of girl, land, cow, bullock and suchlike animals. This conduct leads them to mean state of existence.

In addition, such people make false statements about their clan, caste, appearance and character. They are expert in plotting against others. They publicise false accusation against others and condemn their good qualities. They are ignorant about the nature of merit and demerit. They are prone to indecent conduct. They utter falsehood in different manner. They are clever in making false statement. They are interested in back-biting. They destroy activities of public welfare. Their talk is having wrong interpretation. They are devoid of capability. They are jealous. They are not loved by any one. They are at the root of sinful activities. They have wrong faith (or perception). They do not have right knowledge. They are shameless and are condemned by the public. They are full of disturbing traits and engaged into activities of violence. They are the cause of death, adage, pain and sorrow since they produces improper results, they are full of miseries.

विवेचन : इस पाठ में चार प्रकार के असत्यों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है-(१) अर्थालीक, (२) भूम्यलीक, (३) कन्यालीक, और (४) गवालीक। इनका अर्थ इस प्रकार है-

(१) **अर्थालीक**-अर्थ अर्थात् धन के लिए बोला जाने वाला अलीक (असत्य)। धन शब्द से यहाँ सोना, चाँदी, रुपया, पैसा, मणि, मोती आदि रत्न, आभूषण आदि भी समझ लेना चाहिए।

(२) **भूम्यलीक**-भूमि प्राप्त करने के लिए या बेचने के लिए अनेक प्रकार से असत्य बोलना, जैसे-अच्छी उपजाऊ भूमि को बंजर भूमि कह देना अथवा बंजर भूमि को उपजाऊ भूमि कहना आदि।

(३) **कन्यालीक**-कन्या देने में या प्राप्त करने में असत्य भाषण करना, सुन्दर सुशील कन्या को असुन्दर या दुश्शील कहना और दुश्शील को सुशील कहना।

(४) **गवालीक**-गाय, भैंस, बैल, घोड़ा आदि पशुओं के सम्बन्ध में असत्य बोलना।

चारों प्रकार के असत्यों में उपलक्षण से समस्त अपद, द्विपद और चतुष्पदों का समावेश हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस संसार में वाणी की शक्ति प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है, प्रकृष्ट पुण्योदय से ही व्यक्त वाणी बोलने का सामर्थ्य हम प्राप्त करते हैं। इतनी महर्ध्य शक्ति का सदुपयोग तभी हो सकता है, जब हम स्व-पर के हिताहित का विचार करके सत्य, तथ्य, प्रिय भाषण करें और आत्मा को पाप की कालिमा से लिप्त करने वाले वचनों का प्रयोग न करें।

मूल पाठ में **पावकम्ममूलं दुद्दिट्ठं दुस्सुयं अमुणियं** पद विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। इनका तात्पर्य यह है कि जिस बात को, जिस घटना को हमने अच्छी तरह देखा न हो, जिसके विषय में प्रामाणिक पुरुष से सुना न हो और जिसे सम्यक् प्रकार से जाना न हो, उसके विषय में अपना अभिमत प्रकट कर देना-अप्रमाणित को प्रमाणित कर देना भी असत्य है। यह असत्य पाप का मूल है।

परमट्ठभेयगं आदि पदों से सूचित किया है कि जो वचन परमार्थ के भेदक हैं-मुक्तिमार्ग के विरोधी हैं, कपटपूर्वक बोले जाते हैं, जो निर्लज्जतापूर्ण हैं और लोक में गर्हित हैं-सामान्य जनों द्वारा भी निन्दित हैं, सत्यवादी को ऐसे वचनों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

Elaboration—In this lesson, four types of falsehood have been primarily discussed—(1) Falsehood regarding money, (2) Falsehood regarding land, (3) Falsehood regarding girl (in matrimony) and (4) Falsehood regarding animals like cow.

(1) Arthaleek—False statement made in respect of money is called Arthaleek. The word money here includes gold, silver, coins, change, rubies, pearls, ornaments and the like.

(2) Bhoomyaleek—To make false statement in order to procure land or to sell land, for instance to call barren land as fertile or to call fertile land as barren is called bhoomyaleek.

(3) Kanyaleek—To make false statement regarding a girl (in context of matrimony). For instance, to call a beautiful girl as ugly and of bad character and to call a girl of bad character as beautiful.

(4) Gavaleek—To make false statement about cow, buffalo, bullock, horse and the like is gavaleek.

The above said four types of falsehood includes falsehood about all things that have no feet and all that have two feet and four feet.

It is very difficult to have power of speech in this world. As a result of very meritorious deeds, one gets the capability of speaking distinct language. The proper use of this capability is possible only when we properly discriminate between good and bad for our welfare and welfare of others and then speak what is true, factual and loveable. We should not use such words which darken our soul with sins.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In the original text 'Pavakamm Moolam Duddditham dussuyam amuniyam' has been mentioned. These words are worthy to be considered attentively. It means it is also falsehood to express one's opinion about an event which one has not clearly seen, about which one has not heard from a reliable person and about which one has not properly collected proper facts. This falsehood is the root of the sin.

The word Parmatthabhajagam in the text indicates that the word or phrase which is against the path of liberation should not be used by lover of truth. He should also not use such words which are altered in a crooked manner, which are shameful and which are disliked or hated by the common people.

असत्यवादी : उभय–घातक FALSEHOOD : DUAL HARM

५३. अलियाहिसंधि–सण्णिविट्ठा असंतगुणुदीरया य संतगुणणासगा य हिंसाभूओवघाइयं अलियं संपउत्ता वयणं सावज्जमकुसलं साहुगरहणिज्जं अहम्मजणणं भणंति, अणभिगय–पुण्णपावा पुणो वि अहिगरण–किरिया–पवत्तगा बहुविहं अणत्थं अवमद्दं अप्पणो परस्स य करेंति ।

५३. जो लोग मिथ्या अभिप्राय–आशय से प्रेरित हैं, जो अविद्यमान गुणों की उदीरणा करने वाले, किसी में गुण नहीं हैं, फिर भी उसमें बताते हैं, विद्यमान गुणों के नाशक हैं–दूसरों में मौजूद गुणों को आच्छादित करते हैं, हिंसा करके प्राणियों को कष्ट पहुँचाते हैं, जो असत्य भाषण करते हैं, ऐसे लोग सावद्य–पापमय, अहितकारी, सत्पुरुषों द्वारा गर्हित और अधर्मजनक वचनों का प्रयोग करते हैं। ऐसे मनुष्य पुण्य और पाप के स्वरूप से अनभिज्ञ होते हैं। ये पुनः अधिकरणों अर्थात् पाप वृद्धि के साधनों में शस्त्रनिर्माण आदि पापोत्पादक उपादानों को बनाने, जुटाने, जोड़ने आदि की क्रिया में प्रवृत्ति करने वाले हैं, वे अपना और दूसरों का अनेक प्रकार से अनर्थ और विनाश करते हैं।

53. Persons who are influenced by false notion, who depict such qualities which actually do not exist in the person concerned, who proclaim that there are good qualities in a person inspite of their absence, who conceal the good qualities of others, who cause violence to the living beings by troubling them, who make false statements; such people use contemptuous, sinful, immoral words which are disliked by the cultured, truth-speaking people. Such human beings are ignorant about the nature of merit and demerit. They again engage themselves in such activities, which increase the growth of sin. They manufacture weapons and other suchlike destructive products or indulge in assembling suchlike things. They cause harm and destruction of themselves and others in many ways.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में एक तथ्य यह भी स्पष्ट किया गया है कि मृषावादी असत्य भाषण करके पर का ही अहित, विनाश या अनर्थ नहीं करता किन्तु अपना भी अहित, विनाश और अनर्थ करता है। अतएव अपने हित की रक्षा के लिए अपने आपको दुर्गति से बचाने के लिए भी मृषावाद का परित्याग आवश्यक है।

Elaboration—In this aphorism, it has been clarified that a person who is in the habit of telling lies, he by making false speeches causes damage to the welfare not only of others but also to his own welfare. He digs a pit for himself. So to safeguard one's own welfare and to protect oneself from having re-birth in bad state of existence, it is essential that one should discard falsehood.

पाप का परामर्श देने वाले ADVISORS OF SIN

५४. एमेव जंपमाणा महिससूकरे य साहिंति घायगाणं, ससयपसयरोहिए य साहिंति वागुराणं तित्तिर–वट्टग–लावगे य कविंजल–कवोयगे य साहिंति साउणीणं, झस–मगर–कच्छभे य साहिंति मच्छियाणं, संखंके खुल्लए य साहिंति मगराणं, अयगर–गोणसमंडलिदव्वीकरे मउली य साहिंति बालवीणं, गोहा–सेहग–सल्लग–सरडगे य साहिंति लुद्धगाणं, गयकुलवाणरकुले य साहिंति पासियाणं, सुग–बरहिण–मयणसाल–कोइल–हंसकुले सारसे य साहिंति पोसगाणं ।

वहबंधजायणं च साहिंति गोम्मियाणं, धण–धण्ण–गवेलए य साहिंति तक्कराणं, गामागर–णगरपट्टणे य साहिंति चारियाणं, पारघाइय पंथघाइयाओ य साहिंति गंठिभेयाणं, कयं च चोरियं साहिंति णगरगुत्तियाणं ।

लंछण–णिलंछण–धमण–दूहण–पोसण–वणण–दवण–वाहणाइयाइं साहिंति बहूणि गोमियाणं, धाउ–मणि–सिल–प्पवाल–रयणागरे य साहिंति आगरीणं, पुप्फविहिं फलविहिं च साहिंति मालियाणं, अग्घमहुकोसए य साहिंति वणचराणं ।

५४. वे स्व और पर दोनों का अहित करने वाले मृषावादी जन जीव (अपने क्षुद्र स्वार्थवश) घातकों को भैंसों और शूकरों के सम्बन्ध में हिंसा का उपदेश देते हैं, व्याधों, शिकारियों को–शशक–खरगोश या मृगशिशु और रोहित दिखाते हैं। तीतुर, बत्तख और लावक तथा कपिंजल और कबूतर पक्षीघातकों चिड़ीमारों को दिखलाते हैं, मच्छीमारों को मछलियाँ, मगर और कछुआ दिखाते हैं, शंख (द्वीन्द्रिय जीव), अंक–जल–जन्तु और कौड़ी के जीव धीवरों को बतला देते हैं, अजगर, गोणस, मण्डली एवं दर्वीकर जाति के सर्पों तथा मुकुली–बिना फन के सर्पो को, साँप पकड़ने वालों को बतला देते हैं, गोधा, सेह, शल्लकी और गिरगिट लुब्धकों को हाथियों और बन्दरों के झुण्डों पर जाल डालकर पकड़ने वालों को बतलाते हैं। तोता, मयूर, मैना, कोकिला और हंस के कुल तथा सारस पक्षी पोषकों–इन्हें पकड़कर, बन्दी बनाकर रखने वालों को बतला देते हैं।

आरक्षकों–कारागार आदि के रक्षकों को वध, बन्ध और यातना देने के उपाय बतलाते हैं। चोरों को धन, धान्य और गाय–बैल आदि पशु बतलाकर चोरी करने की प्रेरणा करते हैं। गुप्तचरों को ग्राम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगर, आकर और पत्तन आदि बस्तियाँ (एवं उनके गुप्त रहस्य) बतलाते हैं। **ग्रन्थिभेदकों** को–गाँठ काटने वालों को, पथिकों को, रास्ते के अन्त में अथवा बीच में मारने–लूटने आदि के उपाय बता देते हैं। नगररक्षकों–कोतवाल आदि पुलिसकर्मचारियों को की हुई चोरी का भेद बतलाते हैं।

गाय आदि पशुओं का पालन करने वालों को कान आदि काटना, या निशान बनाना, नपुंसक–वधिया करना, **धमण**–भैंस आदि के शरीर में हवा भरना (जिससे वह दूध अधिक दे), दुहना, **पोषना**–जौ आदि खिलाकर पुष्ट करना, बछड़े को दूसरी गाय के साथ लगाकर गाय को धोखा देना अर्थात् वह गाय दूसरे के बछड़े को अपना समझकर स्तन–पान कराये, ऐसी भ्रान्ति में डालना, पीड़ा पहुँचाना, वाहन गाड़ी आदि में जोतना इत्यादि अनेकानेक पापपूर्ण कार्य इनके उपाय तथा रहस्य सिखलाते हैं। इसके अतिरिक्त (वे मृषावादी जन) खान खुदाने वालों को लौह आदि धातुएँ बतलाते हैं, चन्द्रकान्त आदि मणियाँ बतलाते हैं, शिलाप्रबाल–मूँगा और अन्य रत्न बतलाते हैं। मालियों को पुष्पों और फलों के प्रकार बतलाते हैं तथा वनचरों–भील आदि वनवासी जनों को मधु का मूल्य और मधु के छत्ते बतलाकर उसे प्राप्त करने की तरकीब सिखाते हैं।

54. There are people who by false talk (due to mean selfish interest) engage themselves in non-welfare for themselves and others. They tell the killers about he-buffaloes and pigs. They inform hunters about rabbits, young deer and rohit. They tell the sparrow-hunters about quails, ducks, lavaks, Kapinjal and pigeons. They inform fishers about fishes, crocodiles and tortoise. They inform hunters of aquatic creatures about conch-shells, anks (creatures living in water) and other suchlike creatures. They tell snake catchers about snakes of various categories such as ajagar, gonas, mandali and darvikar. They also inform them about mukuli—the snake without tongue. They inform the location of godha, seg, shallaki, giragit, elephants and monkeys to these who are expert in catching them by casting the net. They tell bird catchers about parrots, peacocks, nightingale, swan, cranes and koel, who keep them in cages.

Security Guards—They tell jailers methods of beating, torturing and keeping the prisoners in bondage. They tell thieves the locations where money, grain, cows and bullocks are kept and inspire them to commit theft. They tell spies about various colonies, villages, towns and the like and also their secrets. They tell robbers various methods of robbing and killings passers-bye. They tell the secrets of thefts to the security guards of the town and the police.

They train keepers of animals in various sinful activities involving violence to animals such as cutting their ears, marking them

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

permanently, making them non-productive, filling their body with air (so that they may produce more milk), process of milking them, making them fat by feeding herbs and milking them with the help of a calf of another cow and then cheating them. They also educate them in causing trouble to animals and in using them to drive cart. Further they tell about various metals to those who own mines. They tell them about various precious stones such as jewels, chandrakant jewel. Shilaprabal and others. They tell about various types of flowers and fruit to gardeners. They tell about the location of beehives so that honey could be procured, to the bhils and foresters.

विवेचन : इसी प्रकार चिड़ीमारों को पक्षियों का पता, मच्छीमारों को मछलियों आदि जलचर जीवों के स्थान एवं घात का उपाय बताते हैं। चोरों, डाकुओं, जेबकतरों आदि को चोरी आदि के स्थान–उपाय आदि बतलाते हैं। तात्पर्य यह है कि विवेकविकल लोग अनेक प्रकार से ऐसे वचनों का प्रयोग करते हैं जो हिंसा आदि अनर्थों के कारण हैं और हिंसाकारी वचन मृषावाद में ही गर्भित हैं, भले ही वे किसी उद्देश्य से बोले गये। अतः सत्य के उपासकों को ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे आरम्भ–समारम्भ आदि को उत्तेजना मिले या हिंसा हो।

Elaboration—In this manner, they tell sparrow-catchers, fishermen, hunters and thieves various locations and methods of committing violence. In brief those who are not discriminating about violent activities, they use suchlike words which result in causing violence. Such words fall in the category of falsehood even if they might have been uttered for some other purpose. So the followers of truth should not use such words which may inspire violence to living beings in any form.

पाप कार्य में सहभागी बनने वाले BECOMING PARTNERS IN VIOLENT SINFUL ACTS

५५. जंताइं विसाइं मूलकम्मं आहेवण–आविंधण–आभिओग–मंतोसहिप्पओगे चोरिय–परदार–गमण–बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघाइयाओ वणदहण–तलागभेयणाणि बुद्धिविसविणासणाणि वसीकरणमाइयाइं भय–मरण–किलेसदोसजणणाणि भावबहुसंकिलिट्ठमलिणाणि भूयघाओवघाइयाइं सच्चाइं वि ताइं हिंसगाइं वयणाइं उदाहरंति ।

५५. मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के लिए यन्त्र आदि लिखकर देने या पशु–पक्षियों को पकड़ने वाले यन्त्रों, संखिया आदि विषों तथा गर्भपात आदि के लिए जड़ी–बूटियों के प्रयोग, मन्त्र आदि द्वारा नगर में क्षोभ या विद्वेष उत्पन्न कर देने अथवा मन्त्रबल से धनादि पाने के उपाय, द्रव्य और भाव से वशीकरण मंत्रों एवं औषधियों के प्रयोग, चोरी, परस्त्रीगमन आदि के बहुत–से पापकर्मों के उपदेश देने तथा छल से शत्रुसेना की शक्ति को नष्ट करना अथवा उसे कुचल देने के, जंगल में आग लगा देने, तालाब आदि जलाशयों को सुखा देने के, गाँव को नष्ट कर देने के, बुद्धि के विषय–विज्ञान आदि अथवा बुद्धि एवं स्पर्श, रस आदि विषयों के विनाश के, वशीकरण आदि के भय, मरण, क्लेश और दुःख उत्पन्न करने वाले उपाय बताते हैं। ऐसे वचन जीवों को संक्लेश पहुँचाने वाले हैं। जीवों का घात और उपघात करने वाले होने से मृषावाद की श्रेणी में ही आते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

55. Some people provide Yantras in writing for killing, enticing, bewildering others. They give yantra for catching birds and animals. They use herbs for preparing medicines for abortion. They create terror or hatred in the town with mantras. They tell methods of collecting or usurping money through mantras. They use mantra and medicines to enslave others. They educate people in art of stealing, sex and other suchlike sinful activities. They tell the methods of reducing the strength of the army of the enemy through deceitful means or that of crushing it. They tell methods of setting forest on fire, of drying tanks and other water resources, of destroying villages and of adversely affecting the field of intellect. They tell methods of creating fear, disturbance and trouble to others and also of overpowering others. Such yantras, mantras and words fall in the category of falsehood since they result in trouble and violence to the living beings.

विवेचन : उक्त वर्णन का सार यही है कि सत्यवादी की वाणी अमृतमयी और सबका कल्याण करने वाली होनी चाहिए। उससे किसी का अकल्याण व अहित न हो।

इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए सूत्रकार ने प्राणियों का उपघात करने वाली भाषा का विवरण भी दिया है। यथा–मंत्र, तन्त्र, यन्त्र आदि के प्रयोग बतलाकर किसी का अनिष्ट करना, चोरी एवं परस्त्रीगमन सम्बन्धी उपाय बतलाना, ग्रामघात की विधि बतलाना, जंगल को जलाने का उपदेश देना आदि। ऐसे समस्त वचन हिंसोत्तेजक अथवा हिंसाजनक होने के कारण विवेकवान् पुरुषों के लिए त्याज्य हैं।

Elaboration—The essence of the above description is that the language of followers of truth should be sweat and for the welfare of every one. There should not be any element of disaster in it for any one.

In order to further clarify this fact, the author has mentioned in detail the language that causes violence to living beings. For instance to cause harm to others by telling suchlike mantra and yantras, to tell methods of stealing or engaging in sex, to tell methods of destroying villages, setting forest on fire—all such words which cause violence, inspire violence should be totally avoided by followers of truth and discrimination.

हिंसक उपदेश–आदेश VIOLENT LESSONS AND ORDERS

५६. पुट्ठा वा अपुट्ठा वा परतत्तियवावडा य असमिक्खियभासिणो उवदिसंति, सहसा उट्टा गोणा गवया दमंतु, परिणयवया अस्सा हत्थी गवेलग–कुक्कुडा य किज्जंतु, किणावेह य विक्केह पहय य सयणस्स देह पियह।

दासी–दास–भयग–भाइल्लगा य सिस्सा य पेसगजणो कम्मकरा य किंकरा य एए सयणपरिजणो य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीस अच्छंति ! भारिया भे करित्तु कम्मं, गहणाइं वणाइं खेत्तखिलभूभिवल्लराइं उत्तण–घणसंकडाइं डज्झंतु–सूडिज्जंतु य रुक्खा, भिज्जंतु जंतभंडाइयस्स उवहिस्स कारणाए बहुविहस्स य अट्ठाए उच्छू दुज्जंतु, पीलिज्जंतु य तिला।

पयावेह य इट्टकाउ मम घरट्ठयाए, खेत्ताइं कसह कसावेह य, लहुं गाम–आगर–णगर–खेड–कब्बडे णिवेसेह, अडवीदेसेसु विउलसीमे पुप्फाणि य फलाणि य कंदमूलाइं कालपत्ताइं गिण्हेह, करेह संचयं परिजणट्ठयाए साली वीही जवा य लुच्चंतु मलिज्जंतु उप्पणिज्जंतु य लहुं य पविसंतु य कोट्ठागारं।

५६. जो अन्य प्राणियों को सन्ताप–पीड़ा पहुँचाने में संलग्न होते हैं, वे अविचारपूर्वक भाषण करने वाले लोग किसी के पूछने पर और (कभी–कभी) बिना पूछे ही सहसा (अपनी पटुता प्रकट करने के लिए) दूसरों को इस प्रकार का उपदेश देते हैं कि–ऊँटों, बैलों और जंगली पशु रोझ आदि को इस प्रकार दमन करो। परिणत आयु वाले इन अश्वों को, हाथियों को, भेड़–बकरियों को या मुर्गों को खरीदो, खरीदवाओ, इन्हें बेच दो, पकाने योग्य वस्तुओं को पकाओ, स्वजन को दे दो, मदिरा आदि पीने योग्य पदार्थों का पान करो।

दासी, दास–नौकर, भृतक–भोजन देकर रखे जाने वाले सेवक, भागीदार, शिष्य, **कर्मकर**–कर्म करने वाले, **किंकर**–क्या करूँ? इस प्रकार पूछकर कार्य करने वाले, ये सब प्रकार के कर्मचारी तथा ये स्वजन और परिजन क्यों–कैसे (निकम्मे–निठल्ले) बैठे हुए हैं। अर्थात् उनसे काम क्यों नहीं लेते? ये भरण–पोषण करने योग्य हैं अर्थात् इनका वेतन आदि चुका देना चाहिए। इनसे अपना काम करवाओ। ये सघन वन, खेत, बिना जोती हुई भूमि, जो उगे घास–फूस से भरे हैं, इन्हें जला डालो, घास कटवाओ या उखड़वा डालो, यन्त्रों–घानी, गाड़ी आदि भांड–कुण्डे आदि उपकरणों के लिए और नाना प्रकार के प्रयोजनों के लिए वृक्षों को कटवाओ, तिलों को पेलो–इनका तेल निकालो।

घर बनाने के लिए ईंटों को पकाओ, खेतों को जोतो अथवा जुतवाओ, जल्दी–से ग्राम, आकर, नगर, खेड़ा और कर्बट आदि को बसाओ। प्रदेश में विस्तृत सीमा वाले गाँव आदि बसाओ। पुष्पों और फलों को तोड़ने या ग्रहण करने का समय हो चुका है, ऐसे कन्दों और मूलों को ग्रहण करो। अपने परिजनों के लिए इनका संचय करो। **शाली**–धान, **ब्रीहि**–अनाज आदि और जौ को काट लो। इन्हें मलो अर्थात् मसलकर दाने अलग कर लो। पवन से साफ करो–दानों को भूसे से पृथक् करो और शीघ्र कोठों और घरों में भर लो।

56. There are people who are engaged in causing trouble and violence to other living beings. They speak without proper thought. They tell on asking and sometimes even suddenly (in order to exhibit their intelligence) to others that they should in such and such manner control camel, bullocks and wild horse. They advise them that they should purchases horse, elephants, sheep and goat. They advise them to get such animals purchased or sold. They further advise them to cook the things worthy of cooking and to give them to their relatives. They advise them to take intoxicants such as wine.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

They ask them why the servants, employees, partners, pupils, workers, people of their own family are sitting idle and why don't you get work from them. They advise them to pay them off. They ask them to get work done from the said employees. They advise them to set thick forest, unploughed land that has grass on it, on fire. They counsel them to get cut or pulled the grass. They ask them to get cut the trees for preparing various machines or vehicles. They advise them to crush seasame-seeds, and get oil from it.

They advise them to set brick-kiln on fire for getting bricks to construct house. They ask them to plough fields or get them ploughed. They ask them to get village, town or colony inhabited soon. They ask them to get villages with large boundaries settled. They tell them that it is the right time to pluck and collect flowers and fruits and that they should collect Kands and mools (the vegetables that have infinite number of living beings). They suggest that such things should be stored for relatives. They advise them to harvest paddy, barley and other crops, winnow them and to procure grains out of them by separating the husk from the corn. They ask them to store grains soon.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में यह प्रतिपादन किया गया है कि विवेकविहीन जन किसी के पूछने पर अथवा न पूछने पर भी, अपने स्वार्थ के लिए अथवा बिना स्वार्थ भी केवल अपनी चतुरता, व्यवहारकुशलता और प्रौढ़ता प्रकट करने के लिए दूसरों को ऐसा आदेश-उपदेश दिया करते हैं, जिससे अनेक प्राणियों को पीड़ा उपजे, परिताप पहुँचे, उनकी हिंसा हो, विविध प्रकार का आरम्भ-समारम्भ हो।

सर्वविरति के आराधक साधु-साध्वी तो ऐसे वचनों का प्रयोग कभी नहीं करते हैं, किन्तु देशविरति के आराधक श्रावकों एवं श्राविकाओं को भी ऐसे निरर्थक वाद से सदैव बचने की सावधानी रखनी चाहिए।

Elaboration—In the present lesson it has been mentioned that the persons who do not have sense of discrimination advise on one's asking and sometimes even without asking for their selfish purpose and even without such a purpose simply to exhibit their expertise in worldly behaviour and experience that they should engage in such activities which cause violence to living beings in different forms.

Monks and nuns never use such a language, as they have totally discarded worldly activities, which cause violence to any living beings. Even household followers of religious discipline (Shravaks) observing vows of the householder should always avoid suchlike useless talk.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. अप्पमहउक्कोसगा य हम्मंतु पोयसत्था, सेण्णा णिज्जाउ, जाउ डमरं, घोरा वट्टंतु य संगामा पवहंतु य सगडवाहणाइं, उवणयणं चोलगं विवाहो जण्णो अमुगम्मि य होउ दिवसेसु करणेसु मुहुत्तेसु णक्खत्तेसु तिहिसु य ।

अज्ज होउ ण्हवणं मुइयं बहुखज्जपिज्जकलियं कोउगं विण्हावणगं, संतिकम्माणि कुणह ससि–रवि–गहोवराग–विसमेसु सज्जणपरियणस्स य णियगस्स य जीवियस्स परिरक्खणट्ठयाए पडिसीसगाइं य देह, दह य सीसोवहारे विविहोसहिमज्जमंस–भक्खण्ण–पाण–मल्लाणुलेवणपईवजलि–उज्जलसुगंधि–धूवावगार–पुप्फ–फल–समिद्धे पायच्छित्ते करेह, पाणाइवायकरणेणं बहुविहेणं विवरीउप्पायदुस्सुमिण–पावसउण–असोमग्गहचरिय–अमंगल–णिमित्त–पडिघायहेउं, वित्तिच्छेयं करेह, मा देह किंचि दाणं, सुट्ठु हओ सुट्ठु हओ सुट्ठु छिण्णो भिण्णोत्ति उवदिसंता ।

एवंविहं करेंति अलियं मणेण वायाए कम्मुणा य अकुसला अणज्जा अलियाणा अलियधम्म–णिरया अलियासु कहासु अभिरमंता तुट्ठा अलियं करेत्तु होइ य बहुप्पयारं ।

५७. कुछ लोग दूसरों को इस प्रकार के आदेश–उपदेश आदि करते हैं जैसे–छोटे, मध्यम और बड़े नौका–दल या नौका–व्यापारियों या नौका–यात्रियों के समूह को नष्ट कर दो। युद्धादि के लिए सेना प्रयाण करे, संग्राम भूमि में जाये, घोर युद्ध प्रारम्भ हो। गाड़ी और नौका आदि वाहन चलें, उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार, शिशु का मुण्डन–संस्कार, विवाह–संस्कार, यज्ञ–ये सब कार्य–अमुक दिनों में, करणों में, मुहूर्तों में, नक्षत्रों में और तिथियों में होने चाहिए।

आज सौभाग्य के लिए स्नान करना चाहिए अथवा सौभाग्य एवं समृद्धि के लिए प्रमोद–स्नान कराना चाहिए–आज प्रमोदपूर्वक बहुत विपुल मात्रा में खाद्य पदार्थों एवं मदिरा आदि पेय पदार्थों के भोज के साथ सौभाग्य–वृद्धि अथवा पुत्रादि की प्राप्ति के लिए वधू आदि को स्नान कराओ तथा (डोरा बाँधना आदि) कौतुक करो। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण और अशुभ स्वप्न के फल का निवारण करने के लिए विविध मंत्रादि से संस्कारित जल से स्नान और शान्ति कर्म करो। अपने कुटुम्बीजनों की अथवा अपने जीवन की रक्षा के लिए कृत्रिम–आटे आदि से बनाये हुए प्रतिशीर्षक सिर की आकृति बनाकर चण्डी आदि देवियों की भेंट चढ़ाओ। अनेक प्रकार की औषधियों, मद्य, माँस, मिष्ठान्न, अन्न, पान, पुष्पमाला, चन्दन–लेपन, उबटन, दीपक, सुगन्धित धूप, पुष्पों तथा फलों से परिपूर्ण विधिपूर्वक बकरा आदि पशुओं के सिरों की बलि दो। विविध प्रकार की हिंसा करके अशुभ–सूचक उत्पात, प्रकृतिविकार, दुःस्वप्न, अपशकुन, क्रूर ग्रहों के प्रकोप, अमंगल सूचक अंगस्फुरण–(अवयवों का फड़कना) आदि के फल को नष्ट करने के लिए प्रायश्चित्त करो। अमुक की आजीविका नष्ट कर दो। किसी को कुछ भी दान मत दो। वह मारा गया, यह अच्छा हुआ। उसे काट दिया, यह ठीक हुआ। उसके टुकड़े–टुकड़े कर डाले, यह बहुत अच्छा हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार किसी के न पूछने पर या पूछे जाने पर भी आदेश–उपदेश अथवा कथन करते हुए, मन–वचन–काय से हिंसानुमोदी मिथ्या आचरण करने वाले अनार्य, अकुशल, मिथ्यामतों का अनुसरण करने वाले मृषा भाषण करते हैं। ऐसे मिथ्या धर्म में निरत लोग (अज्ञान में डूबे) मिथ्या कथाओं में रमण करते हुए, नाना प्रकार से असत्य का सेवन करके सन्तोष का अनुभव करते हैं।

57. Some persons order others in this manner. They ask that chain of small, medium and large, boats may be destroyed, all the traders doing trade through boats be destroyed or the persons travelling in boats be destroyed. They order the army to move for war, to go to the battle-field and to start a fierce battle. They order that the vehicles and boats be started. They direct that different ceremonies such as wearing of holy thread, the hair-cutting of the newly born child, the marriage, the yajna (fire-sacrifice) be performed on such particular days at such and such auspicious time, at such and such constellation and on such days of Indian calendar.

They say that one should take bath today for good luck or one should get others bathed for good future and prosperity. They suggest that the daughter-in-law should be directed to take bath today for prosperity or for having a son and the like; food be prepared happily in plenty and enjoyed with intoxicants like wine and drinks. They advise that in order to remove the evil effect of solar eclipse, lunar eclipse and bad dream one should take bath with the water affected with the influence of various mantras. They ask that for the protection of oneself and the members of the family, shapes of heads be made with the flour and sacrificed before goddess Chandi. They suggest that the heads of goats and other animals decorated with many types of herbs, intoxicants, meat, sweats, garlands, sandal paste, lighted lamp, fragrant incense and fruit be sacrificed in the manner narrated by them. They advise that the affect of bad omens like bad dreams, dreadful planet and shaking of limbs be avoided by performing activities involving violence to living beings suggested by them as a repentance. They direct that means of livelihood of a particular person be destroyed. They direct that nothing should be given in charity to any one. They declare that it is good that such and such person has been killed or chopped off or has been reduced to pieces.

Thus while giving such orders at any one's asking or without it, these uncivilised people who are incompetent and follow wrong faith, while appreciating violent activities and wrong conduct, follow falsehood in their speech. Such persons lacking true knowledge, narrate untrue stories and feel satisfied by following various types of wrong activities.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में वर्णित हिंसा के विविध स्वरूपों का आदेश-उपदेश देने वालों को अज्ञानी, मिथ्यात्वी और अपनी आत्मा का अधःपतन करने वाले बताये हैं। कोई युद्ध आदि का उपदेश हो, या ग्रह शान्ति आदि के लिए यज्ञ, पशु बलि या शान्तिकर्म आदि हो, जिसमें भी जीवों की घात होती हो, वे सभी वचन और कार्य हिंसा के साधन होने से या जिनसे हिंसा की प्रेरणा व हिंसा को उत्तेजना मिलती है, वह मिथ्या भाषण है।

कुछ अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि जीवित बकरे या भैंसे की बलि चढ़ाने में पाप है, पर आटे के पिण्ड से उसी की आकृति बनाकर बलि देने में कोई बाधा नहीं है। किन्तु यह क्रिया भी घोर हिंसा का कारण होती है। कृत्रिम बकरे में बकरे का संकल्प होता है, अतएव उसका वध बकरे के वध के समान ही पापोत्पादक है। जैन ग्रन्थ में काल शौकरिक का उदाहरण जो कुएँ में बैठा अपने शरीर के मैल से भैंसे बनाकर-मैल के पिण्डों में भैंसों का संकल्प करके उनकी हत्या करता था। परिणामस्वरूप उसे नरक में जाना पड़ा।

मिथ्या भाषण के विविध स्वरूपों का कथन करने के पश्चात् अब शास्त्रकार मृषावाद के भयानक फल का वर्णन करते हैं।

Elaboration—In the present aphorism, it has been mentioned that the persons who suggest or direct various type of violent activities, are ignorant of truth. They are of wrong faith and they adversely affect their soul. Whether the order be for engaging in war, for animal sacrifice in yajna to bring peace, if there is killing or hurting of living being in it than all such words or acts are false speech since they inspires violence.

Some believe that it is a sin to sacrifice a living he-goat or a he-buffalo. But there is no harm in sacrificing such a shape made of kneaded flour. But in fact such an act is cause of dreadful violence (himsa). In the artificial he-goat, one has in his mind the real he-goat. So by sacrificing it, he collects the same sin as he collects when he sacrifices a living he-goat. In Jain scriptures there is the example of Kaal butcher. He while in a well was collecting the moist dust from his body and preparing he-buffaloes with it and was killing them considering in his mind that he was killing he-buffaloes. As a result therefore, he was re-born in hell and suffers for his sins there.

After narrating false speech of various types, the author describes the dreadful results of it.

मृषावाद का भयानक फल DREADFUL RESULTS OF FALSEHOOD

५८. तस्स य अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेंति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालं बहुदुक्खसंकडं णरयतिरियजोणिं।

तेण य अलिएण समणुबद्धा आइद्धा पुणब्भवंधयारे भमंति भीमे दुग्गइवसहिमुवगया। ते य दीसंति इह दुग्गया दुरंता परवस्सा अत्थभोगपरिवज्जिया असुहिया फुडियच्छवि-बीभच्छ-विवण्णा, खरफरुसविरत्तज्झामज्झुसिरा, णिच्छाया, लल्लविफलवाया, असक्कयमसक्कया अगंधा अचेयणा दुभगा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकंता काकस्सरा हीणभिण्णघोसा विहिंसा जडबहिरंधया य मम्मणा अकंतविकयकरणा, णीया णीयजणणिसेविणो लोयगरहणिज्जा भिच्चा असरिसजणस्स पेस्सा दुम्मेहा लोय-वेय-अज्झप्पसमयसुइवज्जिया, णरा धम्मबुद्धिवियला।

अलिएण य तेणं पडज्झमाणा असंतएण य अवमाणणपिट्ठिमंसाहिक्खेव-पिसुण-भेयण-गुरुबंधव-सयण-मित्तवक्खारणाइयाइं अब्भक्खाणाइं बहुविहाइं पावेंति अमणोरमाइं हिययमणदूमगाइं जावज्जीवं दुरुद्धराइं अणिट्ठ-खरफरुसवयण-तज्जण-णिब्भच्छणदीणवयणविमला कुभोयणा कुवाससा कुवसहीसु किलिस्संता णेव सुहं णेव णिव्वुइं उवलभंति अच्चंत-विउलदुक्खसयसंपलित्ता।

५८. पूर्वोक्त प्रकार के मिथ्या भाषण के कटु फल-विपाक से अनजान, वे मृषावादी जन नरक और तिर्यंच योनि में परिभ्रमण की वृद्धि करते हैं, जहाँ सतत-भय महाभय है, जिनमें विश्रामरहित-लगातार वेदना भुगतनी पड़ती है और जो दीर्घकाल तक बहुत दुःखों से परिपूर्ण हैं।

(नरक-तिर्यंचयोनियों में लम्बे समय तक घोर दुःखों का अनुभव करके शेष रहे कर्मों को भोगने के लिए) वे मृषावादी लोग भयंकर पुनर्भव जन्म-मरण के अन्धकार में भटकते हैं। उस पुनर्भव (मनुष्य भव) में भी दुर्गति प्राप्त करते हैं, जिसका अन्त बड़ी कठिनाई से होता है। वे मिथ्यावादी मनुष्य पुनर्भव (इस भव) में भी पराधीन होकर जीवन यापन करते हैं। इस भव में उन्हें न तो भोगोपभोग का साधन अर्थ (धन) प्राप्त होता है और न वे मनोज्ञ भोगोपभोग ही प्राप्त कर सकते हैं। वे (सदा) दुःखी रहते हैं। उनकी चमड़ी बिवाई, दाद, खुजली आदि से फटी रहती है, वे डीलडौल से भयानक दिखाई देते हैं और कुरूप होते हैं। कठोर स्पर्श वाले, सदा बेचैन, मलीन एवं सारहीन शरीर वाले होते हैं। शोभाकान्ति से रहित होते हैं। वे न तो स्पष्ट उच्चारण कर सकते हैं और न उनकी वाणी का कोई प्रभाव या सार्थकता होती है। वे संस्काररहित और सत्कार आदि से रहित होते हैं, सर्वत्र तिरस्कार को प्राप्त करते हैं। उनका शरीर दुर्गन्ध से व्याप्त, विशिष्ट चेतना से विहीन होता है, वे अभागे, अकान्त-अनिच्छनीय-अकमनीय, कौए के समान अनिष्ट स्वर वाले, धीमी और फटी हुई आवाज वाले, दूसरों के द्वारा अनेक प्रकार से सताये जाने वाले, जड़, बधिर, अंधे, गूंगे और तोतली बोली बोलने वाले, अमनोज्ञ तथा विकृत इन्द्रियों वाले, जाति, कुल, गोत्र तथा कार्यों से नीच होते हैं। उन्हें नीच लोगों का सेवक-दास बनना पड़ता है। वे लोक में निन्दा व अपमान के पात्र होते हैं, उन्हें सर्वत्र तिरस्कार एवं धिक्कार प्राप्त होता है। वे चाकर होते हैं और अपने से भी निकृष्ट आचार-विचार वाले लोगों के आज्ञापालक या द्वेषपात्र होते हैं। वे दुर्बुद्धि होते हैं। अतः महाभारत, रामायण आदि लौकिक शास्त्र, ऋग्वेद, सामवेद आदि वेद, योगशास्त्र, कर्मग्रन्थ आदि अध्यात्म शास्त्रों एवं जैन-बौद्ध आदि आगमों या सिद्धान्तों के श्रवण एवं ज्ञान से रहित होते हैं। वे धर्मबुद्धि से रहित होते हैं।

उस अशुभ या अनुपशान्त असत्य की अग्नि से जलते हुए वे मृषावादी जीवन में अपमान, निन्दा, आक्षेप-दोषारोपण, चुगली, परस्पर की फूट अथवा प्रेम-सम्बन्धों का भंग आदि विषम स्थितियों को प्राप्त करते हैं। गुरुजनों, बन्धु-बान्धवों, स्वजनों तथा मित्रजनों के कठोर वचनों से अनादर पाते हैं। अमनोरम, हृदय और मन को सन्ताप देने वाले तथा जिनका प्रतीकार सम्पूर्ण जीवन में भी कठिनाई से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो सके या न हो सके ऐसे अनेक प्रकार के मिथ्या आरोपों को वे प्राप्त करते हैं। अनिष्ट–अप्रिय, तीक्ष्ण, कठोर और मर्मवेधी वचनों से तर्जना, झिड़कियों और धिक्कार–तिरस्कार के कारण दीन मुख एवं खिन्न चित्त वाले होते हैं। वे मृषावाद के पाप के फलस्वरूप उन्हें न तो अच्छा भोजन प्राप्त होता है, न पहनने–ओढ़ने के लिए अच्छे वस्त्र ही नसीब होते हैं। उन्हें निकृष्ट गन्दी बस्ती में क्लेश पाते हुए अत्यन्त एवं विपुल दुःखों की अग्नि में जलना पड़ता है। उन्हें न तो शारीरिक सुख प्राप्त होता है और न ही मानसिक शान्ति मिलती है।

58. The common men is ignorant about the dreadful result of wrong talk. Such persons making false utterances increase their wandering in hellish and animal state of existence. They have to remain there in continuous state of fear. They cannot take any rest there. They have to undergo suffering. They have to remain for a long time in such a condition, which is full of troubles.

(After going through dreadful troubles of hellish and animal life for a long period, in order to suffer the fruits of remaining bad karma), these false speaking people wander about in the dark vicious circle of life and death. Even in the state of human existence, their condition is wretched and they pass through that period with great difficulty. Even in that life those people lead the life of slavery. They do not have requisite means to enjoy life. They remain always in trouble. There skin remains polluted and torn due to various diseases such as itching. They are unattractive in their appearance. There touch is also not soothing. They remain always restless, dirty and impotant. They are devoid of beauty. They cannot speak clearly. Their words are not effective. They are uncivilised and they do not command any respect. They are hated everywhere. Their body gives out foul smell and their level of consciousness is also pretty low. They are unlucky, ugly and do not have any attractive feature. Their voice is disliked by every one, like that of a crow. Their voice is very low and indistinct. They are tortured by others in different ways. They are dull, hard of hearing, blind dumb and their words are not clear. Their sense organs are not in proper proportion. They belong to mean class of family and status. They do activities of backward category. They have to serve mean people. They are looked with contempt by the people. They are dishonoured and turned out from every place. They serve those people who from their thought-activity and conduct are mean. Their approach is bad. They do not have any knowledge of famous epics such as Ramayan, Mahabharat and others, as well as spiritual texts like

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vedas, Yogashastra the Agams and the principles laid therein. They are without any scriptural knowledge.

Passing through such a wretched disturbed state, those followers of falsehood, face dishonour, disrespect, and accusations in their life. They cannot maintain cordial relations. They back-bite and face dreadful result thereof. They are badly treated by teachers, relatives and friends. Many false accusations are levelled against them, which cause great mental agony and which cannot be washed off in the entire life or could be removed only with great difficulty. Since they have to listen sharp, harsh, unlovable, words, condemnation, they remain with dulled face. They do not get good clothes to wear. They have to live in a dirty colony facing extreme trouble and pain. They have neither physical happiness nor mental peace.

विवेचन : प्रारम्भ में कहा गया है कि मृषावाद के फल को नहीं जानने वाले अज्ञानी जन मिथ्या भाषण करते हैं। वास्तव में जिनको असत्य भाषण के यहाँ प्ररूपित लोमहर्षक फल का वास्तविक ज्ञान नहीं होता है अथवा जो जानकर भी उस पर पूर्ण विश्वास नहीं करते, वे भी अनजान की श्रेणी में ही गिने जाते हैं।

असत्य भाषण को साधारण जन सामान्य या हल्का दोष मानते हैं और साधारण--सी स्वार्थसिद्धि के लिए, दूसरों को धोखा देने के लिए, क्रोध से प्रेरित होकर, लोभ के वशीभूत होकर, भय के कारण अथवा हास्य-विनोद में लीन होकर असत्य बोलते रहते हैं। उन्हें इसके दुष्परिणाम की चिन्ता नहीं होती या इतने कटु दुष्परिणामों का ज्ञान भी नहीं होता, इसलिए शास्त्रकार ने यहाँ बतलाया है कि मृषावाद का फल इतना गुरुतर एवं भयंकर होता है कि नरकगति और तिर्यंचगति के भयानक कष्टों को दीर्घकाल पर्यन्त भोगने के पश्चात् भी उनसे पिण्ड नहीं छूटता। उसका फल जो शेष रह जाता है उसके प्रभाव से मृषावादी जब मनुष्यगति में उत्पन्न होता है तब भी वह अत्यन्त दुरवस्था का भागी होता है। दीनता, दरिद्रता, भाग्यहीनता आदि उसका पीछा नहीं छोड़ती। वह हर प्रकार के सुख साधनों से तो वंचित रहता ही है। शारीरिक दृष्टि से भी रोगी घृणित और दूसरों के तिरस्कार का पात्र होता है।

मृषावाद वाणी व्यवहार से होता है, अतः मृषावादी की बोली अस्पष्ट व तुतलाती व कौए जैसी कर्ण कटु होती है। जब वे बोलते हैं तो सभी को अप्रिय तथा अरुचिकर लगती है। उनमें से कई तो गूँगे ही होते हैं।

Elaboration—It has been said in the beginning that those who do not know the consequences of false speech, they make false utterances. In fact those who are ignorant about the results of falsehood as mentioned above, or those who even after having such knowledge, do not have faith in it, *they also belong to this category.*

The common man considers that to make a false statement is a minor fault. So they tell lie for minor selfish gain, for deceiving others, under influence of anger or greed, out of fear or in a fit of laughter or minor

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

enjoyment. They do not worry about its bad consequences. They do not have knowledge about the dreadful result. So the author has stated that the result of falsehood is so harsh and dreadful that even after suffering after a long period in hell and in animal state, one is not able to wipe it off completely. Due to the residual karma, when such a person takes birth as a human being, his condition there also is extremely sad. He remains poor, unlucky seeking mercy. He remains devoid of means of enjoyment. Even from the point of view of physical structure he remains sick and subject of hatred and contempt.

Falsehood is expressed through speech. So the talk of such as person is indistinct and unpleasant to the ears as is of a crow. When he speaks, it is disliked by every one, nobody has any interest in it. Many such person are born dumb.

फलविपाक की भयंकरता DREADFULNESS OF CONSEQUENCES

५९. (क) एसो सो अलियवयणस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसओ असाओ वास-सहस्सेहिं मुच्चइ, ण अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति।

एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरणामधेज्जो कहेसि य अलियवयणस्स फलविवागं।

५९. (क) मृषावाद का यह (पूर्वोक्त) इस लोक और परलोक सम्बन्धी फलविपाक है। इस फलविपाक में सुख का अभाव है और दुःखों की ही बहुलता है। यह अत्यन्त भयानक है और प्रगाढ़ कर्मों के बन्ध का कारण है। यह दारुण है और असातारूप है। हजारों-हजारों वर्षों में इससे छुटकारा मिलता है। फल को भोगे बिना इस पाप से मुक्ति नहीं मिलती-इसका फल भोगना ही पड़ता है।

ज्ञातकुलनन्दन, महान् आत्मा वीरवर महावीर नामक जिनेश्वर देव ने मृषावाद का यह फल प्रतिपादित किया है।

59 [a]. This is the result of falsehood in the current life-span and in the next life. There is absence of happiness in it, and the troubles are in abundance. It is extremely dreadful. It is the cause of thick bondage of karmas. It is very troublesome and harsh. One has to bear its sad result for thousands of years. This sin cannot be removed without passing through its consequences. One has to suffer its fruits.

Lord Mahavir who was born in Jnatri clan has mentioned these consequences of falsehood.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में मृषावाद के कटु फलविपाक का उपसंहार करते हुए तीन बातों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है–

(१) असत्य भाषण का जो पहले और यहाँ फल निरूपित किया गया है, वह सूत्रकार ने अपनी स्वमति कल्पना से नहीं किया है किन्तु ज्ञातकुलनन्दन भगवान् महावीर, सर्वज्ञ वीतराग जिन के द्वारा प्ररूपित है। यह लिखकर शास्त्रकार ने इस समग्र कथन की प्रामाणिकता की है।

अर्थात् जिनेन्द्रों ने जो कहा है वही सत्य है और उस कथन में शंका के लिए कुछ भी स्थान नहीं है।

(२) सूत्रकार ने दूसरा तथ्य यह प्रकट किया है कि मृषावाद के फल को सहस्रों–सहस्रों वर्षों तक भोगना पड़ता है। 'सहस्र' शब्द में बहुवचन का प्रयोग करके सूत्रकार ने दीर्घकालिक फलभोग का अभिप्राय प्रकट किया है।

(३) तीसरा तथ्य यहाँ फल की अवश्यमेव उपभोग्यता कही है। असत्य भाषण का दारुण, दुःखमय फल भोगे बिना जीव को उससे छुटकारा नहीं मिलता। क्योंकि वह विपाक **'बहुरयप्पगाढो'** होता है, अर्थात् अलीक भाषण से जिन कर्मों का बंध होता है, वे बहुत गाढ़े, चिकने होते हैं, अतएव विपाकोदय से भोगने ही पड़ते हैं।

Elaboration—In the present lesson three things have been specially mentioned while concluding the talk on bitter consequences of falsehood.

(1) Whatever has been mentioned earlier or here, as the result of falsehood is not based on the flight of imagination of the author. It is, however, mentioned by omniscient Bhagavan Mahavir belonging to Jnatri clan. Thus the writer has clarified that this version is absolutely true and is of one who has actually seen it.

Whatever is said by the omniscient is totally true and there is not any scope of doubt in it.

(2) The second fact that the writer has highlighted is that one has to bear the consequences of falsehood for thousands of years. By using the words 'thousand' in plural form, the writer has clarified that its consequences are suffered for a very long period.

(3) The third conclusion is that one has to bear the consequences of falsehood essentially. One can not go scot free without undergoing the dreadful, troublesome consequence of his false speech. That result is 'haturayappagadho'. It means that the bondage due to false utterances is extremely thick and tenacious. So when it fructifies, one has to bear its consequences.

उपसंहार CONCLUSION

५९. (ख) एयं तं बिईयं पि अलियवयणं लहुसग–लहु–चवल–भणियं भयंकरं दुहकरं अयसकरं वेरकरगं अरइ–रइ–राग–दोस–मणसंकिलेस–वियरणं अलिय–णियडि–साइजोगबहुलं णीयजणणिसेवियं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिस्संसं अप्पच्चयकारगं परम-साहुगरहणिज्जं परपीलाकारगं परमकण्हलेस्ससहियं दुग्गइ-विणिवायवड्ढणं पुणब्भवकरं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं।

॥ बिईयं अहम्मदारं समत्तं ॥

५९. (ख) यह दूसरा अधर्मद्वार-मृषावाद है। छोटे क्षुद्र और चंचल प्रकृति के लोग इसका प्रयोग करते-अर्थात् महान् एवं गम्भीर स्वभाव वाले मृषावाद का सेवन नहीं करते। यह मृषावाद भयंकर है, दुःखकर है, अपयशकर है, वैर का कारण है। अरति, रति, राग-द्वेष एवं मानसिक संक्लेश को उत्पन्न करने वाला है। यह झूठ, निष्फल कपट और अविश्वास की बहुलता वाला है। नीच जन इसका सेवन करते हैं। यह नृशंस एवं घृणा योग्य है। अविश्वासकारक है-मृषावादी के कथन पर कोई विश्वास नहीं करता। परम साधुजनों द्वारा निन्दनीय है। दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला और परम कृष्णलेश्या से संयुक्त है। अधोगति में जाने का कारण है, पुन-पुनः जन्म-मरण का कारण है, चिरकाल से परिचित है-अनादिकाल से लोग इसका सेवन कर रहे हैं, यह अनुगत है-उनके साथ चिपटा है। इसका अन्त कठिनता से होता है अथवा इसका परिणाम दुःखमय ही होता है।

॥ द्वितीय अधर्मद्वार समाप्त ॥

59 [b]. Falsehood is the second entrance of adharma (impiety). It is followed by mean people of disturbed childish behaviour. In other words those who are cultured and sober, they do not follow falsehood. Falsehood is dreadful and troublesome. It brings dishonour. It becomes the cause of enmity. It produces disinterest in self-restraint, interest in uncontrolled behaviour, feelings of attachment and hatred, and also mental disturbance. It contains crookedness and distrust in plenty. Only mean people follow it. It is inhuman and worthy of contempt. It is untrustworthy Nobody believes the version of a person who is mrishavadi (habitual in making false utterances). It is condemned by worthy people. It causes trouble to others. It is full of extremely dark thought activity. It is the cause of re-birth in lower region and of taking birth again and again in the mundane world. It has been prevalent since beginningless period. It has been closely attached to the mundane soul. It can be destroyed with great difficulty. In other words, its result is always painful.

● END OF THE SECOND CHAPTER ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐卐卐

तृतीय अध्ययन : अदत्तादान
THIRD CHAPTER : ADATTADAN (STEALING)

दूसरे मृषावाद–आस्रवद्वार का निरूपण करने के बाद अब तीसरे अदत्तादान आस्रव का निरूपण किया जाता है। क्योंकि मृषावाद और अदत्तादान में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अदत्तादान लेने वाला प्रायः असत्य भाषण करता है। यहाँ सर्वप्रथम अदत्तादान का स्वरूप बताया गया है–

After discussing Mrishavad (falsehood) the second Asrava (entrance for the Karmic inflow), the third asrava adattadan (stealing) is going to be discussed here. Falsehood and stealing are deeply related to each other. One who steals often tells lies. Now first of all the ordinary interpretation of adattadan is stated here.

अदत्त का परिचय INTRODUCTION OF ADATT

६०. जंबू ! तइयं च अदिण्णादाणं हर–दह–मरणभय–कलुस–तासण–परसंतिग–अभेज्ज–लोभ–मूलं कालविसमसंसियं अहोऽच्छिण्ण–तण्हपत्थाण–पत्थोइमइयं अकित्तिकरणं अण्णज्जं छिद्दमंतर–विहुर–वसण–मग्गण–उस्सवमत्त–प्पमत्त पसुत्त–वंचणक्खिवण–घायणपरं अणिहुयपरिणामं तक्कर–जणबहुमयं अकलुणं रायपुरिस–रक्खियं सया साहु–गरहणिज्जं पियजण–मित्तजण–भेय–विप्पिइकारगं रागदोसबहुलं पुणो य उप्पूरसमरसंगामडमर–कलिकलहवेहकरणं दुग्गइविणिवायवड्ढणं–भवपुणब्भवकरं चिरपरिचिय–मणुगयं दुरंतं। तइयं अहम्मदारं।

६०. श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहा–हे जम्बू ! तीसरा अधर्मद्वार अदत्तादान है। अदत्त अर्थात् बिना दी गई किसी दूसरे की वस्तु को आदान–ग्रहण करना है। यह अदत्तादान (परकीय पदार्थ का) हरण रूप है। हृदय को जलाने वाला है। मरण–भय रूप अर्थात् मृत्यु के समान भयंकर है। पापमय होने से कलुषित है। दूसरों को त्रास उत्पन्न करने वाला है। धनादि में रौद्रध्यानस्वरूप मूर्च्छा–लोभ ही इसका मूल है। विषमकाल–आधी रात्रि आदि और विषम स्थान–पर्वत, सघन वन आदि स्थानों पर आश्रित है अर्थात् चोरी करने वाले विषम काल और विषम स्थान की तलाश में रहते हैं। यह अदत्तादान निरन्तर तृष्णाग्रस्त जीवों को अधोगति की ओर ले जाने वाली बुद्धि देने वाला है। अदत्तादान अपयश का कारण है, अनार्य पुरुष इसका आचरण करते हैं। आर्य–श्रेष्ठ मनुष्य कभी अदत्तादान ग्रहण नहीं करते। यह सदा छिद्रगवेषण एवं ताक–झाँक की वृत्ति वाला है। उत्सवों के अवसर पर मदिरा आदि के नशे में बेभान, असावधान तथा सोये हुए मनुष्यों को ठगने वाला, चित्त में व्याकुलता उत्पन्न करने और घात करने में तत्पर है तथा अशान्त परिणाम वाले चोरों द्वारा किया जाता है। यह करुणाहीन कृत्य–निर्दयता से परिपूर्ण कार्य है, राजपुरुषों–चौकीदार, कोतवाल, पुलिस आदि द्वारा इसे रोका जाता है। सदैव साधुजनों–सत्पुरुषों द्वारा निन्दित है। प्रियजनों तथा मित्रजनों में (परस्पर) फूट और अप्रीति उत्पन्न करने वाला है। राग और द्वेष को बढ़ाने वाला है। यह बहुतायत से मनुष्यों को मारने वाले संग्रामों, स्वचक्र–परचक्र सम्बन्धी विपल्वों, लड़ाई–झगड़ों, तकरारों एवं पश्चात्ताप का कारण है। दुर्गति–पतन में वृद्धि करने वाला, भव–पुनर्भव–बारम्बार जन्म–मरण कराने वाला, चिरकाल

卐卐卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदाकाल से परिचित, आत्मा के साथ लगा हुआ-जीवों का पीछा करने वाला और परिणाम में अन्त में दुःखदायी है। यह तीसरा अधर्मद्वार-अदत्तादान ऐसा है।

60. Sudharma Swami told his disciple Jambu Swami, O Jambu ! The third gateway of impiety (adharma) is stealing (adattadan). Adatt means that which has not been given or offered and adaan means to take a thing belonging to others. The adattadan is by nature stealing a thing belonging to another person. It causes pain. It is as dreadful as death. It is bad as it is a sin. It causes dejection to others. Greed, the dangerous attachment to wealth, is at its root. It leads one to odd time and place—mountain or thick forest. In other words the thieves are always in search of odd times and odd places. It is in the conduct of those whose desires never fulfil. It creats such a mental attitude in them which leads them to mean state of existence. Stealing is the cause of disrespect. It is followed by uncivilised people. The civilised, cultured people never adopt it. It is done by thieves who at the time of festivals search the people who are in unconscious condition due to intoxicating drink and are asleep or not well aware. Those thieves are ready to create disturbance in the mind of others and to kill them causing a disturbing environment. It is completed in a cruel manner, which is devoid of compassion. It is checked by state officials, the security guards, the police and the like. It is always condemned by cultured noble people. It often becomes the cause of creating friction among friends and relatives. It increases feelings of attachment and hatred. It is primarily the cause of wars, disturbances, quarrels, fights, exchange of hot words resulting in death of many human beings. In the end it results in repentance. It increases the possibility of fall in bad state of existence. It causes birth and re-birth again and again in the mundane world. It is well known since long. It is attached to the soul, follows it and ultimately causes trouble. This is the nature of adattadan—the third gateway of inflow of karmas.

विवेचन : जो वस्तु वास्तव में अपनी नहीं है परायी है-उसे उसके स्वामी की स्वीकृति या अनुमति के बिना ग्रहण कर लेना अपने अधिकार में ले लेना अदत्तादान कहलाता है।

शास्त्र में चार प्रकार के अदत्त कहे गये हैं-(१) स्वामी द्वारा अदत्त, (२) जीव द्वारा अदत्त, (३) गुरु द्वारा अदत्त, और (४) तीर्थंकर अदत्त। इन चारों में से प्रत्येक के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार-चार भेद होते हैं। अतएव सब मिलकर अदत्त के १६ भेद हैं।

महाव्रती साधु और साध्वी सभी प्रकार के अदत्त का पूर्ण रूप से तीन करण और तीन योग से त्याग कर चुके होते हैं। वे कोई भी वस्तु उसके स्वामी की अनुमति बिना ग्रहण नहीं करते हैं। गृहस्थों में श्रावक और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्राविकाएँ स्थूल अदत्तादान के त्यागी होते हैं। जिस वस्तु को ग्रहण करना लोक में चोरी कहा जाता है और जिसके लिए शासन की ओर से दण्डविधान है, ऐसी वस्तु के अदत्त ग्रहण को स्थूल अदत्तादान कहा जाता है।

कालविसमसंसियं–अदत्तादान करने वाले व्यक्ति प्रायः विषम काल और विषम देश का सहारा लेते हैं। अर्थात् रात्रि में जब लोग निद्राधीन हो जाते हैं तब अनुकूल अवसर समझकर चोर अपने काम में प्रवृत्त होते हैं और चोरी करने के पश्चात् गुफा, बीहड़ जंगल, पहाड़ आदि विषम स्थानों में छिप जाते हैं, जिससे उनका पता न लग सके।

आगम वचन है–**अहोऽ छिन्नतण्ह पत्थाण पत्थो इमइयं**

धनादि की तीव्र तृष्णा, जो कभी शान्त नहीं होती, ऐसी कलुषित बुद्धि से प्रेरित होकर मनुष्य चौर्य-कर्म में प्रवृत्त होता है।

चोर की सर्वत्र ऐसी अपकीर्ति होती है कि उसे कहीं भी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती। उस पर कोई विश्वास नहीं करता।

चोरी स्पष्टतः अनार्य अर्थात् नीच कर्म है। चोरी करने वाला जाति या कुल आदि की अपेक्षा से भले आर्य हों परन्तु कर्म से अनार्य हैं। इसी कारण सत्पुरुषों द्वारा यह गर्हित-निन्दित है।

अदत्तादान के कारण प्रियजनों एवं मित्रों में भी भेद-फूट उत्पन्न हो जाती है। मित्र शत्रु बन जाते हैं। प्रेमी भी विरोधी हो जाते हैं। इसकी बदौलत भयंकर नरसंहारकारी संग्राम होते हैं, लड़ाई-झगड़ा होता है।

चौर्य कर्म में लिप्त मनुष्य वर्तमान जीवन को ही अनेक दुःखों से परिपूर्ण नहीं बनाता, अपितु भावी जीवन को भी विविध वेदनाओं से परिपूर्ण बना लेता है एवं जन्म-मरण रूप संसार की वृद्धि करता है।

Elaboration—Adattadan is to usurp a thing that belongs to some one other than self without the permission of its owner or without his knowledge.

In the scriptures, four types of stealing (adatt) have been mentioned **(1) Swami adatt**—stealing a thing of its owner, **(2) Jiva adatt**—stealing the life or limbs of a Jiva, **(3) Guru adatt**—stealing from or misinterpreting the teacher, and **(4) Tirthankar adatt**—declaring a thing as said by omniscient which is not so or misinterpreting the words of omniscient. Each of the said four, has four kinds namely Dravya (according to substance), Kshetra (according to location), Kaal (according to time) and Bhava (according to mental attitude). Thus adatt is of sixteen types.

An ascetic observing five great vows avoids all types of stealing (adatt). He does not accept anything without the express permission of its owner. Among the householders, Shravaks and Shravikas (the householders who have accepted the vows of a householder devotees), avoid gross stealing. Gross adatt (stealing) is that which is considered theft in the world and for which there is criminal procedure for awarding punishment.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Kalvisansansiyam—Those engaged in stealing often take advantage of odd time and odd place. It means that at night when every one is asleep, the thieves considering it as appropriate opportunity for committing theft, engage themselves in such an act. After committing theft they conceal themselves in a cave, dense forest or in hills so that no one is able to trace them.

In Agams, the relevant passage is 'Atutthi dosen duhi parass lobhavile ayayai adattam'. It means that a person commits theft under the deep desire of money, which never cools down and under the influence of adverse mental activity.

A thief is dishonoured everywhere. He commands respect nowhere. No one has a trust in him.

Stealing is clearly a contemptible actively. A thief may be of a civilised class and cultured family but he is a rustic by virtue of his conduct. So the noble people hate him.

Stealing leads to friction among friends and relatives. Friends become enemies. A beloved one becomes the opponent; sometimes dreadful battles resulting in heavy loss of life occur because of it.

अदत्तादान के तीस नाम THIRTY SYNONYMS OF STEALING (ADATTADAN)

६१. तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तं जहा–(१) चोरिक्कं, (२) परहडं, (३) अदत्तं, (४) कूरिकडं, (५) परलाभो, (६) असंजमो, (७) परधणम्मि गेही, (८) लोलिक्कं, (९) तक्करत्तणं त्ति य, (१०) अवहारो, (११) हत्थलहुत्तणं, (१२) पावकम्मकरणं, (१३) तेणिक्कं, (१४) हरणविप्पणासो, (१५) आदियणा, (१६) लुंपणा धणाणं, (१७) अप्पच्चओ, (१८) अवीलो, (१९) अक्खेवो, (२०) खेवो, (२१) विक्खेवो, (२२) कूडया, (२३) कुलमसी य, (२४) कंखा, (२५) लालप्पणपत्थणाय, (२६) आससणाय वसणं, (२७) इच्छामुच्छा य, (२८) तण्हागेही, (२९) णियडिकम्मं, (३०) अप्परच्छंति वि य। तस्स एयाणि एवमाईणि णामधेज्जाणि होंति तीसं अदिण्णादाणस्स पावकलिकलुस–कम्मबहुलस्स अणेगाइं।

६१. पूर्व सूत्रों में जिसके स्वरूप का वर्णन किया गया है, उस अदत्तादान के सार्थक गुणनिष्पन्न–तीस नाम हैं। वे इस प्रकार हैं–

(१) **चोरिक्कं–चौरिक्य**–दूसरे की वस्तु चुराना।

(२) **परहडं–परहत**–दूसरे से वस्तु छीन लेना या दूसरे की वस्तु दबा लेना।

(३) **अदत्तं–**अदत्त–स्वामी के द्वारा दिये बिना लेना।

(४) **कूरिकडं–क्रूरकृत**–क्रूर लोगों का कर्म या क्रूरतापूर्ण दुस्साहसिक कार्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) **परलाभो–परलाभ**–दूसरे के श्रम से उपार्जित वस्तु आदि लेना।

(६) **असंजमो–असंयम**–चोरी करने से संयम का विनाश हो जाता है। अथवा मन व इन्द्रियों के असंयम को बढ़ाने वाला है।

(७) **परधणंमि गेही–परधन गृद्धि**–दूसरे के धन में आसक्ति–लोभ–लालच होने पर चोरी की जाती है। यही चोरी का प्रेरक कारण है।

(८) **लोलिक्कं–लौल्य**–दूसरों की वस्तु पर लोलुपता।

(९) **तक्करत्तणं–तस्करत्व**–तस्कर वृत्ति, लुटेरों का काम है।

(१०) **अवहारो–अपहार**–स्वामी की इच्छा के बिना या धोखा देकर लेना।

(११) **हत्थलहुत्तणं–हस्तलघुत्व**–हाथ की सफाई लोलुपता चोरी को उत्तेजना देती है।

(१२) **पावकम्मकरणं–पापकर्मकरण**–चोरी पापकर्म है। इसमें हिंसा, असत्य, निर्दयता, लोभ आदि पाप छिपे हैं।

(१३) **तेणिक्कं–स्तेनिका**–चौर्य कर्म।

(१४) **हरणविप्पणास–हरणविप्रणाश**–परायी वस्तु को नष्ट–भ्रष्ट करना।

(१५) **आदियणा–आदान**–बिना आज्ञा के परधन को लेना।

(१६) **धणाणं लुंपना–धनलुम्पता**–दूसरे के धन को गायब करना।

(१७) **अप्पच्चओ–अप्रत्यय**–अविश्वास का कारण।

(१८) **अवीलो–अवपीड**–दूसरे को पीड़ा उपजाना। जिसकी चोरी की जाती है, उसे पीड़ा अवश्य होती है।

(१९) **अक्खेवो–आक्षेप**–परकीय द्रव्य पर झपटना।

(२०) **खेवो–क्षेप**–दूसरे की वस्तु छीन लेना।

(२१) **विक्खेवो–विक्षेप**–परकीय वस्तु लेकर इधर–उधर कर देना।

(२२) **कूडया–कूटता**–तोल, माप आदि में बेईमानी करना।

(२३) **कुलमसी–कुलमषि**–कुल को कलंकित करने वाला कर्म।

(२४) **कंखा–कांक्षा**–दूसरे की वस्तु पर तीव्र इच्छा होना। यही चोरी का मूल कारण है।

(२५) **लालप्पणपत्थणाप–लालपन–प्रार्थना**–लल्लो–चप्पो करके दूसरों से धन आदि लेना। अर्थात् कुछ लोग खुशामद या चापलूसी करके दूसरों का धन हड़पते हैं यह भी चोरी है।

(२६) **आससणाय वसणं–व्यसन**–विपत्तियों का कारण अथवा बुरी आदत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२७) इच्छा–मुच्छा–इच्छा–मूर्च्छा–परकीय धन की इच्छा करना एवं उसमें गहरी आसक्ति रखना।

(२८) तण्हा–गेही–तृष्णा–गृद्धि–प्राप्त द्रव्य का मोह और अप्राप्त द्रव्य को पाने की आकांक्षा।

(२९) नियडिकम्म–निकृतिकर्म–कपटपूर्वक या जालसाजी द्वारा किया हुआ कर्म है।

(३०) अपरच्छंति–अपरोक्ष–दूसरों की नजर बचाकर किया जाने वाला कर्म।

इस प्रकार पापकर्म और कलह से मलिन कामों से परिपूर्ण इस अदत्तादान आस्रव के ये तीस नाम और इस प्रकार के अन्य अनेक नाम हैं।

61. In the scriptures; thirty synonyms of adattadan have been mention. They are as under :

(1) **Chorikkam**—To steal a thing belonging to others.

(2) **Parahadam**—To snatch a thing from the other person or not to return it.

(3) **Adattam**—To take a thing without its having been given by the owner.

(4) **Koorikadam**—An act of cruel persons or a daring cruel act.

(5) **Paralabho**—To take a thing, which the other one has got by hard work.

(6) **Asanjamo**—Stealing destroys the spirit of self-restraint and increases non-restraint of senses.

(7) **Paradhanami Gehi**—Theft is committed in view of greed or attachment towards others property.

(8) **Lolikkam**—To look greedily at others things.

(9) **Takkarattanam**—Smuggling; it is a trait of robbers.

(10) **Avahaaro**—To get a thing by deceiving others.

(11) **Hatth lahuttaam**—Greed encourages stealing. It is a trick of the hand and is a dirty act.

(12) **Pavakammakaranam**—It is a sin. Violence, non-truth, cruelty, greed and the like are at its root.

(13) **Tennikam**—It is an act of thieves.

(14) **Haran Vippanaas**—To destroy others articles.

(15) **Adiyana**—Taking others money without permission.

(16) **Dhananum Lumpana**—Concealing others money.

(17) **Appachchao**—It is a cause of mistrust.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐

(18) **Aveel**—It causes pain to others. The person whose property is stolen certainly feels pain.

(19) **Aakkhevo**—It is to pounce on others belongings.

(20) **Khevo**—To take others property by force.

(21) **Vikkhevo**—To take others things and hide them.

(22) **Koodaya**—To be dishonest in weights and measures.

(23) **Koolamasi**—To bring dishonour to the family.

(24) **Kankha**—To have a intense desire for a thing belonging to others. It is the basic cause of theft.

(25) **Lalappan-patthanaye**—To procure money by flattering others or by false praise.

(26) **Vasanam**—Bad habit or the cause of troubles.

(27) **Ichha-Muchha**—To have a deep attachment for money belonging to others.

(28) **Tanha-Gehi**—To be deeply attached to what one has got and to have a desire of having that which has not got in yet.

(29) **Niyadikamm**—An act done in a deceitful manner.

(30) **Aparachhanti**—To do a thing avoiding others.

These are the important synonyms of adattadan asrava (inflow of karma through stealing) which is full of sinful act and dirty as it leads to quarrel. There are many more synonyms also.

विवेचन : किसी की कोई वस्तु असावधानी से कहीं गिर गई हो, भूल से रह गई हो, जानबूझकर रखी हो, उसे उसके स्वामी की आज्ञा, अनुमति या इच्छा के बिना ग्रहण कर लेना 'चोरी' कहलाता है।

यहाँ प्रश्न होता है कि तिनका, मिट्टी, रेत आदि वस्तुएँ, जो सर्व साधारण के उपयोग के लिए मुक्त हैं, जिनके ग्रहण करने का सरकार की ओर से निषेध नहीं है, न कोई दण्ड है। जिसका कोई स्वामी विशेष भी नहीं है, उसको ग्रहण करना क्या चोरी है? समाधान है-स्थूल अदत्तादान का त्यागी गृहस्थ यदि उसे ग्रहण कर लेता है तो उसके व्रत में बाधा नहीं आती तथा लोकव्यवहार में वह चोरी नहीं कहलाती है। परन्तु तीन करण और तीन योग से अदत्तादान के त्यागी साधुजन ऐसी वस्तु को भी ग्रहण नहीं कर सकते। आवश्यकता होने पर वे उसके स्वामी या शक्रेन्द्र की अनुमति लेकर ही ग्रहण करते हैं।

अदत्तादान के तीस नामों के अर्थ का विस्तृत चिन्तन करने से इन नामों से चौर्यकर्म की व्यापकता का परिबोध होता है। इन नामों से चोरी की मूल प्रेरणा अतृप्ति, उससे होने वाले फल अपकीर्ति, भय तथा परलोक में दुर्गति तक का कथन समाहित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रकार ने सूत्र के अन्त में यह स्पष्ट निर्देश किया है कि अदत्तादान के यह तीस ही नाम हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए। इसके अनुरूप अन्य अनेक कार्य भी स्तेन कर्म हो सकते हैं।

Elaboration—A thing belonging to a person has fallen down somewhere due to lack of proper attention; a person has forgotten a thing kept at a place or he has knowingly kept it somewhere; to take it without the orders, express permission or without the consent of the owner is theft.

Now the question arises that a small piece of dry grass, earth, sand and the like are such substances, which one can freely take and use. The government has not laid any restriction. No punishment is there in the law for it. There is no particular owner of it. Is it a theft to take such a thing. The reply to this question is as follows :

In case a householder observing vows of the householder takes it, it does not in any way affect his vow and it is not called theft in ordinary dealings. But the monks have discarded stealing in the context of three karanas (in doing, in getting done, appreciating what is done) and three yogas (mentally, vocally and physically). So they cannot take it. In case they have a need for a thing they can accept it only with the permission of the owner and if there is no owner available, with the permission of Indra, the lord of first heaven.

By contemplating deeply on thirty synonyms of adattadan, one can have a sufficient knowledge about the extent of its field. These synonyms exhibit what inspires stealing, how it causes non-satisfaction, and how it results in disrespect, fear and bad state of existence in the next life.

At the end of this aphorism, it has clearly been stated that one should not understand that adattadan has only these thirty names. Other activities similar to it also fall in category of stealing.

चौर्यकर्म के विविध प्रकार VARIOUS TYPES OF ACT OF STEALING

६२. ते पुण करेंति चोरियं तक्करा परदव्वहरा छेया, कयकरणलद्ध–लक्खा साहसिया लहुस्सगा अइमहिच्छलोभगत्था दद्दरओवीलका य गेहिया अहिमरा अणभंजगा भग्गसंधिया रायदुट्ठकारी य विसयणिच्छूढ–लोकबज्झा उद्दोहग–गामघायग–पुरघायग पंथघायग–आलीवग–तित्थभेया लहुहत्थसंपउत्ता जूइकरा खंडरक्ख–त्थीचोर–पुरिसचोर–संधिच्छेया य, गंथीभेयग–परधण–हरण–लोमावहारा अक्खेवी हडकारगा णिम्मद्दगगूढचोरग–गोचोरग–अस्सचोरग–दासीचोरा य एकचोरा ओकड्डग–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपदायगउच्छिंपग-सत्थघायग-बिलचोरीकारगा य णिग्गाहविप्पलुंपगा बहुबिहतेणिक्कहरणबुद्धी एए अण्णे य एवमाई परस्स दव्वाहि जे अविरया।

इस सूत्र में चौर्य कर्म करने वालों का वर्णन किया जाता है-

६२. उस पूर्वकथित चोरी को वे लोग करते हैं जो दूसरों का धन हरण करने वाले हैं, हरण करने में कुशल हैं, अनेकों बार चोरी कर चुके हैं और मौका जानने वाले हैं, जिनका दुस्साहसी स्वभाव है। परिणाम की चिन्ता करके भी चोरी का साहस करते हैं, जो तुच्छ हृदय वाले, अत्यन्त महत्वाकांक्षी एवं लोभ से ग्रस्त हैं, जो वाणी के आडम्बर से अपनी असलियत को छिपाने वाले हैं या दूसरों को भ्रमित करने वाले हैं, जो दूसरों के धनादि में आसक्त हैं, जो सामने से सीधा प्रहार करने वाले हैं, जो लिए हुए ऋण को नहीं चुकाने वाले हैं, जो की हुई सन्धि अथवा प्रतिज्ञा या वायदे को भंग करने वाले हैं, जो राजकोष आदि को लूटकर या अन्य प्रकार से राज्य-शासन का अनिष्ट करने वाले हैं, देश निकाला दिये जाने के कारण जो समाज द्वारा बहिष्कृत हैं, जो घातक हैं या उपद्रव, दंगा आदि करने वाले हैं, गाँवों, नगरों आदि में घात करने वाले हैं, मार्ग में पथिकों को लूटने वाले या मार मारने वाले हैं, आग लगाने वाले और तीर्थयात्रियों को लूटने वाले जो (जादूगरों की तरह) हाथ की सफाई वाले हैं-जेब या गाँठ काट लेने में कुशल हैं, जो जुआरी हैं, चुंगी लेने वाले या कोतवाल हैं, स्त्री-चोर हैं अथवा स्त्री का वेष धारण करके चोरी करते हैं, जो पुरुष की वस्तु को अथवा (आधुनिक डकैतों की भाँति फिरौती लेने आदि के उद्देश्य से) पुरुष का अपहरण करते हैं, जो सेंध लगाने वाले हैं, गाँठ काटने वाले हैं, जो पराया धन उड़ाने वाले हैं, (धन हाथ न लगने पर जो निर्दयता या भय के कारण अथवा आतंक फैलाने के लिए) मारने वाले हैं, जो वशीकरण या औषधि आदि का प्रयोग करके धनादि का अपहरण करने वाले हैं, सदा दूसरों को सताने वाले हैं, गुप्तचोर, गो-चोर-गाय चुराने वाले, अश्व-चोर एवं स्त्रियों को चुराने वाले हैं, अकेले ही चोरी करने वाले, घरों में से आभूषण आदि निकाल लेने वाले, चोरों को बुलाकर दूसरे के घर में चोरी करवाने वाले, चोरों की सहायता करने वाले, चोरों को भोजनादि देने वाले, लुक-छिपकर चोरी करने वाले, सार्थ-बनजारों को लूटने वाले, दूसरों को धोखा देने के लिए बनावटी आवाज में बोलने वाले, राजा द्वारा दण्डित बन्दीगृहों से भागे हुए एवं छलपूर्वक राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले, अनेकानेक प्रकार से चोरी करके दूसरों का धन चुराने की बुद्धि वाले, ये लोग और इसी कोटि के अन्य लोग, जो दूसरे के द्रव्य को ग्रहण करने की इच्छा से निवृत्त नहीं हैं अर्थात् अदत्तादान के त्यागी नहीं हैं-जिनमें परधन के प्रति लालसा विद्यमान है, वे चौर्य कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

62. This ophorism describes people indulging in stealing-the above said act of stealing is done by those people whose profession is usurping property of others. They are expert in this act. They have committed theft many times. They are well-versed in finding out proper occasion for committing theft. They have a daring temperament. They care little for its result. They are bold. They have a mean heart. They are extremely

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

greedy. They are expert in concealing their true nature through sweat talk. They are clever in deluding others. They are attached in others property. They attack at the fore front. They do not pay back the debts. They break the promise or the oath or the agreement. They rob the state treasure or cause loss to the state in any other way. They are extradited by the society as they are expelled by the state. They are murderers. They create disturbance. They cause killings in villages and towns. They rob the travellers on the way or even kill them. They set fire. They loot pilgrims. They pickpocket people like magicians. They are gamblers. They collect octroi. They are policemen. They abduct women or commit thefts in the garb of women. They steal articles, belonging to men or even kidnap the owners (in order to get money from them like kidnappers at present). They break into the houses. They cheat people. They misuse property of others. They kill people (in case they are unable to find money). They create disturbance and terror. They rob people by using mantra or substances causing unconsciousness. They always trouble others. They are spies. They carry away the cattle namely cow, horse and the like. They kidnap women. They help thieves. They serve food to thieves. They secretly commit thefts. They rob wayfarers. They utter artificial sounds in order to deceive others. They are the prisoners set free after undergoing the jail term. They plan thefts in different way. They, in a deceptive manner, transgress the state orders. They commit theft alone. They steal ornaments from houses. Such people and other people of this category are not devoid of the desire of usurping property of others. In other words they have not discarded adattadan (stealing). They still have an eye on money belonging to others. They remain engaged in stealing.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में बताया है कि चोरी करने वाले लोग किस श्रेणी के होते हैं? किन–किन तरीकों से वे चोरी करते हैं? कोई छिपकर चोरी करते हैं तो कोई सामने से प्रहार करके, आक्रमण करके करते हैं, कोई वशीकरण मंत्र आदि का प्रयोग करके दूसरों को लूटते हैं, कोई धनादि का, कोई गाय–भैंस–बैल–ऊँट–अश्व आदि पशुओं का हरण करते हैं, यहाँ तक कि नारियों और पुरुषों का भी अपहरण करते हैं। कोई राहगीरों को लूंटते हैं तो कोई राज्य के खजाने को–आधुनिक काल में बैंक आदि को भी शस्त्रों के बल पर लूट लेते हैं। कोई दूसरों को चकमा देकर या भयभीत करके चोरी करते हैं।

इस प्रकार लोक प्रचलित चोरी के अनेक प्रकारों का उल्लेख यहाँ किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—In the present aphorism, it has been stated as to which category the persons engaged in theft belong and which are the methods they adopt to commit theft. Some commit theft secretly and some by directly attacking the victim. They use mantra to overpower them and then to rob them. Some carry away money, some carry away animals like cow, buffalo, bullock, camel, horse and others. Some kidnap even men and women. Some rob travelers. Some rob the state treasure (the banks at present) on the strength of their weapons. Some commit theft by deceiving or frightening others.

Thus many types of thefts prevalent during that period have been mentioned.

धन के लिए राजाओं का आक्रमण **ATTACK BY RULERS TO SECURE MONEY**

६३. विउलबलपरिग्गहा य बहवे रायाणो परधणम्मि गिद्धा सए व दव्वे असंतुट्ठा परविसए अहिहणंति ते लुद्धा परधणस्स कज्जे चउरंगविभत्त–बलसमग्गा णिच्छियवरजोहजुद्धसद्धिय–अहमहमिइ–दप्पिएहिं सेण्णेहिं संपरिवुडा पउम–सगड–सूइ–चक्क–सागर–गरुलवूहाइएहिं अणिएहिं उत्थरंता अभिभूय हरंति परधणाइं।

६३. इनके अतिरिक्त विपुल बल–सेना और परिग्रह–धनादि सम्पत्ति या परिवार वाले राजा लोग भी, जो पराये धन में आसक्त होते हैं और अपने द्रव्य से जिन्हें सन्तोष नहीं है, दूसरे (राजाओं के) देश–प्रदेश पर आक्रमण करते हैं। वे लोभी राजा दूसरे के धनादि को हथियाने के उद्देश्य से रथसेना, गजसेना, अश्वसेना और पैदलसेना, इस प्रकार चतुरंगिणी सेना के साथ (अभियान करते हैं।) वे दृढ़ निश्चय वाले, श्रेष्ठ योद्धाओं के साथ युद्ध करने में विश्वास रखने वाले, 'मैं पहले लड़ूँगा' इस प्रकार के दर्प से भरे हुए सैनिकों से घिरे हुए होते हैं। वे नाना प्रकार के व्यूहों (मोर्चों) की रचना करते हैं, जैसे कमलपत्र के आकार का पद्मपत्र व्यूह, बैलगाड़ी के आकार का शकटव्यूह, सुई के आकार का शूचीव्यूह, चक्र के आकार का चक्रव्यूह, समुद्र के आकार का सागरव्यूह और गरुड़ के आकार का गरुड़व्यूह। इस तरह नाना प्रकार की व्यूह रचना वाली सेना द्वारा दूसरे–विरोधी राजा की सेना को आक्रान्त करते हैं, अर्थात् अपनी विशाल सेना से विपक्ष की सेना को घेर लेते हैं–उस पर छा जाते हैं और उसे पराजित करके दूसरे की धन–सम्पत्ति को हरण कर लेते हैं–लूट लेते हैं।

63. Further, the kings who have large money and family and also a great military strength but who are not yet contented with their wealth and have an eye on others wealth, attack their territory. Those greedy kings in order to rob the money of others attack with their army of elephants, horses, chariots and the infantry. They are steadfast in their determination. They have a faith in their warriors. They are surrounded

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

by great soldiers who are keen to fight first. They form many types of army formation such as of the form of lotus, bullock cart, of the form of needle, of the form of wheel or of the form of garud (eagle). Thus with an army, which can take formation of various such types, they attack other kings. They surround the army of the enemy with their army and defeat it robbing their money and property.

विवेचन : जो धन–सम्पत्ति अपने पास है तथा जो भोगोपभोग के अन्य साधन प्राप्त हैं, उनमें सन्तोष न होना और दूसरों की वस्तुओं में आसक्ति होना चौर्य कर्म का मूल कारण है। प्रस्तुत पाठ का आशय यही है कि अदत्तादान का मूल अपनी वस्तु में सन्तुष्ट न होना और परकीय पदार्थों में गृद्धि होना है। अतएव जो अदत्तादान के पाप से बचना चाहते हैं और अपने जीवन में सुख–शान्ति चाहते हैं, उन्हें प्राप्त सामग्री में सन्तुष्ट रहना चाहिए और परायी वस्तु की आकांक्षाओं से दूर रहना चाहिए। प्रस्तुत प्रसंग में शास्त्रकार यह बताना चाहते हैं–धन के लोभ से बड़े–बड़े युद्ध, भीषण नरसंहार भी होते आये हैं। एक राज्य दूसरे राज्य पर आक्रमण कर उसकी धन–सम्पत्ति लूटकर अपना ऐश्वर्य बढ़ाना चाहता है।

Elaboration—The basis of activity of stealing is not to feel satisfied with the money and property one possesses and to feel allured by the things the other one possesses. The purport of the present lesson is that the basis of adattadan is not to feel contented with one's own property and to be attached with the things belonging to others. So those who want to safeguard themselves from the sin of adattadan and want peace and happiness in their life, they should remain satisfied with what they have. They should keep themselves away from the desire for things belonging to others. In the present context the author wants to emphasize that great wars involving heavy bloodshed have occurred due to greed for money. One ruler attacked the other ruler in order to increase his wealth by robbing the wealth of the other.

युद्ध के लिए विविध प्रकार की शस्त्र–सज्जा VARIOUS WEAPONS FOR THE BATTLE

६४. अवरे रणसीसलद्धलक्खा संगामंसि अइवयंति सण्णद्धबद्धपरियर–उप्पीलिय–चिंधपट्टगहियाउह–पहरणा माढिवर–वम्मगुंडिया, आविद्धजालिया कवयकंकडइया उरसिरमुह–बद्ध–कंठतोणमाइयवरफलगर चियपहकर–सरहसखरचावकरकरंछिय–सुणिसिय–सरवरिसचडकरगमुयंत–घणचंड वेगधाराणिवायमग्गे अणेगधणुमंडलग्गसंधित–उच्छलियसत्तिकणग–वामकरगहिय खेडगणिम्मल–णिक्किट्ठखग्गपहरंत–कोंत–तोमर–चक्क–गया–परसु–मूसल–लंगल–सूल–लउल–भिंडमालसब्बल–पट्टिस–चम्मेट्ठ–दुघणमोट्ठिय–मोग्गर–वरफलिह–जंत–पत्थर–दुहण–तोण–कुवेणी–पीढकलिएईलीपहरण मिलिमिलिमिलंतखिप्पंत–विज्जुज्जल–विरचिय–समप्पहणभतले फुडपहरणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महारणसंखभेरिवरतूर–पउर–पडुपडहाहयणिणाय–गंभीरणंदिय पक्खुभिय–विउलघोसे हय–गय–रह–जोह–तुरिय–पसरिय–रउद्धततमंधकार–बहुले कायर–णर–णयण–हिययवाउलकरे।

६४. दूसरे कितने ही राजा जो युद्धभूमि में सबसे अगली पंक्ति में लड़कर विजय प्राप्त करने वाले होते हैं। वे (इस प्रकार विविध शस्त्रों से सज्जित रहते हैं) जैसे–कमर कसे हुए, कवच–बख्तर धारण किये हुए और विशेष प्रकार के चिह्नपट्ट–परिचयसूचक बिल्ले मस्तक पर बाँधे हुए, अस्त्र–शस्त्रों को धारण किये हुए, प्रतिपक्ष के प्रहार से बचने के लिए ढाल से और उत्तम कवच से शरीर को वेष्टित किये हुए, लोहे की जाली पहने हुए, कवचों पर लोहे के काँटे लगाये हुए, वक्षस्थल के साथ ऊर्ध्वमुखी बाणों की तूणीर–बाणों की थैली कण्ठ में बाँधे हुए, हाथों में पाश–शस्त्र और ढाल लिए हुए, सैन्यदल की रणोचित रचना किए हुए, कठोर धनुष को सहर्ष हाथों में पकड़े हुए, हाथों से (बाणों को) खींचकर की जाने वाली प्रचण्ड वेग से बरसती हुई मूसलधार वर्षा के गिरने से जहाँ मार्ग अवरुद्ध हो गया है, ऐसे युद्ध में अनेक धनुषों, दुधारी तलवारों, फेंकने के लिए निकाले गये त्रिशूलों, बाणों, बायें हाथों में पकड़ी हुई ढालों, म्यान से निकाली हुई चमकती तलवारों, प्रहार करते हुए भालों, तोमर नामक शस्त्रों, चक्रों, गदाओं, कुल्हाड़ियों, मूसलों, हलों, शूलों, लाठियों, भिंडमालों, शब्बलों–लोहे के वल्लमों, पट्टिस नामक शस्त्रों, पत्थरों–गिलोलों, द्रुघणों–विशेष प्रकार के भालों, मुट्ठी में आ सकने वाले एक प्रकार के शस्त्रों, मुद्गरों, प्रबल आगलों, गोफणों, द्रुहणों (कर्करों), बाणों के तूणीरों, नालदार बाणों एवं आसन नामक शस्त्रों से सज्जित तथा दुधारी तलवारों और चमचमाते शस्त्रों को आकाश में फेंकने से आकाश बिजली के समान उज्ज्वल प्रभा वाला हो जाता है। उस संग्राम में प्रकट–स्पष्ट शस्त्र–प्रहार होता है। महायुद्ध में बजाये जाने वाले शंखों, भेरियों, उत्तम वाद्यों, अत्यन्त स्पष्ट ध्वनि वाले ढोलों के बजने के गम्भीर आघोष से वीर पुरुष हर्षित होते हैं और कायर पुरुषों को घबराहट बढ़ती जाती है। वे (भय से पीड़ित होकर) काँपने लगते हैं। इस कारण युद्धभूमि में हो–हल्ला होता है। घोड़े, हाथी, रथ और पैदल सेनाओं के शीघ्रतापूर्वक चलने से चारों ओर फैली–उड़ती धूल के कारण वहाँ सघन अंधकार व्याप्त रहता है। वह युद्ध कायर नरों के नेत्रों एवं हृदयों को आकुल–व्याकुल बना देता है।

अगले सूत्र में पुनः उस युद्धभूमि की भयानकता का वर्णन करते हैं–

64. Many other kings want to achieve conquest by fighting in the battlefield in front line. They remain equipped with various types of weapons such as waist belt, armour, the emblem indicating their identity, the badge at the forehead, weapons of war, the high quality iron shield to protect themselves from attack of the enemy. They wear iron net. Their armour has iron thorns. They have a bundle of arrows close to their chest tied to their neck. They have paash weapon and shield in their hands. They do the formation of the army as during war. They happily hold the strong bow in their hands. The battlefield was such that

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

due to the rain of arrows at fast speed, the passage had closed. In such a battle many bows, two-edged sword, spear like tridents, shield held in left hand, shining sword just taken out from the sheath, spears, tomar weapon, wheals, gadaas, axes, dumble, ploughs, pointed weapons, sticks, bhindmaal, shabbals (iron thick rods), patties, launchers of stone, drughans (special type of spears), special weapons that could be held in the fist, mudgars, strong aagats, gophans, druhams, quivers of arrows, tube like arrows, aasan and two-edged swords were used. The sky was shining due to the use of such weapons in the same manner as when there is lightening. In that battle the attack through weapons is quite visible to each other. The conch-shells, trumpets, bugles, were blown. Drums were beaten. Musical instruments were played and the warriors felt happy and encouraged with that war music. A coward feels bewildered in that situation and trembles out of fear. So there is a great noise in the battlefield. A thick mist spreads all around due to the movement of infantry and the elephants, the horse and the chariots and spreads darkness. That battle causes terror in the mind of cowards.

In the next aphorism, the dreadful nature of the battlefield has been further narrated.

युद्ध–स्थल की वीभत्सता DREADFULNESS OF BATTLEFIELD

६५. विलुलियउक्कड–वर–मउड–तिरीड–कुंडलोडुदामाडोविया पागड–पडाग–उसियज्झय–वेजयंतिचामरचलंत–छत्तंधयारगंभीरे।

हयहेसिय–हत्थिगुलुगुलाइय–रहघणघणाइय–पाइक्कहरहराइय–अप्फोडिय–सीहणाया, छेलिय–विघुट्टुक्कट्ठकंठकयसद्दभीमगज्जिए।

सयराह–हसंत–रुसंत–कलकलरवे आसूणियवयणरुद्दे भीमदसणाधरोट्ठगाढदट्ठे सप्पहारणुज्जयकरे अमरिसवसतिव्वतरत्तणिद्दारितच्छे वेरदिट्ठि–कुद्ध–चिट्ठिय–तिवलि–कुडिलभिउडि–कयणिलाडे वहपरिणय–णरसहस्स–विक्कमवियंभियबले। वग्गंत–तुरगरहपहाविय–समरभडा आवडियछेयलाघव–पहारसाहियासमूसविय बाहु–जुयलमुक्कट्टहासपुक्कंतबोल–बहुले।

फलफलगावरणगहिय–गयवरपत्थिंत–दरियभडखल–परोप्परपलग्ग–जुद्धगव्विय–विउसिय–वरासिरोस–तुरियअभिमुह–पहरिंतछिण्णकरिकर–विभंगियकरे अवइद्धणिसुद्धभिण्णफालिय–पगलियरुहिर–कय–भूमि–कद्दम–चिलिचिल्लपहे।

कुच्छिदालिय–गलंतरुलिंतणिभेलितंत–फुरुफुरंत–अविगल–मम्माहय–विकयगाढदिण्णपहारमुच्छित–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युद्ध स्थल की विभत्सता

युद्ध के पश्चात् युद्ध-स्थल का लोमहर्षक दृश्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 7

Illustration No. 7

युद्ध-स्थल की विभत्सता

चित्र में युद्ध-स्थल की विभत्सता को दिखाया गया है। पराये धन को प्राप्त करने के इच्छुक राजा किस प्रकार भयंकर नरसंहार करते हैं, यह सब अदत्तादान रूप तीसरे अधर्म (आस्रव) का परिणाम है। चित्र इसका प्रत्यक्ष आभास कराता है।

चित्र के ऊपर के भाग में युद्ध-स्थल का वर्णन है—युद्धोन्मत्त राजा मदमस्त होकर एक-दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं। घोड़े हिनहिना रहे हैं। हाथी गुलगुला रहे हैं। घोड़े, रथ और पदाति सैनिक बड़े वेग से दौड़कर एक-दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं। योद्धागण क्रोधित होकर मुँह फुलाकर अपने शत्रु पर प्रहार कर रहे हैं। किसी-किसी के नेत्र लाल हैं। गदायें आपस में टकरा रही हैं। आवेश के कारण वे अपने होठों को दाँतों से चबा रहे हैं।

चित्र के नीचे के भाग में संध्या के समय युद्ध-स्थल का बड़ा ही करुणाजनक चित्र प्रस्तुत किया गया है। संध्या के समय युद्ध-स्थल की भूमि अत्यंत रक्त-रंजित हो गई है। किसी योद्धा का पेट फटने से रक्त बह रहा है, आँतें बाहर निकली हुई हैं। गहरा प्रहार होने से किसी की इन्द्रियाँ फड़फड़ा रही हैं। किसी के मर्म स्थानों पर चोट लगने से वह छटपटा रहा है। कोई असह्य वेदना के कारण करुण क्रंदन कर रहा है। जिनके मस्तक कट गये हैं, ऐसे हाथियों और अश्वों के शरीर से भूमि पटी हुई है। पराये धन को हड़पने की इच्छा रखने वाले राजा आदि अन्य व्यक्ति ऐसी युद्ध भूमि में प्रवेश करते हैं, जो प्रत्यक्ष श्मशान के समान दीखती है और परम रौद्र एवं भयंकर होती है।

—सूत्र 65, पृ. 137

REVOLTING SCENE OF THE BATTLE FIELD

The illustration presents the revolting scene of a battlefield. How terrible massacre the kings desirous of grabbing wealth of others commit is the outcome of the third door of Asrava, taking what is not given (stealing). The illustration presents a live picture of that.

The scene at the top shows the battle. Kings driven by rage to fight are attacking each other. Horses are whining. Elephants are trumpeting. Elephant, chariot and foot soldier battalions are attacking with speed. Warriors are striking enemies with faces swollen in rage. Their eyes are red. Maces are colliding. They are biting their lips in excitement.

The bottom scene is the pitiful presentation of the evening when the day's battle is over Due to the excessive shedding of blood during the day the ground is filled with slime. Blood is oozing from the split belly of some warrior. Intestine has come out. Some soldier is shivering due to the blow by a mace. Some one is trembling due to blow on vital parts. Someone is pitifully wailing due to intolerable pain. The field is full of bodies of beheaded elephants. Kings and other people desirous of grabbing others wealth enter such battle ground that has such evil and terrifying appearance like a cremation ground.

— Sutra-65, page-137

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुलंतविब्भलविलावकलुणे; हयजोह–भमंत–तुरग–उद्दाममत्तकुंजर–परिसंकियजणणिब्बुक्कच्छिण्णधय–भग्गरहवरणट्ठसिरकरिकलेवराकिण्ण–पतित–पहरण–विकिण्णाभरण–भूमिभागे।

णच्चंतकबंधपउरभयंकर–वायस–परिलेंत–गिद्धमंडल–भमंतच्छायंधकार–गंभीरे। वसुवसुहविकंपियव्व–पच्चक्खपिउवणं परमरुद्दबीहणगं दुप्पवेसतरगं अहिवयंति संगामसंकडं परधणं महंता।

६५. ढीला होने के कारण इधर उधर हिलते चंचल एवं उन्नत उत्तम मुकुटों, तीन सेहरों वाले मुकुटों–ताजों, कुण्डलों तथा नक्षत्र नामक आभूषणों की उस युद्ध में जगमगाहट होती है। स्पष्ट दिखाई देने वाली पताकाओं, ऊपर फहराती हुई ध्वजाओं, विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती पताकाओं तथा चंचल–हिलते–डुलते चामरों और छत्रों के कारण होने वाले अन्धकार के कारण वह रणक्षेत्र गम्भीर प्रतीत होता है।

घोड़ों की हिनहिनाहट से, हाथियों की चिंघाड़ से, रथों की घनघनाहट से, पैदल सैनिकों (प्यादों) की हर–हर आवाज से, तालियों की गड़गड़ाहट से, सिंहनाद की ध्वनियों से, सीटी बजाने की–सी आवाजों से, भय के कारण जोर–जोर की चिल्लाहट से, हँसने के कारण जोर की किलकारियों से और एक साथ उत्पन्न होने वाली हजारों कण्ठों की ध्वनि से वहाँ भयंकर गर्जनाएँ होती हैं।

उसमें एक साथ हँसने, रोने और कराहने के कारण कलकल ध्वनि होती रहती है। बीच–बीच में मुँह फुलाकर आँसू बहाते हुए बोलने के कारण वह रौद्र दिखाई देते हैं। उस युद्ध में भयावने दाँतों से होठों को जोर से चबाने–काटने वाले योद्धाओं के हाथ अचूक प्रहार करने के लिए उद्यत–तत्पर रहते हैं। क्रोध की उग्रता के कारण योद्धाओं के नेत्र लाल–लाल और तरेरते हुए होते हैं। वैरमय दृष्टि के कारण क्रोध परिपूर्ण चेष्टाओं से उनकी भौंहें तनी रहती हैं और इस कारण उनके ललाट पर तीन सल पड़ी हुई होती हैं। उस युद्ध में, मार–काट करते हुए हजारों योद्धाओं के पराक्रम को देखकर सैनिकों के पौरुष–पराक्रम की वृद्धि हो जाती है। हिनहिनाते हुए अश्वों और रथों द्वारा इधर–उधर भागते हुए युद्धवीरों तथा शस्त्र चलाने में कुशल और सधे हुए हाथों वाले सैनिक हर्षविभोर होकर, दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर, खिलखिलाकर–ठहाका मारकर हँस रहे होते हैं, किलकारियाँ मारते हैं।

चमकती हुई ढालें एवं कवच धारण किये हुए, मदोन्मत्त हाथियों पर आरूढ़ प्रस्थान करते हुए योद्धा, शत्रुयोद्धाओं के साथ परस्पर जूझते हैं तथा युद्धकला में कुशलता के कारण अहंकारी योद्धा अपनी–अपनी तलवारें म्यानों में से निकालकर, फुर्ती के साथ रोषपूर्वक परस्पर–एक–दूसरे पर प्रहार करते हैं। हाथियों की सूँड़ें काट रहे होते हैं, जिससे उनके भी हाथ कट जाते हैं। ऐसे भयावह युद्ध में मुद्‌गर आदि द्वारा मारे गये, काटे गये या फाड़े गये हाथी आदि पशुओं और मनुष्यों के युद्धभूमि में बहते हुए रुधिर के कीचड़ से मार्ग लथपथ हो रहे होते हैं।

कूँख के फट जाने से भूमि पर बिखरी हुई एवं बाहर निकलती हुई आँतों से रक्त प्रवाहित होता रहता है तथा तड़फड़ाते हुए, विकल, मर्माहत, बुरी तरह से कटे हुए, प्रगाढ़ प्रहार से बेहोश हुए, इधर–उधर लुढ़कते हुए विह्वल मनुष्यों के विलाप के कारण वह युद्धभूमि बहुत ही करुणाजनक प्रतीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है। उस युद्ध में मारे गये योद्धाओं के इधर-उधर भटकते घोड़े, मदोन्मत्त हाथी और भयभीत मनुष्य, मूल से कटी हुई ध्वजाओं वाले टूटे-फूटे रथ, मस्तक कटे हुए हाथियों के धड़-कलेवर, विनष्ट हुए शस्त्रास्त्र और बिखरे हुए आभूषण-अलंकार इधर-उधर पड़े होते हैं।

डोलते हुए बहुसंख्यक कलेवरों-धड़ों पर काक और गिद्ध मँड़राते रहते हैं। और जब उन कौओं और गिद्धों के झुण्ड के झुण्ड घूमते हैं तब उनकी छाया के अन्धकार के कारण वह युद्ध गम्भीर अन्धकारपूर्ण बन जाता है। ऐसे (भयावह-घोरातिघोर) युद्ध में (राजागण) केवल सेना को ही युद्ध में नहीं झोंकते। स्वयं प्रवेश करते हैं-मानो देव (देवलोक) और पृथ्वी को प्रकम्पित करते हुए, ये धन की कामना करने वाले राजागण साक्षात् श्मशान के समान, अतीव रौद्र होने के कारण भयानक और अत्यन्त कठिनाई से प्रवेश करने योग्य इस संग्रामरूपी गहन वन में चलकर अथवा आगे होकर प्रवेश करते हैं।

65. There occurs a great brightness in the battle due to loose and shaking high class crowns, the crowns having three hanging garlands, the ear-rings and the nakshatras (a shining ornament). The buntings are distinctly visible. The flags flutter. The buntings indicating success in the battle flutter. The brooms (chamars) move. The darkness prevails due to all these and umbrellas. Due to all these, the atmosphere of the battlefields looks grim.

The horses neigh. The elephants trumpet. The movement of chariots causes rattling sound. The infantry moves. The soldiers clap. The war-bugles are blown. Some blow the whistle. Some cry loudly due to fear. Some laugh heartily. Thousands of people collectively shout. All such activities cause a terrible roaring sound.

There occurs a disturbing sound as simultaneously some laugh, some weep and some bemoan. Some swelling their mouth shout loudly with tears trickling from their eyes and it makes the atmosphere dreadful. The warriors are ready to attack the target precisely, while grinding their teeth and chewing their lips with ferocious teeth. Their eyes are red due to the high level anger. Their eye-brows are raised as anger is crossing its limits. Three wrinkles are distinctly visible on their forehead. The courage of the war-heroes increases when they see the warriors in action causing heavy bloodshed. The warriors move about on the horses that neigh. Some move on their chariots. The warriors are expert in handling weapons. They raise their arms upwards out of ecstatic pleasure and laugh loudly.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The soldiers move to fight with warriors of the enemy. They wear shinning shields and armours and ride the excited elephants. As they are experts in warfare, with pride pull out their swords from sheaths cleverly and angrily attack with agility. They cut the trunks of the elephants at which they sometimes cut their own hands also. In such a fierce battle the ground in the battlefield becomes muddy with the blood of elephants, men and animals killed, cut or torn by weapons such as mudgars and others.

As the body gets torn, the intestines come out scattered and the blood oozes out from them. The injured warriors are in a bewildered condition. They are restless. They received injuries on their delicate parts. They are badly cut. Some of them are in unconscious state due to the grievous attack. Such men weep bitterly and roll hither and thither. In this condition, the battle field presents a look seeking compassion. The corpses of warriors killed in the battle; their wandering horses, the intoxicated elephants; frightened human beings, the flags cut from the base on the broken chariots, the bodies of the elephants with cut forehead, the destroyed weapons and the decoration of the warriors, all are seen lying down scattered hither and thither.

Crows and vultures move along on the dead bodies of animals and human beings lying there in large numbers. When the crows and vultures wander in flocks, the darkness caused by their shadow makes the battlefield dark and grim. In such a dreadful battle, it appears that simply army alone does not participate but it appears as if shaking the heaven and earth, the kings desirous of money themselves enter the ferocious cremation ground-like and thick forest-like extremely dangerous and difficult battlefield.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में संग्राम की भयानकता का स्पष्ट अतीव रोमहर्षक सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। पराये धन के इच्छुक राजा लोग किस प्रकार भीषण नर-संहार के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह वर्णन उसका प्रत्यक्ष आभास कराता है।

Elaboration—In the present lesson, a live picture of the ferocity of the battle has been drawn which is extremely heart rending. The kings *desirous to capture the wealth of the others become ready for bloodshed. This description gives a vivid account of such a condition.*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावइ–चोरवंद–पागड्डिका य अडवी–देसदुग्गवासी कालहरितरत्तपीतसुक्किल–अणेगसयचिंध–पट्टबद्धा परविसए अभिहणंति लुद्धा धणस्स कज्जे।

६६. इनके (पूर्वसूत्र में उल्लिखित राजाओं के) अतिरिक्त पैदल चलकर चोरी करने वाले चोरों के समूह होते हैं। कई ऐसे (चोर) सेनापति भी होते हैं जो चोरों को प्रोत्साहित करते हैं। चोरों के यह समूह अटवी आदि दुर्गम स्थानों में रहते हैं। उनके काले, हरे, लाल, पीले और श्वेत रंग के सैकड़ों चिन्ह–पट्ट होते हैं, जिन्हें वे अपने मस्तक पर धारण करते हैं। पराये धन के लोभी बनकर वे चोर–समुदाय दूसरे प्रदेशों में जाकर धन का अपहरण करते हैं और मनुष्यों का घात करते हैं।

66. In addition to the kings above mentioned, there are thieves in large number, who commit theft while moving on foot. There are their leaders also who encourage them. Such groups of thieves reside in hilly and undulating areas. They wear at their forehead hundreds of cloth-belts of black, green, red, yellow and white colour that distinguish them. They are greedy of the money belonging to others. They go to other regions to rob people of money. They also kill human beings.

विवेचन : ज्ञातासूत्र, विपाकसूत्र आदि आगमों में ऐसे अनेक चोरों और सेनापतियों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, जो विषम दुर्गम अरण्य प्रदेशों में निवास करते और लूटपाट करते थे। पाँच–पाँच सौ सशस्त्र चोर उनके दल में थे जो मरने–मारने को सदा उद्यत रहते थे। उनका सैन्यबल इतना सबल होता था कि राजाओं की सेना को भी पछाड़ देता था, राजाओं की सेना भी उनको पकड़ने में समर्थ नहीं होती थी। ऐसे ही चोरों एवं चोर–सेनापतियों का यहाँ संकेत किया गया है।

Elaboration—There is a detailed description of such thieves and their leaders in many Agams such as Jnata Sutra, Vipak Sutra and others. They lived in forest land and robbed people. There were five hundred members in these groups and they were ready always to attack people. Their group was so powerful that they used to defeat even the army of a king. The state army was not capable to catch them. Such thieves and their leaders have been referred to in this lesson.

समुद्री डाकू SEA ROBBERS

६७. रयणागरसागरं उम्मीसहस्समाला–उलाउल–वितोयपोत–कलकलेंत–कलियं पायालसहस्स–वायवसवेगसलिल–उद्धम्ममाणदगरयरयंधकारं वरफेणपउर–धवल–पुलंपुल–समुट्ठियट्टहासं मारुयविच्छुभमाणपाणियं जल–मालुप्पीलहुलियं अवि य समंतओ खुभिय–लुलिय–खोखुब्भमाण–पक्खलियचलिय–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विउलजलचक्कवाल–महाणईवेगतुरियआपूरमाणगंभीर–विउल–आवत्त–चवल–भममाणगुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणियत्त–पाणिय–पधावियखर–फरुस–पयंडवाउलियसलिल–फुट्टंत वीइकल्लोलसंकुलं महामगर–मच्छ–कच्छभोहार–गाह–तिमि–सुंसुमार–सावय–समाहय–समुद्धायमाणक–पूरघोर–पउरं कायरजणहियय–कंपणं घोरमारसंतं महब्भयं भयंकरं पइभयं उत्तासणगं अणोरपारं आगासं चेव णिरवलंबं। उप्पायणपवण–धणिय–णोल्लिय उवरुवरितरंगदरिय–अइवेग–वेग–चक्खुपहमुच्छरंतं।

कत्थइ–गंभीर–विउलगज्जिय–गुंजिय–णिग्घायगरुयणिवडिय–सुदीहणीहारि–दूरसुच्चंत–गंभीर–धुगुधुगंतसद्दं पडिपहरुंभंतजक्ख–रक्खस–कुहंड–पिसायरुसिय–तज्जाय–उवसग्ग–सहस्ससंकुलं बहुप्पाइयभूयं विरइयबलिहोम–धूवउवयारदिण्ण–रुहिरच्चणाकरणपयत–जोगपययचरियं परियंत–जुगंत–कालकप्पोवमं दुरंतं महाणईणईवई–महाभीमदरिसणिज्जं दुरणुच्चरं विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवण–सलिलपुण्णं।

असियसिय–समूसियगेहि हत्थंतरकेहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति, गंतूण जणस्स पोए परदव्वहरा णरा।

६७. (इन वनवासी चोरों के सिवाय कुछ अन्य प्रकार के समुद्री लुटेरे, डाकू भी होते हैं जो धन के लालच में फँसकर समुद्र यात्रा करने वाले यात्रियों को लूटते हैं। यहाँ उनका दिग्दर्शन कराया जाता है। वे लुटेरे जहाँ रत्नों के खजाने छिपे पड़े हैं, ऐसे समुद्र में चढ़ाई करते हैं। वह समुद्र कैसा होता है? वह समुद्र हजारों–हजारों तरंग–मालाओं से व्याप्त होता है। पीने के पानी के अभाव में जहाज के यात्री आकुल–व्याकुल होकर कल–कल ध्वनि से क्रन्दन करते हैं। हजारों पाताल–कलशों की वायु के क्षुब्ध होने से तेजी से ऊपर उछलते हुए जलकणों की रज से वातावरण अन्धकारमय बना होता है। निरन्तर प्रचुर मात्रा में उठने वाले श्वेत वर्ण के फेन ही मानों उस समुद्र का अट्टहास है। वहाँ पवन के प्रबल थपेड़ों से जल क्षुब्ध हो रहा होता है। जल की तरंग–मालाएँ तीव्र वेग के साथ तरंगित होती हैं। चारों ओर तूफानी हवाएँ उसे क्षोभित कर रही होती हैं। जो तट के साथ टकराते हुए जल–समूह से तथा मगर–मच्छ आदि जलीय जन्तुओं के कारण अत्यन्त चंचल हो रहा होता है। बीच–बीच में उभरे हुए–ऊपर उठे हुए पर्वतों के साथ टकराने वाले एवं बहते हुए अथाह जल–समूह से युक्त हैं, गंगा आदि महानदियों के वेग से जो शीघ्र ही लबालब भर जाने वाला है, जिसके गम्भीर एवं अथाह भँवरों में जलजन्तु अथवा जलसमूह चपलतापूर्वक भ्रमण करते, व्याकुल होते, ऊपर–नीचे उछलते हैं, जो वेगवान् अत्यन्त प्रचण्ड, क्षुब्ध हुए जल में से उठने वाली लहरों से व्याप्त हैं। महाकाय मगर–मच्छों, कच्छपों, ओह नामक जल–जन्तुओं, घड़ियालों, बड़ी मछलियों, सुंसुमारों एवं श्वापद नामक जलीय जीवों के परस्पर टकराने से तथा एक–दूसरे को निगल जाने के लिए दौड़ने से वह समुद्र अत्यन्त घोर–भयावह बना होता है, जिसे देखते ही कमजोर मनुष्यों का हृदय काँप उठता है, जो अतीव भयानक और प्रतिक्षण भय उत्पन्न करने वाला है; अतिशय उद्वेग पैदा करने वाला है, जिसका ओर–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोर-आर-पार का कोई कहीं दिखाई नहीं देता, जो आकाश के समान निरालम्बन-आलंबनहीन है अर्थात् जिस समुद्र में कोई सहारा नहीं है, उत्पात से उत्पन्न होने वाले पवन से प्रेरित और ऊपरा-ऊपरी एक के बाद दूसरी गर्व से इठलाती हुई लहरों के वेग से जो नेत्रपथ-नजर को आच्छादित कर देता है।

उस समुद्र में कहीं-कहीं गम्भीर मेघगर्जना के समान गूँजती हुई, व्यन्तर देवकृत घोर भयावह ध्वनि के समान तथा उस ध्वनि से उत्पन्न होकर दूर-दूर तक सुनाई देने वाली प्रतिध्वनि के समान गम्भीर और धुक्-धुक् करती ध्वनि सुनाई पड़ती है। जो प्रत्येक रात में रुकावट डालने वाले यक्ष, राक्षस, कूष्माण्ड एवं पिशाच जाति के कुपित व्यन्तर देवों के द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले हजारों उत्पातों-उपद्रवों से परिपूर्ण है। जो बलि, होम और धूप देकर की जाने वाली देवता की पूजा और रुधिर देकर की जाने वाली अर्चना में प्रयत्नशील एवं सामुद्रिक व्यापार में निरत नौका-वणिकों-जहाजी व्यापारियों द्वारा सेवित है, जो कलिकाल-अन्तिम काल के अन्त अर्थात् प्रलयकाल के कल्प के समान है, जिसका पार पाना कठिन है, जो गंगा आदि महानदियों का अधिपति-नदीपति होने के कारण अत्यन्त भयंकर है, जिसमें यात्रा करना अनेक संकटों व खतरों से परिपूर्ण है, जिसमें प्रवेश पाना भी कठिन है, जिसे पार करना-किनारे पहुँचना भी अत्यन्त दुष्कर है, यहाँ तक कि जिसका आश्रय लेना भी दुःखयुक्त है और जो खारे पानी से भरा होता है।

ऐसे रत्नाकर समुद्र में ऊँचे किये हुए काले और सफेद झण्डों वाले पराये धन द्रव्य के अपहारक डाकू अति-वेगपूर्वक चलने वाले, पतवारों से सज्जित जहाजों द्वारा आक्रमण करके समुद्र के मध्य में जाकर सामुद्रिक व्यापारियों के जहाजों को नष्ट कर देते हैं।

67. In addition to thieves mentioned above, there were also sea robbers of various types. They, in order to satisfy their hunger for wealth, robbed the sea travellers. Here an account of their life has been presented. Such robbers move in such a sea where the treasures of jewels is concealed. Now the condition of the sea is narrated. The sea is full of thousands of waves. The travellers make a bemoaning sound in distress, as no drinking water is available. The environment gets darkened due to the rapidly rising drops from thousands of deep pitches (pataal kalash) as the wind gets disturbed. The continuously rising white foam presents the picture of laughing sea. The water is badly disturbed due to the striking of mighty winds. The water waves rise rapidly; stormy winds are all around affecting the sea badly. The sea is becoming extremely disturbed as the water strikes its banks and the crocodiles, sea lions and other aquatic animals move about. The water of the sea

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 8

Illustration No. 8

समुद्री डाके

जलयान द्वारा विदेशों में व्यापार के लिए जाने वाले व्यापारियों को लूटने के लिए ये डाकू महाभयंकर समुद्र में प्रवेश करते हैं। इसमें प्रचण्ड वायु के कोप से ऊँची-ऊँची भयंकर लहरें उठती रहती हैं। अनेक स्थानों पर बड़े-बड़े भंवर होते हैं। गंगा आदि नदियों का पानी अत्यंत वेग से समुद्र में आने के कारण बड़ी-बड़ी विशाल लहरें उठती हैं। इन समुद्री लहरों के साथ अनेक विशाल समुद्री जीव भी उछलते हैं, जिससे गम्भीर एवं भयंकर ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। आँधी-तूफान आदि का उपद्रव होने पर आकाश में घटाटोप अंधकार छा जाता है। बिजली कड़कती है। इतने लोमहर्षक वातावरण में भी जलयान में सवार ये समुद्री लुटेरे दूसरों का धन हरण करने की इच्छा से आगे बढ़ते चले जाते हैं। धन के लालच में आकर ये समुद्री डाकू समुद्र जैसे उपद्रवपूर्ण भयंकर स्थान पर जाने का दुस्साहस कर लेते हैं। चित्र में इनका लोमहर्षक चित्रण किया गया है। *—सूत्र 67, पृ. 142*

ग्रामादि लूटने वाले

पराये धन का हरण करने वाले दुष्ट मति चोर नगरों में जाकर लोगों को बन्दी बना लेते हैं। घरों की दीवारों में सेंध लगाकर चोरी करते हैं। इनकी तृष्णा असीम होती है।

इस प्रकार ये चोर चोरी के धन का बँटवारा करने के लिए श्मशान भूमि जैसे भयानक स्थानों पर जाते हैं। जहाँ सर्वत्र भय एवं मनहूसियत छाई रहती है। यहाँ भोजन-पानी मिलना भी दुष्कर रहता है। ऐसे भयंकर स्थानों पर जाकर ये धन का बँटवारा करते हैं। गुप्त मंत्रणा करते हैं। इनके शरीर भोजन-पानी के अभाव में शुष्क एवं विकृत हो जाते हैं। ये लुटेरे पराये धन के लालच में नरक और तिर्यंच भव में भोगने योग्य अत्यंत दुःख उत्पन्न करने वाले पाप-कर्मों का संचय करते हैं। *—सूत्र 68, पृ. 145*

PIRACY ON THE SEA

In order to loot the merchants going to foreign countries by ship these pirates take to highly menacing seas. Tremendous winds agitate the seas causing menacingly high waves. There are gigantic whirlpools at many spots. The speedy inflow of great rivers like Ganges also cause giant waves in the sea. With these waves jump many large aquatic animals producing loud and fearsome sounds. Storms and typhoons cause blinding darkness in the sky pierced by intermittent lightening. With a desire to snatch others wealth these sea pirates keep on moving in their ships even in such hair-raising conditions. Greed for wealth infuses boldness in these pirates to face the terrors of such tormenting seas. The illustrations vividly present this horrifying scene. ***— Sutra-67, page-142***

OTHER BANDITS

Rogue thieves on the lookout for others wealth go into cities and trap the citizens. They make a hole in the wall and commit burglary. They have unlimited thirst for wealth. For mutual distribution of such stolen things these thieves go to terrible places like cremation grounds. The atmosphere is grim and oppressive there. Even food or water is difficult to find at such places. They go to such horrible places and divide their loot. They also cook up conspiracies there. Their bodies get weak and deformed in absence of proper food and water. In their greed for wealth such bandits acquire karmas of demerit and as a consequence suffer great pain on rebirth as infernal beings or animals. ***— Sutra-68, page-145***

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

strikes against the rising hills protruding in the sea. The sea water flows heavily. The sea is full to the brim due to the rivers like Ganga and others that flow in it. The aquatic animals and the water currents moving about in its gigantic circular movement feel disturbed. They jump up and down. The sea is full of extremely dreadful, disturbed currents rising in it. The crocodiles, tortoise and sea lions, large fishes, gharials, sunsumar, shvaapad and other aquatic animals strike against each other and run in order to devouver the other aquatic creatures. So the sea becomes extremely dreadful. The persons with weak heart tremble at its very sight. It is extremely frightening and produces fear every moment. It creates extreme restlessness. Nobody can locate its banks and the end. It appears to be in existence without any support like the sky. Due to the influence of the winds arsing in it, the currents rise majestically one after the other and disturb the vision.

In that sea a sound appears. It roars like the roaring rain clouds. It is like the one created by vyantar gods. It is extremely dreadful. It is like echoing sound heard upto a great distance. It is full of thousands of disturbances created by angry Vyantar gods like Yakshas, Rakshas, Kushmand, Pishaach who cause panic every moment. It is frequented by the traders who trade through the sea continuously with boats and ships. They worship the sea through animal sacrifice, yajna and incense and further by offering blood. The sea is as at the time of doomsday and it is extremely difficult to cross it. It is extremely dreadful as it is the master of Ganga and others. The travel in it is full of several dangers and troubles. It is very difficult to enter in it. It is extremely difficult to cross it. It is full of troubles to depend on it. It is full of salty water.

The sea robbers with black and white flags raised high move in it at a very fast speed in order to rob the travellers. They attack the ships of the traders with ships equipped with sails at the centre of the sea and destroy them.

विवेचन : कभी-कभी दूर से देखने में सागर शान्त दृष्टिगोचर होता है, किन्तु किस क्षण वह भयंकर रौद्र प्रलयकारी रूप धारण कर लेगा, यह निश्चय करना कठिन है। आधुनिक काल में जब मौसम, आँधी-तूफान आदि को पहले ही सूचित कर देने वाले अनेक प्रकार के साधन-यन्त्र आदि आविष्कृत हो चुके हैं और जलयान भी अत्यधिक क्षमता वाले सभी साधनों से सुसज्जित हो चुके हैं, तब भी अनेकों यान डूबते रहते हैं। लाखों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगों की जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। समुद्री तूफानों के कारण प्राचीन काल में जो उत्पातसूचक यन्त्रों का प्रायः अभाव था और यानों की भी इतनी क्षमता के अभाव में समुद्रयात्रा कितनी संकट-परिपूर्ण होती होगी, यह कल्पना करना कठिन नहीं है। आगमों में समुद्री तूफानों में डूबने वाले यात्रा वर्णन का उल्लेख मिलता है। इसी कारण समुद्रयात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व यात्री शुभ दिन, तिथि, नक्षत्र आदि देखने के साथ अनेकानेक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चा भी करते थे। क्योंकि यह माना जाता था कि यात्रा में व्यन्तर देव भी विविध प्रकार के विघ्न उपस्थित करते रहते हैं।

फिर भी धन के लोभ से प्रेरित होकर वणिक् जन जान-माल का खतरा सिर पर उठाकर समुद्रयात्रा करते थे और एक देश का माल दूसरे देश में ले जाकर बेचते थे।

समुद्रयात्रा में प्राकृतिक अथवा दैविक प्रकोप के अतिरिक्त समुद्री लुटेरों का भय भी बहुत रहता था। ये लुटेरे अपने प्राणों को संकट में डालकर केवल लूटमार के लिए ही भयंकर सागर में प्रवेश करते थे। वे नौका-वणिकों को लूटते थे और कभी-कभी उनके प्राणों को भी हर लेते थे। उक्त पाठ में यही सभी तथ्य प्रकट किये गये हैं।

Elaboration—Sometimes the sea appears to be quiet from a distance. But it cannot be said when it may turn violent. Now such instruments have been invented which inform about weather, storms and the like in advance and there are ships of very great capability. Still many ships sink. Lakhs of people lose their life. One can imagine how much frightening and full of disturbance was the sea travel in ancient times due to sea storms and lack of instruments providing advance information. Even the ships of present day capacity were not there in those days. In scriptures we find description of ships sinking in the sea due to sea storms. So before starting on sea voyage, the travellers used to look into the proper day, date, constellation for safe journey. Further they used to worship many gods and goddesses for this purpose. It was believed that Vyantar gods create disturbances of many types in sea travel.

Still in order to earn more money, the businessmen used to undertake sea travel caring little for the dangers involved. They used to take goods from one country and sell in the other.

In sea travel there is fear of natural danger, of gods and of sea robbers. The sea robbers enter the dreadful sea at great risk to their lives in order to rob people. They used to rob the traders travelling by boat. Sometimes they even killed them. All these facts are quite evident in this aphorism.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रामादि लूटने वाले VILLAGE ROBBERS

६८. णिरणुकंपा णिरवयक्खा गामागर–णगर–खेड–कब्बड–मडंब–दोणमुह–पट्टणासम–णिगम–जणवए य धणसमिद्धे हणंति थिरहियय–छिण्ण–लज्जा–बंदिग्गह–गोग्गहे य गिण्हंति दारुणमई णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधि णिक्खित्ताणि य हरंति धणधण्णदव्वजायाणि जणवय–कुलाणं णिग्घिणमई परस्स दव्वाहिं जे अविरया।

६८. पराया धन चुराने वाले लोगों का हृदय अत्यन्त कठोर, अनुकम्पा, दया से शून्य होता है, वे परलोक की जरा भी परवाह नहीं करते, ऐसे लोग धन से समृद्ध ग्रामों, आकरों, नगरों, खेटों, कर्बटों, मडम्बों, पत्तनों, द्रोणमुखों, आश्रमों, निगमों एवं देशों को नष्ट कर देते–उजाड़ देते हैं। और वे अत्यन्त कठोर हृदय वाले या निहित स्वार्थ वाले, निर्लज्ज लोग मानवों को बंदी बनाकर अथवा गायों आदि पशुओं को पकड़कर ले जाते हैं। दारुण मति वाले, निर्दय या निकम्मे अपने–आत्मीय जनों का भी घात कर देते हैं। वे घरों में सेंध लगाते हैं।

जो परकीय द्रव्यों के लोभ से निवृत्त नहीं हैं, ऐसे निर्दय बुद्धि वाले (वे चोर) लोगों के घरों में रखे हुए धन–धान्य एवं अन्य प्रकार के द्रव्य के समूहों को चुरा लेते हैं।

68. The people who steal the money belonging to others are extremely rude. They have no compassion. They care a fig for the next life. They destroy or ruin prosperous villages, towns, colonies, cities, ports, corporations, ashrams, municipalities, aakars, khetas, karbats, ports. They always look to their personal gain. They are shameless. They make the people prisoners and carry away the cattle. They are fierce, cruel and insolent. They kill even their own relations. They break into the houses.

Those thieves have no mercy. They are always greedy for the property of others. They steal money, grains and other articles stored by people.

विवेचन : चोरी करने वाले लोग प्रायः निर्दय–अनुकम्पाहीन और क्रूर होते हैं, उन्हें अदत्तादान के परिणामस्वरूप परलोक में होने वाली दुर्दशाओं की परवाह नहीं होती क्योंकि वे प्रायः अदूरदर्शी और लोभग्रस्त रहते हैं। दयावान और परलोक से डरने वाले विवेकी जन इस इह–परलोक–दुःखप्रद कुकृत्य में प्रवृत्त नहीं होते।

प्रस्तुत पाठ में आये कुछ विशेष शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं–

ग्राम–छोटी बस्ती। जहाँ किसानों की बहुलता हो। **आकर**–जहाँ सोना–चाँदी आदि की खानें हों। **खेड–खेट**–धूल के परकोटे वाली बस्ती।

कब्बड–कर्बट–जहाँ थोड़े मनुष्य रहते हों।

मडम्ब–जिसके आस–पास कोई बस्ती न हो।

द्रोणमुख–जहां जल एवं स्थल दोनों मार्ग हों ऐसा बन्दरगाह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्तन–पाटन–जहाँ जलमार्ग से अथवा स्थलमार्ग से जाया जाये।

आश्रम–तापसजनों का निवास हो।

निगम–जहाँ व्यापारी बहुतायत से निवास करते हों।

Elaboration—The people engaged in theft are often cruel and ferocious. They have no compassion. They care little for the tortured and wretched state in the next life as a result of stealing (adattadan) activity. They are not far-sighted. They are engrossed in greed. The persons who are compassionate, who have a fear about the next life, who have sense of discrimination, they do not engage themselves in such bad activities.

The meanings of some technical terms in this aphorism are as follows :

Gram—A small colony. **Aakar—**The place where mines of gold etc. exist. **Khed—**A colony of with sand boundry walls. **Karbat—**Place where a few people reside. **Madamb—**A habited place not having a colony nearby. **Dronmukh—**Harbour. **Pattan—**Place connected with sea route or land route. **Ashram—**Place where hermits live. **Nigam—**Place where businessmen live in majority.

६९. तहेव केई अदिण्णादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय–सरस–दर–दड्ढ–कड्ढियकलेवरे रुहिरलित्तवयण–अक्खय–खाइयपीय–डाइणिभमंत–भयंकरं जंबुयक्खिक्खियंते घूयकयघोरसद्दे वेयालुट्ठिय–णिसुद्ध–कहकहिय–पहसिय–बीहणग–णिरभिरामे अइदुब्भिगंध–बीभच्छदरिसणिज्जे।

सुसाणवण–सुण्णघर–लेण–अंतरावण–गिरिकंदर–विसमसावय–समाकुलासु वसहीसु किलिस्संता सीयातव–सोसिय–सरीरा दड्ढच्छवी।

णिरयतिरिय–भवसंकड–दुक्ख–संभारवेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता।

दुल्लहभक्खण्ण–पाणभोयणा पिवासिया झुंझिया किलंता मंस–कुणिमकंदमूल–जं किंचिकयाहारा उव्विग्गा उप्पुया असरणा अडवीवासं उवेंति वालसय–संकणिज्जं।

६९. इसी प्रकार कितने ही लोग (चोर) चोरी के लिए धन आदि की खोज करते हुए समय और कुसमय–अर्ध–रात्रि आदि विषम काल में इधर–उधर भटकते हुए ऐसे श्मशान में फिरते हैं जहाँ चिताओं में जलती हुई, रुधिर आदि से युक्त, अधजली एवं खींच ली गई लाशें पड़ी हैं तथा रक्त से लथपथ मृत शरीरों को पूरा खा लेने और रुधिर पी लेने के पश्चात् इधर–उधर घूमती हुई डाकिनों के कारण जो अत्यन्त भयावना जान पड़ता है, जहाँ गीदड़ खीं–खीं ध्वनि कर रहे हैं। उल्लुओं की डरावनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवाज आ रही है। भयोत्पादक एवं विद्रूप पिशाचों, बेतालों द्वारा ठहाका मारकर अट्टहास करने से जो अतिशय भयावना एवं अरमणीय हो रहा है और जो अतीव तीव्र दुर्गन्ध से घिनौना होने के कारण देखने में भीषण जान पड़ता है।

(वे तस्कर) ऐसे शून्य स्थानों के अतिरिक्त वनों में, सूने घरों में, लयनों-शिलाओं से बने घरों में, मार्ग पर बनी हुई दुकानों, पर्वतों की गुफाओं, ऊबड़-खाबड़ स्थानों और सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियों से व्याप्त स्थानों में (राजदण्ड से बचने के लिए) इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। उनके शरीर की चमड़ी सर्दी और गर्मी से सूखकर सिकुड़ गई है। सर्दी-गर्मी की तीव्रता के कारण चमड़ी जल जाती है या चेहरे की कान्ति मंद पड़ जाती है।

वे नरक भव में और तिर्यंच भव रूपी गहन वन में होने वाले निरन्तर असह्य दुःखों की अधिकता द्वारा भोगने योग्य पापकर्मों का संचय करते हैं, अर्थात् अदत्तादान के पाप से नरक की एवं तिर्यंचगति की तीव्र वेदनाओं को निरन्तर भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता। ऐसे घोर पापकर्मों का वे संचय करते हैं।

(जंगल में कभी यहाँ और कभी वहाँ लुक-छिपकर भटकते-छिपते रहने के कारण) उन्हें खाने योग्य अन्न-चावल, गेहूँ आदि और पीने के लिए जल भी दुर्लभ होता है। कभी प्यास से पीड़ित रहते हैं, कभी भूखे रहते हैं, थके रहते हैं और कभी-कभी माँस, मुर्दा शरीर, कभी कन्दमूल आदि जो कुछ भी मिल जाता है, उसी को खाकर रहना पड़ता है। वे निरन्तर उद्विग्न-घबराये हुए रहते हैं, सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागते रहते हैं। उनका कोई शरणदाता नहीं होता। इस प्रकार वे जंगल में रहते हैं, जहाँ सैकड़ों सर्पों (अजगरों, भेड़ियों, सिंहों, व्याघ्रों) आदि का भय बना रहता है अर्थात् विषैले और हिंसक जन्तुओं के कारण जो सदा शंकाजनक बना रहता है।

69. Similarly some thieves, in order to commit theft move in odd hours—say at midnight—in cremation ground where pyres are lit, blood is scattered, half-burnt dead bodies have been pulled out, and which appears to be highly frightening as witches move about after eating the dead corpses and drinking their blood. The jackals howl. The owls make bleating sound causing fear. The demons, betaals laugh in a shocking and frightening manner. At this the entire environment is becoming non-pleasant since extremely sharp bad smell is spreading; it is also becoming highly despising to look at.

Those thieves wander about in such vacant places or in forests, ruins, stone huts, wayside shops, hilly caves, undulating areas, and in places visited by lions, tigers and other hunting beasts (in order to avoid punishment of the government). The skin on their body has dried up due

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

to terrible cold and heat. Their skin has burnt because of hoary winter and severe summer. The glow on their face has also gone down.

They collect demerit Karmas, which shall lead them to hell or animal state of existence where they shall have to bear continuously pain of such a dreadful living. In other words due to the sin committed by adattadan (thefts), one cannot avoid the Karmas so collected without undergoing deep pain and tortures of hell and animal state of existence continuously. They collect such dreadful Karmas in large quantity.

(Since they wander about in the forest concealing themselves) It is difficult for them to get foodstuff such as rice and wheat to eat and good water to drink. They remain sometimes thirsty, sometimes hungry, sometimes tired. Sometimes they have to eat raw flesh, a dead body, or the vegetables grown underground; whatever is available there. They remain always in a bewildered condition. They always run away from one place to another. They do not get protection from any one. Thus they remain in the forest where there is always the fear of hundreds of snakes (cobras, leopards, lions, tiger) and other creatures. In other words, due to the presence of such animals and beasts that kill for their food, they always remain disturbed.

७०. अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्ज दव्वं इह सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्तपमत्तपसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाई वसणऽभुदएसु हरणबुद्धी विगव्व रुहिरमहिया परेंति णरवइ-मज्जायमइक्कंता सज्जणजणदुगंछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभपरिणया य दुक्खभागी णिच्चाविलदुहमणिव्वुइमणा इहलोए चेव किलिस्संता परदव्वहरा णरा वसणसयसमावण्णा।

७०. वे अपने खानदान की बदनामी व अपकीर्ति का काम करने वाले और दूसरों के लिए भय उत्पन्न करने वाले तस्कर चोरी करने से पहले परस्पर ऐसी गुप्त मंत्रणा करते रहते हैं कि आज किसका धन चुरायें। वे बहुत से मनुष्यों के कामों में विघ्न डालते हैं। नशे में चूर हुए तस्कर बेसुध सोए हुए और विश्वास रखने वाले लोगों का अवसर देखकर घात कर देते हैं। दुर्व्यसनों, विपत्तियों और उत्सव आदि खुशी के मौकों पर चोरी करने की बुद्धि वाले होते हैं। भेड़ियों की तरह अति क्रूर रुधिर-पिपासु होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। वे राज्यशासन द्वारा बनाये हुए कानूनों का उल्लंघन करने वाले, सज्जन पुरुषों द्वारा निन्दा के पात्र एवं पापकर्म करने वाले (चोर) अपनी ही करतूतों के कारण अशुभ परिणाम वाले और दुःख के भागी होते हैं। सदैव मलिन, दुःखक्रान्त अशान्तियुक्त चित्त वाले ये दूसरों का धन हरण करने वाले इसी जन्म में सैकड़ों कष्टों से घिरकर क्लेश पाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

70. They bring ill fame and dishonesty to their family by their activities relating to stealing. Before committing theft that frightens others, the thieves among themselves plan where should they commit theft. They cause disturbance in the functioning of many people. In their intoxicated state they attack sleeping people and even those who have trust in them. They overpower those who are adversely in a state of intoxication. They commit theft at the time of festivals or when others are engaged in bad habit or are in trouble. They wander about hither and thither in a ferocious state, thirsty of blood of others like a leopard. They transgress the law of the state. The noble people condemn them. They commit bad deed. Such thieves face dire consequences as a result of their own deeds. They bear troubles. They always have a restless, sadly affected and ill bent of mind. They take away money belonging to others. They face hundreds of troubles in this very life.

चोर को बन्दीगृह में होने वाली यातनाएँ JAIL TORTURES TO THIEVES

७१. तहेव केइ परस्स दव्वं गवेसमाणा गहिया य हया य बद्धरुद्धा य तुरियं अइधाडिया पुरवरं समप्पिया चोरग्गह–चारभडचाडुकराण तेहि य कप्पडप्पहार–णिद्दयआरक्खिय–खरफरुसवयण–तज्जण–गलच्छल्लुच्छल्लणाहिं विमणा चारगवसहिं पवेसिया णिरयवसहिसरिसं।

तत्थवि गोमियप्पहार–दूमणणिब्भच्छण–कडुयवयणभेसणगभयाभिभूया अक्खित्तणियंसणा मलिणदंडिखंडणिवसणा उक्कोडालं–चपासमग्गणपरायणेहिं दुक्खसमुदीरणेहिं गोम्मियभडेहिं विविहेहिं बंधणेहिं।

७१. पहले कहे अनुसार दूसरों का धन चुराने की फिराक में फिरते हुए कई चोर (आरक्षकों–पुलिस आदि के द्वारा) पकड़ लिए जाते हैं और उन्हें मारा–पीटा जाता है, रस्सों आदि से बाँधा जाता है और कारागार में कैद किया जाता है। उन्हें जल्दी–जल्दी खूब घुमाया–दौड़ाया जाता है। बड़े नगरों में पहुँचाकर उन्हें पुलिस आदि अधिकारियों को सौंप दिया जाता है। तत्पश्चात् चोरों को पकड़ने वाले, चौकीदार, सिपाही मीठी–मीठी बातें बनाकर उन्हें कारागार में ठूँस देते हैं। चमड़े के चाबुकों के प्रहारों से, कठोर हृदय सिपाहियों के तीक्ष्ण एवं कठोर वचनों की डाट–डपट से तथा गर्दन पकड़कर धक्के देने से उनका चित्त खेदखिन्न होता है। उन चोरों को नरकावास सरीखी काल कोठरी में जबर्दस्ती घुसेड़ दिया जाता है।

(किन्तु कारागार में भी उन्हें चैन कहाँ?) वहाँ भी वे कारागार के अधिकारियों द्वारा विविध प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रहारों, अनेक प्रकार की कठोर यातनाओं, झिड़कियों व कठोर तथा भयोत्पादक वचनों से भयभीत होकर दुःखी बने रहते हैं। उनके पहनने-ओढ़ने के वस्त्र छीन लिए जाते हैं। वहाँ उनको मैले-कुचैले फटे वस्त्र पहनने को मिलते हैं। बार-बार उन कैदियों (चोरों) से रिश्वत माँगने में तत्पर कारागार के निदर्य तथा लोभी रक्षकों द्वारा अनेक प्रकार के बन्धनों में वे बाँध दिये जाते हैं।

71. As mentioned above, the thieves wander about in order to commit theft. Some of them are caught by the security guards or police. They are then severely beaten. They are tied with ropes and put in the prison. They are made to run quickly in order to torture them. They are brought to the town and handed over to the police. Thereafter the thief-catchers, the security guards or the policemen talk to them in a sweet deceptive voice and thrust them in the prison. They are beaten with cloth-made lashes. The hard-hearted policemen rebuke them with harsh words and push them from their neck. Thus they feel deeply dejected. Those thieves are imprisoned forcibly in hell-like cells.

(But even in jail they have no peace.) The jailors torture them in various ways. They cause them severe troubles and rebuke them with dreadful words. Thus they remain troubled as a result of fear. Their clothes are snatched. They get torn and dirty clothes to wear. The cruel greedy officials demand bribe from them again and again. They are chained or bound in different ways by the cruel and greedy jail officials.

७२. [प्र.] किं ते ?

[उ.] हडि-णिगड-बालरज्जुय-कुदंडग-वरत्त-लोहसंकल-हत्थंदुय-बज्झपट्ट-दामक-णिक्कोडणेहिं अण्णेहि य एवमाइएहिं गोम्मिगभंडोवगरणेहिं दुक्खसमुदीरणेहिं।

संकोडणमोडणाहिं बज्झंति मंदपुण्णा। संपुड-कवाड-लोहपंजर-भूमिघर-णिरोह-कूव-चारग-कीलग-जुय-चक्कविततबंधण खंभालण-उद्धचलण-बंधणविहम्मणाहि य विहेडयंता।

अवकोडगगाढ-उर-सिरबद्ध-उद्धपूरिय फुरंत-उर-कडगमोडणा-मेडणाहिं। बद्धा य णीससंता।

सीसावेढ-उरुयावल-चप्पडग-संधिबंधण-तत्तसलाग-सूइया-कोडणाणि तच्छणविमाणणाणि य खारकडुय-तित्त-णावणजायणा-कारणसयाणि बहुयाणि पावियंता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उरक्खोडी–दिण्ण–गाढपेल्लण–अट्ठिगसंभग्गसपंसुलिगा गलकालकलोहदंड–उर–उदर–वत्थि–परिपीलिया मत्थंत–हिययसंचुण्णियंगमंगा आणत्तीकिंकरेहिं।

केई अविराहिय–वेरिएहिं जमपुरिस–सण्णिहेहिं पहया ते तत्थ मंदपुण्णा चडवेला–वज्झपट्टपाराइ–छिव–कस–लत्तवरत्त–णेत्तप्पहारसयतालि–यंगमंगा किवणा लंबंतचम्मवणवेयणविमुहियमणा घणकोट्टिम–णियलजुयलसंकोडियमोडिया य कीरंति णिरुच्चारा असंचरणा, एया अण्णा य एवमाईओ वेयणाओ पावा पावेंति।

७२. [प्र.] चोरों को जिन विविध बन्धनों से बाँधा जाता है, वे बन्धन कौन–कौन से हैं ?

[उ.] हडि–खोड़ा या काठ की बेड़ी, जिसमें चोर का एक पाँव फँसा दिया जाता है, लोहे की बेड़ी, बालों से बनी हुई रस्सी, जिसके किनारे पर रस्सी का फंदा बाँधा जाता है, ऐसा एक विशेष प्रकार का काष्ठ, चर्म से बने मोटे रस्से, लोहे की साँकल, हथकड़ी, चमड़े, का पट्टा, पैर बाँधने की रस्सी तथा निष्कोटन नाम का एक विशेष प्रकार का बन्धन, इन सब तथा इसी प्रकार के अन्य–अन्य दुःखों को समुत्पन्न करने वाले कारागार–कर्मचारियों के उपकरणों द्वारा पापी चोरों को बाँधकर पीड़ा पहुँचाई जाती है।

इतना ही नहीं, उन पापी चोर कैदियों के शरीर को सिकोड़कर और मोड़कर जकड़ दिया जाता है। कैद की कोठरी (काल–कोठड़ी) में डालकर किवाड़ बन्द कर देना, लोहे के पिंजरे में डाल देना, भोंयरे–तलघर में बन्द कर देना, कभी गहरे कुएँ में उतारना, जेलखाने के सींखचों से बाँध देना, अंगों में कीलें ठोक देना, (बैलों के कंधों पर रखा जाने वाला) जूवा उनके कंधे पर रख देना अर्थात् बैलों के स्थान पर उन्हें गाड़ी में जोत देना, गाड़ी के पहिये के साथ बाँध देना या पहिया गले में डाल देना, बाहों, जाँघों और सिर को कसकर बाँध देना, खम्भे से चिपटा देना, पैरों को ऊपर और मस्तक को नीचे की ओर करके लटका देना इत्यादि अनेक प्रकार के बन्धन हैं जिनसे बाँधकर अधर्मी जेल–अधिकारियों द्वारा चोर बाँधे जाते हैं–पीड़ित किये जाते हैं।

फिर चोरी करने वालों की गर्दन नीची झुकाकर, छाती और सिर को कसकर बाँध दिया जाता है, तब वे निःश्वास छोड़ते हैं अथवा कसकर बाँधे जाने के कारण उनका श्वास रुक जाता है अथवा उनकी आँखें ऊपर को आ जाती हैं। डर व पीड़ा के मारे उनकी छाती धक्–धक् करती रहती है। उनके अंग मोड़े जाते हैं, वे बारम्बार उल्टे किये जाते हैं। वे अशुभ विचारों में डूबे रहते हैं और ठण्डी आहें छोड़ते हैं।

कारागार के अधिकारियों की आज्ञा का पालन करने वाले कर्मचारी उनको विविध यातनाएँ देते हैं, जैसे चमड़े की रस्सी से उनके मस्तक (कसकर) बाँध देते हैं, दोनों जंघाओं को चीर देते हैं या मोड़ देते हैं। काठ के एक खास यंत्र से उनके घुटने, कोहनी, कलाई आदि जोड़ों को बाँधा जाता है। तपी हुई लोहे की सलाइयाँ एवं सुइयाँ शरीर में चुभोई जाती हैं। उनका शरीर वसूले से लकड़ी की भाँति छीला जाता है। मर्मस्थलों को पीड़ित किया जाता है। शरीर पर बने घावों पर नमक आदि क्षार पदार्थ, नीम आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटुक पदार्थ और लाल मिर्च आदि तीखे पदार्थ उनके अन्य कोमल अंगों पर छिड़के जाते हैं। इस प्रकार सैकड़ों उपायों द्वारा बहुत-सी यातनाएँ वे भोगते रहते हैं।

(इतने से ही गनीमत कहाँ ?) उनकी छाती पर वजनदार काठ रखकर जोर से दबाने अथवा मारने से उनकी हड्डियाँ भग्न हो जाती हैं-पसली-पसली ढीली पड़ जाती है। मछली पकड़ने के काँटे के समान घातक काले लोहे के नोंकदार डण्डे छाती, पेट, गुदा और पीठ में भोंक देने से वे अत्यन्त पीड़ा से तड़फने लगते हैं। ऐसी-ऐसी यातनाएँ पहुँचाने के कारण अदत्तादान करने वालों का हृदय मथ दिया जाता है और उनके अंग-प्रत्यंग चूर-चूर कर दिये जाते हैं।

कोई-कोई चोर जिन्होंने कोई बड़ा अपराध नहीं किया है, फिर भी वैर-भाव रखने वाले सिपाही या कारागार के कर्मचारी यमदूतों के समान उनको मारते-पीटते हैं। इस प्रकार कारागार में अभागे-मन्दपुण्य चोरों को थप्पड़ों, मुक्कों, चर्मपट्टों, लोहे के कुशों, लोहमय तीक्ष्ण शस्त्रों, चाबुकों, लातों, मोटे रस्सों और बेंतों के सैकड़ों प्रहारों से अंग-अंग को प्रताड़ित करके पीड़ित किये जाते हैं। शरीर पर लटकती हुई चमड़ी पर हुए घावों की वेदना से वे बेचारे चोर दिग्मूढ़ बन जाते हैं। लोहे के घनों से कूट-कूटकर बनायी हुई दोनों बेड़ियों को पहनाये रखने के कारण उनके अंग सिकुड़ जाते हैं, मुड़ जाते हैं और शिथिल पड़ जाते हैं। यहाँ तक कि उनको मल-मूत्र त्याग भी नहीं करने देते। अथवा उन्हें बोलने भी नहीं दिया जाता है अर्थात् उनकी बोली भी बन्द कर दी जाती है। उनका चलना-फिरना रोक दिया जाता है। ये और इसी प्रकार की अन्यान्य वेदनाएँ वे अदत्तादान का पाप करने वाले पापी भोगते हैं।

72. [Q.] The thieves are chained in various ways. What are those ways ?

[Ans.] One foot of the thief is trapped in wooden block. They are chained in iron fetters. They are bound with rope made of hair or with a special type wood which has a noose of rope at one end. They are tied with thick rope made of leather. They are tied with iron bars and hand-cuffs. They are tied with leather belts. Their feet are tied with rope. They are tied with nishkotan—a special type of bondage. They are troubled and tortured by the cruel jail officials with such bondage and in many other ways.

Not just this, those sinning prisoners charged with theft are squeezed, bent and tied like that. These thieves are confined and tortured by cruel jailers in many way including—putting in isolation chambers and locking, putting in an iron cage, locking them in an underground cell, suspending them in a deep well, tying them to iron bars, nailing their body-parts, tying them under a yoke (harnessing them

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इह (इस) लोक में चोरी का दुष्परिणाम

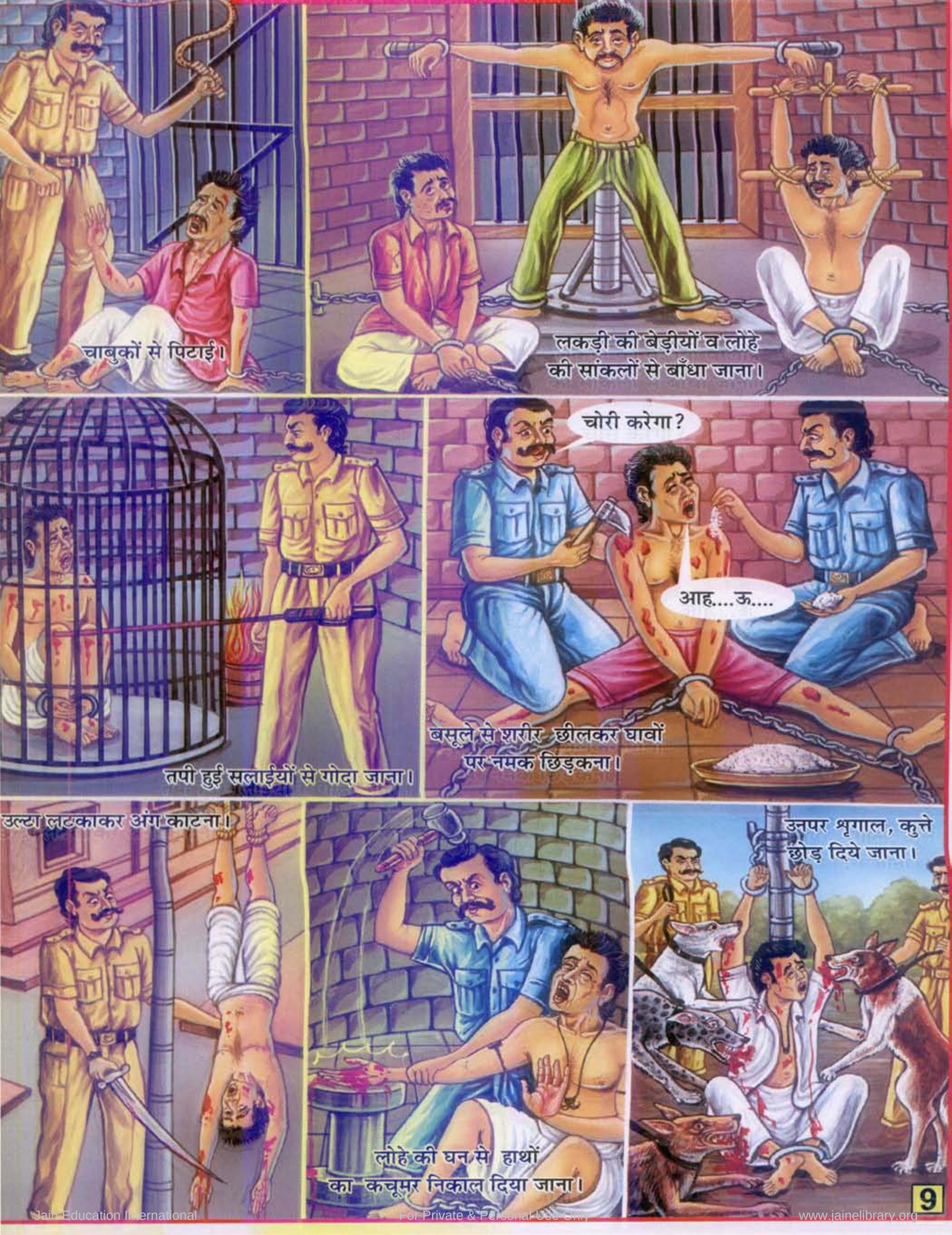

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय ९

Illustration No. 9

चोरों को बन्दीगृह में होने वाले दुःख-दण्ड-यातनाएँ

अपनी इन्द्रियों के गुलाम होकर पराये धन को लूटने की लालसा रखने वाले चोरों को दिये जाने वाले उग्रतम दण्डों का चित्रण यहाँ किया गया है।

राज्यकर्मियों द्वारा पकड़े जाने पर उन्हें चाबुकों से पीटा जाता है। लोहे की बेड़ियाँ हाथ-पैरों में डाल दी जाती हैं। काष्टमय बन्धनों के सिरे पर लकड़ी बाँधकर हथकड़ी से हाथ-पैर बाँध दिये जाते हैं। लोहे के पिंजरे में बन्द कर तपी हुई सलाईयों से उनके शरीर को गोद दिया जाता है। उनके शरीर को बसूले से छीलकर घावों पर नमक छिड़क दिया जाता है। राजमार्ग या सार्वजनिक स्थानों पर उल्टा लटकाकर अंग-अंग काट दिये जाते हैं। कभी-कभी लोहे के घन से हथेली का कचूमर निकाल दिया जाता है। उन्हें बाँधकर उनके ऊपर शृगाल और कुत्ते छोड़ दिये जाते हैं। जो उनके अंगों को नोच-नोचकर खा जाते हैं।

चित्र को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकाल में चोरी करना कितना भीषण अपराध माना जाता था और चोरी करने वालों को कितने भीषण दण्ड दिये जाते थे।

—सूत्र 72, पृ. 150

TORMENT GIVEN TO THIEVES

This illustration presents the extreme punishment given to the thieves who, being slaves of their senses, deprive others of their wealth.

When apprehended by state officials they are whipped and shackled with iron chains. After being shackled they are put in wooden traps. They are put in iron cage and pierced with hot iron rods. Their body is torn with planers and salt is sprinkled on the wounds. They are hanged upside down in public places and sliced. Also, their palms are crushed with a blow of heavy hammer. They are tied and thrown to jackals and dogs that snatch at and cut their body.

The illustration reveals that in ancient times theft was considered a very serious crime and extreme punishment was given for it.

— Sutra-72, page-120

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

in a cart in place of bullocks), tying them to a wheel (or placing a wheel on their necks), tying their hands, thighs or head tightly, tying them tight to a pillar, and suspending them from their feet.

Thereafter, the neck of the thieves is lowered and the head and the chest are tied tightly. When they exhale their breathing stops due to the tight bondage and their eyes bulge out. The heart beat increases due to fear and pain. Their limbs are twisted. They are again and again turned to face ground while lying. They remain engrossed in sad thought and seek mercy.

The employees working under the jail superintendent cause them tortures of various types. They tie their forehead tightly with leather stripes. They twist or split their thighs. They put their knees, elbows, wrists and other joints in a special type of wooden block. They prick their body with hot iron needles. They peal their body with planing tool like planing of the wood. They hurt their delicate parts. They put salt on their wounds. They put bitter substances like neem and chilly powder on the soft parts of their body. Thus they are tortured in many ways.

(The tortures are not stopped at this stage). A heavy piece of wood is placed on their chest and then it is pressed hard or the piece of wood is hit against them. As a result of it their bones get fractured and their ribs get loosened. Point sharp iron rods similar to those used to catch fist are pressed into their chest, belly, waist and back. Then they bemoan bitterly because of pain. Thus the heart of those who commit adattadan is shaken through suchlike tortures and every limb of their body is adversely affected.

Some thieves have not committed a grave crime. But the policemen, who are inimical towards them, beat them like guardians of hell. Thus the unfortunate thieves are beaten with slaps, fists, leather belts, iron rods, sharp iron weapons, lashes, legs, thick ropes and cane. Their limbs are troubled by hundreds of suchlike beatings. They become deeply sad due to the wounds on their loosely hanging skin. Their limbs shrink as they have to wear iron fetters; they also twist and become numb. The officials do not allow them even to go for a call of nature. They are not allowed even to utter a word. Their movement is stopped. The persons who commit the sin of adattadan undergo suchlike many tortures and troubles.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७३. अदंतिंदिया वसट्टा बहुमोहमोहिया परधणम्मि लुद्धा फासिंदिय-विसय-तिव्वगिद्धा इत्थिगयरूवसद्दरसगंधइट्ठरइमहियभोगतण्हाइया य धणतोसगा गहिया य जे णरगणा, पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा उवणीया।

रायकिंकराण तेसिं वहसत्थगपाढयाणं विलउलीकारगाणं लंचसयगेण्हगाणं कूडकवडमाया-णियडि-आयरणपणिहिवंचणविसारयाणं बहुविहअलियसयजंपगाणं परलोय-परम्मुहाणं णिरयगइगामियाणं।

तेहिं आणत्त-जीयदंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु वेत-दंड-लउड-कट्ठलेट्ठु-पत्थर-पणालिपणोल्लिमुट्ठि-लया-पायपण्हि-जाणु-कोप्पर-पहारसंभग्ग-महियगत्ता।

७३. जिन्होंने अपनी इन्द्रियों का दमन नहीं किया है अर्थात् इन्द्रियों के दास बन गये हैं, वशीभूत हो रहे हैं, जो तीव्र आसक्ति के कारण हिताहित का विवेक खो चुके हैं, पराये धन में लुब्ध हैं, जो स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में तीव्र रूप से आसक्त हैं, स्त्री सम्बन्धी रूप, शब्द, रस और गंध में इष्ट रति तथा वांछित भोग की तृष्णा से व्याकुल हैं, जो केवल धन की प्राप्ति में ही सन्तोष मानते हैं, ऐसे मनुष्यगण-राजपुरुषों द्वारा पकड़ लिए जाते हैं, फिर भी (पहले भी ऐसी यातनाएँ भोग लेने पर भी) वे पापकर्म के परिणाम को नहीं समझते।

वे राजपुरुष अर्थात् आरक्षक-पुलिस के सिपाही-वधशास्त्र पढ़े हुए होते हैं अर्थात् वध की विधियों को गहराई से समझते हैं। अन्याययुक्त दुष्ट कर्म करने वाले चोरों को गिरफ्तार करने में चतुर होते हैं। वे तत्काल समझ जाते हैं कि यह चोर अथवा लम्पट है। वे सैकड़ों अथवा सैकड़ों बार रिश्वत लेते हैं। झूठ, कपट, माया, धूर्त्तता करके वेष-परिवर्तन आदि करके चोर को पकड़ने तथा उससे अपराध स्वीकार कराने में अत्यन्त कुशल होते हैं, गुप्तचरी के काम में अति चतुर होते हैं। वे नरकगतिगामी, परलोक से विमुख एवं अनेक प्रकार से सैकड़ों असत्य भाषण करने वाले, ऐसे राजकिंकरों-सरकारी कर्मचारियों के समक्ष उपस्थित कर दिये जाते हैं।

जिन्हें प्राण-दण्ड की सजा सुनाई गई है, उनको उन्हीं राजकर्मचारियों द्वारा नगर में त्रिकोण मार्गों, चौराहों, राजमार्गों, गलियों, बाजारों, देव मन्दिर आदि स्थानों में जनसाधारण के सामने लाकर खड़े कर दिये जाते हैं। तत्पश्चात् बेंतों से, डण्डों से, लाठियों से, लकड़ियों से, ढेलों से, पत्थरों से, लम्बे लट्ठों से, पणोल्लि-एक विशेष प्रकार की लाठी से, मुक्कों से, लताओं से, लातों से, घुटनों से, कोहनियों से उनके अंग-अंग भंग कर दिये जाते हैं, उनके शरीर को मथ दिया जाता है।

73. The wretched people who have not controlled their senses, in fact they are slaves of their sense organs, they have lost the sense of discrimination between good and bad due to their deep attachment. They are drawn to others wealth, they are restless due to their sensual desire

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

relating to women for taking pleasure and enjoying their looks, words, fragrance, taste and touch. They feel satisfied only in collecting money. Such people are caught by state officials. Although they underwent tortures earlier, yet they do not understand the result of their condemnable deeds.

The state officials, the security guards and the policemen are well educated in the texts relating to tortures to criminals. They know the depth of such tortures. They are expert in arresting thieves who have committed grave crimes. They immediately locate who is the thief or the person prone to sex. They take bribe hundred times. They are expert in catching the thief and getting the sin accepted by them through deceitful means. Such as telling lies, crooked behaviour or posing in different dress. They are adept in spying. They (thieves) are then produced before such state officials who are engaged in activities leading to hell, who care a fig for the next life and who make hundreds of false speeches.

The said state officials take the charge of those criminals who have been awarded capital punishment. They are brought at three-way crossings, four-way crossings, highways, streets, bazaars, temples and other suchlike common places and made to stand there. Then they are given thrashing with cane, sticks, stones, long rods, earthen lumps, special types of sticks (panolli), fists, legs, creepers, knees and elbows. Thus their limbs are broken. Their body is trampled.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में चोरी रूप, पापकर्म के मूल में निम्न कारण बताये गये हैं–

(१) इस पाप-प्रवृत्ति का प्रथम मूल कारण अपनी इन्द्रियों को वश में न रखना है। इन्द्रियों की गुलामी ही चोरी का प्रेरक कारण है।

(२) दूसरा कारण है–परधन का लोभ।

Elaboration—In this aphorism, the following basic causes for committing theft have been mentioned :

(1) The first basic cause is not to keep one's senses under control or to become slave of senses. It inspires one to commit theft.

(2) The second cause is to have greed for the money belonging to others.

७४. अट्ठारसकम्मकारणा जाइयंगमंगा कलुणा सुक्कोट्ठकंठ–गलग–तालु–जीहा जायंता पाणीयं विगय–जीवियासा तण्हाइया वरागा तं वि य ण लभंति वज्झपुरिसेहिं धाडियंता। तत्थ य खर–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फरुसपडहघट्टिय-कूडग्गहगाढरुट्टणिसट्टपरामुट्ठा वज्झयरकुडिजुयणियत्था सुरत्तकणवीर-गहियविमुकुल-कंठे-गुण-वज्झदूयआविद्धमल्लदामा, मरणभयुप्पण्णसेय-आयतणेहुत्तुपियकिलिण्णगत्ता चुण्णगुंडियसरीर-रयरेणुभरियकेसा कुसुंभगोकिण्णमुद्धया छिण्ण-जीवियासा घुण्णंता वज्झयाणभीया।

तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीरविक्किंत्तलोहिओलित्ता कागणिमंसाणि-खावियंता पावा खरफरुसएहिं तालिज्जमाणदेहा वातिग-णरणारीसंपरिबुडा पेच्छिज्जंता य णगरजणेण बज्झणेवत्थिया पणेज्जंति णयरमज्झेण किवणकलुणा अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधुविप्पहीणा विपिक्खिंता दिसोदिसिं मरणभयुव्विग्गा आघायणपडिदुवार-संपाविया अधण्णा सूलग्गविलग्गभिण्णदेहा।

७४. अठारह प्रकार के चोरों एवं चोरी के प्रकारों के कारण उनके अंग-अंग पीड़ित कर दिये जाते हैं, उनकी दशा अत्यन्त करुणाजनक दयनीय होती है। उनके ओठ, कण्ठ, गला, तालु और जीभ सूख जाती है, जीवन की आशा उनकी समाप्त हो जाती है। वे बेचारे प्यास से पीड़ित होकर पानी माँगते हैं पर वह भी उन्हें नसीब नहीं होता। वहाँ कारागार में वध (मृत्युदण्ड) के लिए नियुक्त पुरुष उन्हें धकेलकर या घसीटकर ले जाते हैं। अत्यन्त कर्कश ढोल बजाते हुए, राजकर्मचारियों द्वारा धकियाए जाते हुए तथा तीव्र क्रोध से भरे हुए राजपुरुषों, जल्लादों द्वारा फाँसी या शूली पर चढ़ाने के लिए दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए वे अत्यन्त ही अपमानित होते हैं। उन्हें प्राणदण्ड प्राप्त मनुष्य के लिए खास दो वस्त्र पहनाये जाते हैं। लाल कनेर के फूलों की माला उनके गले में पहनायी जाती है, जो वध्यदूत-सी (मृत्यु का दूत) प्रतीत होती है अर्थात् यह सूचित करती है कि इस पुरुष को शीघ्र ही मृत्युदण्ड दिया जाने वाला है। मौत के डर के कारण उनके शरीर से पसीना छूटता है, उस पसीने की चिकनाई से उनके सारे अंग भीग जाते हैं-समूचा शरीर चिकना-चिकना हो जाता है। कोयले आदि के काले रंग के चूर्ण से उनका शरीर पोत दिया जाता है। हवा से उड़कर चिपटी हुई धूलि से उनके केश रूखे एवं धूलभरे हो जाते हैं। उनके सिर केशों को कुसुंभी-लाल रंग से रंग दिया जाता है। उनकी जिन्दा रहने की आशा नष्ट हो जाती है। अतीव भयभीत होने के कारण वे डगमगाते हुए चलते हैं-दिमाग में चक्कर आने लगते हैं और वे वधकों-जल्लादों से भयभीत बने रहते हैं।

उनके शरीर के तिल-तिल जितने-छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये जाते हैं। उन्हीं के शरीर से काटे हुए और खून से लिप्त माँस के छोटे-छोटे टुकड़े उन्हें खिलाए जाते हैं। कठोर एवं कर्कश स्पर्श वाले नुकीले पत्थरों आदि से उन्हें पीटा जाता है। इस भयावह दृश्य को देखने के लिए अनियंत्रित नर-नारियों की भीड़ एकत्र हो जाती है। नागरिक जन उन्हें (इस अवस्था में) देखते हैं। फिर मृत्यु-दण्ड प्राप्त कैदी की पोशाक उन्हें पहनाई जाती है और नगर के बीचोंबीच होकर ले जाया जाता है। उस समय वे चोर अत्यन्त दयनीय दिखाई देते हैं। त्राणरहित, अशरण, अनाथ, बन्धु-बान्धवविहीन, भाई-बंदों द्वारा परित्यक्त वे इधर-उधर नजर डालते हैं (कि कोई सहायक-संरक्षक दीख जाये) और (सामने उपस्थित) मौत के भय से अत्यन्त घबराये हुए होते हैं। तत्पश्चात् उन्हें वध-स्थल पर पहुँचा दिया जाता है और उन अभागों को शूली पर चढ़ा दिया जाता है, जिससे उनका शरीर छिन्न-भिन्न हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

74. Their limb are tortured as they commit any of the eighteen types of thefts. The thieves are thus of eighteen types. Their condition is extremely pitiable. Their lips, throats, tongues and palates get dried up. They lose hope of survival. They beg water as they feel extremely thirsty but they do not get water. The officials pull them and push them into the prison. Drums producing very harsh sounds are beaten. They are pushed to the place of hanging by the state officials. They are tightly held by the state officials and the hangmen in a state of extreme anger for hanging them on the scaffold. They are cursed brutally. The persons who have been awarded capital punishment have to wear two special clothes. They are made to wear the garland of Kaner flowers of red colour. It appears like guardian of death. It indicates that the said criminal is going to be hanged soon. They perspire due to the fear of death. Their limbs become moist and muddy due to perspiration. Coal-like black powder is pasted on their body. Their hair are dusty and dry due to flying dust sticking in them. They move in a zig-zag manner in an extremely frightened condition. They feel giddy. They are frightened of the hangman.

Their body is reduced to tiny pieces like sesame seeds. They are made to eat small blood stained pieces of their own flesh. They are beaten with pointed stones which are hard and rough. There collects a crowd of men and women to see that dreadful scene. The citizens see them in this condition. Then they are dressed up in the apparel meant for the prisoner who has been awarded capital punishment. They are taken out through the town. At that times those thieves are seen in a very wretched condition. They are without any protection or shelter. They are orphans. The relatives, family members discard them. They look around in a pitiable condition (so that some one may help them). They feel extremely bewildered due to the fear of death. Later they are brought to the scaffold ground and hanged on the scaffold. Thus there souls become separated from their bodies.

विवेचन : प्राचीन काल में चोरी करना कितना भारी अपराध गिना जाता था और चोरी करने वालों को कैसा भीषण दण्ड दिया जाता था, यह तथ्य इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है।

कल्पना कीजिए उस वीभत्स दृश्य की, जब वध्य का वेष धारण किये चोर नगर के बीच फिराया जा रहा हो ! उसके शरीर पर प्रहार हो रहे हों, अंग काटे जा रहे हों और उसी का माँस उसी को खिलाया जा रहा हो, नर-नारियों के झुण्ड के झुण्ड उस दृश्य को देखने के लिए उमड़े हुए हों। उस समय अभागे चोर की मनोभावनाएँ किस प्रकार की होती होंगी ? चोर को दिये जाने वाले घोर दण्ड की कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत पाठ में अठारह प्रकार के चोरों या चौर्य प्रकारों का उल्लेख किया गया है। वे अठारह प्रकार ये हैं-

भलनं कुशलं तर्जा, राजभागोऽवलोकनम्।
आमर्गदर्शनं शय्या, पदभंगस्तथैव च॥१॥

विश्रामः पादपतनमासनं गोपनं तथा।
खण्ड स्यखादनं चैव, तथाऽन्यन्माहराजिकम्॥२॥

पद्याग्न्युदकरज्जूनां प्रदानं ज्ञानपूर्वकम्।
एता प्रसूतयो ज्ञेया अष्टादश मनीषिभिः॥३॥

१. डरते क्यों हो ? मैं तुम्हारा बाल बाँका नहीं होने दूँगा, इस प्रकार चोर को प्रोत्साहन देना।

२. चोर के मिलने पर उससे कुशल-क्षेम पूछना।

३. चोर को चोरी के लिए हाथ आदि से इशारा करना।

४. राजकीय कर-टैक्स नहीं देना या चुराना।

५. चोरी करते देखकर भी मौन रह जाना।

६. चोरों की खोज करने वालों को विपरीत मार्ग बताना।

७. चोरों को सोने के लिए शय्या आदि देना।

८. चोरों के पैरों के निशान मिटाना।

९. चोर को अपने घर में छिपाना या विश्राम देना।

१०. चोर को नमस्कार करके सन्मान देना।

११. चोर को 'आइये, बैठिये' कहकर आसन आदि देना।

१२. चोर को छिपाना-छिपाकर रखना।

१३. चोर को प्रेमपूर्वक मिठाई आदि खिलाना।

१४. चोर को गुप्त रूप से आवश्यक वस्तुएँ भेजना या 'महाराज' आदि सूचक शब्दों से पुकारना।

१५. थकावट दूर करने के लिए चोर को गर्म पानी, तेल आदि देना।

१६. भोजन पकाने आदि के लिए चोर को अग्नि देना।

१७. चोर को पीने के लिए ठण्डा पानी देना।

१८. चोर को चोरी करने के लिए अथवा चोरी करके लाये पशु को बाँधने के लिए रस्सी-रस्सा देना।

ये अठारह दोष चोरी की प्रसूति-उत्पत्ति के कारण हैं। चोरों के साथ जानबूझकर पूर्वोक्त व्यवहार करने वाले को चोरी का दोष लगता है।

चौरश्चौरार्पको मंत्री, भेदज्ञः काणकक्रयी।
अन्नदः स्थानदश्चैव, चोरः सप्तविधः स्मृतः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्वयं चोरी करने वाला, (२) चोरी करवाने वाला, (३) चोरी करने की सलाह देने वाला, (४) भेद (गुर) बताने वाला–कैसे, कब और किस विधि से चोरी करना इत्यादि बातें सिखाने वाला, (५) चोरी का माल (कम कीमत में) खरीदने वाला, (६) चोर को खाने–पीने की सामग्री देने वाला–जंगल आदि गुप्त स्थानों में रसद पहुँचाने वाला, (७) चोर को छिपने के लिए स्थान देने वाला, ये सभी सात प्रकार के चोर कहलाते हैं।

नीतिकारों का कहना है–केवल चोरी करने वाला ही चोर नहीं होता।

Elaboration—In ancient times, stealing was considered an extremely grave crime. This description indicates how dreadful was the punishment awarded to such criminals.

Imagine the dreadful scene when a thief wearing the dress meant for criminal to be hanged is moved about in the town and his body is being tortured. His limbs are cut and he is made to eat his own flesh. Imagine the crowd of people collected to see such a horrible scene. Imagine the mental state of such an unfortunate thief at that time. One feels thunder struck when one just imagines the horrible punishment awarded to the thief.

In the verses quoted here, eighteen types of thieves or modes of committing theft have been mentioned. They are as follows—

(1) Why are you feeling afraid? I shall not allow any one to trouble you. To encourage a thief in this manner.

(2) To inquire about health and welfare of a thief when he meets.

(3) To point out to the thief with hand and the like for committing theft.

(4) Not to pay state tax or to pay less than due.

(5) To remain silent even after seeing a thief committing theft.

(6) To tell different direction to the persons in search of thieves.

(7) To provide bed to the thief.

(8) To wipe out foot prints of thieves.

(9) To conceal a thief in the house or to allow him to take rest there.

(10) To give respect to a thief by saluting him.

(11) To greet a thief and provide him a seat.

(12) To keep a thief underground.

(13) To offer sweats to a thief with affection.

(14) To send necessary thing secretly to a thief or to address him with

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

words of honour. (Like 'Maharaj' or reverend sir).

(15) To offer hot water and oil to the thief for removing fatigue.

(16) To provide fire to the thief for cooking food.

(17) To provide cold water to the thief for drinking.

(18) To provide rope to thief for theft or for tying the stolen cattle he has brought.

These eighteen faults are the causes for growth of stealing activities. The person who knowingly engages in such acts collects the same sin as that of theft.

Seven types of persons are called thieves namely—(1) one who commits theft himself, (2) one who gets the theft committed, (3) one who advises others to commit theft—how, when and in what manner it should be committed, (4) one who teaches such things, (5) one who purchases stolen goods at lower price, (6) one who provides food-stuff to thieves—one who sends food articles to thieves at their secret resort in the forest, (7) one who offers shelter to thief to hide.

It is said by the moralists that only the person committing theft is not a thief, all the above said seven types of persons are thieves.

चोरों की दी जाती हुई भीषण यातनाएँ DREADFUL TORTURES GIVEN TO THIEVES

७५. ते य तत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा उल्लंबिज्जंति रुक्खसालासु केइ कलुणाइं विलवमाणा, अवरे चउरंगधणियबद्धा पव्वयकडगा पमुच्चंते दूरपातबहुविसमपत्थरसहा अण्णे, य गय–चलण–मलणयणिम्मद्दिया कीरंति पावकारी अट्ठारसखंडिया कीरंति मुंडपरसूहिं, केइ उक्कत्तकण्णोट्ठणासा उप्पाडियणयण–दसण–वसणा जिब्भिंदियछिया छिण्ण–कण्णसिरा पणिज्जंते छिज्जंते य असिणा।

णिव्विसया छिण्णहत्थपाया पमुच्चंते य जावज्जीवबंधणा य कीरंति, केइ परदव्वहरणलुद्धा कारग्गलणियलजुयलरुद्धा चारगाएहतसारा।

सयणविप्पमुक्का मित्तजणणिरक्खिया णिरासा बहुजण–धिक्कार–सद्द–लज्जाविया अलज्जा अणुबद्धखुहा पारद्धा सी–उण्ह–तण्ह–वेयण–दुग्घट्टघट्टिया विवण्णमुह–विच्छविया विहलमइल–दुब्बला किलंता कासंता वाहिया य आमाभिभूयगत्ता परूढ–णह–केस–मंसु–रोमा छगमुत्तम्मि णियगम्मि खुत्ता।

तत्थेव मया अकामगा बंधिऊण पाएसु कड्डिया खाइयाए छूढा, तत्थ य वग–सुणग–सियाल–कोल–मज्जार–वंडसं–दंसगतुंड–पक्खिगण–विविह–मुहसयल–विलुत्तगत्ता कय–विहंगा, केइ किमिणा य कुहियदेहा अणिट्ठवयणेहिं सप्पमाणा सुट्ठु कयं जं मउत्ति पावो तुट्ठेणं जणेण हम्ममाणा लज्जावणगा य होंति सयणस्स वि य दीहकालं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७५. वहाँ वध्यभूमि में किन्हीं-किन्हीं चोरों के अंग-प्रत्यंग काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं। उन्हें वृक्षों की शाखाओं पर टाँग दिया जाता है। उनके चार अंगों-दोनों हाथों और दोनों पैरों को कसकर बाँध दिया जाता है। किन्हीं को पर्वत की चोटी से नीचे लुढ़का दिया जाता है-फैंक दिया जाता है। बहुत ऊँचाई से गिराये जाने के कारण उन्हें नुकीले ऊबड़-खाबड़ पत्थरों की चोट सहनी पड़ती है। किसी-किसी को हाथी के पैर के नीचे कुचलकर कचूमर बना दिया जाता है। उन चोरी का पापकर्म करने वालों को भोंथरे कुल्हाड़ों आदि से अठारह स्थानो में खण्डित किया जाता है। कइयों के कान, आँख और नाक काट दिये जाते हैं तथा आँखें निकाल ली जाती हैं। दाँत उखाड़ दिये जाते हैं और अण्डकोश काट लिए जाते हैं। जीभ खींचकर बाहर निकाल ली जाती है, कान और शिराएँ काट दी जाती हैं। फिर उन्हें वधभूमि में ले जाया जाता है और वहाँ तलवार से काट दिया जाता है।

किन्हीं-किन्हीं चोरों को हाथ-पैर काटकर देश से निर्वासित कर दिया जाता है-कई चोरों को आजीवन कारागार में रखा जाता है। कारागार में साँकल बाँधकर एवं दोनों पैरों में बेड़ियाँ डालकर रखा जाता है। पराये धन का अपहरण करने में लुब्ध कई चोरों को कारागार में बन्दी बनाकर उनका धन-माल छीन लिया जाता है।

उन चोरों को उनके परिवारजन छोड़ देते हैं-राजकोप या राजदण्ड के भय से कोई स्वजन उनसे सम्बन्ध नहीं रखता, मित्रजन उनकी रक्षा नहीं करते। सभी के द्वारा वे तिरस्कृत होकर सभी की ओर से निराश हो जाते हैं। बहुत-से लोग 'धिक्कार है तुम्हें' इस प्रकार लज्जित करते हैं। उन लज्जाहीन मनुष्यों को निरन्तर भूखा मरना पड़ता है। चोरी के वे अपराधी सर्दी, गर्मी और प्यास की पीड़ा से कराहते-चिल्लाते रहते हैं। उनका मुख-चेहरा सहमा हुआ और कान्तिहीन हो जाता है। वे सदा विह्वल या असफल' मलिन और दुर्बल बने रहते हैं। थके-हारे या मुर्झाए हुए से रहते हैं, कोई-कोई खाँसी आदि से पीड़ित रहते हैं और अनेक रोगों से ग्रस्त रहते हैं अथवा खाया हुआ भोजन भलीभाँति न पचने के कारण उनका शरीर क्षीण व पीड़ित रहता है। उनके नख, केश और दाढ़ी-मूँछों के बाल तथा रोम बढ़ जाते हैं। वे कारागार में अपने ही मल-मूत्र में लिप्त रहते हैं (क्योंकि मल-मूत्र त्यागने के लिए उन्हें अन्यत्र नहीं जाने दिया जाता)।

जब इस प्रकार की दुस्सह यातनाएँ भोगते-भोगते भी मरने की इच्छा न होने पर भी आयुष्य समाप्त होते ही मर जाते हैं (तब भी उनकी दुर्दशा का अन्त नहीं होता)। उनके शव के पैरों में रस्सी बाँधकर कारागार से बाहर घसीटकर किसी गहरी खाई या गड्ढे में फैंक दिया जाता है। तत्पश्चात् भेड़िया, कुत्ते, सियार, शूकर तथा संडासी जैसे अनेक पक्षी अपने तीक्ष्ण दाँतों से उनके शव को नोंच-नोंचकर खा जाते हैं। कई शवों को बाज, गीध आदि खा जाते हैं। कई चोरों के मृत कलेवर में कीड़े पड़ जाते हैं, उनके शरीर सड़-गल जाते हैं। (इस प्रकार मृत्यु के पश्चात् भी उनके शरीर की ऐसी दुर्गति होती है। फिर भी उनके कष्टों का अन्त नहीं आता) उसके बाद भी अनिष्ट वचनों से लोग निन्दा करते हैं। उन्हें धिक्कारते हैं कि अच्छा हुआ जो पापी मर गया अथवा मारा गया। उसकी मृत्यु से सन्तुष्ट हुए लोग उसकी निन्दा करते हैं। इस प्रकार वे पापी चोर अपनी मौत के पश्चात् भी दीर्घकाल तक अपने स्वजनों-परिजनों को लज्जित करते रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

75. At the scaffold area, the limbs of certain thieves are chopped off and cut into pieces. They are hung with the branches of the tree. Their hands and feet are tied tightly. Some thieves are rolled down from the top of the hill or thrown away from there. As they are pushed from a great height, they have to tolerate the hurt as a result of stones lying hither and thither. Some thieves are trampled under the feet of an elephant. Those thieves who do the criminal act of adattadan, they are chopped from eighteen places. Ears, eyes and nose of some of them are cut. Their tongue is pulled out. Their nerves and ears are cut and then they are taken away to the place meant for killing. There they are cut with a sword.

The hands and feet of some thieves are cut and then they are expelled from the country. Some thieves are awarded life imprisonment; they are kept in handcuffs and fetters. The property of some thieves is taken away by the state and they are kept as prisoners in the jail.

The family members discard those thieves. The relatives do not have any contact with them out of fear of the state government. The friends do not give them any protection. They become depressed when they are condemned by every one. Some people shout at them : 'Curse on you'. Those shameless thieves have to starve continuously. Those criminals cry due to severe cold, scorching heat and thirst. Their faces look pale and blushed. They always remain restless, dirty and weak. They remain tired or depressed. Some of them suffer from cough or several other diseases. They are not able to digest their food properly. So their body becomes weak. Their nails, hair, moustaches and the hair on chin grow long. They remain soaked with their own stool and urine in the prison (as they are not allowed to go anywhere else for the call of nature).

Their sad state does not come to an end even when they die undergoing such terrible tortures. Their dead body is tied to a rope at their feet. They are pulled out from the prison dragging and then thrown in a pit or in a ditch. Thereafter, the leopards, dogs, jackals, pigs and birds having sharp beaks tear their body with their sharp teeth. Eagles and vultrue eat away some of the dead corpses. In some of the dead corpses of thieves, worms germinate and their dead body starts rotting. (Thus even after their death, their dead body is treated in such a wretched manner. Even then there is not an end to their troubles). People condemn them with unpalatable words even after their death.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

They say that it is good that the said criminal has died or has been killed. The people feeling satisfied at his end, condemn him. Thus the condemned thieves even after their death bring dishonour to their relatives for a long time.

विवेचन : उक्त सूत्र पाठ में चोरों को राज्य शासन द्वारा दी जाने वाली असह्य प्राणान्तक यातनाओं का सजीव चित्रण किया है। जिसे पढ़-सुनकर ही हृदय में कँपकँपी छूट जाती है। यह उस युग में दी जाने वाली यातनाओं का यथार्थ वर्णन है। इसका उद्देश्य यही है कि इसे पढ़-सुनकर चौर्य कर्म से विरक्ति हो सके।

अगले सूत्र में मरकर नरकगति आदि में जाने पर प्राप्त होने वाली वेदनाओं का वर्णन है।

Elaboration—In the aphorism a vivid pictures of unbearable death-like tortures given to thieves by state administration has been shown. One feels awe-stricken to hear or go through such an account. It is the factual description of the punishment awarded in those days. The purpose of narrating them is that after reading them or listening to them, one may avoid stealing completely.

In the succeeding aphorism, there is a description of the pain and tortures they receive when they are re-born in hell.

पाप और दुर्गति की परम्परा SIN AND THE TRADITION OF BAD EXISTENCE

७६. मया संता पुणो परलोग-समावण्णा णरए गच्छंति णिरभिरामे अंगार-पलित्तककप्प-अच्चत्थ-सीयवेयण-अस्साउदिण्ण-सययदुक्ख-सय-समभिद्दुए, तओ वि उव्वट्टिया समाणा पुणो वि पवज्जंति तिरियजोणिं तहिं पि णिरयोवमं अणुहवंति वेयणं, ते अणंतकालेण जइ णाम कहिं वि मणुयभावं लभंति णेगेहिं णिरयगइ-गमण-तिरिय-भव-सयसहस्स-परियट्टेहिं। तत्थ वि य भवंतऽणारिया णीय-कुल-समुप्पण्णा।

आरियजणे वि लोगबज्झा तिरिक्खभूया य अकुसला कामभोगतिसिया जहिं णिबंधंति णिरयवत्तणिभवप्पवंचकरण-पणोल्लि पुणो वि संसारावत्तणेममूले धम्मसुइ-विवज्जिया अणज्जा कूरा मिच्छत्तसुइपवण्णा य होंति एगंत-दंड-रुइणो वेढेंता कोसिकारकीडोव्व अप्पगं अट्ठकम्मतंतु-घणबंधणेणं।

७६. (चोर अपने दुःखमय जीवन का अन्त होने पर) परलोक में नरकगति में उत्पन्न होते हैं। नरक में सब कुछ अशुभ व अशुभतर ही है। वह स्थान आग से जलते हुए घर के समान (अतीव उष्ण वेदना वाला या) तथा अत्यन्त शीत वेदना वाला होता है। (तीव्र) असातावेदनीय कर्म के उदय के कारण सैकड़ों दुःखों से व्याप्त है। (नरक की लम्बी आयु पूरी करने के पश्चात्) नरक से उद्वर्तन करके निकलकर फिर तिर्यंचयोनि में जन्म लेते हैं। वहाँ भी वे नरक-जैसी असातावेदना का अनुभव करते हैं। उस तिर्यंचयोनि में अनन्त काल तक भटकते हैं। किसी प्रकार अनेकों बार नरकगति और लाखों बार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंचगति में जन्म-मरण करते-करते यदि पुण्योदय से मनुष्यभव पा लेते हैं तो वहाँ भी नीच कुल में उत्पन्न होते हैं और अनार्य, धर्म संस्कारों से हीन होते हैं।

कदाचित् संयोगवश आर्य-कुल में जन्म मिल गया तो वहाँ भी अपने गंदे आचरणों के कारण लोगों द्वारा बहिष्कृत निन्दित होते हैं। पशुओं जैसा जीवन यापन करते हैं, कुशलता से रहित होते हैं अर्थात् विवेकविहीन होते हैं, अत्यधिक कामभोगों की तृष्णा वाले और अनेकों बार नरक-भवों में (पहले) उत्पन्न होने के पूर्व बद्ध कुसंस्कारों के कारण नरकगति में उत्पन्न होने योग्य पापकर्म करने की प्रवृत्ति वाले होते हैं। अतएव संसार-चक्र में परिभ्रमण कराने वाले अशुभ कर्मों का पुनः बन्ध करते हैं। वे धर्मशास्त्र के श्रवण से वंचित रहते हैं। पापकर्मों में प्रवृत्त रहने के कारण धर्मशास्त्र श्रवण करने की रुचि ही उनके हृदय में उत्पन्न नहीं होती। वे शिष्टजनोचित आचार-विचार से रहित, क्रूर-नृशंस-निर्दय मिथ्यात्व के पोषक शास्त्रों को अंगीकार करते हैं। एकान्ततः हिंसा में ही उनकी रुचि होती है। इस प्रकार रेशम के कीड़े के समान वे अष्ट कर्मरूपी तन्तुओं से अपनी आत्मा को प्रगाढ़ बन्धनों से जकड़ लेते हैं।

76. The thieves after the end of their painful life take re-birth in hell. In the hell every thing is bad and even worse. That area is either as hot as a house on fire or extremely cold. Due to the fructifying of pain-bearing karma, it is full of hundreds of troubles (After completing the long life in hell) they take birth in animal state of existence. There also they experience hell-like pain and tortures. They wander in animal state for an infinite period. After several lives in hell and million times in animal state of existence, if due to the fructification of some merit karmas they take birth as human beings, there also they are born in low caste and are devoid of good (heritage) traits.

If per chance, they take birth in a cultured family, there also they are expelled or condemned due to their bad conduct; they lead the life of an animal. They do not have sense of discrimination. They remain deeply attached to sexual desires. Many a times due to their earlier births in hell, they have bad bent of mind and engage themselves in such sins that lead them to hell again. They collect the bondage of such karmas that lead them again to hell. They remain devoid of listening to scriptures. As they remain engaged in bad activities they do not have any desire to listen to scriptures. They are devoid of civilized conduct. They are cruel, inhuman and lack compassion. They take interest in such texts, which support wrong faith. They have interest totally in violence. Thus like a silkworm they bind their soul with the cobweb of eight karmas.

विवेचन : अदत्तादान पाप के फलस्वरूप आत्मा नरकगति और तिर्यंचगति में पुनः-पुनः जन्म लेता है। अनन्त काल तक असह्य दुःख भोगता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् कभी किसी पुण्य-प्रभाव से मनुष्यगति प्राप्त करता है तो नीच कुल में जन्म लेता है और पशुओं सरीखा जीवन व्यतीत करता है। पूर्व कुसंस्कारों के कारण उसकी रुचि पापकर्मों में ही रहती है।

नरकगति और तिर्यंचगति में होने वाले दुःखों का प्रथम आस्रवद्वार में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है।

पापी जीव अपनी आत्मा को किस प्रकार कर्मों से लिप्त कर लेता है, इसके लिए शास्त्र में **'कोसिकारकीडोव्व'** अर्थात् कोशिकारकीट-रेशम के कीड़े की यथार्थ उपमा दी गई है। यह कीड़ा अपनी ही लार से अपने आपको लपेटने वाले आवरण का निर्माण करता है। उसके मुख से निकली लार तन्तुओं का रूप धारण कर लेती है और उसी के शरीर पर लिपटकर उसे घेर लेती है। इस प्रकार वह कीड़ा अपने लिए आप ही बन्धन तैयार करता है। इसी प्रकार पापी जीव स्वयं अपने किये कर्मों द्वारा बँधता जाता है।

Elaboration—As a result of the sin of theft (adattadan), the soul takes birth in hell and animal state again and again. It suffers pain there for an infinite period.

Thereafter as a result of some merit-bearing karma, this soul takes birth as a human being. There also he is born in a low class family and is treated like animals. He has an interest in sinful activities due to the earlier way of life inherited by him.

A detailed account of troubles faced in hell and in animal state of existence has been given in the first Aasrava dvar.

The words 'Kosikaarkeedov' has been used in scriptures to define how a sinner affects his self with bad karmas. Here the most suitable example is given of kosikaarkeet which means silk-worm. This worm with its saliva prepares its own cover. The saliva turns into thread and covers its body with a bondage. Thus silk-worm prepares its own bondage itself. Similarly the sinner binds himself with his own Karmas.

संसार-सागर THE MUNDANE OCEAN

७७. एवं णरग-तिरिय-णर-अमर-गमण-पेरंतचक्कवालं जम्म-जरा-मरण-करण-गंभीरदुक्खपक्खुभिय-पउरसलिलं संजोगवियोगवीची-चिंतापसंग-पसरिय-वह-बंध-महल्ल-विपुलकल्लोलं कलुण-विलविय-लोभ-कलकलिंत-बोलबहुलं अवमाणणफेणं तिव्वखिंसणपुलंपुलप्पभूय-रोग-वेयण-पराभव विणिवायफरुस-धरिसण-समावडिय-कठिणकम्मपत्थर-तरंग-रंगंत-णिच्च-मच्चु-भयतोयपट्टं।

कसायपायालसंकुलं भव-सयसहस्सजलसंचयं अणंतं उव्वेयणयं अणोरपारं महब्भयं भयंकरं पइभयं अपरिमियमहिच्छ-कलुस-मइ-वाउवेगउद्धम्ममाणं आसापिवासपायाल-काम-रइ-रागदोस-बंधण-बहुविहसंकप्प-विउलदगरयरयंधकारं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहमहावत्त–भोगभममाणगुप्पमाणुच्छलंत–बहुगब्भवासपच्चोणियत्तपाणियं पहाविय–वसणसमावण्ण रुण्ण–चंडमारुयसमाहया मणुण्णवीची–वाकुलियभग्गफुट्टंतणिट्ठकल्लोल–संकुलजलं पमायबहुचंडदुट्ठसावयसमाहय–उद्धायमाणगपूरघोरविद्धंसणत्थबहुलं अण्णाणभमंत–मच्छपरिहत्थं अणिहुतिंदिय–महामगरतुरिय–चरिय–खोखुब्भमाण–संतावणिचयचलंत–चवल–चंचल–अत्ताण–असरण–पुव्वकयकम्मसंचयोदिण्ण–वज्जवेइज्जमाण–दुहसय–विवागघुण्णंतजल–समूहं।

इड्ढि–रस–साय–गारवोहार–गहिय–कम्मपडिबद्ध–सत्तकड्ढिज्जमाण–णिरयतलहुत्त–सण्णविसण्णबहुलं अरइ–रइ–भय–विसाय–सोगमिच्छत्तसेलसंकडं अणाइसंताण–कम्मबंधण–किलेसचिक्खिल्लसुदुत्तारं अमर–णर–तिरिय–णिरयगइ–गमण–कुडिलपरियत्त–विपुलवेलं हिंसालिय–अदत्तादाण–मेहुणपरिग्गहारंभकरण–कारावणाणुमोयण–अट्ठविह–अणिट्ठकम्मपिंडिय–गुरुभारक्कंतदुग्गजलोघ–दूरपणोलिज्जमाण–उम्मुग्ग–णिमग्ग–दुल्लभतलं।

सारीरमणोमयाणि दुक्खाणि उप्पियंता सायस्सायपरितावणमयं उब्बुड्डणिब्बुड्डयं करेंता चउरंतमहंत–मणवयग्गं रुद्दं संसारसागरं अट्ठियं अणालंबण–मपइट्ठाण–मप्पमेयं चुलसीइ–जोणि–सयसहस्सगुविलं अणालोकमंधयारं अणंतकालं णिच्चं उत्तत्थसुण्णभयसण्णसंपउत्ता वसंति, उव्विग्गवासवसहिं।

जहिं आउयं णिबंधंति पावकम्मकारी, बंधव–जण–सयण–मित्तपरिवज्जिया अणिट्ठा भवंति अणाइज्जदुव्विणीया कुठाणा–सण–कुसेज्ज–कुभोयणा असुइणो कुसंघयण–कुप्पमाण–कुसंठिया, कुरूवा बहु–कोह–माण–माया–लोहा बहुमोहा धम्मसण्ण–सम्मत्त–परिब्भट्ठा दारिद्दोवद्दवाभिभूया णिच्चं परकम्मकारिणो जीवणत्थरहिया किविणा परपिंडतक्कगा दुक्खलद्धाहारा अरस–विरस–तुच्छ–कय–कुच्छिपूरा परस्स पेच्छंता रिद्धि–सक्कार–भोयणविसेस–समुदयविहिं णिंदंता अप्पगं कयंतं च परिवयंता इह य पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं विमणसो सोएण डज्झमाणा परिभूया होंति, सत्तपरिवज्जिया य छोभा सिप्पकला–समय–सत्थ–परिवज्जिया जहाजायपसुभूया अवियत्ता णिच्च–णीय–कम्मोवजीविणो लोय–कुच्छणिज्जा मोघमणोरहा णिरासबहुला।

७७. (बन्धनों से जकड़ा वह जीव अनन्त काल तक संसार–सागर में ही परिभ्रमण करता रहता है। संसार–सागर का स्वरूप कैसा है, यह एक रूपक द्वारा समझाया गया है।)

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में गमनागमन करना संसार–सागर की बाह्य परिधि (घेरा) है। जन्म, जरा और मरण के कारण होने वाला गम्भीर दुःख ही संसार–सागर का अत्यन्त प्रचुर क्षुब्ध जल है। इसमें संयोग और वियोगरूपी लहरें उठती रहती हैं। निरन्तर बनी रही चिन्ता ही उसका प्रसार–विस्तार है। परस्पर वध और बन्धन ही उसमें लम्बी–लम्बी, ऊँची एवं विस्तीर्ण तरंगें हैं। उसमें करुण विलाप तथा लोभ की कलकलाहट की ध्वनि की प्रचुरता है। घोर गर्जना है। उसमें अवमानना या तिरस्काररूपी फेन (झाग) उठती रहती है। तीव्र–निन्दा, पुनः–पुनः उत्पन्न होने वाले रोग, वेदना, तिरस्कार, पराभव, अधःपतन, कठोर झिड़कियाँ और डाँट–फटकार जिनके कारण प्राप्त होती हैं, ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठोर ज्ञानावरणीय आदि कर्मों रूपी पाषाणों से उठी हुई तरंगों के समान चंचल है। सदैव बना रहने वाला मृत्यु का भय उस संसार-समुद्र के जल का तल है।

वह संसार-सागर कषायरूपी पाताल-कलशों से व्याप्त है। लाखों भवों की परम्परा उसकी विशाल जलराशि है। वह अनन्त है-उसका कहीं ओर-छोर दृष्टिगोचर नहीं होता। वह उद्वेग उत्पन्न करने वाला है। कहीं उसका तट-किनारा नहीं है। दुस्तर होने के कारण महान् भय रूप है। भय उत्पन्न करने वाला है। उसमें प्रत्येक प्राणी को एक-दूसरे के कारण प्रति भय बना रहता है। जिनकी कहीं कोई सीमा-अन्त नहीं, ऐसी विपुल कामनाओं और कलुषित बुद्धिरूपी पवन आँधी के प्रचण्ड वेग के कारण उत्पन्न तथा **आशा**-(अप्राप्त पदार्थ को प्राप्त करने की अभिलाषा) और **पिपासा**-(प्राप्त भोगोपभोगों को भोगने की लोलुपता) रूप पाताल, समुद्र तल से उठते हुए काम-रति शब्दादि विषयों सम्बन्धी अनुराग और द्वेष के बन्धन के कारण उत्पन्न विविध प्रकार के संकल्परूपी जल-कणों की प्रचुरता से वह अन्धकारमय हो रहा है।

इस संसार-सागर में प्राणी मोहरूपी भँवरों (आवर्त्तों) में गोलाकार चक्कर लगाते हुए व्याकुल होकर उछल रहे हैं तथा बहुत-से बीच के भाग में फैलने के कारण ऊपर उछलकर नीचे गिर रहे हैं। इस संसार-सागर में इधर-उधर दौड़ते हुए अनेक प्रकार के व्यसनों से ग्रस्त लोगों का प्रचण्ड वायु के थपेड़ों से टकराता हुआ तथा दुःखदायी लहरों से विक्षुब्ध एवं तरंगों से फूटता हुआ तथा बड़ी-बड़ी अस्थिर कल्लोलों से व्याप्त रुदन रूप जल बह रहा है।

वह प्रमादरूपी अत्यन्त रौद्र एवं दुष्ट हिंसक जन्तुओं द्वारा सताये गये एवं इधर-उधर घूमते हुए प्राणियों के समूह का विध्वंश करने वाले घोर अनर्थों से भरा है। उसमें अज्ञानरूपी बड़े-बड़े भयानक मच्छ घूमते रहते हैं। अनुपशान्त इन्द्रियों वाले जीवरूपी महामगरों की नयी-नयी उत्पन्न होने वाली उथल-पुथल मचाती चेष्टाओं से वह अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा है। उसमें वाहवाही की तरह नाना प्रकार के सन्ताप विद्यमान हैं, ऐसे प्राणियों के द्वारा पूर्व संचित एवं पापकर्मों के उदय से प्राप्त होने वाला तथा भोगा जाने वाला फलरूपी घूमता हुआ-चक्कर खाता हुआ जल-समूह है जो बिजली के समान अत्यन्त चंचल रहता है। दुःखी होते हुए प्राणियों को जैसे समुद्र में कोई त्राण-शरण नहीं होता, इसी प्रकार संसार में अपने पापकर्मों का फल भोगने से कोई बचाने वाला नहीं है।

संसार-सागर में ऋद्धिगौरव, रसगौरव और सातागौरवरूपी अपहार-हिंसक जलचर जन्तु द्वारा पकड़े हुए एवं कर्मबन्धनों से बँधे हुए प्राणी जब नरकरूप पाताल-तल के सम्मुख पहुँचते हैं तो अत्यन्त खेद और विषादयुक्त हो जाते हैं, ऐसे विषम व खिन्न जीवों से यह भरा है। वह अरति, रति, भय, दीनता, शोक तथा मिथ्यात्वरूपी पर्वतों से विषम बना हुआ है। अनादि सन्तान-परम्परा वाले कर्मबन्धन एवं राग-द्वेष आदि क्लेशरूप कीचड़ से भरा होने के कारण इसे पार करना अत्यन्त कठिन है। जैसे समुद्र में ज्वार आते हैं, उसी प्रकार संसार-समुद्र में देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति और नरकगति में गमनागमन रूप टेढ़े-मेढ़े परिवर्तनों से युक्त विस्तीर्ण वेला-ज्वार-आते रहते हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूप आरम्भ के करने, कराने और अनुमोदने से संचित ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के गुरुतर भार से दबे हुए तथा व्यसन रूपी जलप्रवाह द्वारा दूर फैंके गये प्राणियों के लिए इस संसार-सागर को तैर पाना अत्यन्त कठिन है।

इस संसार-सागर में डूबे प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःखों का अनुभव करते रहते हैं। संसार सम्बन्धी सुख-दुःख से उत्पन्न होने वाले परिताप के कारण वे कभी ऊपर उठकर तैरने की और कभी डूबने की चेष्टाएँ करते रहते हैं। यह संसार-सागर चार दिशा रूप चार गतियों के कारण अत्यन्त विशाल है। यह अन्तहीन और विस्तृत है। संयम में अस्थिर अर्थात् असंयमी जीवों के लिए यहाँ कोई आलम्बन नहीं है, सुरक्षा के लिए कोई साधन नहीं है। यह छद्मस्थ जीवों के ज्ञान का विषय नहीं है, या इसकी कहीं अन्तिम सीमा नहीं है। यह चौरासी लाख जीवयोनियों से व्याप्त-भरपूर है। यहाँ अज्ञानानन्धकार छाया रहता है और यह अनन्तकाल तक स्थायी है। यह संसार-सागर उद्वेग-प्राप्त-दुःखी प्राणियों का निवास-स्थान है।

इस संसार-सागर में रहने वाले पापकर्मकारी प्राणी जहाँ-जिस ग्राम, कुल आदि की आयु बाँधते हैं, वहीं पर वे बन्धु-बान्धवों, स्वजनों और मित्रजनों से रहित होते हैं, अर्थात् उनका कोई सहायक, आत्मीय या प्रेमी नहीं होता। वे सभी को अप्रिय लगते हैं। उनके वचनों को कोई मानता नहीं और वे स्वयं दुर्विनीत-उद्दण्ड स्वभाव के होते हैं। उन्हें रहने को खराब स्थान, बैठने को खराब आसन, सोने को खराब शय्या और खाने को खराब भोजन मिलता है। वे अशुचि-अपवित्र या गन्दे तथा आचरण से अपवित्र रहते हैं अथवा अश्रुति-शास्त्रज्ञान से विहीन होते हैं। उनका संहनन (हाड़ों की बनावट) विकृत होता है, उनके शरीर का कोई ढाँचा सामान्य से अधिक छोटा अथवा बड़ा होता है। उनके शरीर की आकृति बेडौल होती है। वे दीखने में बदसूरत होते हैं। उनमें क्रोध, मान, माया और लोभ तीव्र होता है-तीव्रकषायी होते हैं और मोह-आसक्ति की तीव्रता होती है। उनमें धर्मसंज्ञा-धार्मिक संस्कार नहीं होते। वे सम्यग्दर्शन से रहित होते हैं। उन्हें दरिद्रता का कष्ट सदा सताता रहता है। वे सदा दूसरों के अधीन रहकर, नौकर-चाकर रहकर जिन्दगी बिताते हैं।

कृपण-रंक-दीन-दरिद्र रहते हैं। दूसरों के द्वारा दिये जाने वाले आहार की ताक में रहते हैं। वे सरलता से अपना पेट भी नहीं भर पाते। किसी प्रकार रूखे-सूखे, नीरस एवं निस्सार भोजन से पेट भरते हैं। दूसरों का वैभव, सत्कार-सम्मान, भोजन, वस्त्र आदि उत्कर्ष देखकर वे अपनी निन्दा करते हैं-अपने दुर्भाग्य को कोसते रहते हैं। अपनी तकदीर को रोज रोते हैं। इस जन्म में या पूर्वजन्म में किये हुए पापकर्मों को कोसते रहते हैं। उदास मन रहकर शोक की आग में जलते हुए अफसोस कर लज्जित होते हैं। साथ ही वे सत्त्वहीन, साहसहीन, चिड़चिड़े स्वभाव वाले तथा चित्रकला आदि शिल्प के ज्ञान से रहित, भौतिक विद्याओं से शून्य एवं सिद्धान्त-शास्त्र के ज्ञान से रहित होते हैं। वे अज्ञान पशु के समान जड़ बुद्धि वाले, अविश्वसनीय या अप्रतीति उत्पन्न करने वाले होते हैं। सदा नीच कर्म करके अपनी आजीविका चलाते हैं-वे लोकनिंदा के पात्र, असफल मनोरथ वाले, निराशा से ग्रस्त होते हैं।

77. The mundane soul due to its own bondage of Karmas keeps on wandering in the ocean of mundane existence for an infinite period. What is the nature of the worldly ocean. It has been explained with an analogy.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

To move in hell, animal state, human state and celestial state of existence is the outer circumference of the worldly ocean. The serious trouble at the time of birth, old age and death is the extremely disturbed large quantity of water in that ocean. The attachment and separation are the waves rising in the ocean. The worry lasting uninterruptedly is the large expansion of the ocean. Mutual hurt, killing and bondage are the long, high and vast currents. There is the noise of pathetic bemoaning and the disturbance due to greed. There is dreadful roaring sound. The foam of contempt and disrespect rises in it. It contains knowledge-obscuring karma and other karmas in the form of stones and the waves rising from them are unstable. They cause deep hatred, diseases that appear again and again, pain, harsh rebukes and downfall. The bottom of the ocean is the ever-lasting fear of death.

This worldly ocean is full of Pataal Kalash (huge pots) of passions (Kashaya). The tradition of millions of rebirths is its gigantic water-body. It is infinite and its end is not visible. It creates bewilderment. The end of its bank is nowhere. It is highly dreadful as it is difficult to cross. It is limitless. It is full of a large number of sensual desires and the storm in the form of perverse intellect. The hope (the desire to get what one has not got so far) and thirst (for sensual pleasures) are the currents rising from the bottom due to high speed of the storm. Due to the bondage of attachment and hatred in respect of sensory objects, such as words and the like, water drops in the from of various types of thought activity rise in it. So this ocean has become extremely dark.

In this worldly ocean, the living beings deeply under the influence of attachment are feeling depressed moving about in the whirlpools. Some are jumping upwards and some are falling down as the central part widens. The water in the ocean is representing the distress of the people running hither and thither overwhelmed by many bad habits. They are experiencing striking of stormy winds. It is full of unstable currents in the form of bemoaning of the people that its water is indicating.

This ocean is full of large number of living beings moving about in a troubled condition as they are troubled by extremely angry and violent beings, in the form of stupor, that are out to destroy them. Thus it is full of dreadful misfortunes. Large ferocious sea lions are moving about in the ocean and they represent ignorance. The restless activities of the gigantic crocodiles represent the unsubdued or uncontrolled senses. The

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ocean is getting disturbed due to their various types of churning movements. Many types of dejection is in the ocean. The large quantity of water in the ocean indicates the fruits of bad Karmas collected by the living beings earlier and which is now being experienced in the form of rolling about in whirlpool (of birth and death). It is extremely unstable like lightening. Just as there is no one in the ocean to provide protection to the aquatic animals in trouble, similarly in this world, there is none to provide relief to the people from experiencing fruits of their past bad Karmas.

Ego of prosperity, taste and comfort in the world is represented in the ocean by aquatic creatures of violent nature. They catch the living beings bound by their past Karmas and carry them away to hell just as the violent-natured acquatic animals carry away the other creatures to the bottom of the ocean. Those living being then feel extreme pain and dejection in the hell as the caught acquatic animals feel at the bottom of the ocean. This ocean is full of such troubled and dejected living beings. There are protruding rocks in the sea, which represent dislike for ascetic restraint, liking for non-restraint, fear, seeking of mercy, sorrow and wrong perception in the worldly beings. The prevalent mud in the sea represents bondage of Karma since the beginningless period and the disturbance caused by attachment and hatred. So it is very difficult to cross this ocean. The rising storms in the ocean represent the movement of the mundane soul in four states of existence namely the celestial state, human state, animal state and hellish state of existence. The zig-zag changes represent this movement. This is its vast expansion. It is difficult to find the bottom of the ocean of existence, which is full of violence, falsehood, stealing, co-habitation and attachment and in doing, getting done and appreciating such activities leading to the collection of eight types of Karmas that make the mundane soul heavy with its load of Karmas. Same is the case with ocean where it is difficult for aquatic beings to find the bottom as they are thrown away by the vast flow of water.

The person deeply engrossed in this ocean of mundane existence experiences physical and mental troubles. As a result of the influence of pleasure and pain concerning this worldly life, they sometimes try to come up and swim at the surface of this ocean and sometimes try to drown. This worldly ocean is extremely large in the four directions due to

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

its flow in four states of existence. It is without an end and very expansive. It is unstable in the field of self-restraint. There is no support in it for the living beings. There are no means of protection. It is not the subject of knowledge of the mundane souls. It has no limit. It is full of 8.4 million species. The darkness of ignorance is spread over it. It is going to remain for infinite period as the residence of living beings troubled by its influence.

The people living in this world who commit sins, they collect bondage of karmas leading them to stay for their life-period in a particular village, family and the like. There they do not have any friends, relatives or the members of the family. In other words there is nobody to help them or to have affection for them. Everyone dislikes them. Nobody pays any attention to their words. They themselves are very wild and of bad temperament. They get bad place to live, ugly cloth to sit, hopeless bed to sleep and polluted food to eat. They remain impure due to their ill temperament and bad behaviour. They lack scriptural knowledge. Their physical structure (bondage of bones) is deformed. Some part of their body is smaller than that of the common man and some is longer. Their shape is so strange that they look ugly. They have anger, greed, ego and deceit in large proportion. They have extreme attachment. They do not have religious temperament. They always remain troubled by their wretched condition. They always remain in the service of others like a servant and thus they pass their entire life-span.

They,remain poor and miser. They always wait for the foodstuff to be offered to them by others. They cannot easily satisfy their hunger. They somehow, satisfy their hunger with dry, tasteless food that is not energetic. They curse themselves when they see the wealth, honour, clothes and good food of others. They curse their ill luck. They daily weep at their misfortune. They curse their bad Karmas of this life and of earlier life. They feel ashamed and sad in the painful agony of repentance. Simultaneously they lack potency, courage and the knowledge of any art or painting. They are peevish. They do not have knowledge of physical science. They do not have knowledge of scriptures. They are dull like an animal. They are not the subject of trust and love. They earn their livelihood always by low-class activities. They are unsuccessful in fulfilling their destinies. They always remain in a state of dejection.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : संसार का अर्थ है-संसरण-गमनागमन करना। देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरकगति में जन्म-मरण करना ही संसार कहलाता है। इन चार गतियों में परिभ्रमण करने के कारण इसे चातुर्गतिक भी कहते हैं।

प्रस्तुत पाठ में संसार को सागर की उपमा देकर सागर के साथ इसकी विस्तृत तुलना की गई है, जैसे चार गतियाँ इसकी चारों ओर की बाह्य परिधि-घेरा हैं। समुद्र में विशाल जलराशि होती है तो इसमें जन्म-जरा-मरण एवं भयंकर दुःखरूपी अथाह जल है। सागर का जल जैसे चंचल तरंगायमान रहता है, उसी प्रकार संसार में यह जल भी सदा तरंगित रहता है। जैसे सागर में आकाश को स्पर्श करती लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार संसार में इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग से उत्पन्न होने वाली बड़ी-बड़ी चिन्ताएँ एवं वध-बंधादि यातनाओं की लहरें उठती रहती हैं। जैसे समुद्र में जगह-जगह पहाड़-चट्टानें होती हैं, उसी प्रकार यहाँ ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि आठ कर्मरूपी विकट पर्वत हैं। इनके टकराने से भीषण लहरें उत्पन्न होती हैं। मृत्यु का भय इस समुद्र की सतह है। क्रोधादि चार कषाय ही संसार-सागर के पाताल-कलश हैं। निरन्तर चालू रहने वाले भव-भवान्तर ही इस समुद्र का निरन्तर आता-जाता असीम जल है। अनन्त-असीम तृष्णा, विविध प्रकार के मंसूबे, कामनाएँ, आशाएँ तथा मलिन मनोभावनाएँ ही यहाँ प्रचण्ड वायु-वेग हैं, जिसके कारण संसार सदा क्षोभमय बना रहता है। काम-राग, लालसा, राग, द्वेष एवं अनेकविध संकल्परूपी सलिल की प्रचुरता के कारण यहाँ अन्धकार छाया रहता है। जैसे समुद्र में भयानक आवर्त्त भँवर उठते हैं तो यहाँ तीव्र मोह के आवर्त्त उठते हैं। समुद्र में भयावह जन्तु निवास करते हैं तो यहाँ संसार में प्रमादरूपी भयानक जन्तु विद्यमान हैं। अज्ञान एवं असंयत इन्द्रियाँ यहाँ विशाल मगर-मच्छ हैं, समुद्र में वडवानल होता है तो इस संसार में शोक-सन्ताप का वडवानल है। समुद्र में पड़ा हुआ जीव शरणहीन, अनाथ, निराधार एवं त्राणहीन बन जाता है, इसी प्रकार संसार में जब जीव अपने किये हुए कर्मों के फल भोगता है तो वह दुःखी होता है तो कोई भी उसकी रक्षा करने वाला नहीं होता, कोई उसके लिए आधारभूत नहीं बन सकता।

ऋद्धिगौरव-ऋद्धि का अभिमान, **रसगौरव**-सरस भोजनादि के लाभ का अभिमान, **सातागौरव**-प्राप्त सुख-सुविधा का अहंकार रूप अपहार नामक समुद्री विशालकाय जन्तु इस संसार-सागर में रहते हैं जो जीवों को खींच-खींचकर पाताल-तल की ओर घसीटकर ले जाते हैं।

इस संसार को अनादि और अनन्त कहा गया है। यह एक जीव की अपेक्षा से नहीं अपितु समग्र जीवों की अपेक्षा से समझना चाहिए। कोई-कोई जीव अपने कर्मों का अन्त करके संसार-सागर से पार उतर जाते हैं। तथापि अनन्तानन्त जीवों ने भूतकाल में संसार में परिभ्रमण किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्यकाल में सदा करते ही रहेंगे। अतएव यह अनादि और अनन्त कहा जाता है।

कर्मबन्ध को अनादि कहने का आशय भी कर्म-सन्तति की अपेक्षा से ही है। कोई भी एक कर्म ऐसा नहीं है जो जीव के साथ अनादिकाल से बँधा रहता है। प्रत्येक कर्म की स्थिति मर्यादित है और अपनी स्थिति पूर्ण होने पर वह जीव से पृथक् हो ही जाता है। किन्तु संसारी जीव प्रतिसमय नवीन-नवीन कर्मों का बन्ध करता रहता है, इस प्रकार कर्मों का प्रवाह अनादिकालिक कहा गया है।

मूल पाठ में चौरासी लाख जीवयोनियों का उल्लेख किया गया है। जीवों की उत्पत्ति का स्थान योनि कहलाता है। ये चौरासी लाख जीवयोनियाँ इस प्रकार हैं-

पृथ्वीकाय की ७ लाख, अप्काय की ७ लाख, तैजस्काय की ७ लाख, वायुकाय की ७ लाख, प्रत्येक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पतिकाय की १० लाख, साधारण-वनस्पतिकाय की १४ लाख, २ लाख द्वीन्द्रिय की, २ लाख त्रीन्द्रिय की, २ लाख चतुरिन्द्रिय की, ४ लाख नारकों की, ४ लाख देवों की, ४ लाख पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की, १४ लाख मनुष्यों की। इनमें कुछ योनियाँ शुभ और कुछ अशुभ हैं।[1]

Elaboration—The word 'Sansar' means to come and go. To take birth as celestial being, human being, animal state or hell is Sansar (the world). Since it is movement in four states of existence, it is also called 'Chaturgatik' (relating to four states of existence).

In the present aphorism, the world is compared with a sea in a detailed manner. The four states of existence is its outer circumference. The gigantic expanse of water in the sea represents dreadful troubles of birth, old age and death in the world. The troubles in the world keep it always unstable as water due to currents. In the world many worries and tortures in the shape of hurt and bondage arise due to departure of loved ones and contact with the despised ones. They are like rising waves in the sea. Just as there are rocks and hills in the sea hither and thither, similarly there are mountains of eight types of Karmas such as knowledge-obscuring Karmas, perception obscuring Karmas and others. When they strike each other ferocious waves arise. Fear of death is the surface of this sea. Four passions namely anger and others are the gigantic pots (patal kalash). The continues birth and death in vicious circle is the continuously flowing limitless water. Limitless desires, various types of plans, hopes and dirty thought-activity is the dreadful fast flowing wind. Due to it the world always remains disturbed. Due to lust, curiosity, attachment, hatred and many types of thought, which are in this ocean in the form for water in abundance, there is always darkness here. In the sea dreadful bewildering whirlpools arise similarly in the world circles of intense fondness arise. In the sea, ferocious acquatic animals reside. In the world dreadful animals in the form of stupor are present. Ignorance and uncontrolled senses are the huge crocodiles in the sea. The fire of dejection and sadness is the fire in the

---

1. शुभ योनियाँ इस प्रकार हैं-असंख्य वर्ष की आयु वाले मनुष्य (युगलिया), संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में राजा-ईश्वर आदि, तीर्थंकरनामकर्म के उपार्जक सर्वोत्तम शुभ योनि वाले हैं। संख्यात वर्ष की आयु वालों में भी उच्चकुलसम्पन्न शुभ योनि वाले हैं, अन्य सब अशुभ योनि वाले हैं।

देवों में किल्विष जाति वालों की अशुभ और शेष शुभ हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में हस्तिरत्न और अश्वरत्न शुभ हैं, शेष अशुभ हैं। एकेन्द्रियादि में शुभ वर्णादि वाले शुभयोनिक और शेष अशुभयोनिक हैं। देवेन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर और भावितात्मा अनगारों को छोड़ कर शेष जीवों ने अनन्त-अनन्त बार योनियाँ प्राप्त की हैं।

– प्रश्नव्या. सैलाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

sea. In the sea, one appears to be without support, orphan and without any protection. Similarly in this world, due to the Karmas he has collected, a being feels pain when he experience the fruit of his Karmas. At that there is none capable of lending him support or protection.

The gigantic aquatic animals reside in this sea in the form of Ridhi-Gaurav (ego of wealth), Ras-Gaurav (ego of taste) and Sata-Gaurav (ego of pleasant life). They drag the living beings to the bottom of patal-kalash.

This world is stated to be without a beginning and without an end. It is not to be understood in respect of one living being, but in respect of all the living beings. Some living beings after destroying all the Karmas earlier collected by them cross the worldly ocean. Still there are infinite living beings who in the past had wandered in the mundane world, are wandering at present and shall be wandering here always in future. So this world is without any beginning or end.

The purpose of saying bondage of karma as one without a beginning is that in respect of collection of Karmas one after the other, it is without beginning. There is no karma which remains bound with a living being since a period without beginning. Every karma has a limited duration and after completing its duration, it separates from the living being concerned. But ordinarily the living being collects new Karmas every moment. So the flow of Karmas is without a beginning and without an end.

In the aphorism, it has been mentioned that there are 84 million Jiva Yonis. Jiva Yoni means the genus or opecies where a soul takes birth. The 84 million Jiva Yonis are as follows—

Earth bodied living beings have 0.7 million Jiva Yonis. Water bodied living beings have 0.7 million Jiva Yonis. Air bodied living beings have 0.7 million Jiva Yonis. Fire bodied living beings have 0.7 million Jiva Yonis. One bodied plant bodied living beings have 1.0 million Jiva Yonis. Common seeded plant bodied living beings have 1.4 million Jiva Yonis. Two-sensed living beings have 0.2 million Jiva Yonis. Three-sensed living beings have 0.2 million Jiva Yonis. Four-sensed living beings have 0.2 million Jiva yonis. Five-sensed animal clan living beings have 0.4 million Jiva yonis. Hellish beings have 0.4 million Jiva yonis. Celestial beings have 0.4 million Jiva yonis. Human beings have 1.4 million Jiva yonis. Some of them are good and some are bad.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७८. आसापास–पडिबद्धपाणा अत्थोपायाण–काम–सोक्खे य लोयसारे होंति अपच्चंतगा य सुट्ठु वि य उज्जमंता तद्दिवसुज्जुत्त–कम्मकय–दुक्खसंठवियसित्थपिंडसंचयपरा पक्खीणदव्वसारा णिच्चं अधुव–धण–धण्णकोस–परिभोगविवज्जिया रहिय–कामभोग–परिभोग–सव्वसोक्खा परसिरिभोगोवभोग–णिस्साणमग्गणपरायणा वरागा अकामियाए विणेंति दुक्खं। णेव सुहं णेव णिव्वुइं उवलभंति अच्चंतविउल–दुक्खसय–संपलित्ता परस्स दव्वेहिं जे अविरया।

एसो सो अदिण्णादाणस्स फलविवागो, इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ, ण य अवेयइत्ता अत्थि उ मोक्खोति।

७८. अदत्तादान का पाप करने वालों के प्राण भवान्तर में भी अनेक प्रकार की आशाओं–कामनाओं के पाश में बँधे रहते हैं। जगत् में सारभूत माने जाने वाले अर्थोपार्जन एवं कामभोगों के सुख के लिए अच्छी तरह प्रबल प्रयत्न करने पर भी उन्हें उचित सफलता प्राप्त नहीं होती। उन्हें प्रतिदिन कड़ा परिश्रम करने पर भी बड़ी कठिनाई से इधर–उधर बिखरा या फेंका भोजन का अंश ही नसीब होता है, थोड़े–से दाने ही मिलते हैं। कदाचित् कोई उत्तम द्रव्य मिल जाये तो वह भी हाथ से निकल जाता है, अर्थात् प्राप्त धन भी क्षीण हो जाता है। इस अस्थिर धन, धान्य और कोश के भोग से वे सदा ही वंचित रहते हैं। काम–(शब्द और रूप के विषय) तथा भोग–(गन्ध, स्पर्श और रस के विषय) के भोगोपभोग के सेवन से प्राप्त होने वाले समस्त सुख से भी वे वंचित रहते हैं। वे संस्कारवश दूसरों की लक्ष्मी के भोग और उपभोग को अपने अधीन बनाने के प्रयास में तत्पर रहते हुए भी वे बेचारे केवल दुःख के ही भागी होते हैं। उन्हें न तो सुख नसीब होता है, न शान्ति।

सारांश यह है कि जो दूसरों के द्रव्य को हरण करने की इच्छा से निवृत्त नहीं होते, अदत्तादान का परित्याग नहीं करते, वे अत्यन्त एवं प्रचुर सैकड़ों दुःखों की आग में जलते रहते हैं।

अदत्तादान पाप का यह फलविपाक है, बँधे कर्मों का कटु परिणाम है। जो इस लोक में और परलोक–आगामी भवों में भी भोगना होता है। यह सुख से रहित है और बहुत दुःख देने वाला है। अत्यन्त भयानक है। अतीव प्रगाढ़ कर्मरूपी रज वाला है। बड़ा ही दारुण है, कर्कश–कठोर है, असातामय है और हजारों वर्षों में इससे पिण्ड छूटता है, किन्तु इसे भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

78. Those who commit the sin of Adattadan, they remain in the bondage of hopes and desires of many types even after the present life-span. They do not achieve any success even after serious efforts to collect money for enjoying sensual pleasures, which they consider as essence of life. Everyday only after serious efforts with great difficulty they get a bit of food stuff scattered hither and thither or that which has been thrown away. They get only a little amount of food grains. If sometimes they get some good food that also gets lost. They always remain deprived of this unstable money, cereals and treasure for personal enjoyment. They remain deprived of all the worldly enjoyments through kaam

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(sense of sight and sense of hearing) and bhog (sense of smell, sense of taste and sense of touch). They remain busy in efforts to usurp the means of enjoyment of others due to the inherited bent of mind but they get only troubles in the end. They have neither peace nor pleasure.

In brief those persons remain suffering in the fire of extreme troubles in large number, who do not discard the desire to role the property of others and adattadan.

This is the result of the sin of stealing. It is the bitter result of Karmas collected by them. It has to be borne in the present life and also in succeeding life or lives. It is without any happiness. It is going to provide great trouble. It is extremely frightening. It contains extremely thick Karmic dust as bondage. It is very troublesome and hard. It provides pain. It takes thousands of years to discard it. It can not be discarded without experiencing its fruits.

उपसंहार CONCLUSION

७९. एवमाहंसु णायकुल–णंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर–णामधेज्जो कहेसी य अदिण्णादाणस्स फलविवागं। एयं तं तइयं पि अदिण्णादाणं हर–दह–मरण–भय–कलुस–तासण–परसंतिकभेज्जलोहमूलं एवं जाव चिरपरिगय–मणुगयं दुरंतं।

॥ तइयं अहम्मदारं समत्तं ॥ त्ति बेमि ॥

७९. इस प्रकार ज्ञातकुलनन्दन, महान्–आत्मा महावीर नामक जिनेश्वर भगवान ने कहा है। अदत्तादान के इस तीसरे (आस्रव–द्वार के) फलविपाक को भी उन्हीं तीर्थंकर देव ने प्रतिपादित किया है। यह अदत्तादान, परधन–अपहरण, दहन, मृत्यु, भय, मलिनता, त्रास, रौद्रध्यान एवं लोभ का मूल है। अधिक क्या यह चिरकाल से, अनादिकाल से (प्राणियों के साथ) लगा हुआ है। इसका अन्त कठिनाई से होता है।

॥ तृतीय अधर्मद्वार समाप्त ॥

This is what Omniscient Bhagavan Mahavir has said. This third gateway of Asrava (inflow of Karma) it has also been propounded by Bhagavan Mahavir. It is the very basis of usurping or burning the property of others. It is the basis of death, fear, dejection, angry attitude and greed. What else can be said, it is stuck to the living beings since a period without a beginning. It ends only with great difficulty.

● END OF THE THIRD CHAPTER ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ अध्ययन : अब्रह्म
FOURTH CHAPTER : NON-CELIBACY (ABRAHM)

गणधर श्री सुधर्मा स्वामी अपने अन्तेवासी जम्बू स्वामी के समक्ष चौथे आस्रव द्वार अब्रह्मचर्य की प्ररूपणा करते हुए सर्वप्रथम उसका स्वरूप, तदनन्तर उसके नाम, सेवन करने वाले तथा उसके कटु फलों का यथाक्रम फरमाने लगे।

While describing non-celibacy, the fourth gateway of inflow of Karmas (Asrav dvaar) Ganadhar Sudharma Swami first of all told his disciple Jambu Swami about its nature and thereafter systematically mentioned its synonyms, the persons engaged in such thoughts and the bitter consequences thereof.

अब्रह्मचर्य का स्वरूप NATURE OF NON-CELEBACY (ABRAHM)

८०. जंबू ! अबंभं च चउत्थं सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं पंकपणयपासजालभूयं थी-पुरिस-णपुंसग-वेयचिंधं तव-संजम-बंभचेरविग्घं भेयाययण-वहुपमायमूलं कायर-कापुरिससेवियं सुयणजणवज्जणिज्जं उड्ढ-णरय-तिरिय-तिल्लोकपइट्ठाणं जरा-मरण-रोग-सोगबहुलं वध-बंधविघाय-दुव्विघायं दंसणचरित्तमोहस्स हेउभूयं चिरपरिगय-मणुगयरं दुरंतं चउत्थं अहम्मदारं ॥१॥

८०. हे जम्बू ! चौथा अब्रह्मचर्य नामक यह आस्रवद्वार है। देव, मनुष्य और असुर सहित समूचा लोक इसकी अभिलाषा (इच्छा) रखता है। प्राणियों को फँसाने वाले दलदल के समान है। इसके सम्पर्क से जीव उसी प्रकार फिसल जाते हैं जैसे पनक या काई के संसर्ग से। संसारी प्राणियों को बाँधने के लिए यह पाश के समान है और फँसाने के लिए जाल के सदृश है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इसको पहचानने के चिह्न हैं। यह अब्रह्मचर्य तपश्चर्या, संयम और ब्रह्मचर्य के लिए विघ्नस्वरूप है। सदाचार-सम्यक्चारित्र का विनाशक 'प्रमाद' का मूल है। कायर-सत्त्वहीन, दुर्बल प्राणी और कापुरुष- निम्न वर्ग के पुरुष (जीव) इसका सेवन करते हैं। यह सुजनों-सदाचारी साधक पुरुषों द्वारा त्याज्य है। ऊर्ध्वलोक-(देवलोक), नरकलोक-(अधोलोक) एवं तिर्यक्लोक-(मध्यलोक) में, इस प्रकार तीनों लोकों में इसकी जड़ें फैली हुई हैं। जरा-(बुढ़ापा), मरण-(मृत्यु), रोग और शोक चिन्ता का कारण हैं, वध-मारने-पीटने, बन्ध-बन्धन में डालने और विघात-प्राणहीन कर देने पर भी इसका विघात-अन्त नहीं होता। दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मबन्ध का मूल कारण यही है। जीव का अनादिकाल से परिचित है और सदा से-प्राणियों के पीछे लगा हुआ है। इसका अन्त बड़ी कठिनाई से होता है अर्थात् तीव्र मनोबल, दृढ़ संकल्प, उग्र तपस्या आदि साधना से ही इसका अन्त आता है अथवा इसका अन्त परिणाम अत्यन्त दुःखप्रद होता है। ऐसा यह चौथा अधर्मद्वार है।

80. O Jambu ! Non-celebacy is the fourth gateway of inflow of Karma. The entire world including celestial beings, human beings and demon

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

gods have a desire for it. It is the slippery ground to involve the living beings. With its contact the living beings go astray just as the touch of moss makes one slip. It is like a snare to trap the worldly beings and a net to catch them. The feeling of lust in women for man (stri ved), lust in man for woman (purush ved) and lust for both (napunsak ved) are the expressions distinguishing it. It is an obstacle in ascetic discipline, austerities and celibacy. It is the very foundation of slackness that destroys right conduct or good behaviour. Cowards, weak and persons belonging to depressed classes follow it. People practicing good conduct discard it. It has its roots in all the three worlds—the heaven, the hell and the central world (inhabited by animals and human beings). It is the cause of old age, death, disease, sorrow and worries. It does not come to an end even when one is beaten, maimed or killed. It is the cause of bondage of perception-deluding (darshan mohaniya) karma and conduct deluding Karma. Since beginningless time the living beings are well acquainted with it and it is attached to them. It can be ended only with great difficulty. In other words, in order to discard it, on should have strong determination, high mental attitude, austere life and such like practices. Its end result is extremely troublesome. Such is the nature of the fourth adharm dvaar.

विवेचन : अब्रह्मचर्य इतना व्यापक है कि देवों, दानवों, मनुष्यों एवं तिर्यंचों में इसका एकच्छत्र साम्राज्य है। यहाँ तक कि जीवों में सबसे हीन संज्ञा वाले एकेन्द्रिय जीव भी इसके घेरे से बाहर नहीं हैं। हरि, हर, ब्रह्मा आदि से लेकर कोई भी शूरवीर पुरुष ऐसा नहीं है जो कामवासना-अब्रह्मचर्य के अधीन न हो। यदि किसी पर इसका वश नहीं चल पाता तो वह केवल वीतराग-जिन ही हैं, अर्थात् जिसने राग का समूल उन्मूलन कर दिया है, जो वासना से सर्वथा रहित हो गया है वही पुरुषपुंगव अब्रह्मचर्य के फन्दे से बच सका है।

इसी कारण प्रस्तुत पाठ में उसे 'दुरंतं' कहा है किन्तु 'अनंतं' नहीं कहा, अर्थात् यह नहीं कहा कि उसका अन्त नहीं हो सकता। हाँ, अब्रह्मचर्य पर पूर्ण विजय पाने के लिए तप और संयम में दृढ़ता होनी चाहिए। ध्यान, समाधि और वीतरागता द्वारा काम को जीता जा सकता है।

Elaboration—Non-celibacy (Abrahm) is prevalent to such an extent that its domain extends to celestial beings, demon-gods, human beings and animal kingdom. Even the one-sensed living beings, the development of whose faculties are at a very low ebb, are also not beyond its field. Even the gods such as Vishnu, Shiva and Brahma are a prey to lust (non-celibacy). Only Jinas (the controllers of all senses) are beyond its scope. In other words only that person can save himself from its

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 10

Illustration No. 10

अब्रह्मचर्य का स्वरूप

चित्र में अब्रह्मचर्य के स्वरूप को समझाने के लिये विभिन्न उपमायें दी गई हैं।

(1) इसे प्राणियों को फँसाने वाले दलदल के समान बताया गया है। जिस प्रकार दलदल में फँसकर प्राणी उसके कीचड़ में फिसलकर डूबता ही जाता है, उसी प्रकार अब्रह्मचर्य के दलदल में फँसकर जीवात्मा पाप पङ्क से मलिन हो अधोगति में जाता है।

(2) अब्रह्मचर्य का स्वरूप मछुआरे के फैंके हुये जाल के समान बताया गया है। जिस प्रकार फैंके गये जाल में मछली फँसकर असहाय हो जाती है, उसी प्रकार स्त्री द्वारा काम-भोग निमंत्रण रूपी जाल में फँसकर पुरुष असहाय हो जाता है।

(3) जैसे शिकारी हिरन को रस्सियों से बाँध देता है, उसी प्रकार यह अब्रह्मचर्य सेवन संसारी प्राणियों की आत्मा को मोहपाश या कर्म-जाल में बाँध देता है।

(4) जिस प्रकार मदिरा सेवन के प्रमाद से बेभान व्यक्ति अपना हित-अहित भूलकर पतन के गर्त में गिर जाता है, उसी प्रकार अब्रह्मचर्य सेवन से ब्रह्मचर्य, तप, संयम नष्ट करने वाला प्रमाद उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप सदाचार और सम्यक्चारित्र का विनाश हो जाता है।

स्त्री के मोहपाश में पड़कर व्रतों का प्रत्याख्यान लेता पुरुष रुक जाता है और भोग-विलास में मग्न हो जाता है। इसलिए अब्रह्मचर्य को दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मबंध का मूल कारण कहा गया है।

--सूत्र 80, पृ. 177

DEFINING NON-CELIBACY

In order to explain non-celibacy the illustration provides a few allegories -

(1) It is said to be like a swamp that traps living beings. Like a man caught in a swamp continues to be drawn into it, a soul caught in the swamp of non-celibacy is smeared by the slime of sin and falls to a lower rebirth.

(2) Non-celibacy is said to be like a fishing net thrown by fishermen. A fish caught in the net becomes helpless; in the same way a man caught in the net of carnal invitation by a woman becomes helpless.

(3) Like a hunter ties a deer with ropes, in the same way indulgence in non-celibacy entraps the souls of worldly beings in the knots of fondness and net of karmas.

(4) Intoxicated by drinking wine a man looses all sense of harm and benefit and falls into the void of disgrace. In the same way indulgence in non-celibacy gives rise to the stupor that destroys celibacy, penance and restraint. As a consequence, good behaviour and right conduct are damaged.

A person resolving to take vows is distracted when ensnared by love of a woman and gets involved in carnal pleasures. That is why non-celibacy is said to be the root cause of acquiring the bondage of perception deluding and conduct deluding karmas.

— Sutra-80, page-177

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

influence, who has destroyed the very root of attachment and who is without any feeling of lust for sensual desires.

So in this aphorism, it is called 'durant' and not 'anant'. In other words it is not mentioned that it cannot be ended. In order to completely subdue the feeling of non-celibacy, one should be strong in austerities and self-discipline. Lust can be overpowered through meditation, state of equanimity and practice of complete non-attachment.

अब्रह्म के गुण–निष्पन्न नाम SYNONYMS OF ABRAHM BASED ON ITS QUALITIES

८१. तस्स य णामाणि गोण्णाणि इमाणि होंति तीसं, तं जहा–१. अबंभं, २. मेहुणं, ३. चरंतं, ४. संसग्गि, ५. सेवणाहिगारो, ६. संकप्पो, ७. बाहणा पयाणं, ८. दप्पो, ९. मोहो, १०. मणसंखोभो, ११. अणिग्गहो, १२. वुग्गहो, १३. विघाओ, १४. विभंगो, १५. विब्भमो, १६. अहम्मो, १७. असीलया, १८ गामधम्मतित्ती, १९. रई, २०. रागचिंता, २१. कामभोगमारो, २२. वेरं, २३. रहस्सं, २४. गुज्झं, २५. बहुमाणो, २६. बंभचेरविग्घो, २७. वावत्ती, २८. विराहणा, २९. पसंगो, ३०. कामगुणोत्ति वि य तस्स एयाणि एवमाईणि णामधेज्जाणि होंति तीसं।

८१. पूर्व प्ररूपित अब्रह्मचर्य के सार्थक तीस नाम हैं। वे इस प्रकार हैं–

१. **अबंभं**–आत्म–भाव से रहित अकुशल अनुष्ठान।

२. **मेहुणं**–मैथुन अर्थात् नर–नारी के संयोग से होने वाला कृत्य।

३. **चरंतं**–समूचे संसार में व्याप्त।

४. **संसग्गि**–स्त्री और पुरुष (आदि) के संसर्ग या सम्पर्क से उत्पन्न होने वाला।

५. **सेवणाहिगारो**–असत्य, चोरी आदि अन्यान्य पापकर्मों का प्रेरक।

६. **संकप्पो**–मानसिक संकल्प से उत्पन्न होने वाला।

७. **बाहणा पयाणं**–संयम–स्थानों को बाधित, पीड़ित करने वाला।

८. **दप्पो**–शरीर एवं इन्द्रियों के दर्प–अधिक पुष्ट होने–से उत्पन्न होने वाला।

९. **मोहो**–मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला। हिताहित के विवेक को नष्ट करने वाला।

१०. **मणसंखोभो**–मन में क्षोभ–उद्वेग–विकार उत्पन्न करने वाला या मन को चंचल बना देने वाला।

११. **अणिग्गहो**–विषयों में प्रवृत्त होते हुए मन व इन्द्रियों का निग्रह न करने से उत्पन्न होने वाला।

१२. **वुग्गहो**–लड़ाई–झगड़ा–क्लेश उत्पन्न करने वाला अथवा विपरीत देह के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने वाला।

१३. **विघाओ**–आत्मा के सद्‌गुणों का घात करने वाला।

१४. **विभंगो**–संयम चारित्र आदि सद्‌गुणों को भंग–विध्वंस करने वाला।

१५. **विब्भमो**–भ्रम अर्थात् अहितकारी विषयों में हित की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाला।

१६. **अहम्मो**–अधर्म–पाप का मूल कारण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. असीलया–शील–सदाचार का घातक।

१८. **गामधम्मतित्ती**–इन्द्रियों के शब्दादि विषय की गवेषणा का कारण।

१९. रई–रतिक्रीड़ा–सम्भोग करना।

२०. रागचिंता–नर–नारी के शृंगार, हाव–भाव, विलास आदि के चिन्तन से उत्पन्न होने वाला।

२१. **कामभोगमारो**–कामभोगों में अत्यन्त आसक्ति होने से मृत्यु का कारण।

२१. वेरं–वैर–विरोध का हेतु।

२३. रहस्सं–एकान्त में किया जाने वाला कृत्य।

२४. गुज्झं–लुक–छिपकर किया जाने वाला या छिपाने योग्य कर्म।

२५. **बहुमाणो**–संसारी जीवों द्वारा बहुत मान्य।

२६. **बंभचेरविग्घो**–ब्रह्मचर्यपालन में विघ्नकारी।

२७. **वावत्ती**–आत्मा के स्वाभाविक निज गुणों का विनाशक।

२८. विराहणा–सम्यक्चारित्र की विराधना करने वाला।

२९. **पसंगो**–आसक्ति का कारण।

३०. **कामगुणोत्ति**–कामवासना का कार्य।

इस प्रकार अब्रह्मचर्य के ये तीस तथा इस प्रकार के अन्य नाम भी होते हैं।

81. There are thirty synonyms of abrahm. They are as follows—

1. Abrahm—Improper act devoid of time nature of self.

2. Maithun—Act of co-habiting between two sexes.

3. Charant—Spread all over in the universe.

4. Sansargi—Produced through contact of men and women with each other.

5. Sevana-dhikar—Instigator of sinful activities like falsehood, stealing and the like.

6. Sankalpi—It arises from mental attitude.

7. Badhana Padanaam—It causes disturbance to places where self-restraint is practical.

8. Darp—It arises when the body and sense organs become more energetic.

9. Moh—It is the result of deluding Karma. It destroys sense of discrimination.

10. Manah Sankshobh—It causes instability or pollution in the mind.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. Anigraha—It arises when one is not able to control his mind and senses from involving in their sensual activities.

12. Vigraha—It causes quarrel, disturbance and fight. It attracts one to opposite body formation.

13. Vighaat—It destroys good traits of the soul.

14. Vibhanga—It destroys good qualities like self-restraint and good conduct.

15. Vibhram—Illusions; leads to consider harmful as benign.

16. Adharma—It is the basic cause of sin.

17. Asheelata—It destroys good conduct of restraint.

18. Gramdharma Tapti—It is the cause of search by sense organs of their subjects.

19. Rati—Indulgence in sexy activities, mating.

20. Raag Chinta—It arises when men and women think of their physical beauty, sensual enjoyment and suchlike activities.

21. Kaam bhog maar—Due to extremely deep attachment in sex it becomes the cause of death.

22. Vair—It is the cause of opposition.

23. Rahasyam—It is an act done in privacy.

24. Guhya—It is an act done secretly.

25. Bahumaan—Worldly beings give it great importance.

26. Brahmcharya Vighna—It disturbs life of celibacy.

27. Vyapti—It destroys natural qualities of self.

28. Viradhana—It adversely affects right conduct.

29. Prasang—It is the cause of attachment.

30. Kaamagun—It is the expression of lust.

Non-celibacy has above-said thirty synonymous. There are other synonyms also of such type.

विवेचन : अब्रह्मचर्यसेवन का मूल मन में उत्पन्न होने वाला एक विशेष प्रकार का विकार है। अतः इसे 'मनोज' भी कहते हैं। उत्पन्न होते ही मन को मथ डालता है, इस कारण इसका एक नाम 'मन्मथ' है। मन में उद्‌भूत होने वाला यह विकार शुद्ध आत्मस्वरूप की उपलब्धि में बाधक तो है ही साथ ही उसके लिए की जाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाली साधना-आराधना का भी विघातक है। यह चारित्र को पनपने नहीं देता। संयम में विघ्न उपस्थित करता है। प्रथम तो सम्यक्चारित्र को उत्पन्न ही नहीं होने देता और उत्पन्न हुआ चारित्र भी इसके कारण नष्ट हो जाता है।

इसकी उत्पत्ति के कारणों की समीक्षा करते हुए शास्त्रकार ने बताया है कि इसका जन्म दर्प से होता है। इसका आशय यह है कि जब रसादि के सेवन से इन्द्रियाँ बलवान बन जाती हैं और शरीर पुष्ट होता है तो कामवासना को उत्पन्न होने का अवसर मिलता है। यही कारण है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य की आराधना करने वाले साधक विविध प्रकार की तपश्चर्या करके अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित रखते हैं। इसके लिए जिह्वेन्द्रिय पर संयम रखना और पौष्टिक आहार का वर्जन करना अनिवार्य है।

तीस नामों में एक नाम 'संसर्गी' भी आया है। इससे ध्वनित है कि अब्रह्मचर्य के पाप से बचने के लिए साधक को विरोधी वेद वाले के संसर्ग से दूर रहना चाहिए। नर के साथ नारी का और नारी के साथ नर का अमर्यादित संसर्ग कामवासना को उत्पन्न करता है।

अब्रह्मचर्य को मोह, विग्रह, विघात, विभ्रम, व्यापत्ति, बाधनापद आदि जो नाम दिये गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह विकार मन में विपरीत भावनाएँ उत्पन्न करता है। काम के वशीभूत हुआ प्राणी मूढ़ बन जाता है। वह हित-अहित को, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को या श्रेयस्-अश्रेयस् को यथार्थ रूप में समझ नहीं पाता। हित को अहित और अहित को हित मान बैठता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। उसके विचार विपरीत दिशा पकड़ लेते हैं। उसके शील-सदाचार-संयम का विनाश हो जाता है।

'विग्रहिक' और 'वैर' नामों से स्पष्ट है कि अब्रह्मचर्य लड़ाई-झगड़ा, युद्ध, कलह आदि का कारण है। प्राचीनकाल में कामवासना के कारण अनेकानेक युद्ध हुए हैं, जिनमें हजारों-लाखों मनुष्यों का रक्त बहा है। शास्त्रकार स्वयं आगे ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। आधुनिक काल में भी अब्रह्मसेवन की बदौलत अनेक प्रकार के लड़ाई-झगड़े होते ही रहते हैं। हत्याएँ भी होती रहती हैं।

इस प्रकार उल्लिखित तीस नाम जहाँ अब्रह्मचर्य के विविध रूपों को प्रकट करते हैं, वहीं उससे होने वाले भीषण अनर्थों को भी सूचित करते हैं।

Elaboration—The foundation of having sex is a special type of perverse thought arising in the mind. So it is also called 'manoj' (arising in the mind). Immediately when it arises in the mind, it deeply disturbs it so it is called 'Manmath'. Such a polluted thought arising in the mind is a hindrance in achieving pure nature of soul. It also destroys or adversely affects the practices for self-purification. It does not allow good conduct to flourish. It causes disturbance in self-restraint. Primarily it does not allow right conduct to appear. In case right conduct has appeared, it destroys due to non-celibacy.

While examining the causes that lead to non-celibacy, the author has said that it arises from darp (development of sense-organs). When one takes rich diet, the sense-organs becomes more powerful. The physical body also develops. Then there is a suitable occasion to express lust. So the practitioner of total celibacy, controls his senses by various

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

types of austerities. It is essential to have a control over sense of taste and to avoid energetic diet.

One of the thirty synonyms is Sansargi. It indicates that in order to avoid the sin of non-celibacy, one should avoid contact with opposite sex. The uncontrolled contact of man with woman or of woman with man produces feeling of lust.

Moh, Vigraha, Vighaat, Vibhram, Vyapti, Badhanapad are also in the list of synonyms of abrahm (non-celibacy). These synonymns indicate that abrahm produces ill thoughts in the mind. Man becomes non-discriminative under the influence of lust. He is not able to understand that what is for his welfare and what is not, what is his duty and what is not his duty and what is good for him and what is not so. He considers a matter concerning his welfare as the one not for his welfare. He loses his sense of discrimination. His thought activity follows the opposite direction. He adversely affects his character, self-restraint and vows he had accepted.

The synonymns Vigrahik and Vair clearly indicate that non-celibacy (abrahm) is the cause of quarrel, wars and mutual indifference. Many wars took place in ancient times as a result of lust in which thousands and even millions of people lost their lives. The author has given in paragraphs ahead many such examples. Even now-a-days many disputes and battles are caused by prevalence of lust (non-celibacy). Even murders occur because of it.

Thus the above mentioned thirty synonymns of abhrahm-charya indicate its different forms. They also present a picture of grave consequences due to it.

अब्रह्मसेवी देवादि CELESTIAL BEINGS ENGAGED IN LUST

८२. तं च पुण णिसेवंति सुरगणा सअच्छरा मोहमोहियमई असुर–भुयग–गरुल–विज्जु–जलण–दीव–उदहि–दिसि–पवण–थणिया।

अणवण्णिय–पणवण्णिय–इसिवाइय–भूयवाइय–कंदिय–महाकंदिय–कहंड–पयंगदेवा।

पिसाय–भूय–जक्ख–रक्खस–किण्णर–किंपुरिस–महोरग–गंधव्वा।

तिरिय–जोइस–विमाणवासि–मणुयगणा, जलयर–थलयर–खहयरा।

मोहपडिबद्धचित्ता अवितण्हा कामभोगतिसिया, तण्हाए बलवईए महईए समभिभूया गढिया य अइमुच्छिया य अबंभे उस्सण्णा तामसेण भावेण अणुम्मुक्का दंसणचरित्तमोहस्स पंजरं पिव करेंति अण्णोण्णं सेवमाणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२. जिनकी बुद्धि मोह से मोहित हो रही है, ऐसे देवगण उस अब्रह्म नामक पापास्रव का अपनी अप्सराओं (देवांगनाओं) के साथ (मैथुन कर) सेवन करते हैं। वे देव इस प्रकार हैं- (१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) गरुड़कुमार (सुपर्णकुमार), (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) पवनकुमार, तथा (१०) स्तनितकुमार, ये दस प्रकार के भवनवासी देव।

(१) अणपन्निक, (२) पणपन्निक, (३) ऋषिवादिक, (४) भूतवादिक, (५) क्रन्दित, (६) महाक्रन्दित, (७) कूष्माण्ड, और (८) पतंग देव (ये आठ व्यन्तर देवों के प्रकार हैं)।

(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किम्पुरुष, (७) महोरग, और (८) गन्धर्व (ये भी आठ प्रकार के निम्न जाति के वाणव्यन्तर देव हैं)।

मध्य लोक में विमानों में निवास करने वाले ज्योतिष्क देव तथा मनुष्यगण, तथा जलचर, स्थलचर एवं खेचर (ये तिर्यंच पंचेन्द्रिय जातीय जीव) अब्रह्म का सेवन करते हैं।

जिनका मन मोह से ग्रस्त हो गया है, जिनको प्राप्त हुए कामभोग सम्बन्धी तृष्णा का अन्त नहीं हुआ है और जो अप्राप्त कामभोगों के लिए तृष्णातुर हैं, जो तीव्र एवं बलवती भोग तृष्णा से बुरी तरह पीड़ित हैं-जिनके मानस को प्रबल काम-लालसा ने पराजित कर दिया है, जो विषयों में अत्यन्त आसक्त एवं अतीव मूर्च्छित हैं-कामवासना की तीव्रता के कारण जिन्हें उससे होने वाले दुष्परिणामों का भान नहीं है, जो अब्रह्मचर्यरूपी कीचड़ में फँसे हुए हैं और जो तामसभाव-अज्ञानमय जड़ता से मुक्त नहीं हुए हैं, ऐसे (देव, मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच) अन्योन्य-परस्पर नर-नारी के रूप में अब्रह्म (मैथुन) का सेवन करते हुए अपनी आत्मा को दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म के पिंजरे में डालते हैं, अर्थात् वे अपने आपको मोहनीय कर्म के बन्धन से ग्रस्त करते हैं।

82. Such celestial beings whose intellect is adversely affected with delusion, engage in the sin of non-celibacy by cohabitation with goddesses. There are ten types of celestial beings called Bhavanavasi (celestial beings living in abodes). They are (1) Asur Kumar, (2) Nag Kumar, (3) Garud Kumar (Suparn Kumar), (4) Vidyut Kumar, (5) Agni Kumar, (6) Dveep Kumar, (7) Udadhi Kumar, (8) Disha Kumar, (9) Pavan Kumar and (10) Stanit Kumar.

There are eight types of Vyantar gods. They are (1) Anpannik, (2) Panapannik, (3) Rishivadik, (4) Bhootavadik, (5) Krandit, (6) Mahakrandit, (7) Kooshmand and (8) Patang.

There are eight types of Vanavyantar devas (of lower status). They are (1) Pishach, (2) Bhoot, (3) Yaksh, (4) Rakshas, (5) Kinnar, (6) Kimpurish, (7) Mahorag and (8) Gandharv.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 11

Illustration No. 11

देवताओं और मनुष्यों द्वारा अब्रह्मचर्य सेवन

चित्र के ऊपर के भाग में अब्रह्मचर्य सेवन करने वाले चार निकाय के देवता बताये गये हैं—**वैमानिक देव**—ये अपनी देवांगनाओं के साथ अब्रह्म सेवन करते हैं (केवल प्रथम एवं द्वितीय देवलोक तक ही मैथुन सेवन है।)। फिर **ज्योतिष्क, भवनवासी** और **व्यंतर** देवों को कामवासना के चंगुल में फँसा बताया है।

इस अब्रह्म सेवन के फलस्वरूप ये देव अगले भवों में पृथ्वी, पानी और वनस्पति रूप ऐकेन्द्रिय जीव बनकर उत्पन्न होते हैं।

अब्रह्म सेवन करते हुए ये देव अपनी आत्मा को दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय कर्म रूपी पिंजरे में बंद कर लेते हैं।

मनुष्यों द्वारा अब्रह्म सेवन—काम-वासना के प्रबल वेग से प्रभावित होकर स्त्री-पुरुष अब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं। अब्रह्म सेवन के फलस्वरूप इस भव में परस्त्रीगामी पुरुष को अनेक दुख भोगने पड़ते हैं। परस्त्री गमन करता हुआ जब वह पकड़ा जाता है तो बंधनों से बाँधकर कारागार में बंद कर दिया जाता है। अगले भवों में भी अब्रह्मचर्य सेवन के फलस्वरूप वह तिर्यंच गति पाता है और बंधनों में बाँधकर पीटा जाता है।

परस्पर अब्रह्म सेवन करते हुए वे नर-नारी अपनी आत्मा को दर्शनमोहनीय व चारित्र मोहनीय कर्म रूपी पिंजरे में कैद कर लेते हैं।

—सूत्र 82, पृ. 184

GODS AND HUMANS INDULGING IN NON-CELIBACY

The illustration at the top shows gods of four divine classes indulging in non-celibacy. Gods of celestial vehicles (Vaimanik Devs) indulge in carnal enjoyments with their divine damsels (sexual activity is limited only to the first and second heavens). Also shown are the Jyotishk, Bhavanvasi and Vyantar gods caught in the trap of lust.

As a consequence of these carnal activities these gods take rebirth as one-sensed beings of earth, water and plant-bodied classes.

Due to these carnal indulgences these gods push their souls into the cage of perception and conduct deluding karmas.

Humans indulging in non-celibacy – Driven by intense lust men and women indulge in carnal pleasures. As a consequence of non-celibacy, individuals enjoying sex out of wedlock have to suffer many miseries. When caught they are tied and imprisoned. Even in next birth they are born as animals, tied and beaten.

Due to these carnal indulgences these men and women push their souls into the cage of perception and conduct deluding karmas.

— Sutra-82, page-184

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In the Madhya Lok (Middle world) there are five types of Jyotishk gods and human beings, acquatic animals, animals living on land and birds flying in skies (five-sensed animal). All these gods, men and animals engage themselves in non-celebate activities.

There are living beings whose mind is engaged in delusion. They are not yet fully satisfied with the means of sensual activities they possess. They are keen to satisfy their sensual desires, which yet remain to be satisfied. They are in deep distress due to their deep desire to satisfy their lust. Their mind is strongly affected by their unsatisfied lust. They are extremely attached to sensory objects. Since they have strong lust, they do not look into its bad results. They are caught in the slime of non-celibacy. They have not yet overpowered their slackness and ignorance. Such living beings (celestial beings, human beings and five-sensed animal beings), male and female, engaging themselves in mutual sexual activities bind themselves in shackles of perception-deluding Karma and conduct-deluding Karma. In other words they collect deluding Karma.

विवेचन : उक्त पाठ में अब्रह्म-कामसेवन करने वाले सांसारिक प्राणियों का कथन है। वैमानिक, ज्योतिष्क, भवनवासी और व्यन्तर, ये चारों निकायों के देवगण, मनुष्य वर्ग तथा जलचर, स्थलचर और खेचर-ये तिर्यंच-पंचेन्द्रिय कामवासना के चंगुल में फँसे हुए हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव ही मैथुन सेवन कर सकते हैं, बाकी एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव बाह्य मैथुन सेवन नहीं कर सकते, उनके केवल नपुंसकवेद के उदय से कामवासना अवश्य होती है।

प्रस्तुत पाठ में अब्रह्मचर्यसेवियों में सर्वप्रथम देवों का उल्लेख किया गया है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि देवों में कामवासना अन्य गति के जीवों की अपेक्षा अधिक होती है। मनुष्य में मैथुन संज्ञा ज्यादा होती है पर देवों की संख्या बहुत ज्यादा होने से देवों में कामवासना अधिक समझनी चाहिए और भोग का अनुभाग ज्यादा होता है। अधिक विषय सेवन का कारण उनका अत्यन्त सुखमय जीवन है। वैक्रियशक्ति भी उसमें सहायक होती है। वे अनेक प्रकार से विषयसेवन करते हैं।

भगवती सूत्र में बताया है, कि नीचे के देवलोक के देवता तो एक दूसरे की देवियों का अपहरण भी कर लेते हैं। देवियों के कारण उनमें विग्रह भी होते हैं।

चार जाति के देवों में वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं-कल्पोपपन्न और कल्पातीत। बारह देवलोकों तक के देव कल्पोपपन्न और ग्रैवेयकविमानों तथा अनुत्तरविमानों के देव कल्पातीत होते हैं। अब्रह्म का सेवन कल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक सीमित है, कल्पातीत वैमानिक देवों में कामवासना उपशान्त रहती है। यद्यपि कल्पातीत देवों में भी मोह की विद्यमानता है तथापि उसकी मन्दता व उपशान्तता के कारण वे मैथुन प्रवृत्ति से विरत होते हैं।

वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक में स्थित कल्प विमानों में निवास करते हैं। ज्योतिष्क देवों का निवास इस पृथ्वी के समतल भाग से ७९० योजन से ९०० योजन तक ११० योजन के अन्तराल में है। ये सूर्य, चन्द्र आदि के भेद से पाँच प्रकार के हैं। भवनवासी देवों के असुरकुमार आदि दस प्रकार हैं। अधोलोक में रत्नप्रभा पृथ्वी का पिण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक लाख अस्सी हजार योजन का है। इसमें से एक हजार योजन ऊपरी और एक हजार योजन नीचे के भाग को छोड़कर एक लाख अठहत्तर योजन में १३ प्रतर और १२ अंतर है। उसके ऊपर के दो अंतर खाली हैं। नीचे के १० अंतर में १० भवनवासी देवों का निवास है। व्यन्तर देव विविध प्रदेशों (अंतरो) में रहते हैं, इस कारण इनका नाम वाणव्यन्तर है। रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम भाग एक हजार योजन में से एक-एक सौ योजन ऊपर और नीचे छोड़कर बीच के ८०० योजन में, तिर्यग्भाग में व्यन्तरों के असंख्यात नगर हैं।

व्यन्तर देवों में एक जाति बाणव्यन्तर देवों की है। वे प्रायः वनों में, पर्वतों की गुफाओं में, वृक्षों के कोटरों व विविध जलाशयों, उद्यानों में रहते हैं।

Elaboration—In the above-mentioned aphorism, there is the description of worldly living beings engaged in sexual activities. Four types of gods namely Vaimanik gods, Bhavanvasi gods, Vyantar gods and Jyotishk gods, human beings and five-sensed living beings on land, in water and in air (the sky) are involved in lust for sexual activities.

Five-sensed animal beings can engage in sex. The living beings who are one-sensed upto four sensed cannot engage outwardly in sexual activities but they certainly have desire for it as they are in a slut of neutral feelings.

In the present lesson, the very first description is of gods who engage in sexual activities. It is because the celestial beings appear to have deeper desire for sex than that of living beings in other states of existence. The cause of greater involvement in sex is that their life is extremely full of worldly pleasures. There fluid power is also helpful to them in this respect. They enjoy sex in many ways.

It is mentioned in Bhagavati Sutra that the celestial beings of lower heaven abduct the goddesses of other celestial beings. The quarrels also arise among them due to goddesses.

Out of gods of four types, Vaimanik gods are of two types–namely Kalpopann (ten different categories according to their status) and Kalpateet (There is no difference of status among them. They are equal in each heaven to which they belong). The gods residing in the first twelve heavens are Kalpopann while the gods in nine Graiveyiks and five Anuttar Vimans are kalpateet. Engagement in lustful activities is limited to gods in Kalpopann heavens. The lust of Kalpateet gods is totally subdued. Although the delusion exists in kalpateet gods also, yet they do no engage in sex because their lust for it is subdued or at a very low level.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vaimanik celestial beings reside in upper region of the world in Kalp Vimans (abodes). Jyotish gods are in the region 790 yojans to 900 yojans above from the surface of this earth. They are of five classes namely sun, moon and others. Asur Kumar is one of the types of bhavanvasi gods and they are of ten types. In the lower region of the world (Adholok) Ratnaprabha hell is 1,80,000 yojan thick. Bhavanvasi gods reside in 1,78,000 yojans, excluding 1000 yojans from the top and 11,000 yojans from the bottom. Vyantar gods reside in different gaps (antars). So they are called Vaan-Vyantar gods. Out of the topmost 1,000 yojans of Ratnaprabha hell, leaving aside 100 yojan from the top and 100 yojan from the bottom, in the remaining 800 yojan there are innumerable towns of Vyantar gods. One class of Vyantar gods is Vaan Vyantar gods. They usually live in forests, mountain caves, empty spaces in trees, gardens and various collections of water.

देवों के वर्णन के पश्चात् अब मनुष्यों के भोग-सुखों के सन्दर्भ में सर्वप्रथम चक्रवर्ती के भोग-सुखों का कथन किया जाता है।

After describing the celestial beings, human beings are described and first of all the pleasures of Chakravartis are narrated.

चक्रवर्ती के विशिष्ट भोग UNIQUE WEALTH OF CHAKRAVARTIS

८३. भुज्जो य असुर-सुर-तिरिय-मणुयभोगरइविहरसंपउत्ता य चक्कवट्टी सुर-नरवइ-सक्कया सुरवरुव्व देवलोए।

८३. पुनः जो असुरों, सुरों, तिर्यंचों और मनुष्यों सम्बन्धी शब्दादि विषयभोगों में, विविध प्रकार की कामक्रीड़ाओं में प्रवृत्त रहते हैं वे चक्रवर्ती सुरेन्द्रों और नरेन्द्रों द्वारा देवलोक में देवेन्द्र के समान सम्मानित होते हैं।

83. They indulge in sensual enjoyments of various types as are enjoyed by demon-gods, gods, animal beings and human beings as well as a variety of lustful activities. Their status in the human world is equivalent to that of god Indra respected by celestial beings and kings.

चक्रवर्ती के राज्य विस्तार EXTENT OF KINGDOM OF CHAKRAVARTI

८४. भरह-णग-णगर-णिगम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संवाह-पट्टण-सहस्समंडियं थिमियमेयणियं एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं।

८४. भरत क्षेत्र में हजारों पर्वतों, नगरों, निगमों, जनपदों-राजधानी आदि विशिष्ट नगरों, द्रोणमुखों, धूल के प्राकार वाली बस्तियों, कस्बों, छावनियों, पत्तनों-व्यापार प्रधान नगरियों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुशोभित, सुरक्षित होने के कारण भयरहित स्थिर लोगों के निवास वाली, एकच्छत्र समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का उपभोग करके वे चक्रवर्ती बने हैं।

84. Their Kingdoms extends upto the sea in Bharat continent. It includes thousands of mountains, cities, corporations, districts, important cities, harbours, suchlike colonies, villages, cantonments, ports and trade centres. Since the people are well protected they permanently live there without any fear. The Chakravarti enjoys the prosperity of such a large area.

चक्रवर्ती नरेन्द्र के विशेषण SPECIAL CHARACTERISTICS OF CHAKRAVARTI

८५. [क] णरसीहा णरवई णरिंदा णरवसहा मरुयवसहकप्पा अब्भहियं रायतेयलच्छीए दिप्पमाणा सोमा रायवंसतिलगा।

८५. (क) वे मनुष्यों में सिंह के समान शूरवीर होते हैं, जो नरपति हैं, नरेन्द्र हैं-मनुष्यों में सर्वाधिक ऐश्वर्यशाली हैं, जो नर-वृषभ हैं-वृषभ के समान सामर्थ्यवान् हैं, अत्यधिक राज-तेज रूपी लक्ष्मी-वैभव से देदीप्यमान हैं, जो सौम्य-शान्त एवं नीरोग हैं, राजवंशों में तिलक के समान श्रेष्ठ हैं।

85. (a) A Chakravarti is as bold as lion. He is the master of human beings. He is most prosperous among the people. He is capable like a bullock so he is also called Nar-Vrishabh. He is famous because of the grandeur of his kingdom. He is quiet, peaceful and sobre. He is free from all diseases. He is the crown mark among the royal families.

चक्रवर्ती के शुभ लक्षण GOOD SIGNS OF CHAKRAVARTI

(ख) रवि-ससि-संख-वरचक्क-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-भग-भवण-विमाण-तुरय-तोरण-गोपुर-मणिरयण-णंदियावत्त-मुसल-णंगल-सुरइयवरकप्परुक्ख-मिगवइ-भद्दासण-सुरुचिथूभ-वरमउड-सरिय-कुंडल-कुंजर-वरवसह-दीव-मंदर-गरुलज्झय-इंदकेउ-दप्पण-अट्ठावय-चाव-बाण-णक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-छत्त-दाम-दामिणि-कमंडलु-कमल-घंटा-वरपोय-सूइ-सागर-कुमुदागर-मगर-हार-गागर-णेउर-णग-णगर-वइर-किण्णर-मयूर-वररायहंस-सारस-चकोर-चक्कवाग-मिहुण-चामर-खेडग-पव्वीसग-विपंचि-वरतालियंट-सिरियाभिसेय-मेइणि-खग्गं-कुस-विमल-कलस-भिंगार-वद्धमाणग-पसत्थउत्तमवि-भत्तवरपुरिसलक्खणधरा।

(ख) (चक्रवर्ती इन शुभ लक्षणों से शोभित होते हैं-) सूर्य, चन्द्र, शंख, चक्र, स्वस्तिक, पताका, गौ, मत्स्य, कछुवा, उत्तम रथ, योनि, भवन, विमान, अश्व, तोरण, नगरद्वार, चन्द्रकान्त आदि मणि, रत्न, नंद्यावर्त्त-नौ कोणों वाला स्वस्तिक, मूसल, हल, सुन्दर कल्पवृक्ष, सिंह, भद्रासन, सुरुचि नामक आभूषण, स्तूप, सुन्दर मुकुट, मुक्तावली हार, कुण्डल, हाथी, उत्तम बैल, द्वीप, मेरु पर्वत या घर, गरुड़, ध्वजा, इन्द्रकेतु-इन्द्रमहोत्सव में गाड़ा जाने वाला स्तम्भ, दर्पण, अष्टापद-वह फलक या पट जिस पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपड़ आदि खेली जाती है या कैलाश पर्वत, धनुष, बाण, नक्षत्र, मेघ, मेखला-करधनी, वीणा, गाड़ी का जूआ, छत्र, फूलों की माला, पैरों तक लटकती माला, कमण्डलु, कमल, घण्टा, उत्तम पोत-जहाज, सुई, सागर, कुमुद पुष्पों का सुरभित वन, मगर, हार, जलघट या एक प्रकार का आभूषण, नूपुर, पर्वत, नगर, वज्र, किन्नर-देवविशेष या वाद्यविशेष, मयूर, उत्तम राजहंस, सारस, चकोर, चक्रवाक-युगल, चँवर, ढाल, पव्वीसक-एक प्रकार का बाजा, विपंची-सात तारों वाली वीणा, श्रेष्ठ पंखा, लक्ष्मी का अभिषेक, पृथ्वी, तलवार, अंकुश, निर्मल कलश, भृंगार-झारी और वर्धमानक-सिकोरा अथवा प्याला इत्यादि।

85. (b) There are special marks on the physical body of Chakravarti indicating good omen. They are sun, moon, conch shell, wheel, swastika, bunting, barley, fish, tortoise, best chariot, yoni, building, aeroplane, horse, gate, gateway of the city, Chandrakant stone, jewel, nine cornered Swastika, thick rod (moosal), plough, beautiful tree that satisfies all desires, lion, special seat, Suruchi ornament, pillar, beautiful crown, garland of pearls, earrings, elephant, unique bullock, island, Meru mountain, house, guard, flag, pole erected to celebrate Indra festival, mirror, board for playing dice (astapad) or Kailash mountain, bow, arrow, constellation, rain-bearing cloud, waist-bend, Vina, yoke, umbrella, garland of flowers, garland hanging upto feet, bucket, lotus, hell, best ship, needle, sea, garden of fragrant flowers, crocodile, rosary, Jalaghat or a type of ornament, noopur (an ornament of the feet), hill, town, Vajra, special musical instrument, Peacock, Swan, Crane, Chakor, pair of Chakravak birds, whisk, shield, pavvisak (a type of musical instrument), Vipanchi (a Vina) having seven wires), unique fan, anointing of Lakshmi-goddess of wealth, piece of land, sword, short lance, spotless pot, small pitcher (bhringaar), cup (Vardhamanak) and others.

चक्रवर्ती की ऋद्धि PROSPERITY OF CHAKRAVARTI

(ग) बत्तीसं वररायसहस्साणुजायमग्गा चउसट्ठिसहस्सपवरजुवतीणणयणकंता रत्ताभा पउमपम्ह कोरंट-गदामचंपकसुतवियवरकणकणिहसवण्णा सुवण्णा सुजायसव्वंगसुंदरंगा महग्घवरपट्टणुग्गयविचित्त-रागएणिपेणिणिम्मिय-दुगुल्लवरचीणपट्टकोसेज्ज-सोणिसुत्तगविभूसियंगा।

वरसुरभि-गंधवरचुण्णवासवर-कुसुमभरियसिरया कप्पियछेयायरिय-सुकयरइतमाल-कडगंगय-तुडियपवर-भूसणपिणद्धदेहा, एकावलिकंठसुर-इयवच्छा पालंब-पलंबमाणसुकय-पडउत्त-रिज्जमुद्दिया-पिंगलंगुलिया उज्जल-णेवत्थरइयचेल्लगविरायमाणा।

तेएण दिवाकरोव्व दित्ता सारयणवत्थणियमहुरगंभीरणिद्धघोसा उप्पण्णसमत्त-रयण-चक्करयणप्पहाणा णवणिहिवइणो समिद्धकोसा चाउरंता चाउराहिं सेणाहिं समणुजाइज्जमाणमग्गा तुरयवई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गयवई रहवई णरवई विपुलकुलवीसुयजसा सारयससिसकलसोमवयणा सूरा तिलोक्कणिग्गयपभावलद्धसद्दा समत्तभरहाहिवा णरिंदा ससेल–वण–काणणं च हिमवंतसागरंतं धीरा भुत्तूण भरहवासं जियसत्तू पवररायसीहा पुव्वकडतवप्पभावा णिविट्ठसंचियसुहा, अणेगवाससयमायुवंतो भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता अतुल–सद्द–फरिस–रस–रूव–गंधे य अणुभवेत्ता ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं।

(ग) बत्तीस हजार श्रेष्ठ मुकुटबद्ध राजा उनकी (चक्रवर्ती की) आज्ञा में चलते हैं। वे चौंसठ हजार श्रेष्ठ युवतियों (रानियों) के नेत्रों के प्रिय होते हैं। उनके शरीर की कान्ति रक्तवर्ण होती है। वे कमल के मध्य भाग, चम्पा के फूलों, कोरंट की माला और तप्त सुवर्ण की कसौटी पर खींची हुई रेखा के समान गौर वर्ण वाले होते हैं। उनके सभी अंगोपांग अत्यन्त सुन्दर और सुडौल होते हैं। बड़े–बड़े पत्तनों में बने हुए विविध रंगों के हिरनी तथा खास जाति की हिरनी के चर्म के समान कोमल एवं बहुमूल्य वस्त्रों से या हिरनी के चर्म से बने वस्त्रों से तथा चीनी वस्त्रों, रेशमी वस्त्रों से तथा कटिसूत्र–करधनी से उनका शरीर सुशोभित होता है।

उनके मस्तिष्क उत्तम सुगन्धित द्रव्यों के चूर्ण (पाउडर) की गंध से और उत्तम कुसुमों से युक्त होते हैं। कलाचार्यों–(शिल्पियों) द्वारा निपुणतापूर्वक बनाई हुई आराम देने वाली माला, कड़े, अंगद–बाजूबंद, तुटिक–अनन्त तथा अन्य उत्तम आभूषण शरीर पर धारण किये रहते हैं। एकावली हार जिनके कण्ठ में सुशोभित हो रहा है। वे लम्बी लटकती धोती एवं दुपट्टा पहनते हैं। उनकी उँगलियाँ अँगूठियों से पीली रहती हैं। अपने उज्ज्वल एवं सुखप्रद वेष–पोशाक से अत्यन्त शोभायमान होते हैं।

अपनी तेजस्विता से वे सूर्य के समान दमकते हैं। उनका आघोष (आवाज) शरद् ऋतु के नये मेघ की ध्वनि के समान मधुर, गम्भीर एवं स्नेहयुक्त होता है। उनके यहाँ चक्ररत्न आदि चौदह रत्न उत्पन्न हो जाते हैं और वे नौ निधियों के स्वामी होते हैं। उनका कोश–कोशागार–अखूट (समृद्ध) होता है। उनके राज्य की सीमा तीन दिशाओं में समुद्र पर्यन्त और एक दिशा में हिमवान् पर्वत पर्यन्त फैली होती है। गजसेना, अश्वसेना, रथसेना एवं पदातिसेना–यह चतुरंगिणी सेना उनके मार्ग का अनुगमन करती है, उनकी आज्ञा का पालन करती है। वे अश्वों के अधिपति, हाथियों के अधिपति, रथों के अधिपति एवं नरों–मनुष्यों के अधिपति होते हैं। उनका कुल विशाल व विश्रुत–दूर–दूर तक फैले यश वाला होता है। जिनकी प्रसिद्धि सारे लोक में फैली है। उनका मुख शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान कान्तिमान होता है। वे शूरवीर होते हैं। उनका प्रभाव तीनों लोकों में फैला होता है एवं सर्वत्र उनकी जय–जयकार होती है। वे सम्पूर्ण–छह खण्ड वाले भरत क्षेत्र के अधिपति, धीर, समस्त शत्रुओं के विजेता, बड़े–बड़े राजाओं में सिंह के समान होते हैं। पूर्वकाल में किये तप के प्रभाव से सम्पन्न तथा संचित सुख को भोगने वाले, सैकड़ों वर्षों के आयुष्य वाले एवं नरों में इन्द्र–नरेन्द्र (चक्रवर्ती) होते हैं। पर्वतों, वनों और उद्यानों सहित उत्तर दिशा में हिमवान् नामक वर्षधर पर्वत और शेष तीन दिशाओं में लवणसमुद्र पर्यन्त समग्र भरत क्षेत्र–भारतवर्ष के स्वामित्व–राज्यशासन का उपभोग करते हैं तथा (विभिन्न) जनपदों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मी उत्तम कन्याओं (भार्याओं) के साथ भोग-विलास करते हुए अनुपम शब्द, रूप, गंध रस और स्पर्श सम्बन्धी कामभोगों का भोगोपभोग करते हैं। विपुल ऐश्वर्य-सुख के स्वामी चक्रवर्ती भी वे कामभोगों से तृप्त हुए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

85. (c) Thirty two thousand crowned kings obey the orders of Chakravarti and consider him as king emperor. He has 64,000 queens who deeply love him. His body produces red glow. He is as white as the central part of lotus, champa flowers, garland of Korant flowers and line drawn of gold on the testing stone. All the limbs of a Chakravarti are extremely beautiful and properly developed. His body is dressed in soft precious clothes made of special material as soft as the deer-skin of various colours, or with dress made of deer skin or Chinese silk. On his waist there is a special waist-bend.

His forehead is painted with powder of fragrant substances and flowers. He is wearing beautiful garland prepared by experts, bangles, armlets and other five ornaments. He wears ekavali garland. He wears long hanging dhoti (on his legs) and piece of cloth (dupatta) on his shoulders. His fingers look yellow due to the rings. He looks grand in his beautiful dress.

He shines like the sun due to the aura of his grandeur. His voice is sweat, sobre and affectionate like the sound of rain-bearing cloud in winter. Fourteen jewels including Chakra jewel appear in his treasure. He is the master of nine nidhis (special treasures). His treasury is extremely rich. The limit of his kingdom is upto the sea in three directions and upto Himavaan mountain in the fourth direction. He has four types of armies namely of elephants, horses, chariot and of soldiers on foot. They meticulously follow his orders. He is the master of horses, elephants, chariots and men. His family is very large. He is famous far and wide. He is famous all around the world. His face is like the full moon in winter. He is courageous. His influence is in all the three worlds. He is greeted everywhere. He rules all the six divisions of Bharat area. He has conquered all the enemies. He is like a lion among the great rulers. He obtains all this prosperity due to the austerities done in his previous life-span and the good karmas collected by him. He is Indra among men. He rules in the north upto Himavan mountain and in the remaining three directions upto Lavan Sea (Salty Ocean)—the area of Bharat Continent. He enjoys lustful pleasures with his wives–the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

beautiful ladies born in different districts. He enjoys with them various sensual pleasures of pleasant voice, touch, taste, sight and smell. Such Chakravarti–the master of great wealth and prosperity also dies without satisfying his lusty wants.

विवेचन : शास्त्रकार ने इस पाठ में प्रदर्शित किया है कि कामभोगों से जीव की कदापि तृप्ति होना सम्भव नहीं है। कामभोगों की लालसा अग्नि के समान है। जैसे आग में घी डालने से आग अधिक प्रज्वलित होती है–शान्त नहीं होती, उसी प्रकार कामभोग से कामवासना कदापि शान्त नहीं हो सकती।

कामभोग ईंधन के तुल्य भोगतृष्णा की अभिवृद्धि के साधन हैं और उनके भोगने से तृप्ति होना सम्भव नहीं है, इसी तथ्य को अत्यन्त सुन्दर रूप से समझाने के लिए शास्त्रकार ने चक्रवर्ती के विपुल वैभव का विशद वर्णन किया है। क्योंकि इस पृथ्वी पर चक्रवर्ती के समान अन्य किसी का भौतिक ऐश्वर्य नहीं होता। वह अनुपम कामभोगों का उपभोग करता है। उसके भोगोपभोगों की तुलना में शेष मानवों के उत्तमोत्तम कामभोग निकृष्ट हैं, किसी गणना में नहीं है। षट्खण्ड भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ चौसठ हजार स्त्रियाँ उसकी पत्नियाँ होती हैं। वे सभी उसे हृदय से प्रेम करती हैं। उनके साथ अनेक शताब्दियों तक निश्चिन्त होकर भोग भोगने पर भी उसकी वासना तृप्त नहीं होती और अन्तिम क्षण तक–मरण सन्निकट आने तक भी वह अतृप्त–असन्तुष्ट ही रहता है और अतृप्ति के साथ ही अपनी जीवन–लीला समाप्त करता है। कई चक्रवर्ती इन भोगों को छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। पर जो भोगों को नहीं छोड़ते वे अतृप्ति में मरकर नरकगामी होते हैं। जो भोग को नहीं छोड़ते उसकी अपेक्षा से यह कथन समझना चाहिए।

जब चक्रवर्ती जैसे संसारी जीव की विपुलतम भोगों से भी तृप्ति न हुई तो सामान्य जनों को भोगोपभोगों से किस प्रकार तृप्ति हो सकती है ! इसी तथ्य को प्रकाशित करना प्रस्तुत सूत्र का एकमात्र लक्ष्य है।

चक्रवर्ती सम्पूर्ण भरतखण्ड के एकच्छत्र साम्राज्य का स्वामी होता है। चक्रवर्ती के विपुल वैभव व चौदह रत्न, नौ निधियों का विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ३ में किया गया है, वहाँ देखना चाहिए।

Elaboration—In the above-mentioned aphorism, the writer has discussed that a living being never feels satisfied with worldly enjoyments. The greed for worldly enjoyment is like a fire. Just as the fire brightens when ghee is added to it and does not cool down, similarly lust for worldly enjoyments is never subdued.

The worldly enjoyments are like the fuel that increases the lustful desires. It is never possible to get satisfaction by enjoying such pleasures. In order to bring around this fact the writer has given a detailed account of the prosperity of a Chakravarti. Nobody on the earth has prosperity greater than that of a Chakravarti. He enjoys unique worldly pleasures. Even grandest enjoyments of other human being feel shy before his enjoyments. They are insignificant in comparison to the enjoyments of a Chakravarti. Most beautiful 64,000 ladies of Bharat area are his queens. All the wives love him from the core of their heart. His lust does not feel satisfied even after enjoying them for several

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

centuries. He remains unsatisfied even upto his dying moments. He completes his life in a state of dissatisfication.

A Chakravarti remains unsatisfied although he has great prosperity. How then can a common man get satisfaction in worldly enjoyments. The purpose of this aphorism is to highlight this fact.

Chakravarti is the master of the entire Bharat area. The detailed description of his wealth is available in Vakshaskar 3 of Jambudveep Prajnapti. The reader should study it from there.

बलदेव और वासुदेव के भोग **ENJOYMENTS OF BALDEV AND VASUDEV**

चक्रवर्ती के अपार ऐश्वर्य व कामभोगों का वर्णन करने के पश्चात् अब शास्त्रकार वासुदेव व बलदेव के वैभव व कामसुखों का वर्णन करते हैं।

After giving a detailed account of wealth and prosperity of a Chakravarti, the writer describes the wealth and prosperity of Vasudev and Baldev.

८६. भुज्जो भुज्जो बलदेव–वासुदेवा य पवरपुरिसा महाबलपरक्कमा महाधणुवियट्टगा महासत्तसागरा दुद्धरा धणुद्धरा णरवसहा।

रामकेसवा भायरो सपरिसा वसुदेवसमुद्दविजयमाइयदसाराणं पज्जुण्ण–पईव–संब–अणिरुद्ध–णिसह–उम्मुय–सारण–गय–सुमुह–दुम्मुहाईण जायवाणं अद्धुट्ठाण वि कुमारकोडीणं हिययदइया देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य आणंद–हिययभावणंदणकरा सोलसरायवर–सहस्साणुजायमग्गा सोलसदेवीसहस्सवरणयणहिययदइया।

णाणामणि–कणगरयणमोत्तियपवालधण–धण्णसंचयरिद्धिसमिद्धकोसा हयगयरहसहस्ससामी गामागर–णगर–खेड–कब्बड–मडंब–दोणमुह–पट्टणासम–संबाह–सहस्सथि..मेय–णिव्वुयपमुइयजण–विविहसास–णिप्फज्जमाणमेइणिसरसरिय–तलाग–सेलकाणण–आरामुज्जाणमणाभिरामपरिमंडियस्स दाहिणड्ढवेयड्ढगिरिविभत्तस्स लवण–जलहि–परिगयस्स छव्विहकालगुणकामजुत्तस्स अद्धभरहस्स सामिगा।

धीरकित्तिपुरिसा ओहबला अइबला अणिहया अपराजियसत्तु–मद्दणरिपुसहस्समाणमहणा। साणुक्कोसा अमच्छरी अचवला अचंडा मियमंजुलपलावा हसिय–गंभीर–महुर–भणिया अब्भुवगय–वच्छला सरण्णा लक्खण–वंजण–गुणोववेया माणुम्माणपमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगा ससिसोमागारकंतपियदंसणा अमरिसणा।

पयंडडंडप्पयारगंभीरदरिसणिज्जा तालद्धउव्विद्धगरुलकेऊ बलवगगज्जंत दरियदप्पियमुट्ठियचाणूरमूरगा रिट्ठवसहघाइणो केसरिमुहविप्फाडगा दरियणागदप्पमहणा जमलज्जुणभंजगा महासउणि–पूयणारिवू कंसमउडमोडगा जरासंधमाणमहणा।

तेहिं य अविरलसमसहियचंदमंडलसमप्पभेहिं सुरमिरीयिकवयं विणिम्मुयंतेहिं सपडिदंडेहिं, आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताहि य पवरगिरिकुहरविहरणसमुद्धियाहिं णिरुवहयचमरपच्छिमसरीरसंजायाहिं अमइलसेयकमलविमुकुलज्जलिय-रययगिरिसिहर-विमलससिकिरण-सरिसकलहोयणिम्मलाहिं पवणाहयचवलचलियसललिय-पणच्चियवीइपसरियखीरोदग-पवरसागरुप्पूरचंचलाहिं माणस-सरपसरपरिचियावासविसदवेसाहिं कणगगिरिसिहरसंसिताहिं उवायप्पायचवलजयिणसिग्घवेगाहिं हंस-वधूयाहिं चेव कलिया णाणामणिकणगमहरिहत-वणिज्जुज्जलविचित्तडंडाहिं सललियाहिं णरवइसिरि-समुदयप्पगासणकरिहिं वरपट्टणुग्गयाहिं समिद्धरायकुलसेवियाहिं कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूववसवा-सविसदगंधुदुधुयाभिरामाहिं चिल्लिगाहिं उभओपासं वि चामराहिं उक्खिप्पमाणाहिं सुहसीययवायवीइयंगा।

अजिया अजियरहा हलमूसलकणगपाणी संचचक्कगयसत्तिणंदगधरा पवरुज्जलसुकयविमलकोथूभतिरीडधारी कुंडलउज्जोवियाणणा पुंडरीयणयणा एगावलीकंठरइयवच्छा सिरिवच्छसुलंछणा वरजसा सव्वोउय-सुरभिकुसुमसुरइयपलंबसोहंतवियसंतचित्तवणमालरइयवच्छा अट्ठसयविभत्तलक्खणपसत्थसुंदरविराइयंगमंगा।

मत्तगयवरिंदललियविक्कमविलसियगई कडिसुत्तगणीलपीयकोसिज्जवाससा पवरदित्ततेया सारयणवत्थणियमहुरगंभीरणिद्धघोसा णरसीहा सीहविक्कमगई अत्थमियपवररायसीहा सोमा बारवइपुण्णचंदा।

पुव्वकयतवप्पभावा णिविट्ठिसंचियसुहा अणेगवाससयमाउवंता भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता अउल-सद्दफरिसरसरूवगंधे अणुहवित्ता ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं।

८६. बलदेव और वासुदेव भी पुनः-पुनः कामभोगों के सेवन से तृप्त न होकर मौत के मुँह में चले गये तो साधारण मनुष्य का तो कहना ही क्या? वे मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष थे, वे महाबली और महापराक्रमी थे। सारंग आदि बड़े-बड़े धनुषों को चढ़ाने वाले, महान् साहस के समुद्र, शत्रुओं से अजेय एवं धनुर्धारियों में प्रधान थे।

वे लिए हुए कार्यभार का निर्वाह करने में धोरी बैल के समान नरवृषभ थे। (इस अवसर्पिणी में) बलराम (नौवाँ बलभद्र) और केशव-वासुदेव (नौवाँ नारायण) दोनों भाई थे। उनका परिवार बड़ा विशाल था। उन्हीं में वसुदेव और समुद्रविजयजी आदि दश दशार्ह-पूज्य पुरुष हुए हैं तथा प्रद्युम्न, प्रतिव, शंब, अनिरुद्ध, निषध, औल्मुकं, सारण, गज, सुमुख और दुर्मुख आदि यादवों की सन्तानों के रूप में साढ़े तीन करोड़ कुमार हुए हैं। रानी रोहिणी के पुत्र बलराम थे और महारानी देवकी के पुत्र थे-श्रीकृष्ण वासुदेव। वे रोहिणीदेवी और देवकीदेवी के हृदय में उत्पन्न हुए आह्लाद की वृद्धि करने वाले थे। सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा उनके मार्ग का अनुसरण करने वाले (उनकी आज्ञा में चलने वाले) थे और सोलह हजार सुन्दर युवतियों के वे हृदयवल्लभ थे।

नाना प्रकार की मणियों, सोने, रत्न, मोती, मूँगों तथा धन-धान्यों के संचयरूप लक्ष्मी से जिनके खजाने भरे रहते थे। वे हजारों घोड़ों, हाथियों और रथों के स्वामी थे। वे हजारों सुन्दर गाँवों, नगरों, खानों, खेड़ों, कस्बों, मडंबों, द्रोणमुखों, बन्दरगाहों, पत्तनों-मण्डियों, आश्रमों, सुरक्षित किलों (संवाहों) से युक्त अर्द्ध-भरत क्षेत्र के स्वामी थे, जिनमें लोग स्वस्थ, स्थिर, शान्त और प्रमुदित रहते थे, जहाँ विविध प्रकार के धान्य पैदा करने वाली उपजाऊ भूमि थी। वह बड़े-बड़े सरोवरों, नदियों, छोटे-छोटे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तालाबों, पर्वतों, वनों, स्त्री-पुरुषों के क्रीड़ा करने के योग्य लतागृहों से युक्त बगीचों, फुलवाड़ियों और उद्यानों से सुशोभित थे। दक्षिण की ओर का अर्द्ध-भरत वैताढ्य पर्वत से विभक्त एवं लवणसमुद्र से घिरा हुआ तथा छह ऋतुओं के कार्यों से क्रमशः प्राप्त होने वाले अत्यन्त सुख से युक्त थे।

वे धैर्यवान और कीर्तिमान पुरुष थे। उनमें प्रवाहरूप से निरन्तर बल पाया जाता था। वे अत्यन्त बलवान थे। दूसरों के बलों से वे कभी मात नहीं खाते थे। वे अपराजित माने जाने वाले शत्रुओं का भी मानमर्दन करने वाले और हजारों शत्रुओं का अभिमान चूर-चूर करने वाले थे। उनका स्वभाव दयालु, मात्सर्यरहित यानी परगुणग्राही, चंचलता से रहित था। वे अकारण क्रोध न करने वाले, परिमित और मृदुभाषी तथा मुस्कान के साथ गम्भीर और मधुर वचन बोलने वाले थे। वे पास आये हुए व्यक्ति के प्रति वत्सल थे तथा शरणागत को शरण देने वाले थे। सामुद्रिक शास्त्र में बताये हुए शरीर के उत्तमोत्तम लक्षणों (चिह्नों) और तिल, मस्से आदि व्यंजनों से युक्त थे। उनके शरीर के समस्त अंग और उपांग मान एवं उन्मान प्रमाण से परिपूर्ण थे। उनकी मुखाकृति चन्द्रमा के समान सौम्य थी, वे देखने वालों को मनोरम और सुहावने लगते थे। वे अपराध को नहीं सह सकते थे अथवा कर्त्तव्य-पालन में आलस्य नहीं करते थे।

वे अपनी प्रचण्ड या प्रकाण्ड दण्डशक्ति का प्रसार-प्रचार करने में बड़े गम्भीर दिखाई देते थे। बलदेव की ध्वजा पर ताड़ वृक्ष का चिह्न तथा कृष्ण की ऊँची फहराती हुई ध्वजा पर गरुड़ का चिह्न अंकित था। उन्होंने घमण्ड से गर्जते हुए अत्यन्त बलशाली मौष्टिक और चाणूर नामक मल्लों का दर्प चूर कर दिया था। रिष्ट नामक दुष्ट बैल का भी दमन कर दिया था। वे सिंह के मुँह में हाथ डालकर उसे चीर डालने में समर्थ थे। उन्होंने गर्वोद्धत भयंकर कालीयनाग के अभिमान को नष्ट कर दिया था और विक्रिया से वृक्षरूपधारी यमलार्जुन को खण्डित कर दिया था। वे कंस पक्ष की महाशकुनी और पूतना नाम की दो विद्याधरियों के शत्रु थे। उन्होंने कंस का मुकुट मोड़ा था, यानी मुकुट पकड़कर उसको नीचे पटका और मारा था। उन्होंने जरासन्ध के मान का मर्दन कर दिया था।

वे ऐसे छत्रों से सुशोभित रहते थे, जो सघन, समान तथा ऊँची की गई सलाइयों, ताड़ियों से बनाये गये थे और चन्द्रमण्डल के समान प्रभा वाले थे। वे सूर्य किरण के प्रभामण्डल की तरह अपने चारों ओर तेज को बिखेरते थे। विशाल होने के कारण उनमें अनेक दण्ड लगे हुए थे।

इसी तरह अत्यन्त श्रेष्ठ पहाड़ों की गुफाओं में घूमने वाली नीरोगी चमरी गायों की पूँछ के निर्मल श्वेतकमल, उज्ज्वल रजतगिरि के शिखर एवं निर्मल चन्द्रमा की किरणों के समान शुभ्र, चाँदी के समान स्वच्छ तथा हवाओं से चंचल हिलते और लीलापूर्वक नाचते हुए एवं थिरकती हुई लहरों वाले क्षीरसमुद्र के जलप्रवाह के समान चंचल, मान-सरोवर के विस्तार में परिचित आवास वाली और श्वेत रूप वाली, स्वर्णगिरि पर बैठी हुई तथा ऊपर-नीचे गमन करने में दूसरी चंचल वस्तुओं को मात करने जैसे शीघ्र वेग वाली हंसनियों के समान श्वेत चँवरों से वे युक्त थे। उन चँवरों के डण्डे (मुठें) नाना प्रकार की चन्द्रकान्त आदि मणियों से जटित होते हैं, कई लाल रंग के तपे हुए, महामूल्यवान् सोने के बने हुए तथा कई पीले सोने के होते हैं। वे (चँवर) सौन्दर्य से परिपूर्ण और राजलक्ष्मी के अभ्युदय को प्रगट करने वाले हैं, वे कुशल कारीगरों द्वारा बनाये जाते हैं। समृद्धिशाली राजवंशों में उन (चँवरों) का उपयोग किया जाता है। काला अगर, उत्तम चीड़ की लकड़ी और तुरुक्क नामक सुगन्धित द्रव्य की धूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देने के कारण उठी हुई सुलाव से उन चँवरों में स्पष्ट और मनोहर सुगन्ध प्रगट होती है। इस प्रकार के चँवर उनके दोनों पार्श्वों में ढुलाए जाने से उनकी सुखद व शीतल हवा उनके अंग-अंग को स्पर्श करती है।

वे (वासुदेव-बलदेव) अजेय होते हैं। उनके रथ भी अपराजित होते हैं। बलराम हाथों में हल, मूसल और बाण धारण करते हैं। वासुदेव पाँच जन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमुदी गदा शक्ति (त्रिशूल) और नन्द नामक तलवार धारण करते हैं। वे अत्यन्त उज्ज्वल और भलीभाँति बनाये हुए सुन्दर कौस्तुभमणि और मुकुट को धारण करते हैं। कुण्डलों से उनका मुख प्रकाशित रहता है। उनके नेत्र श्वेतकमल के समान विकसित होते हैं। उनके कण्ठ और वक्षस्थल पर श्रीवत्स नामक उत्तम चिह्न होता है। वे महायशस्वी होते हैं। सभी ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों से रचित लम्बी देदीप्यमान एवं विकसित अनूठी वनमाला उनके वक्षस्थल पर सुशोभित होती है। मांगलिक और सुन्दर विभिन्न १०८ लक्षणों से उनके अंगोपांग शोभा पाते हैं।

मतवाले श्रेष्ठ हाथियों की तरह उनकी गति-चाल बड़ी ही सुन्दर और विलसित होती है। उनकी कमर में कटिसूत्र (करधनी) होता है और वे नीले तथा पीले रेशमी वस्त्र पहनते हैं। वे प्रखर तेज से देदीप्यमान होते हैं। उनकी वाणी का घोष शरद् काल के नये मेघ की गर्जना के समान गम्भीर, मधुर और स्निग्ध होता है। वे मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी होते हैं। उनकी सिंह के समान पराक्रम व गति होती है, सिंह के समान बड़े-बड़े पराक्रमी राजाओं के जीवन को उन्होंने अस्त कर दिया है। वे सौम्य होते हैं। द्वारावती-द्वारिका नगरी के निवासियों के लिए वे पूर्ण चन्द्रमा के समान होते हैं।

उनमें पूर्वजन्म में किये हुए तप का प्रभाव होता है। वे पूर्वकालकृत पुण्यों के उदय से संचित इन्द्रिय-सुख वाले होते हैं। वे कई सौ वर्ष की आयु वाले होते हैं। वे प्रधान देशों की श्रेष्ठ पत्नियों के साथ भोग करते हैं और एक से एक बढ़कर इन्द्रियजन्य स्पर्श, रस, रूप और गन्ध-स्वरूप विषयों का उपभोग करते हैं। परन्तु अन्त में, वे भी उन कामभोगों से तृप्त न होकर एक दिन मृत्यु की गोद में चले जाते हैं।

विवेचन-पूर्व सूत्रपाठ में चक्रवर्तियों के वैभव, सुख के साधन और अन्त में कामभोगों से अतृप्त रहते हुए ही उनकी मृत्यु आदि का वर्णन किया है। अब इस सूत्र में बलदेवों और वासुदेवों की ऋद्धि, समृद्धि और भोगविलासों का वर्णन करते हुए बताया है कि वे भी इन कामभोगों से अतृप्त होकर ही इस संसार से एक दिन विदा हो जाते हैं। कामभोगों से आज तक किसी को तृप्ति नहीं हुई।

चक्रवर्ती की तरह बलभद्र और नारायण भी प्रत्येक उत्सर्पिणी और प्रत्येक अवसर्पिणी काल में होते हैं। चक्रवर्ती की अपेक्षा नारायण अर्थात् वासुदेव की ऋद्धि, शरीरसम्पत्ति, बल-वाहन, विभूति, आदि आधी होती हैं। बलभद्र उनके ज्येष्ठ भ्राता होते हैं।

प्रस्तुत सूत्र का मूल आशय सभी कालों में होने वाले सभी बलभद्रों और नारायणों के भोगों एवं व्यक्तित्व का वर्णन करके यह प्रदर्शित करना है कि संसारी जीव उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भोग भोगने पर भी, अन्त तक तृप्ति नहीं पाता है। जीवन की अन्तिम वेला तक भी वह अतृप्त रह कर मरण को प्राप्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार सामान्य रूप से सभी बलभद्रों और नारायणों से संबंध रखने वाले प्रस्तुत वर्णन में वर्त्तमान अवसर्पिणी काल में हुए नवम बलभद्र (बलराम) और नवम नारायण (श्री कृष्ण) का उल्लेख किया गया है। ऐसा क्यों ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए टीकाकार श्री अभयदेवसूरि ने लिखा है कि – यद्यपि इस अवसर्पिणी काल में नौ बलभद्र और नौ नारायण हुए हैं किन्तु उनमें बलराम और श्रीकृष्ण लोक में अत्यन्त विख्यात हैं। उनकी इस ख्याति के कारण ही उनके नामों आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

तीर्थंकरों के पश्चात् दूसरा स्थान चक्रवर्तियों का है। ये बारह होते हैं। इनकी विभूति आदि का विस्तृत वर्णन पूर्व सूत्र में किया गया है। बलदेव–वासुदेव के समकालीन प्रति वासुदेव भी नौ होते हैं, जो वासुदेव के द्वारा मारे जाते हैं। बलराम और श्रीकृष्ण नामक जो अन्तिम बलभद्र और नारायण हुए हैं, उनसे सम्बद्ध वर्णन का स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

ये दोनों प्रशस्त पुरुष यादवकुल के भूषण थे। इस कुल में दश दशार थे, जिनके नाम हैं– (1) समुद्रविजय (2) अक्षोभ्य (3) स्तिमित (4) सागर (5) हिमवान् (6) अचल (7) धरण (8) पूरण (9) अभिचन्द्र और (10) वसुदेव।

इस परिवार में ५६ करोड़ यादव थे। उनमें साढ़े तीन करोड़ प्रद्युम्न आदि कुमार थे। बलराम की माता का नाम रोहिणी और श्रीकृष्ण की माता का नाम देवकी था। इनके शस्त्रों तथा वस्त्रों के वर्ण आदि का वर्णन मूल पाठ में ही प्रायः आ चुका है।

मुष्टिक नामक मल्ल का हनन बलदेव ने और चाणूर मल्ल का वध श्रीकृष्ण ने किया था। रिष्ट नामक सांड को मारना, कालिय नाग को नाथना, यमलार्जुन का हनन करना, महाशकुनी एवं पूतना नामक विद्याधरियों का अन्त करना, कंस–वध और जरासन्ध के मान का मर्दन करना आदि घटनाओं का उल्लेख बलराम–श्रीकृष्ण से सम्बन्धित है, इसका तात्पर्य इतना ही है कि ऐसों ऐसों के दमन करने का सामर्थ्य बलदेवों और वासुदेवों में होता है। ऐसे असाधारण बल, प्रताप और पराक्रम के स्वामी भी भोगोपभोगों से तृप्त नहीं हो पाते हैं।

86. When even Baldevs and Vasudevs, by engaging in sensual engagements again and again died in a state of discontentment, what to say of the common people. They were the most important among men. They were very powerful and courageous. They could lift very heavy bows like Sarang. They were as courageous as the sea. They were invincible by enemies. They were prominent amongst archers.

They were the best amongst men in task performance like a healthy bull is in carrying the load. In this span of descending (Avasarpini) period Balaram the ninth Baldev and Krishna, the ninth Vasudev were both brothers. They had a very large family. Among them Vasudev and Samudra Vijay were two of the ten respectable Dasharhas. Pradyumn, Prativ, Shamb, Aulapukam, Saaran, Gaj, Sumukh and Dumukh were among the 35 million Yadava youth as the members of their family.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Rohani was the mother of Balaram and Devaki was the mother of Krishna Vasudev. They used to enhance happiness in the heart of their respective mothers. Sixteen Thousand kings were their followers (obeying their orders). They were the beloved husbands of 16,000 young beauties each.

Their treasuries were full of many types of precious stones, jewels, gold, pearls, corals, money and suchlike wealth. They were the masters of thousands of horses, elephants and chariots. They owned thousands of beautiful villages, towns, mines, colonies, madambs, harbours, poets, markets, ashrams and forts. They were the master of half the Bharat area wherein people were living peacefully, happily and in stable and healthy state. Its lands was fertile capable to producing grains in large quantity. It looked beautiful due to large lakes, rivers, ponds, hills, forests, enclosures having creepers used by men and women for amorous activities, gardens, flower beds and orchards. The Bharat area in the south of Vaitadhya mountain which was dividing Bharat into two parts was surrounded by Lavan Ocean and six seasons were consecutively providing a great pleasant atmosphere.

They were courageous and famous persons. There was continuous flow of energy in them. They were never inferior to others in strength. They could conquer even the invincible enemies. They could defeat thousands of enemies. They were compassionate and free from jealousy. They used to imbibe good qualities of others and were free from childish behaviour. They were never angry without specific purpose. They always used to speak sweat and to the point with a smile. They uttered sobre and pleasant words. They were affectionate towards persons coming to them. They provided protection to every one who came to them for help. They had the meritorious signs such as moles and til as mentioned in the texts. All the limbs and sub-parts of their body were well proportioned and fully developed. There face was serene like the moon. They were attractive to look at. They could not tolerate criminal activity. They were never slack in performing their duty.

They appeared very serious in expressing their tremendous power of punishing crimes. There was a symbol of palm tree on the flag of Baldev and that of eagle on the flag of Vasudev fluttering high. They had

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

shattered the ego of powerful wrestlers named Maushtik and Chamar. They had controlled the cruel bull Risht also. They were capable of tearing a lion with their hands. They had destroyed the pride of dreadful Kaliya serpent. They had destroyed Yamalarjun who had transformed into a tree with his fluid power. They were the enemies of Mahashakuni and Putana, the two Vidyadhar ladies belonging to the side of Kans. They had thrown down Kans by holding his crown and killed him. They had subdued the ego of Jarasandh.

They were looking grand with such umbrellas which were thick, equal in size and were made of highly lifted reeds and ribs and were emitting glow like the moon. They were spreading their aura all around like rays of the sun. They were held on many rods as they were huge.

The holy brooms were moving around them. They were as white as the clean white lotus, like hair of the most unique healthy Chamari cows wandering in the caves of the hills, like the top of Rajat (silver) mountain or like the rays of spotless moon. They were clean like silver. They moved with the wind. They were dancing and were waving like rising waves in Kshir Samudra (milky white sea). They were as white as fast moving female swans which were surpassing the other substances moving up and down, sitting on Swarnagiri mountain and having a white look and populerly dwelling in lake Mansarovar. The handles of the brooms were studded with many types of Chandrakant precious stones. Many of them were made of very precious purified gold. Some were of red gold. Those brooms were extremely beautiful. They were indicating the arrival of Rajalakshami. They are prepared by experts in the line. Such brooms are used in prosperous royal families. Clear beautiful smell was oozing out from the said brooms due to the incense of fragrant substances like black agar, best Cheer wood and Turukk. Since the brooms were moving on both sides of them, its pleasant cool air was touching every part of their body.

They (Vasudev and Baladev) and their chariots are invincible. Balaram keeps in hand the plough, mace and arrow. Vasudev keeps conch shell, Sudarshan Chakra (disc), trishul and Nand Sword. They wear crowns and Kaustubh gem prepared neatly and carefully. Their faces shine due to earrings. Their eyes are bright like white lotus. Their

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

neck and chest have the symbol of Shrivatsa. They are very influential. The unique garland prepared from fragrant flowers of all seasons decorates their chest. Their body and limbs bear 800 beautiful different symbols that add to their beauty.

Their gait was as beautiful as that of elephants of best breed. They have waist-band at their waist. They wear blue and black silken clothes. They shine with their bright aura. Their voice was sobre, sweat and soft, like the roaring sound of new cloud in winter. They are brave like lion among human beings. Their gait was also like that of lion. They have defeated many powerful kings, like the lion. They are excellent. They are like full-moon for the natives of Dwarika.

They have the effect of austerities of their previous life-span. They enjoy the sensual pleasures as a result of meritorious deed of earlier period. They have life-span of several hundred years. They have amorous activities with their wives born in important areas. They enjoy pleasures relating to sense of touch, taste, sight and smell. But in the end they die in a state of non-satisfaction from worldly enjoyments.

Elaboration—In the earlier aphorism, it was mentioned that Chakravartis have great prosperity and means of happiness but they remain not fully satisfied with those enjoyment and die in that condition. In the present aphorism the prosperity, wealth and means of enjoyment of Baldevas and Vasudevas has been narrated and it is stated that at the time of death they are also in a state of non-satisfaction. Until today nobody has become fully satisfied with sensual enjoyments.

Each progressive and regressive cycle of time has Balbhadras and Narayans (titles for epoch making greatmen) besides Chakravartis. The opulence, physical powers, strength, vehicles, glory and other qualities of a Narayan or Vasudev are half that of chakravarti. A balabhadra is the elder brother of a Vasudev.

In the aforesaid aphorism the description of Balbhadras and Narayans of every period has been included. The details of their personalities and indulgences clearly convey that in spite of enjoying best of material pleasures a mundane being never feels contented. Till the last moment of his life he remains discontented and dies. That is the purpose of this narrative.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This general description about all Balabhadras and Narayans also finds mention of the ninth Balabhadra (Balaram) and the ninth Narayan (Shri Krishna) of the current regressive cycle. Why so? Answering this question, the commentator, Abhaya Dev Suri mentions— Although this regressive cycle saw nine Balabhadras and nine Nayaranas, Balaram and Shri Krishna were most famous among them. That is the reason their stories feature more frequently.

Tirthankars are followed by chakravarties in status. They are twelve in number. Their glory has been detailed in preceding aphorism. Contemporary to Baladev-Vasudev are nine Prati-Vasudevs; they are eliminated by Vasudevs. Some salient features about Balaram and Shri Krishna, the last Balabhadra and Narayan of this cycle are as follows—

These two great men belonged to the Yadav class. This class had ten Dashars—(1) Samudra Vijaya, (2) Akshobhya, (3) Stimit, (4) Sagar, (5) Himavan, (6) Achala, (7) Dharan, (8) Puran, (9) Abhichandra and (10) Vasudev.

This class had 560 million Yadavas. Out of them 35 million were princes including Pradyumna Kumar. Balaram's mother was Rohini and Shri Krishna's mother was Devaki. The descriptions of their weapons and dresses has already appeared in the original text.

Wrestlers Mushtik and Chanur were killed by Baladev and Shri Krishna respectively. The incidents such as killing of Rishta bull; piercing the nose of Kalia, the great serpent; killing of Yamalarjun; killing of witches named Mahashakuni and Putana; killing of Kansa and Jarasandh are related to the life of Balaram and Shri Krishna. This is for the purpose of highlighting the powers of Baladevs and Vasudevs and conveying that even such uniquely endowed persous too are never contented with indulgence in mundane pleasures.

अब आगे शास्त्रकार ने माण्डलिक राजाओं के ऐश्वर्य वैभव और कामभोगों का वर्णन किया है।

Now the author narrates the wealth, grandeur and enjoyments of Mandalik Rajas (regional kings).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८७. भुज्जो मंडलिय–णरवरिंदा सबला सअंतेउरा सपरिसा सपुरोहियामच्च–दंडणायग–सेणावइ–मंतणीइ–कुसला णाणामणिरयणविपुल–धणधण्णसंचयणिही–समिद्धकोसा रज्जसिरिं विउलमणुहवित्ता विक्कोसंता बलेण मत्ता ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं।

८७. इसी तरह माण्डलिक राजा (विशाल राज्य का स्वामी) भी होते हैं। वे भी अत्यन्त बलवान अथवा सैन्य बल–सम्पन्न होते हैं। उनका अन्तःपुर विशाल होता है। वे परिवार या परिषदा से युक्त होते हैं। शान्तिकर्म करने वाले पुरोहितों से, मंत्रियों से, दंडाधिकारियों–दंडनायकों से, सेनापतियों से जो गुप्त मंत्रणा करने में कुशल एवं नीति निपुण होते हैं। अनेक प्रकार की मणियों, रत्नों, विपुल धन और धान्य आदि से उनके भण्डार समृद्ध होते हैं। वे अपनी विपुल राज्य–लक्ष्मी का भोगोपभोग करके, अपने शत्रुओं को जीतकर अक्षय भण्डार के स्वामी होकर (अपने) अपनी शक्ति के दर्प में चूर रहते हैं। ऐसे माण्डलिक राजा भी कामभोगों से तृप्त नहीं हुए। वे भी अतृप्त रहकर ही मृत्यु को प्राप्त हो गये।

87. Mandalik kings are also rulers of vast kingdoms. They are also extremely healthy and have great military strength. They have a family and cabinet. Their advisors consist of priests who perform activities for their peace, ministers, police chief and army general with whom they discuss secret plans as they are expert in administration. Their treasure is full of many types of precious stones, jewels, money and other articles. They are proud of their power in view of their vast kingdom. They enjoy the pleasures of the great treasure accumulated by defeating the enemies. Such Mandalik rules are also not satisfied with the means of their sensual enjoyments. They also died in a state of dis-satisfaction.

अकर्मभूमिज मनुष्यों के भोग ENJOYMENTS OF MEN OF LANDS OF NON-ACTION

अब शास्त्रकार ने यहां उत्तरकुरु–देवकुरु क्षेत्र के भोग सम्पन्न मनुष्यों के वैभव और कामभोग साधनों की चर्चा की है और उनकी भी अतृप्ति का प्रतिपादन किया है –

Now the author discusses the wealth and enjoyments of humans of lands of non-action like Uttar-Kuru and Dev-Kuru and conveys the ensuing dissatisfaction.

८८. भुज्जो उत्तरकुरु–देवकुरु–वणविवर–पायचारिणो णरगणा भोगुत्तमा भोगलक्खणधरा भोगसस्सिरीया पसत्थसोमपडिपुण्णरूवदरिसणिज्जा सुजायसव्वंगसुंदरंगा रत्तुप्पलपत्तकंतकरचरण–कोमलतला सुपइट्ठियकुम्मचारुचलणा अणुपुव्वसुसंहयंगुलीया उण्णयतणुतंबणिद्धणक्खा संठियसुसिलिट्ठगूढगुंफा एणीकुरुविंदवत्तवट्टाणुपुव्विजंघा समुग्गणिसग्गगूढजाणू वरवारणमत्ततुल्लविक्कम–विलासियगई वरतुरग–सुजायगुज्झदेसा आइण्णहयव्वणिरुवलेवा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पमुइयवरतुरगसीहअइरेगवट्टियकडी गंगावत्तदाहिणावत्ततरंगभंगुर–रविकिरण–बोहिय–विकोसायंतपम्हगंभीरवियडणाभी साहतसोणंदमुसल–दप्पणणिगरियवरकणगच्छरुसरिसवरवइरवलियमज्झा उज्जुगसमसहियजच्चतणुकसिणणिद्ध–आइज्जल–डहसूमालमउयरोमराई झसविहगसुजायपीणकुच्छी झसोयरा पम्हविगडणाभी संणयपासा संगयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाइयपीणरइयपासा अकरंडुयकणगरुयगणिम्मलसुजायणिरुवहयदेहधारी कणगसिलातलपसत्थसमतल–उवइयविच्छिण्ण–पिहुलवच्छा जुयसण्णिभपीणरइयपीवरपउट्ठसंठियसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसुणि–चियघणथिरसुबद्धसंधी पुरवर–फलिहवट्टियभुया।

भुयईसरविउलभोगआयाणफलिउच्छूढदीहबाहू रत्ततलोवतियमउयमंसलसुजाय–लक्खणपसत्थ–अच्छिद्दजालपाणी पीवरसुजायकोमलवरंगुली तंबतलिणसुइरुइलणिद्धणखा णिद्धपाणिलेहा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोवत्थियपाणिलेहा रविससिसंखवरचक्कदिसासो–वत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा वरमहिस वराहसीहसद्दूलरिसहणागवरपडिपुण्णविउलखंधा चउरंगुल–सुप्पमाणकंबुवरसिरसग्गीवा अवट्ठियसुविभत्तचित्तमंसू उवचियमंसलपसत्थसद्दूलविउलहणुया ओयविय–सिलप्पवालबिंबफलसण्णिभाधरोट्ठा पंडुरससिसकलविमलसंखगोखीरफेणकुंददगर यमुणालियाधवलदंतसेढी अखंडदंता अप्फुडियदंता अविरलदंता सुणिद्धदंता सुजायदंता एगदंतसेढिव्व अणेगदंता।

हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततला तालुजीहा गरुलायतउज्जुतुंगणासा अवदालियपोंडरीयणयणा कोकासियधवलपत्तलच्छा आणामियचावरुइलकिण्हब्भराजि–संठियसंगयायसुजायभुमगा अल्लीणपमाण–जुत्तसवणा सुसवणा पीणमंसलकवोलदेसभासा अचिरुग्गयबालचंदसंठियमहाणिलाडा उडुवइरिवपडिपुण्णसोमवयणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडियग्गसिरा हुयवहणिद्धं तधोयतत्ततवणिज्जरत्तकेसंतकेसभूमी सामलीपोंडघणणिचियछोडियमिउविसतपसत्थसुहुम–लक्खणसुगंधिसुंदरभुयमोयगभिंगणीलकज्जलपहट्ठभमर–गणणिद्धणिगुरुंबणिचियकुंचियपयाहिणा–वत्तमुद्धसिरया सुजायसुविभत्तसंगयंगा।

लक्खणवंजण–गुणोववेया, पसत्थबत्तीसलक्खणधरा, हंसस्सरा, कुंचस्सरा, दुंदुभिस्सरा, सीहस्सरा, (उज्ज) ओघसरा, मेघसरा, सुस्सरा, सुस्सरनिग्घोसा, वज्जरिसहनारायसंघयणा, समचउरंससंठाणसंठिया, छायाउज्जोवियंगमंगा, पसत्थच्छवी, निरातंका, कंकग्गहणी, कवोतपरिणामा, सउ (गु) णि पोसपिट्ठंतरोरुपरिणया, पउमुप्पल–सरिसगंधुस्साससुरभिवयणा अणुलोमवाउवेगा, अवदायनिद्धकाला, विग्गहियउन्नयकुच्छी, अमयरसफलाहारा, तिगाउयसमूसिया, तिपलिओवमट्ठितीका तिन्नि य पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता तेवि उवणमंति मरणधम्मं अवितित्ता कामाणं।

८८. उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्र के यौगलिक मानवगण, जो वनखण्डों, गुफाओं आदि में पाद विहार करते हैं, उत्तमोत्तम भोग–साधनों से सम्पन्न होते हैं, प्रशस्तता के सूचक स्वस्तिक आदि उत्तम लक्षणों के धारक होते हैं, भोग लक्ष्मी से शोभायुक्त होते हैं, उनका रूप बड़ा ही दर्शनीय एवं मांगलिक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्त और सुन्दर होता है, उनके शरीर के सभी अंगों की बनावट अच्छी होने से उनके सभी अंग सुन्दर होते हैं; उनकी हथेलियाँ और पैरों के तलुए लाल कमल के पत्तों की तरह कोमल और सुन्दर होते हैं, उनके पैर कछुए के समान उन्नत-उभरे हुए होते हैं; उनकी उँगलियाँ अनुक्रम से छोटी-बड़ी और छिद्ररहित होती हैं। उनके नख उभरे हुए, पतले, रक्तवर्ण और चिकने होते हैं। उनके पैरों के गुल्फ-टखने सुस्थित, सुघटित और माँसल होने के कारण दिखाई नहीं देते। उनकी जाँघें हिरनी की जाँघों के समान तथा कुरुविंद नामक तृणविशेष और सूत कातने की तकली के समान गोल और उत्तरोत्तर स्थूल होती हैं। उनके घुटने गोल डिब्बे और उसके ढक्कन के समान स्वाभाविक रूप से माँस से ढके हुए होते हैं; मतवाले उत्तम हाथी के समान उनका पराक्रम और मस्त सुन्दर गति-चाल होती है। उनका गुप्तांग-जननेन्द्रिय उत्तम जाति के घोड़े के गुप्तांग के समान सुनिर्मित होता है और उत्तम जाति के घोड़े के समान मलद्वार (गुदा भाग) मल से लिप्त नहीं होता।

उनका कटि भाग-कमर हृष्ट-पुष्ट घोड़े और सिंह की कमर से भी श्रेष्ठ गोलाकार होता है, उनकी नाभि गंगा नदी के आवर्त-भँवर के समान, दक्षिणावर्त्त लहरों के समूह के समान चक्करदार, सूर्य की किरणों से विकसित व कोश से बाहर निकले हुए कमल के समान गम्भीर और विशाल होती है। उनके शरीर का मध्य भाग समेटी हुई तिपाई या सिकुड़ी हुई दतौन की लकड़ी, मूसल और शुद्ध किये हुए श्रेष्ठ तपे हुए सोने की बनी हुई मूठ के समान और उत्तम वज्र के समान पतला होता है। उनकी रोमराजि सीधी, एक सरीखी, परस्पर सटी हुई, स्वभावतः बारीक, काली, चमकीली, सौभाग्यसूचक, मनोहर व अत्यन्त कोमल तथा रमणीय होती है। उनका पार्श्व भाग-बगलें मछली और पक्षी की कुक्षि के समान पुष्ट और सुन्दर रचना वाला होता है। उनका उदर भाग मछली के समान होता है। उनकी नाभि कमल के समान गम्भीर होती है। उनके पार्श्व प्रदेश नीचे की ओर झुके हुए होते हैं; इसलिए सुन्दर दिखाई देते हैं। यथायोग्य गुण वाले तथा परिमाण से युक्त, परिपुष्ट और रमणीय उनके पार्श्व होते हैं। उनकी पीठ और बगल की हड्डियाँ व पसलियाँ आदि माँसयुक्त होने से वे स्वर्ण के समान निर्मल, सुन्दर, पुष्ट और नीरोग होती हैं। उनका वक्षःस्थल सोने की शिला के तल के समान मांगलिक, समतल, माँसल, पुष्ट, विशाल और नगर के फाटक समान चौड़ा होता है। उनकी कलाइयाँ (कुहनी से नीचे का भाग) गाड़ी के जूए के समान, यूप (खम्भे) के समान, माँस से पुष्ट, रमणीय और मोटी होती हैं, तथा उनके शरीर की सन्धियाँ-जोड़ सुन्दर आकृति वाली, अच्छी तरह गठी हुई, मनोज्ञ, घनी, स्थिर, मोटी और अच्छी तरह बँधी हुई होती हैं। उनकी भुजाएँ महानगर के द्वार की भारी आगल के समान लम्बी और गोल होती हैं।

उन युगलियों के बाहु शेषनाग के शरीर के समान विस्तीर्ण और रम्य तथा अपने स्थान से बाहर निकाली हुई आगल के समान लम्बी होती हैं। उनके हाथ लाल-लाल हथेलियों से सुशोभित, माँस से पुष्ट, कोमल, सुन्दर बनावट वाले तथा स्वस्तिक आदि शुभ लक्षणों के कारण प्रशस्त एवं सटी हुई उँगलियों वाले होते हैं। उनके हाथों की उँगलियाँ परिपुष्ट, सुरचित, कोमल और श्रेष्ठ होती हैं। उनके नख ताम्रवर्ण की लालिमा लिए हुए बारीक (पतले), स्वच्छ, सुन्दर और चमकीले होते हैं। उनके हाथ की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेखाएँ चिकनी होती हैं तथा चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र और दक्षिणावर्त स्वस्तिक के आकार से अंकित होती हैं। यानी सूर्य, चन्द्रमा, शंख, श्रेष्ठ चक्र, दिक्-स्वस्तिक आदि विभिन्न आकृतियों से युक्त उनकी हस्तरेखाएँ होती हैं। उनके कंधे उत्तम जाति के बलवान महिष, सूअर, सिंह, व्याघ्र, सांड और गजेन्द्र के कंधों के समान परिपूर्ण और पुष्ट होते हैं। उनकी गर्दन चार अंगुल प्रमाण वाली एवं शंख जैसी सुन्दर होती है। उनकी दाढ़ी-मूँछें सदा एक सरीखी अलग-अलग दिखाई देने वाली और शोभादायक होती हैं। उनकी ठुड्डी पुष्ट, माँसल, प्रशस्त, बाघ की ठुड्डी की तरह विस्तीर्ण-चौड़ी होती है। उनके नीचे के ओठ शुद्ध मूँगे तथा बिम्बफल के सदृश लाल होते हैं। उनके दाँतों की पंक्ति चन्द्रमा के टुकड़े, निर्मल शंख, गाय के दूध, समुद्रफेन, कुन्दपुष्प, जलकण और कमलिनी के पत्ते पर पड़े हुए जलबिन्दु या कमल की नाल की तरह श्वेत-धवल होती है। उनके दाँत अखण्डित होते हैं; बिना टूटे, सघन, चिकने और सुरचित एक-दूसरे से सटे हुए होते हैं। उनके बत्तीस दाँत एक ही दाँत की पंक्ति के समान होते हैं।

उनके तलुए और जीभ का तलप्रदेश तपाये हुए निर्मल सोने के समान लाल-लाल होते हैं। उनकी नासिका गरुड़ की नाक के समान, लम्बी, सीधी और ऊँची उठी हुई होती है। उनके नेत्र खिले हुए श्वेत कमल के समान होते हैं तथा उनकी आँखें सदा प्रसन्न रहने के कारण विकसित धवल पपनी वाली होती हैं। उनकी भौहें किंचित् नीचे झुके हुए धनुष के समान सुन्दर तथा जमे हुए काले-काले बादलों की रेखा के समान आकारयुक्त काली, समुचित लम्बी-चौड़ी और सुन्दर होती हैं। उनके कान परस्पर सटे हुए प्रमाणोपेत होते हैं; जिनसे वे खूब अच्छी तरह सुन सकते हैं। अथवा उनके कान अच्छी तरह सुनने की शक्ति वाले होते हैं। उनके गाल तथा आसपास का भाग पुष्ट और माँस से भरे होने से लाल-लाल प्रतीत होते हैं। कुछ ही समय पहले उदित हुए बाल-चन्द्रमा के आकार के समान उनका विशाल ललाट होता है। उनका मुख-मण्डल पूर्ण चन्द्रमा के समान ही सौम्य होता है। मस्तक छत्र के समान उभरा हुआ होता है। सिर का अग्र भाग लोहे के मुद्‌गर के समान सुदृढ़ नसों से आबद्ध, उत्तम लक्षणों-चिन्हों से सुशोभित, शिखरयुक्त भवन तथा गोलाकार पिण्ड के समान होता है। उनके मस्तक की त्वचा (चमड़ी) अग्नि से तपाये एवं धोये हुए सोने-सी निर्मल, लाल तथा बीच में केशों से युक्त होती है। उनके मस्तक के बाल सेमर वृक्ष के फल के समान अत्यन्त घने, घिसे हुए से-बारीक, कोमल, सुस्पष्ट, प्रशस्त-चिकने, उत्तम लक्षण से युक्त, सुवासित और सुन्दर होते हैं तथा भुजमोचकरत्न के समान काले, नीलमणि, काजल, गुनगुनाते हुए प्रसन्न भौंरों के झुण्ड के समान काली कान्ति वाले, झुण्ड के झुण्ड इकट्‌ठे, टेढ़े-मेढ़े-घुँघराले एवं दाहिनी ओर मुड़े हुए होते हैं। उनके शरीर के अवयव सुडौल, सुरचित व यथा प्रमाण होते हैं।

वे यौगलिक उत्तम लक्षणों, तिल आदि व्यंजनों तथा गुणों से सम्पन्न होते हैं। वे प्रशस्त उत्तमोत्तम शुभ-बत्तीस लक्षणों के धारक होते हैं। उनका स्वर हंस के समान, क्रौंच पक्षी के समान, दुन्दुभि के वादक एवं सिंह की गर्जना के समान होता है। उनका स्वर ओघ अविच्छिन्न और अत्रुटित होता है। उनकी ध्वनि मेघ की गर्जना जैसी होती है, अतएव कानों को प्रिय लगती है। उनका स्वर-आवाज और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्घोष शब्दोच्चारण दोनों ही सुन्दर होते हैं। वे वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसंस्थान के धारक होते हैं। उनके अंग-प्रत्यंग कान्ति से देदीप्यमान रहते हैं। उनके शरीर की त्वचा उत्तम होती है। वे नीरोग होते हैं और कंक नामक पक्षी के समान अल्प आहार ग्रहण करते हैं। उनकी आहार को पचाने की शक्ति कबूतर जैसी होती है। उनका मल-द्वार पक्षी के समान होता है, जिसके कारण मल-त्याग के पश्चात् वह मल-लिप्त नहीं होता। उनकी पीठ, पार्श्व भाग और जंघाएँ सुन्दर, सुपरिमित होती हैं। उनका श्वास एवं मुख पद्म-कमल और उत्पल-नील कमल की सुगन्ध के सदृश मनोहर गन्ध से सुगन्धित रहता है। उनके शरीर की वायु का वेग सदा अनुकूल रहता है। वे गौर-वर्ण, स्निग्ध तथा श्याम होते हैं (या उनके सिर पर चिकने और काले बाल होते हैं)। उनका उदर शरीर के अनुरूप उन्नत होता है। वे अमृत के समान रसीले फलों का आहार करते हैं। उनके शरीर की ऊँचाई तीन गाऊ तीन कोस की और आयु तीन पल्योपम की होती है। पूरी तीन पल्योपम की आयु को भोगकर वे अकर्मभूमि-भोगभूमि के मनुष्य (अन्त तक) कामभोगों से अतृप्त रहकर ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

88. The twin (Yaugalik) human beings of Devkuru and Uttarkuru area move in the forests and caves. They have the best means of worldly enjoyment. They have good signs on their body, which indicate that they shall lead a comfortable life. Their facial expression is highly attractive, quiet, beautiful and meritorious. The structure of all the limbs of their body is good. So they look very beautiful. Their palms and the lower side of their feet are soft and beautiful like leaves of the red lotus. Their feet are bulged like a tortoise. Their fingers are in order and without any gap. Their nails are raised, thin, soft and of red colour. Their ankles are well developed properly proportioned and are not visible because they are fleshy. Their thighs are round and proportional and fleshy like those of a doe, Kuruvind (a type of reed) and the spinning spindel (Takali). Their knees are like a round box with a cover and they are naturally covered with flesh. Their strength is like that of an intoxicated elephant. Their gait is charming. Their genitals are like those of a horse of good breed and are well developed. Their anus is free from foul matter like that of a horse of good breed.

Their waist is better than even that of a healthy horse or of a lion. It is round in shape. Their navel is like a whirlpool in river Ganga. It is circular like number of waves moving round collectively. It is deep and wide like a lotus flower in full bloom due to falling rays of the sun. The central part of their body is sleek like bundled tripod, shrunk wood, a mace (moosal) or a handle of pure gold or Vajra of best quality. Their

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

body hair are in straight line, identical and closely knit together. They are very fine, black, shining and indicator of good fortune. They are extremely soft, beautiful and attractive. Their flanks are well developed and beautifully built like a fish or a bird. Their belly is like a fish. Their navel is sobre like lotus. The sides are bent downwards. So they look beautiful. They are in proper proportion, well developed and charming. The bones and ribs of their back and sides are fleshy and they are clean, beautiful, properly developed and healthy like gold. Their breast is level like a slab of gold. It is meritorious, smooth, levelled, fleshy, developed, broad and wide like the gateway of a town. Their wrists are like yoke of a cart or a pillar. They are fleshy, attractive and thick. The joints of their body are beautiful in shape and closely knit, thick, stable, beautiful and properly joined. Their arms are long and round like the bolt of the gate of a city.

The arms of the Yugaliks are thick like the body of the great serpent and beautiful. They are long like the door-bolt protruding out. Their hands look charming because of red palms. They are fleshy, soft and beautiful in shape. They have properly proportioned fingers and they have good signs like Swastik. Their fingers are developed, soft, fine and properly built. Their nails are thin, clean, beautiful, shining and have the redness of copper. The lines on their hands are smooth. They bear the shapes of moon, sun, conch shell, nice wheel, swastik and other different shapes. Their shoulders are like the shoulders of healthy he-buffalo, pig, lion, tiger, bull and the master elephant of best class. They are complete and well developed. Their neck in length is equal to thickness of four fingers and it is as beautiful as conch-shell. Their beard and moustaches are symmetrical, distinct and beautiful in appearance. Their chins are strong, covered with flesh, good and broad like the bones of tiger. Their lower lips are as red as pure coral or Bimb fruit. The row of their teeth is white like a piece of moon, spotless conch shell, cow's milk, foam of the sea, Kunda flower, water drop, the water drop on lotus leaf or the lotus tube. Their teeth are complete, well-set, soft, well built and none is broken. They are very close to each other. Their thirty two teeth look like a single wide teeth.

Their palate and tongue are as red as heated gold. Their nose is long like that of a Garud. It is straight and raised upwards. Their eyes are

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

like blossoming white lotus. Since they are always happy, their eyes have white developed lids. Their eye-brows are beautiful like a bow bent downwards a bit. Their shape is like a line of black frozen clouds. It is in proper proportion and beautiful. Their ears are properly set and in proper size, so they can properly hear. They have the proper faculty of hearing. Their cheeks are developed, fleshy and appear to be red. Their broad forehead is like recently risen small moon. Their face is as bright as full moon. Their forehead is a bit bulging like an umbrella. The front part of their head is strong like iron dumble. It is well knit with sinews. It has good signs. It looks like a mansion having a spire or a round ball. The skin of their head is as clean and red as the gold cleaned in fire. It has hair in the centre. The hair on the head are very thick like the fruit of Semal tree. They are fine, soft, distinct, shining and have good signs. They produce fragrance and look beautiful. They are as black as Bhujamochak jewel, neelamani, coryllium, buzzing happy bumble bees. They are in cluster, ring-shaped and turned to the right. All the parts of their body are well built and in proper proportion.

These Yugaliks are equipped with the best symbols, til and other good marks and qualities. They have thirty two good features. Their voice is sweat like that of a swan or that of cronch bird. It is deep like that of drum (dundubhi). It is as roaring as that of a lion. Their voice is not an interrupted one and not a disturbing one. Their sound is as roaring as that of a cloud so it is pleasant to the ear. Their voice, talk and pronunciation are all very beautiful. Their physical constitution is extremely strong (Vajra-rishabh-naraach) and structure is symmetrical (Sam Chaturasra Sansthaan). Their parts and sub-parts of the body are bright. The skin of their body is excellent. They are free from diseases and they take only a little food like Kank bird. Their digesting power is like that of a pigeon. Their stool is like that of a bird. So it does not stick to their body after the call of nature. Their back, sides and thighs are beautiful and suited to the body. Their breath is as fragrant as lotus flowers. Their discharge is always normal. They are white, bright or loveable black in complexion. They have soft black hair on the head. Their belly is in accordance with their body. They take nectar like juicy fruit. Their height is three kos (6 miles). There life-span is three palyopam (a measure of time). After completely passing that period of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

three palyopam these human beings of akarm bhoomi (where one does not have to make any effort for livelihood) they die in a state of non-satisfaction.

विवेचन : उपरोक्त सूत्रों में यद्यपि देवकुरु और उत्तरकुरु नामक अकर्मभूमि-भोगभूमि के नाम का उल्लेख किया गया है, तथापि उपरोक्त वर्णन प्रायः सभी तीस अकर्मभूमिज मनुष्यों के लिए और ५६ अंतरद्वीप के युगलिकों के लिए समझ लेना चाहिए। आयु और अवगाहना जहाँ जितनी है उतनी समझनी चाहिए। देवकुरु और उत्तरकुरु का नामोल्लेख करने का कारण यह प्रतीत होता है कि वह उत्तम अकर्मभूमि है।

अकर्मभूमि के मनुष्य युगलिक कहलाते हैं, क्योंकि वे पुत्र और पुत्री के रूप में-युगल के रूप में ही उत्पन्न होते हैं। वे पुत्र और पुत्री ही आगे चलकर पति-पत्नी बन जाते हैं और एक युगल को जन्म देते हैं। अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं होती।

इन युगलों का जीवन-निर्वाह वृक्षों से होता है। वनस्पतिभोजी एवं पूर्ण रूप से प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के कारण उनकी शारीरिक रचना कितनी सुगठित, स्वस्थ एवं स्पृहणीय होती है, यह तथ्य मूल पाठ में वर्णित उनकी शरीरसम्पत्ति से कल्पना में आ सकता है। उनका जीवन बहुत ही शान्त, निर्द्वन्द्व तथा कषाय की मंदता वाला होता है। उनमें स्वार्थलिप्सा भी बहुत कम होती है।

उक्त विस्तृत वर्णन का उद्देश्य यही प्रदर्शित करना है कि तीन पल्योपम जितने दीर्घकाल तक और जीवन की अन्तिम घड़ी तक यौवन-अवस्था में रहकर इच्छानुकूल एवं श्रेष्ठ से श्रेष्ठ भोगों को भोगकर भी मनुष्य तृप्त नहीं हो पाता। जीवन पर्यन्त अतृप्ति बनी ही रहती है। प्रस्तुत सूत्र में युगलों को बत्तीस प्रशस्त लक्षणों का धारक कहा गया है। वे बत्तीस लक्षण इस प्रकार होते हैं-

(१) छत्र, (२) कमल, (३) धनुष, (४) उत्तम रथ, (५) वज्र, (६) कूर्म, (७) अंकुश, (८) वापी, (९) स्वस्तिक, (१०) तोरण, (११) सर, (१२) सिंह, (१३) वृक्ष, (१४) चक्र, (१५) शंख, (१६) गज-हाथी, (१७) सागर, (१८) प्रासाद, (१९) मत्स्य, (२०) यव, (२१) स्तम्भ, (२२) स्तूप, (२३) कमण्डलु, (२४) पर्वत, (२५) चामर, (२६) दर्पण, (२७) वृषभ, (२८) पताका, (२९) लक्ष्मी, (३०) माला, (३१) मयूर, और (३२) पुष्प। (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २/२८)

Elaboration—The description in these aphorisms is that of Devakuru and Uttarkuru area. Yet it should be understood that similar account is of all the thirty akarm areas and 56 middle islands (Antardveep). It appears that Devakuru and Uttarkuru have been specifically mentioned because they are the best among them.

The human beings of akarm area are called Yugalik because they take birth as twins—one male and the other female this son and daughter pair later on becomes husband and wife and gives birth to one couple. They do not have any more offspring.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The livelihood of these Yugaliks is based on trees (that satisfy all desires). They lead a completely natural life based on vegetables. The structure of their body is healthy and well built. This fact can be derived from the description of their anatomical wealth. Their life is very peaceful and free from quarrels. Their passions are mild. Their attachment to self is also pretty low.

The purpose of detailed description of their life is to bring home the fact that even after leading a very long life of three palyopam, a human being at the fag end of his life does not feel satisfied although he had enjoyed sensual pleasures of his choice and of a very high order. This feeling of non-satisfaction persists till the end of their life.

In the present aphorism, it has been mentioned that Yugaliks had 32 noble signs. They are as follows—

(1) Umbrella, (2) Lotus, (3) Bow, (4) Unique chariot, (5) Vajra, (6) Tortoise, (7) Short Lance (ankush), (8) Lake (Vapi), (9) Swastika, (10) Arch (Toran), (11) Pond, (12) Lion, (13) Tree, (14) Disc, (15) Conch shell, (16) Elephant, (17) Palace, (19) Fish, (20)) Barley (Yav), (21) Pillar, (22) Memorial mound (Stupa), (23) Gourd Bowl (Kamandalu), (24) Hill, (25) Whisk (Chamar) (26) Mirror, (27) Bull, (28) Flag, (29) Goddess (Lakshmi), (30) Garland, (31) Peacock, (32) Flower *(Jambudveep Prajnapti 2/28)*

अकर्मभूमिज नारियों की शरीर–सम्पदा **PHYSICAL WEALTH OF WOMEN OF AKARM AREA**

८९. पमया वि य तेसिं होंति सोम्मा सुजायसव्वंगसुंदरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अइकंतविसप्पमाणमउय– सुकुमालकुम्मसंठियसिलिट्ठचलणा उज्जुमउयपीवरसुसाहयंगुलीओ अब्भुण्णयर–इयतलिणतंबसुइणिद्धणखा रोमरहियवट्टसंठियअजहण्णपसत्थलक्खणअकोप्पजंघजुयला सुणिम्मियसुणिगूढजाणू मंसलपसत्थसुबद्धसंधी कयलीखंभाइरेकसंठियणिव्वणसुकुमालमउयकोमलअविरलसमसहियसु–जायवट्टपीवरणिरंतरोरू अट्ठावयवीइपट्टसंठियपसत्थविच्छिण्णपिहुलसोणी वयणायामप्पमाणदुगुणिय–विसालमंसलसुबद्धजहणवरधारिणीओ वज्जविराइयपसत्थलक्खणणिरोदरीओ तिवलिवलियत–णुणमियमज्झियाओ उज्जुयसमसहियजच्चतणुकसिणणिद्ध–आइज्जलडहसुकुमालमउयसुविभत्तरोमराईओ।

गंगावत्तगपदाहिणावत्ततरंगभंगरविकिरणतरुणबोहियअकोसायंत पउमगंभीरवियडणाभी अणुब्भड–पसत्थसुजायपीणकुच्छी सण्णयपासा सुजायपासा संगयपासा मियमाइयपीणरइयपासा अकरंडुयकणगरुयग–णिम्मलसुजायणिरुवहयगायलट्ठी कंचणकलसपमाण–समसहियलट्ठचुचुय–आमेल–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गजमलजुयलवट्टियपयोहराओ भुयंगअणुपुव्वत–णुयगोपुच्छवट्टसमसहियण–मियआइज्जलडहबाहा तंबणहा मंसलग्गहत्था कोमलपीवरवरंगुलिया णिद्धपाणिलेहा ससिसूरसंखचक्कवरसोत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा।

पीणुण्णयकक्खवत्थीप्पएसपडिपुण्णगलकवोला चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा मंसलसंठिय–पसत्थहणुया दालिमपुप्फप्पगासपीवरपलंबकुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्ठा दधिदगरयकुंदचंदवा–संतिमउल–अच्छिद्दविमलदसणा रत्तुप्पलपउमपत्तसुकुमालतालुजीहा कणवीरमउल–अकुडिलअब्भुण्णयउज्जुतुंगणासा सारयणवकमलकुमुयकुवल–यदलणिगरसरिसलक्खण–पसत्थअजिम्हकंतणयणा आणामिय–चावरुइल–किण्हब्भराइसंगय–सुजायतणुकसिणद्धभुमगा अल्लीणपमाणजुत्तसवणा सुस्सवणा पीणमट्ठगंडलेहा चउरंगुलविसालमणिडाला कोमुइरयणियरविमलपडिपुण्णसोमवयणा छत्तुण्णयउत्तमंगा अकविलसुंसिणि–द्धदीहसिरया।

छत्त–ज्झय–जूव–थूभ–दामिणि–कमंडलु–कलस–वावि–सोत्थिय–पडाग–जव–मच्छ–कुम्भ–रहवर–मकरज्झय–अंक–थाल–अंकुस–अट्ठावय–सुपइट्ठअमरसिरियाभिसेय–तोरण–मेइणि–उदहिवर–पवरभवणगिरिवर–वरायंस–सुललियगय–उसभ–सीह–चामर–पसत्थबत्तीसलक्खणधरीओ।

हंससरिसगईओ कोइलमहुरगिराओ कंता सव्वस्स अणुमयाओ ववगयवलिपलितवंग–दुव्वण्ण–वाहि–दोहग्ग–सोयमुक्काओ उच्चत्तेण य णराण थोवूणमूसियाओ सिंगारागारचारुवेसाओ सुन्दरथणजहण–वयणकरचरणणयणा लावण्णरूवजोव्वणगुणोववेया णंदणवणविवरचारिणीओ अच्छराओव्व उत्तरकुरुमाणु–सच्छराओ अच्छेरगपेच्छणिज्जियाओ तिण्णि य पलिओवमाइं परमाउं पालइत्ता ताओ वि उवणमंति मरणधम्मं अवितित्ता कामाणं।

८९. उन युगलिकों की स्त्रियाँ भी सौम्य–शान्त स्वभाव वाली होती हैं। अंगों से सुन्दर और महिलाओं के मुख्य–मुख्य उत्तम गुणों से युक्त होती हैं। उनके चरण अत्यन्त कमनीय, चलते समय कोमल वस्तुओं से भी अतिकोमल, सुकुमार, कछुए की तरह बीच में उभरे हुए, मनोहर होते हैं। उनकी अंगुलियाँ सीधी, कोमल, पुष्ट और परस्पर सटी हुई होती हैं, उनके नख आगे को उठे हुए, सुखद या सुरचित, पतले, ताँबे के समान लाल, साफ एवं चिकने होते हैं। उनकी दोनों जंघाएँ–पिण्डलियाँ रोओं से रहित, छाते की–सी उभरी हुई, गोलाकार, उत्तम और मांगल्य चिह्नों से युक्त और देखने में रमणीय होती हैं। उनके घुटने अच्छी तरह से बने हुए और माँस से ढके होने से सुन्दर प्रतीत होते हैं। उनकी संधियाँ जोड़ें माँस से पुष्ट, प्रशस्त और सुगठित–परस्पर बँधी हुई होती हैं। उनके दोनों उरु–जंघाएँ सांथल केले के खम्भे से भी अधिक गठे हुए आकार की, घाव आदि से रहित, सुकुमाल, मुलायम एवं चिकनी होती हैं, तथा अन्तररहित समप्रमाण वाले, सुन्दर, गोल और सुपुष्ट होती हैं। उनकी श्रोणि (कटिप्रदेश) जूए या चौपड़–शतरंज खेलने के पट्टे के समान आकार वाली रेखाओं सरीखी, सुन्दर लक्षणों सहित अथवा सहनशील, विस्तीर्ण और पृथुल होती है। वे अपने मुख की लम्बाई के प्रमाण (बारह अंगुल) से दुगुनी (यानी २४ अंगुल) लम्बी, विशाल, माँस से पुष्ठ, सुगठित जघन–कमर के आगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के भाग-पेडू को धारण करने वाली होती है। उनका उदर मध्य में पतला-कृश होने से वज्र के समान शोभायमान, शुभ लक्षणों से युक्त और अत्यन्त कृश होता है। उनके शरीर का मध्य भाग त्रिवलियों-तीन रेखाओं से अंकित, पतला और झुका हुआ होता है। उनकी रोमराजि सीधी, एक सरीखी, परस्पर मिली हुई, स्वाभाविक रूप से बारीक, काली, आकर्षक, ललित, सुकुमार, मुलायम और अलग-अलग रोमों से युक्त होती है।

उनकी नाभि गंगा नदी के भँवरों के समान, दक्षिण की ओर चक्कर लगाने वाली तरंगों के समान, सूर्य की किरणों का स्पर्श होते ही ताजे नये खिले हुए व कोश से अलग हुए कमल के समान गम्भीर और विशाल होती है। उनकी कुक्षि बाहर नहीं उभरी हुई-प्रशस्त, श्रेष्ठ और पुष्ट होती है। उनके पार्श्व भाग (काँख से नीचे का भाग-बगलें) उचित प्रमाण में नीचे की ओर अच्छी तरह झुके हुए होते हैं, सुन्दर होते हैं, परिपुष्ट और आनन्ददायक होते हैं। उनकी गात्रयष्टि देहरूपी यष्टि स्वाभाविक रूप से शुद्ध-साफ सोने के रुचक-एक प्रकार के आभूषण की तरह निर्मल-स्वच्छ, सुनिर्मित एवं रोगादि से रहित होती है। उनके दोनों स्तन सोने के कलशों की तरह गोल, उन्नत, समान, कठिन, मनोहर, जुड़वाँ जैसे, अग्रभाग पर लगी हुई दो चूचि (स्तनाग्र भाग) से युक्त होते हैं। उनकी दोनों बाँहें सर्प की आकृति के समान क्रमशः पतली, गाय की पूँछ के समान गोल, एक सरीखी, शिथिलतारहित, झुकी हुई, आकर्षक और रमणीय होती हैं। उनके नख ताँबे के समान लाल होते हैं। उनके हाथ के पंजे माँसल परिपुष्ट होते हैं, उनके हाथों की अंगुलियाँ कोमल और पुष्ट होती हैं; उनके हाथों की रेखाएँ चिकनी होती हैं; तथा उनमें चन्द्रमा, सूर्य, शंख, श्रेष्ठ चक्र, स्वस्तिक आदि शुभ विभिन्न चिह्न अंकित होते हैं।

उनकी काँख और मलोत्सर्ग का स्थान-गुह्य प्रदेश उभरे हुए हैं तथा कपोल परिपूर्ण और गोलाकार होते हैं। उनकी ग्रीवा चार अंगुल प्रमाण वाली, श्रेष्ठ शंख के जैसी होती है; उनकी ठुड्डी माँस से भरी हुई, पुष्ट और आकर में प्रशस्त होती है। उनके निचले ओठ अनार के खिले हुए फूल के समान चमकदार, लाल-लाल, कान्तिमय, कुछ लम्बे और सिकुड़े हुए होते हैं, उनके ऊपर के ओठ भी बड़े सुन्दर होते हैं। उनके तालु और जीभ लाल कमल के समान कोमल होते हैं। उनकी नाक कनेर की कलियों के समान टेढ़ेपन से रहित, आगे से अन्दर की ओर उठी हुई, सीधी और ऊँची होती हैं। उनके नेत्र शरद्-ऋतु के ताजे सूर्यविकासी कमल और चन्द्रविकासी कुमुदपुष्प तथा नीलकमल के पत्तों के समूह के समान शुभ लक्षणों से श्रेष्ठ, कुटिलतारहित और कमनीय होते हैं। उनकी भौंहें किंचित् कुछ नमाये हुए धनुष के समान मनोहर, काले-काले बादलों की घटाओं की-सी सुन्दर, पतली, काली और चिकनी होती हैं। उनके कान अच्छी तरह सटे हुए और समुचित होते हैं। उनके कानों की श्रवण शक्ति अच्छी होती है, उनके कपोल प्रमाणयुक्त पुष्ट और चिकने होते हैं, उनका ललाट चार अंगुल चौड़ा और विस्तीर्ण होता है। उनका मुख चाँदनी से युक्त निर्मल पूर्ण चन्द्रमा के समान गोल और सौम्य होता है। उनका मस्तक छत्र के समान गोल और उभरा हुआ होता है। उनके मस्तक के केश काले, चिकने और लम्बे-लम्बे होते हैं। उनकी गति-चाल हंस के समान होती है। कोयल के समान उनकी मधुर वाणी होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐卐

हैं। वे कान्ति वाली और सर्वजनप्रिय होती हैं। वे मुख पर झुर्रियों, सफेद बालों और अपंगपन-अंगविकलता से रहित होती हैं तथा कुरूपता, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से मुक्त हैं। वे ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम (चार अंगुल) ऊँची होती हैं। वे निम्नलिखित उत्तम बतीस लक्षणों से सम्पन्न होती हैं-

(१) छत्र, (२) ध्वजा, (३) यज्ञस्तम्भ, (४) स्तूप, (५) दामिनी-माला, (६) कमण्डलु, (७) कलश, (८) वापी, (९) स्वस्तिक, (१०) पताका, (११) यव, (१२) मत्स्य, (१३) कच्छप, (१४) प्रधान रथ, (१५) मकरध्वज (कामदेव), (१६) वज्र, (१७) थाल, (१८) अंकुश, (१९) अष्टापद-जुआ खेलने का पट्ट या वस्त्र, (२०) स्थापनिका-ठवणी या ऊँचे पैंदे वाला प्याला, (२१) देव, (२२) लक्ष्मी का अभिषेक, (२३) तोरण, (२४) पृथ्वी, (२५) समुद्र, (२६) श्रेष्ठ भवन, (२७) श्रेष्ठ पर्वत, (२८) उत्तम दर्पण, (२९) क्रीड़ा करता हुआ हाथी, (३०) वृषभ, (३१) सिंह, और (३२) चमर।

वे कमनीय कान्ति से युक्त और सभी को प्रिय लगती हैं। वे शृंगार के आगार के समान और सुन्दर वेश-भूषा से सुशोभित होती हैं। उनके स्तन, जघन, मुख, हाथ, पाँव और नेत्र-सभी अंग अत्यन्त सुन्दर होते हैं। लावण्य, रूप और यौवन के गुणों से सम्पन्न होती हैं। वे नन्दनवन में विहार करने वाली अप्सराओं सरीखी उत्तरकुरु क्षेत्र की मानवी अप्सराएँ होती हैं। उन्हें देखकर उनके अद्भुत सौन्दर्य पर आश्चर्य होता है कि मानवी में भी इतना अपार सौन्दर्य सम्भव है! वे तीन पल्योपम जितने दीर्घकाल तक इष्ट एवं उत्कृष्ट मानवीय भोगपभोगों का उपभोग करके भी कामभोगों से तृप्त नहीं हो पातीं और अतृप्त रहकर ही कालधर्म को प्राप्त होती हैं।

89. The ladies of those Yugaliks are quiet and sobre by nature. They have beautiful features and all the primary good qualities of women. Their feet are very beautiful. They are more soft than all the soft things, and with a bulge in the middle like a tortoise. They look very charming. Their fingers are straight, soft, well developed and very close to each other. Their nails are a bit protruding, pleasant to look at and properly built. They are thin and red like copper, neat and slippery. Their thighs and shins are free from hair and raised like an umbrella. They are round in shape and possess auspicious marks. They are very charming to look at. Their knees are well built and covered with flesh. So they look graceful. Their joints are healthy, fleshy and properly shaped. Their two thighs are like banana trunk in shape and more closely knit. They are soft, levelled, slippery and free from any mark of wound. They are in proper proportion, round, beautiful and well built. Their waist is like the lines in a chess board. They are beautiful having good signs, broad and smooth. They are twice the size of the mouth (12 fingers thick), fleshy, well knit and have the pubis at its front. Their belly looks like Vajra as it

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

is slim at the centre. It is very slim and has good marks on it. The middle part of their body has three lines. It is thin and bent. The lines of hair on their body are identical, straight, closely connected to each other and very fine (subtle) by nature. They are black, attractive, beautiful, smooth, soft and have distinct hair.

Their navel is like whirlpools in Ganga river. It is like currents in circular motion towards the south. It is deep and spread like freshly blossoming lotus at the touch of sun rays. Their armpit is beautiful and properly developed. It is not bulging out. Their sides are in proper shape and tapering down properly. They are charming and pleasant to the eye. Their body is as pure, clean, properly developed as the ornament made of pure gold. They are free from disease. Their breasts are round like golden pitchers, developed, identical, shapely, beautiful and close to each other. They have nipples at their tips. Their arms are serpent-like in shape gradually becoming thinner. They are round like the tail of a cow, identical, free from weakness, bent, attractive and beautiful. Their hands are fleshy. Their fingers are soft and properly built. The lines on their hands are smooth and various signs such as those of moon, sun, conch shell, good wheel, Swastika and others are visible on them.

Their armpit and private parts are plump. Their cheeks are round and properly developed. Their neck in length is equal to thickness of four fingers. It is like good conch shell. Their chin is covered with flesh and good in shape. Their lower lips are red like blossoming flower of pomegranate. They are bright, shining and slim. Their upper lips are also very beautiful. Their palate and tongue are soft like red lotus. Their nose, like Kaner flower, is free from any bend. It is tapered inside, straight and high. Their eyes are like fresh sunflowers of winter. They bear good marks like flowers blossoming in moonlight and bunch of leaves of blue lotus flowers. They are beautiful and free from any crookedness. Their eye-brows are as beautiful as a little bent bow. They are as black and beautiful as the black clouds bearing rain. They are thin and soft. Their ears are in proper proportion and clinching to their body. Their hearing power is good. Their cheeks are developed, smooth and in proper proportion. Their forehead is four finger broad and wide. Their voice is as sweat as that of a Cuckoo. It is liked by every one. They do not have wrinkles, white hair or any deformity of limbs. They are free

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

from ugliness, diseases, ill luck or sorrow. They are a little less in height than men. They have the following 32 meritorious signs—

(1) Umbrella, (2) Flag, (3) Yajna Pillar, (4) Memorial mound, (5) Garland, (6) Bucket, (7) Pot, (8) Lake, (9) Swastika, (10) Buntings, (11) Yav (barley), (12) Fish, (13) Tortoise, (14) Main chariot, (15) Cupid, (16) Vajra, (17) Plate, (18) Short lance, (19) Cloth board for gambling, (20) Cup with high bottom, (21) Celestial being, (22) Anointing of Lakshmi, (23) Welcome gate, (24) Ground, (25) Sea, (26) Mansion, (27) Holy hill, (28) Holy mirror, (29) Playing elephant, (30) Bull, (31) Lion, and (32) Whisk.

They have a beautiful glow and are loved by all. They are abode of embellishment and adorned in beutiful dress. Their breasts, thighs, face, hands, feet and eyes are all extremely beautiful. They have all the charms of the youth. They are fairies in human form of Uttarkuru area like the fairies moving in Nandan forest. One feels wonder struck at their beauty and feels how it is possible to see such a grand beauty in human beings. They do not feel satisfied with the worldly pleasures they enjoy for a long period of three palyopam. They die in a state of non-satisfaction.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में भोगभूमि की महिलाओं का नख से शिख तक का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस वर्णन में उनके शरीर के समस्त अंगोपांगों का पृथक्-पृथक् वर्णन है, जो विविध उपमाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है।

यह सब कथन उनके बाह्य सौन्दर्य का प्रदर्शक है। उनकी आन्तरिक प्रकृति, स्वभाव आदि के विषय में यहाँ कोई उल्लेख नहीं है। इसका कारण यह है कि इससे पूर्व भोगभूमिज पुरुषों के वर्णन में जो कहा जा चुका है, वह यहाँ भी समझ लेना है। तात्पर्य यह है कि वहाँ के मानव-पुरुष जैसे अल्पकषाय एवं सात्त्विक स्वभाव वाले होते हैं वैसे ही वहाँ की महिलाएँ भी होती हैं। जैसे पुरुष पूर्णतया निसर्गजीवी होते हैं वैसे ही नारियाँ भी सर्वथा निसर्ग-निर्भर होती हैं। प्रकृतिजीवी होने के कारण उनका समग्र शरीर सुन्दर होता है, नीरोग रहता है और अन्त तक उन्हें वृद्ध अवस्था जनित विडम्बना नहीं भुगतनी पड़ती। उन्हें बुढ़ापा नहीं आता। जीवन-पर्यन्त वे आनन्द, भोग-विलास में मग्न रहती हैं। फिर भी अन्त में भोगों से अतृप्त रहकर ही मरण को प्राप्त होती हैं।

Elaboration—In the present lesson the beauty of ladies of bhog land (land of enjoyment) has been described from tip to toe. In this narration each part of their body has been separately described and it has been elaborated by suitable analogies.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

All this description expresses their external beauty. There is no mention of their inner nature, behaviour and the like. It is because whatever has been said earlier about the men of the land of enjoyment (bhog bhoomi) should be considered here also. In nutshell the women of this area have mild passion and good nature like men. Just as men live on nature, so do the women. Since they live on nature their entire body is beautiful. It is always free from diseases. They do not have to face decline in health even in old age. In fact they never look old, they remain engrossed in worldly pleasures and enjoyment throughout their life, still they die in a state of non-satisfaction.

परस्त्री लुब्ध जीवों की दुर्दशा BAD CONDITION OF MEN ATTRACTED TO OTHER'S WOMEN

प्रस्तुत सूत्र पाठ में बताया गया है कि अब्रह्मचर्य सेवन का आचरण करने वाले किस तरह का आचरण करते हैं।

९०. मेहुणसण्णासंपगिद्धा य मोहभरिया सत्थेहिं हणंति एक्कमेक्कं। विसयविसउदीरएसु अवरे परदारेहिं हम्मंति विसुणिया धणणासं सयणविप्पणासं य पाउणंति। परस्स दाराओ जे अविरया मेहुणसण्णासंपगिद्धा य मोहभरिया अस्सा हत्थी गवा य महिसा मिगा य मारेंति एक्कमेक्कं।

मणुयगणा वाणरा य पक्खी य विरुज्झंति, मित्ताणि खिप्पं हवंति सत्तू। समए धम्मे गणे य भिंदंति पारदारी। धम्मगुणरया य बंभयारी खणेण उल्लोट्टए चरित्ताओ। जसमंतो सुव्वया य पावेंति अयसकित्तिं।

रोगत्ता वाहिया पवड्ढेंति रोगवाही।

दुवे य लोया दुआराहगा हवंति—इहलोए चेव परलोए परस्स दाराओ जे अविरया।

तहेव केइ परस्स दारं गवेसमाणा गहिया य हया य बद्धरुद्धा य एवं जाव गच्छंति विउलमोहाभिभूयसण्णा।

९०. जो मनुष्य मैथुनसंज्ञा में अर्थात् मैथुन सेवन की वासना में अत्यन्त आसक्त रहते हैं और मूढ़ता अथवा कामवासना से भरे हुए होते हैं, वे परस्पर में एक-दूसरे का शस्त्रों से घात करते रहते हैं।

कोई-कोई विषयरूपी विष की उदीरणा करने वाली अर्थात् विषयवासना बढ़ाने वाली परकीय स्त्रियों में प्रवत्त होकर दूसरों के द्वारा मारे जाते हैं। जब उनकी परस्त्री लम्पटता प्रकट हो जाती है तब (राजा या शासन द्वारा) उनकी सम्पत्ति और कुटुम्ब का विनाश किया जाता है।

जो परस्त्रियों से विरत नहीं हैं और मैथुनसेवन की वासना में अतीव आसक्त हैं और मोह से भरपूर हैं, ऐसे घोड़े, हाथी, बैल, भैंसे और मृग-वन्य पशु परस्पर लड़कर एक-दूसरे को मार डालते हैं। मनुष्यगण, बन्दर और पक्षीगण भी मैथुनसंज्ञा के कारण परस्पर विरोधी बन जाते हैं। मित्र शीघ्र ही शत्रु बन जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परस्त्रीगामी पुरुष अपने सिद्धान्तों या शपथों को, अहिंसा, सत्य आदि धर्मों को तथा गण–समान आचार–विचार वाले समूह को या समाज की मर्यादाओं का लोप कर देते हैं, यहाँ तक कि धर्म और संयमादि गुणों में निरत ब्रह्मचारी पुरुष भी मैथुनसंज्ञा के वशीभूत होकर क्षणभर में चारित्र–संयम से भ्रष्ट हो जाते हैं।

बड़े–बड़े यशस्वी और व्रतों का समीचीन रूप से पालन करने वाले भी अपयश और अपकीर्ति के भागी बन जाते हैं। ज्वर आदि रोगों से ग्रस्त तथा कोढ़ आदि व्याधियों से पीड़ित प्राणी मैथुनसंज्ञा की तीव्रता के कारण रोग और व्याधि की अधिक वृद्धि कर लेते हैं, अर्थात् मैथुनसेवन की अधिकता रोगों को और व्याधियों को बढ़ावा देने वाली है। जो मनुष्य परस्त्रियों में आसक्त होते हैं, वे इहलोक और परलोक दोनों लोकों में दुराराधक होते हैं। अर्थात् इहलोक में और परलोक में भी आराधना करना उनके लिए कठिन है।

इसी प्रकार परस्त्री की तलाश में रहने वाले कोई–कोई मनुष्य जब पकड़े जाते हैं तो पीटे जाते हैं, बन्धनों से बाँधे जाते हैं और कारागार में बन्द कर दिये जाते हैं। इस प्रकार जिनकी बुद्धि तीव्र मोह या मोहनीय कर्म के उदय से नष्ट हो जाती है, वे यावत् अधोगति को प्राप्त होते हैं।

This aphorism details the kind of inflow incurred by those who indulge in non-celibacy —

90. Those men who are deeply engrossed in feeling for mating and are in a state of ignorance about its results, they hunt each other with their weapons.

Some are killed by others when they engage in sex with the women folk of others attracted by their amorous activities. When their such behaviour becomes apparent the king or the ruler snatches their wealth and destroys their family.

Such horses, elephants, bullocks, he-buffaloes, deer and other beasts of the forest fight among themselves who are not devoid of attraction for females of others and who are deeply attached to cohabitation and delusion.

Even human beings, monkeys and birds become inimical to each other due to their desire for mating. Friends soon turn into enemies on account of it.

The man who has sex with the wife of another person disregard the principles and their vows, the basic tenets of non-violence truth and the like, the social code and the dictum laid down by the society. Even the person observing the life of self-restraint and celibacy continuously lose their life of restraint in a moment due to their inclination to cohabit.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Even those who are highly respectable and are meticulously following their vows bring dishonour due to it.

Persons suffering from fever, leprosy and other suchlike diseases aggravate their suffering by engaging in sex. Non-celibacy increases such diseases.

Persons attached to women of others spoil their present life and also the succeeding life. It is difficult for them to follow the religious order in the present life and the life to follow.

Similarly, the persons who are in search of women of others (for illicit activities) are beaten, chained and put in prison when they are caught. Thus these persons whose intellect is adversely affected by delusion or by the affect of deluding Karma, are in the end re-born in low category of state of existence.

विवेचन : मानव के मन में जब तीव्र मैथुनसंज्ञा-कामवासना उभरती है तब उसकी मति विपरीतगामी हो जाती है और उसका विवेक-कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यबोध विलीन हो जाता है। वह भविष्य में होने वाले भयानक परिणामों का सम्यक् विचार करने में असमर्थ बन जाता है। इसी कारण उसे विषयान्ध कहा जाता है। उस समय वह अपने यश, कुल, शील आदि का तनिक भी विचार नहीं कर सकता।

सूत्र में **'विषयविसस्स उदीरएसु'** कहकर स्त्रियों को विषयरूपी विष की उदीरणा या उद्रेक करने वाली कहा गया है। इसी प्रकार इस कथन का अभिप्राय यह है कि जैसे स्त्री के दर्शन, सान्निध्य, संस्पर्श आदि से पुरुष में कामवासना का उद्रेक होता है, उसी प्रकार पुरुष के दर्शन, सान्निध्य आदि से स्त्रियों में वासना की उदीरणा होती है। स्त्री और पुरुष दोनों ही एक-दूसरे की वासनावृद्धि में बाह्य निमित्तकारण होते हैं। अन्तरंग निमित्तकारण वेदमोहनीय आदि का उदय है तथा बहिरंग निमित्तकारण स्त्री-पुरुष के शरीर आदि हैं। बाह्य निमित्त मिलने पर वेद-मोहनीय की उदीरणा होती है। मैथुनसंज्ञा की उत्पत्ति के चार मुख्य कारण बतलाते हुए कहा गया है-

पणीदरसभोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए।
वेदस्सुदीरणाए, मेहुणसण्णा हवदि एवं।।

(१) इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाले गरिष्ठ रसीले भोजन से, (२) पूर्व जीवन में सेवन किये गये विषय-सेवन का स्मरण करने से, (३) कुशील के सेवन से, और (४) वेद-मोहनीयकर्म के उदय से मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है।

Elaboration—When the deep desire for mating arises in the mind of a human being, his thinking becomes adverse. He loses his faculty of discrimination. He becomes incapable of understanding the grave

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

consequences of his activities. So he is called saturated in adverse sensual desires. He cares a fig for his honour, family and conduct.

In the aphorism there is the phrase 'Visaya Visassa Udeerayesu'. It means that sexual desire increases when one sees a women—the very cause of the poison of sex. Just as the very sight, contact or touch of a woman creates the amorous sexual feeling in men. Similary the sight contact and the like of men creates the desire for amorous activities in women. Both men and women are the cause of increase of amorous feeling among each other. The inner cause is the effect of the deluding Karma while the external cause is the physical body of men and women. The appearance of external cause is the source for the rising effect of deluding Karma. There are four causes for the appearance of the desire for mating. They are—(1) rich diet that energises the senses, (2) the memory of marital activities of the past, (3) engaging in illicit contact, and (4) the effect of deluding Karma.

अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम BAD RESULTS OF NON-CELEBACY

यहां सूत्रकार ने बताया है कि अब्रह्माचरण का कितना भंयकर फल प्राप्त होता है।

९१. मेहुणमूलं य सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा सीयाए, दोवईए कए, रुप्पिणीए, पउमावईए, ताराए, कंचणाए, रत्तसुभद्दाए, अहिल्लियाए, सुवण्णगुलियाए, किण्णरीए, सुरूवविज्जुमईए, रोहिणीए य, अण्णेसु य एवमाइएसु बहवे महिलाकएसु सुव्वंति अइक्कंता संगामा गामधम्ममूला अबंभसेविणो। इहलोए ताव णट्ठा, परलोए वि य णट्ठा।

महया मोहतिमिसंधयारे घोरे तसथावरसुहुमबायरेसु पज्जत्तमपज्जत्त–साहारणसरीरपत्तेयसरीरेसु य अंडय–पोयय–जराउय–रसय–संसेइम–सम्मुच्छिम–उब्भिय–उववाइएसु य णरय–तिरिय–देव–माणुसेसु जरामरणरोगसोगबहुले पलिओवमसागरोवमाइं अणाईयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत–संसार–कंतारं अणुपरियट्टंति जीवा मोहवससण्णिविट्ठा।

९१. मैथुन सेवन के निमित्त विभिन्न ग्रन्थों में सीता के लिए, द्रौपदी के लिए, रुक्मिणी के लिए, पद्मावती के लिए, तारा के लिए, कांचना के लिए, रक्तसुभद्रा के लिए, अहिल्या के लिए, स्वर्णगुटिका के लिए, किन्नरी के लिए, सुरूपविद्युन्मती के लिए और रोहिणी के लिए अतीत काल में अनेक मनुष्यों का संहार करने वाले संग्राम होने के वर्णन सुने जाते हैं, इन्द्रियों की विषयासक्ति अर्थात् मैथुन सेवन के कारण ही ये संग्राम हुए हैं। इस प्रकार अन्य स्त्रियों के निमित्त भी संग्राम हुये हैं जो अब्रह्म मूलक हैं। अब्रह्म का सेवन करने वाले इस लोक में तो नष्ट होते ही हैं, वे परलोक में भी नष्ट होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह के वशीभूत प्राणी पर्याप्त और अपर्याप्त, साधारण और प्रत्येकशरीरी जीवों में, अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदिम, उद्भिज्ज और औपपातिक जीवों में, तथा नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्यगति के जीवों में, महामोहरूपी अंधकार से व्याप्त एवं घोर-दारुण परलोक में अनेक पल्योपमों एवं सागरोपमों जितने सुदीर्घकाल पर्यन्त दारुण कष्ट भोगते हैं तथा अनादि और अनन्त, दीर्घ मार्ग वाले और चार गति वाले संसाररूपी महावन में बार-बार परिभ्रमण करते रहते हैं।

Here the author informs about the terrible consequences of non-celibacy—

91. In many texts, we see the description of many wars in the ancient period leading to the death of many persons and the cause of them was women such as Sita, Draupadi, Rukmani, Padmavati, Tara, Kanchana, Rakt-Subhadra, Ahilya, Swarn-gutika, Kinnari, Surup-Vidyunmati and Rohini. The basis of these was the desire for sex or infatuation for sensual pleasures. In the same way wars have been fought due to sexual desires for other women.

Persons engaging in illicit marital relations adversely affect their present life and also the succeeding life.

As a result of the deluding Karma, a living being has to go through severe suffering for a very long period running into many Palyopam and Sagaropam in the next life-span in which there is the darkness of extreme delusion in the state of existence in hell, as celestial being, as human being or as animal (tiryanch state). He may be born in aparyapt (when sense organs are not yet complete) state or in paryapt state. He may be born in plant life where one life is one seed (pratyek shariri) or infinite number of lives in one body (Sadharan Shariri). He may take birth in egg form or as potaj (as the elephant is born) or as Jaraayuj (as a calf is born) or in juice or in perspiration (Sansvedaj) or may come out from the earth by breaking it (udbhij) or as aupapatik (as the hellish and celestial beings with fluid body are born). They continue taking birth and re-birth in the world of four states of existence again and again since beginningless period.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में प्राचीनकाल में स्त्रियों के निमित्त हुए संग्रामों का उल्लेख करते हुए सीता, द्रौपदी आदि के नामों का निर्देश किया गया है। किन्तु इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों अन्य उदाहरण इतिहास में विद्यमान हैं। परस्त्रीलम्पटता के कारण आये दिन होने वाली हत्याओं के लोमहर्षक समाचार आज भी समाचार-पत्रों में अनायास ही पढ़ने को मिलते रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कामवासना के कारण संसार में हजारों तो क्या, लाखों और कभी-कभी करोड़ों मनुष्यों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा है। रुधिर की नदियाँ बही हैं। देश को भारी क्षति सहनी पड़ी है। अतएव यह पाप बड़ा ही दारुण है। सूत्र में निर्दिष्ट नामों से संबद्ध संक्षिप्त कथाएँ परिशिष्ट में दी गई हैं।

सूत्र में संसारी जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्त आदि विविध भेदों का उल्लेख करके बताया है। अत्यन्त अल्प आयुष्य वाले जीव भी काम-मोह से पीड़ित हैं। सागरोपम की आयुष्य वाले प्राणी भी सुदीर्घकाल तक काम-सुख भोगने के पश्चात् भी उनसे अतृप्त ही रहते हैं। कामभोग भोगने से आज तक किसी को तृप्ति नहीं हुई। इससे जो निवृत्त हो गये वे ही तृप्ति-सुख का अनुभव कर सकते हैं।

आशय यह है कि जो प्राणी अब्रह्म के पाप से विरत नहीं होते, उन्हें दीर्घकाल पर्यन्त जन्म-जरा-मरण की तथा अन्य अनेक प्रकार की भीषण एवं दुस्सह यातनाओं का भागी बनना पड़ता है।

Elaboration—In the present aphorism, the names of Sita, Draupadi and others have been mentioned in the context of wars that had taken place in the ancient period due to women. In the history there are hundreds of such examples. Even now-a-days we find heart-rending news in the newspapers quite often relating to deaths due to mating with the women of others (women other than one's wife).

In the world, there are thousands of instances of such lustful activities. Sometimes millions of people had to leave their life as a result thereof. There was great bloodshed. The country had to bear great loss on this account. So this sin is very grave. In the annexure, some stories relating to the names mentioned in this aphorism have been narrated in brief.

In the aphorism, different types of worldly beings—complete or incomplete (aparyapt) in form have been mentioned. Even those living beings whose life-span is extremely minute, suffer as a result of their lust. Even those living beings whose life-span is Sagaropam, remain unsatisfied after enjoying amorous activities for a very long period. Nobody has got satisfaction in sexual enjoyment till today. Those who have subdued their sexual desires, only they experience satisfaction and happiness.

In other words, the living beings who have not detached themselves from the sin of non-celibacy, they go through the sufferings of birth, old age and death for a long period and also many other dreadful unbearable troubles.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. एसो सो अबंभस्स फलविवागो इहलोइओ परलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ, ण य अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरणामधिज्जो कहेसी य अबंभस्स फलविवागं एयं।

तं अबंभंवि चउत्थं सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं एवं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं। त्ति बेमि।

॥ चउत्थं अहम्मदारं समत्तं ॥

९२. इस प्रकार पूर्व पाठ में अब्रह्म रूप अधर्म का यह इहलोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी फलविपाक बताया है। यह सुख से रहित अथवा लेशमात्र सुख वाला किन्तु बहुत दुःखों वाला है। यह फलविपाक अत्यन्त भयंकर है और अत्यधिक पाप-रज से संयुक्त है। बड़ा ही दारुण और कठोर है। असाता का जनक है-हजारों वर्षों में अर्थात् बहुत दीर्घकाल के पश्चात् इससे छुटकारा मिलता है, किन्तु इसे भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता, ऐसा ज्ञातकुल के नन्दन वीरवर-(महावीर) महात्मा, जिनेन्द्र-तीर्थंकर ने कहा है और अब्रह्म का फलविपाक प्रतिपादित किया है।

यह चौथा आस्रव अब्रह्म है। सभी देवता, मनुष्य और असुर सहित समस्त लोक के प्राणी इनकी वांछा करते हैं। प्राणियों को यह चिरकाल से परिचित है। पीछे लगा हुआ और दुरन्त है-दुःखप्रद है अथवा बड़ी कठिनाई से इसका अन्त आता है।

॥ चतुर्थ अब्रह्मचर्य अधर्म द्वार समाप्त॥

92. Thus in the preceding aphorism the consequence of the activities besmeared with non-chastity (abrahm) in this life and in succeeding lives has been narrated. It is either devoid of happiness or provides insignificant happiness. But it is full of great distress. This result is extremely dreadful and it is extremely polluted with the karmic matter. It is very harsh and troublesome. It produces pain. One is freed from it after a very long period of thousands of years. One cannot avoid it without experiencing. Such is the version of Tirthankar Mahavir of Jnatri clan. This is how he has explained the result of non-chastity.

This is the fourth asrava (inflow of Karma). All the living beings including celestial beings, human beings and demon gods have a desire for it. They are well acquainted with it since a very long period. It is attached to them. It is very harsh in the end. It causes great distress. It can be finished with a great difficulty.

• END OF THE FOURTH CHAPTER •

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम अध्ययन : परिग्रह
FIFTH CHAPTER : ATTACHMENT (PARIGRAHA)

शास्त्रकार ने इस पंचम् अध्ययन में परिग्रह आश्रव के रूप में पांचवें अधर्मद्वार की प्ररूपणा की है। पिछले अध्ययनों की ही शैली में सर्वप्रथम परिग्रह का स्वरूप बताया है। उसके पश्चात् इसके पर्यायवाची नाम, इसे सेवन करने वाले, अन्त में इसके अवश्यभावी दुर्गुणों का वर्णन किया है।

परिग्रह का स्वरूप NATURE OF PARIGRAHA

९३. [१] जंबू ! इत्तो परिग्गहो पंचमो उ णियमा।

णाणामणि–कणग–रयण–महरिहपरिमलसपुत्तदार–परिजण–दासी–दास–भयग–पेस–हय–गय–गो–महिस–उट्ट–खर–अय–गवेलग–सीया–सगड–रह–जाण–जुग्ग–संदण–सयणासण–वाहण–कुविय–धणधण्ण–पाण–भोयणाच्छायण–गंध–मल्ल–भायण–भवणविहिं चेव बहु–विहीयं।

भरहं णग–णगर–णिगम–जणवय–पुरवर–दोणमुह–खेड–कब्बड–मडंब–संबाह–पट्टण–सहस्स–परिमंडियं। थिमियमेइणीयं एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं।

९३. [१] गणधर श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं–हे जम्बू ! चौथे अब्रह्म नामक आस्रवद्वार का निरूपण करने के पश्चात् यह पाँचवाँ परिग्रह (आस्रव) बताता हूँ। (इस परिग्रह का स्वरूप इस प्रकार है–)

अनेक जाति के मणियों, सोना, कर्केतन आदि रत्नों, कस्तूरी आदि बहुमूल्य सुगंधमय द्रव्यों, पुत्र और पत्नी समेत परिवार, दासी–दास, काम करने वाले नौकर–चाकर, कर्मचारी, घोड़े, हाथी, गाय, भैंस, ऊँट, गधों, बकरों, बकरियों, भेड़ों, पालकियों, शकट–गाड़ी–छकड़ा, रथ, यानों युग्य–दो हाथ लम्बी विशेष प्रकार की सवारी गाड़ियों, क्रीड़ारथ, शयन, आसन, वाहन तथा घर के उपयोग में आने वाले विविध प्रकार का सामान, धन, धान्य–गेहूँ, चावल आदि, पेय पदार्थ, भोजन, पहनने–ओढ़ने के वस्त्र, गन्ध–कपूर आदि, माला–फूलों की माला, बर्तन–भांडे तथा भवन आदि अनेक प्रकार की सामग्री को (भोग लेने पर भी)।

और हजारों पर्वतों, नगरों, निगमों, जनपदों, महानगरों, द्रोणमुखों, खेट (चारों ओर धूल के कोट वाली बस्तियाँ), कर्बटों–कस्बों, मडंबों, संबाहों तथा पत्तनों आदि ऐसे बड़े नगरों से सुशोभित भरत क्षेत्र–भारतवर्ष को भोगकर भी अर्थात् सम्पूर्ण भारतवर्ष का आधिपत्य भोग लेने पर भी, तथा जहाँ के लोग निर्भय तथा निश्चिन्ततापूर्वक निवास करते हैं ऐसी सागरपर्यन्त पृथ्वी को एकच्छत्र–अखण्ड राज्य भोगने पर भी (परिग्रह से तृप्ति नहीं होती)।

In this fifth chapter the author describes the fifth door of impiety as inflow (asrava) through covetousness (Parigraha). Following the style of preceding chapters parigraha has been defined first of all. After that are

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

narrated its synonyms, those who indulge and, in the end, its inevitable harms.

93. [1] Ganadhar Sudharma Swami told his disciple Jambu Swami, 'O Jambu ! After describing non-chastity (abrahm), the fourth gateway of inflow of Karma, I am now going to tell about desire of possessions, attachment (parigraha), the fifth asrava (inflow of Karma).

There are persons in the world who enjoy the possession of precious stones of many types, gold, karketa and other gems, many precious incense producing articles, large family consisting of wife, son, servants, employees, horses, elephants, buffaloes, cows, camels, donkeys, he-goats, goats, sheep, palanquins, carts, chariots, two cubit long carriages, sports chariots, beds, seats, vehicles, various articles of common use in the houses, foodstuffs such as wheat, rice, drinks, clothes, fragrant material like camphor, garlands, utensils and other material for personal use.

Some have a command over the entire Bharat area consisting of thousands of hills, towns, cities, districts, harbours, colonies, ports and the like. They continuously enjoy the rule over the land upto the sea where people reside without any fear or worry. Even then they do not feel satisfied.

परिग्रह महावृक्ष GREAT TREE OF PARIGRAHA

[२] अपरिमियमणंत-तण्ह-मणुगय-महिच्छसारणिरयमूलो, लोहकलिकसायमहक्खंधो, चिंतासयणिचियविउलसालो, गारवपविरल्लियग्गविडवो, णियडि-तयापत्तपल्लवधरो पुप्फफलं जस्स कामभोगा, आयासविसूरणा कलह-पकंपियग्गसिहरो।

णरवईसंपूइओ बहुजणस्स हिययदइओ इमस्स मोक्खवरमोत्तिमग्गस्स फलिहभूओ।

चरिमं अहम्मदारं।

[२] जिसका कभी और कहीं अन्त नहीं आता ऐसी अपरिमित एवं अनन्त तृष्णा रूप इच्छाएँ ही इस अक्षय एवं अशुभ फलवाले वृक्ष के मूल हैं। लोभ, कलह और क्रोधादि कषाय इसके विशाल महास्कन्ध हैं। सैकड़ों प्रकार की चिन्ताएँ, मानसिक संताप जिसकी निरन्तर फैलती, विस्तीर्ण होती शाखाएँ हैं। ऋद्धि, रस और सातारूप गौरव ही इसकी विस्तीर्ण शाखाओं के अग्र भाग-टहनियाँ हैं। दूसरों को ठगने के लिए किया जाने वाला छल, दंभ या कपट ही इस वृक्ष के छाल, पत्र और पुष्प हैं। कामभोग ही इस वृक्ष के पुष्प और फल हैं। शारीरिक श्रम, मानसिक खेद और कलह ही इसका कम्पायमान (सतत काँपता हुआ) अग्र शिखर-ऊपरी भाग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

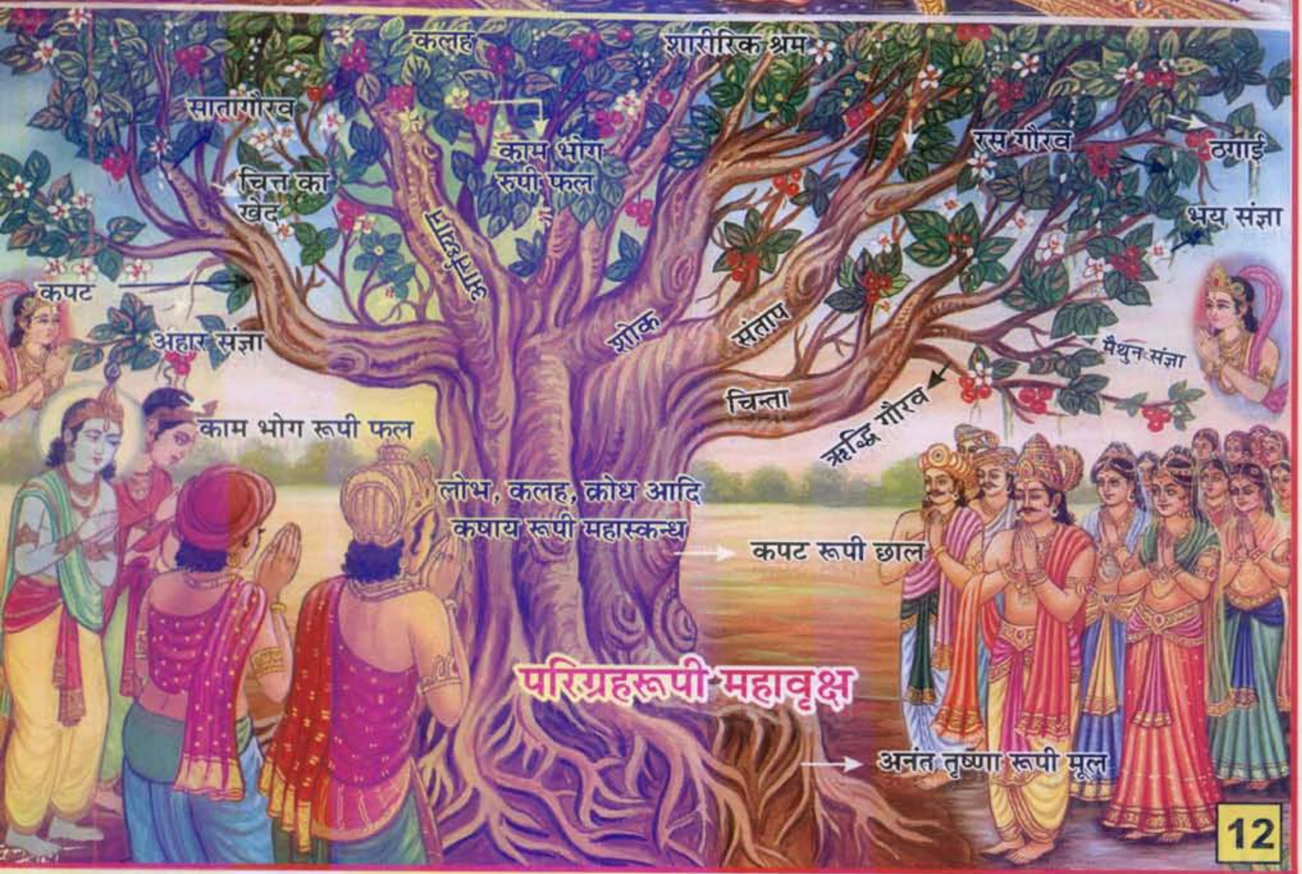

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 12

Illustration No. 12

परिग्रह का स्वरूप

चित्र में परिग्रह के स्वरूप को दिखाया गया है।

अनेक प्रकार के मणि, सोना, रत्न, स्त्री, पुत्र-पुत्री और समस्त परिवार, दास-दासी, गृह-सेवक, पलंग, आसन, वाहन, वस्त्र, गंध, माला, भवन आदि पर ममत्व रखना परिग्रह है। बाह्य परिग्रह के दस प्रकार हैं–(1) क्षेत्र, (2) वस्तु, (3) हिरण्य, (4) सुवर्ण, (5) धन, (6) धान्य, (7) द्विपद-चतुष्पद, (8) दास-दासी, (9) कुप्य, (10) धातु।

परिग्रहरूपी महावृक्ष–अनन्त तृष्णा रूपी इच्छाएँ वृक्ष का मूल है। लोभ, क्रोध आदि कषाय इसके विशाल महास्कंध हैं। सैंकड़ों प्रकार की चिन्ताएँ, शोक-संताप इसकी फैलती हुई शाखाएँ हैं। ऋद्धि, रस और साता रूप गौरव इसकी शाखाओं की अग्र टहनियाँ हैं। ठगाई, छल, दंभ, कपट इस वृक्ष की छाल, पत्ते और फूल हैं। कलह, खेद, शारीरिक श्रम इसका अग्र शिखर है।

इस परिग्रह को अधर्म महावृक्ष की उपमा दी गई है। यह वृक्ष राजा-महाराजाओं, देवताओं द्वारा पूजित है।

—सूत्र 93, पृ. 220

DEFINING PARIGRAHA (COVETOUSNESS)

The illustration shows objects of covetousness.

To have fondness and craving for a variety of possessions like gems, gold, wife, son, daughter, family, slaves, servants, bed, chair, vehicle, dresses, perfumes, ornaments, and buildings is called parigraha or covetousness. External Parigraha is of ten types – (1) Area, (2) things, (3) silver, (4) gold, (5) money, (6) grains, (7) bipeds and quadrupeds, (8) slaves, (9) utensils, and (10) metals.

Great tree of parigraha – Infinite cravings and desires are the roots of the tree of Parigraha. Passions including greed and anger form its great trunk. Hundreds of worries, grief and pain are its spreading branches. Wealth, taste, pleasure and pride are its smaller branches. Cheating, deceit, ego, and slight are its bark, leaves and flowers. Quarrel, sorrow and physical labour are its top.

This parigraha is given the metaphor of the tree of sin. Kings, monarchs and divine beings worship this tree.

— Sutra-93, page-220

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा यह परिग्रह (रूप वृक्ष) राजा-महाराजाओं द्वारा भलीभाँति आदर पाया हुआ है, अनेक लोगों को अत्यन्त प्यारा लगता है और मोक्ष के निर्लोभता रूप मार्ग के लिए यह अर्गला के समान है। अर्थात् परिग्रह मुक्ति का बाधक है।

ऐसा यह अन्तिम आस्रव परिग्रह रूप अधर्मद्वार है।

93. [2] The wants and desires are unlimited. There is no end to them. They are the root of such a tree which provides bad fruit. Its great trunk is greed, quarrel, passions and the like. Its continuously spreading branches are worries of hundreds of types and mental anxiety. Its stalks at the tips of large branches are prosperity, pleasure and worldly enjoyment. Its bark, leaves and flowers are deceit that cheats others, ego and crookedness.

The amorous worldly enjoyments are its flowers and fruit. Its upper trembling part is the physical effort, the mental distress and quarrelsome attitude.

Such a tree of attachment (parigraha) is treated with honour by great rulers and kings. Many people love it very much. It is like a hinderance (a speed breaker) in the path of selflessness that leads to liberation (moksha). In fact attachment is an obstacle to salvation.

Such is parigraha, the last asrava (inflow of Karma).

विवेचन : अब्रह्म के साथ परिग्रह का सम्बन्ध बतलाते हुए श्री अभयदेव सूरि ने टीका में लिखा है-परिग्रह के होने पर ही अब्रह्म आस्रव होता है, अतएव अब्रह्म के अनन्तर परिग्रह का निरूपण किया जाना आवश्यक है।

सूत्र का आशय सुगम है। सारांश इतना ही है कि नाना प्रकार की मणियों, रत्नों, स्वर्ण आदि मूल्यवान् अचेतन वस्तुओं का, हाथी, अश्व, दास-दासियों, नौकर-चाकरों आदि का, रथ-पालकी आदि सवारियों का, नग (पर्वत) नगर आदि से युक्त समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण भरत क्षेत्र का, यहाँ तक कि सम्पूर्ण पृथ्वी के अखण्ड साम्राज्य का उपभोग कर लेने पर भी मनुष्य की तृष्णा शान्त नहीं होती है। **'जहा लाहो तहा लोहो'** ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है, त्यों-त्यों लोभ अधिकाधिक बढ़ता जाता है। अतएव परिग्रह की वृद्धि करके जो सन्तोष प्राप्त करना चाहते हैं, वे आग में घी होमकर उसे बुझाने का प्रयत्न करना चाहते हैं। लोभ को शान्त करने का एक मात्र उपाय है **शौच-निर्लोभता-मुक्ति** धर्म का आचरण।

परिग्रह का अर्थ है, किसी वस्तु के प्रति ममत्वभाव। आगम में कहा है-**मुच्छा परिग्गहो वुत्तो-मूर्च्छा** परिग्रह है। परिग्रह के दो भेद हैं-अन्तरंग परिग्रह तथा बाह्य परिग्रह। अथवा भाव परिग्रह और द्रव्य परिग्रह। अन्तरंग परिग्रह १४ प्रकार का है-

१. मिथ्यात्व	२. राग	३. द्वेष	४. क्रोध
५. मान	६. माया	७. लोभ	८. हास्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. रति　　१०. अरति　　११. शोक　　१२. भय
१३. जुगुप्सा　　१४. वेद

मिथ्यात्व आदि ने आत्मा को अनादिकाल से पकड़ रखा है। ये भाव परिग्रह हैं। इन्हीं के कारण बाह्य वस्तुओं, जैसे-शरीर, वस्त्र, धन, स्त्री आदि पर मोह या ममत्वभाव, मेरापन जागता है। जब अन्तरंग में परिग्रह बुद्धि होती है तभी बाह्य वस्तुएँ परिग्रह बनती हैं। शास्त्र में बाह्य परिग्रह के निम्नोक्त १० प्रकार बताये हैं-

१. **क्षेत्र**-खेत आदि खुली भूमि आदि।

२. **वस्तु**-रहने के भवन आदि।

३. **हिरण्य**-चाँदी आदि के सिक्के।

४. **सुवर्ण**-सोना (सोने के आभूषण आदि)।

५. **धन**-हीरा, पन्ना, मणि, मोती, पैसा, रुपया आदि।

६. **धान्य**-गेहूँ, चावल आदि अनाज।

७. **द्विपद-चतुष्पद**-दो पैर वाले मनुष्य तथा चार पैर वाले गाय, भैंस आदि पशु।

८. **दासी**-दास, नौकर चाकर-सेविकाएं आदि।

९. **कुप्य**-सोने-चाँदी के अतिरिक्त वस्त्र, बर्तन, अलमारी आदि सभी प्रकार का सामान।

१०. **धातु**-चाँदी, ताँबा, लोह आदि धातु।

बाह्य परिग्रह का विस्तृत रूप **'णाणा मणि'**-पद से मूल पाठ में बताया गया है।

इस परिग्रह को अधर्म वृक्ष की उपमा दी है। तृष्णा इस वृक्ष की जड़ है। विस्तृत स्पष्ट वर्णन मूल पाठ में बताया जा चुका है।

Elaboration—Narrating the link of attachment with non-chastity, Shri Abhayadev Suri in his commentary has said, 'Non-chastity occurs only as the result of attachment so it is necessary to narrate it after non-chastity.'

The purport of this aphorism is quite simple. It simply proves that the desire for worldly things of a human being do not cool down. A man may have many types of precious stones, jewels, gold and other precious material things; he may have servants, employees and others; he may have chariots and the like to ride, he may have a large area containing hills and town extending upto the sea under his control; he may enjoy the kingdom extending upto the whole earth; but his wants shall never subdue. With gain, greed increases further. So the persons who want to have contentment along with increase in belongings, their condition is such as that of a person who wants to extinguish fire adding ghee to it.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

The only method to subdue greed is to adopt the spirit of selflessness (non-attachment) in one's life.

Parigraha means attachment towards a thing. In Agams it is said 'Muchha pariggaho vuttaa, it means deep attachment is parigraha. Parigraha is of two types—inner parigraha and external parigraha. Inner parigraha (attachment) is of fourteen types —

1. Wrong belief (mithyatva), 2. Attachment, 3. Hatred, 4. Anger, 5. Ego, 6. Crookedness (deceit), 7. Greed, 8. Laughter, 9. Pleasure in worldly things, 10. Displeasure in restraints, 11. Sadness, 12. Fear, 13. Jealousy, 14. Feelings for opposite sex.

The self is attached to the above, such as wrong belief and the like, since beginningless period. Such an attitude is parigraha. As a result of it one has attachment or feeling of my-ness towards his physical body, clothes, money, wife and suchlike. When there is the attitude of attachment in the inner self, only then the external objects come within the ambit of parigraha. In scriptures external parigraha is of ten types. These are as under :

1. Land — open area

2. Building (Vastu) — Place to live in

3. Silver (Hiranya) — Silver and coins

4. Gold (Swarn) — Gold and gold ornaments

5. Valuables (Dhan) — Jewels, pearls, diamonds etc.

6. Grains (Dhanya) — Wheat, rice and others

7. Two legged and four legged living beings (men, cow, buffalo)

8. Servants, employees

9. Utensils (Kupya) — Garments, pots, safe and other things

10. Metals — Silver, copper, iron etc.

The detailed description of external parigraha has been given in the original text.

This parigraha has been compared with a tree. Desire is the root of this tree. It has been discussed clearly and in detail in the text.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९४. **तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तं जहा–१. परिग्गहो, २. संचयो, ३. चयो, ४. उवचयो, ५. णिहाणं, ६. संभारो, ७. संकरो, ८. आयरो, ९. पिंडो, १०. दव्वसारो, ११. तहा महिच्छा, १२. पडिबंधो, १३. लोहप्पा, १४. महद्दी, १५. उवकरणं, १६. संरक्खणा य, १७. भारो, १८. संपाउप्पायओ, १९. कलिकरंडो, २०. पवित्थरो, २१. अणत्थो, २२. संथवो, २३. अगुत्ति, २४. आयासो, २५. अविओगो, २६. अमुत्ती, २७. तण्हा, २८. अणत्थओ, २९. आसत्ती, ३०. असंतोसो त्ति वि य, तस्स एयाणि एवमाईणि णामधिज्जाणि होंति तीसं।**

९४. उस परिग्रह नामक अधर्म के गुणनिष्पन्न अर्थात् उसके गुण–स्वरूप को अथवा परिग्रह के व्यापक रूप को प्रकट करने वाले तीस नाम हैं। वे नाम इस प्रकार हैं–

१. **परिग्गहो**–शरीर, धन, धान्य आदि पदार्थों को ममत्व बुद्धि से ग्रहण करना।

२. **संचयो**–किसी भी वस्तु को अधिक मात्रा में संग्रह करना।

३. **चयो**–भविष्य में मिले या नहीं, इस आशंका से वस्तुओं को एकत्र करना।

४. **उपचयो**–प्राप्त पदार्थों की वृद्धि करना।

५. **णिहाणं**–धन को भूमि में गाड़कर रखना, तिजोरी में रखना या बैंक में जमा करवाकर रखना, दबाकर–छुपाकर रख लेना।

६. **संभारो**–धान्य वस्त्र आदि वस्तुओं को अधिक मात्रा में भरकर रखना।

७. **संकरो**–भिन्न–भिन्न प्रकार के पदार्थों को मिलाकर रखना। यहाँ इसका विशेष अभिप्राय है–कोई बहुमूल्य वस्तु को जल्दी जान न सके और ग्रहण न कर सके। कीमती मूल्यवान पदार्थों में अल्पमूल्य वस्तु मिलाकर रखना।

८. **आयरो**–पर–पदार्थों में आदरबुद्धि रखना, शरीर, धन आदि को अत्यन्त प्रीतिभाव से सँभालना आदि।

९. **पिंडो**–किसी पदार्थ का या विभिन्न पदार्थों का ढेर करना, उन्हें लोभवश एकत्रित करना।

१०. **दव्वसारो**–द्रव्य अर्थात् धन को ही सारभूत समझना। धन को प्राणों से भी अधिक मानना।

११. **महिच्छा**–असीम इच्छा या असीम इच्छा का कारण।

१२. **पडिबंधो**–किसी पदार्थ के साथ बँध जाना। स्त्री, धन आदि के मोह में जकड़ जाना, उसे छोड़ना चाहकर भी छोड़ न पाना भावनात्मक प्रतिबन्ध है।

१३. **लोहप्पा**–लोभ ही जिसका स्वभाव है।

१४. **महद्दी**–बड़ी–बड़ी आकांक्षा करना अथवा याचना करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. **उवकरणं**–जीवनोपयोगी साधन–सामग्री उपकरण है। आवश्यकता का विचार न करके अनापसनाप साधन–सामग्री एकत्र करते रहना।

१६. **संरक्खणा य**–प्राप्त पदार्थों का आसक्तिपूर्वक संरक्षण करना।

१७. **भारो**–परिग्रह जीवन के लिए सबसे बड़ा भारभूत है।

१८. **संपाउप्पायओ**–परिग्रह नाना प्रकार के उपद्रवों तथा संकल्पों–विकल्पों का उत्पादक है।

१९. **कलिकरंडो**–कलह का पिटारा। कलह, युद्ध, वैर, विरोध, संघर्ष आदि का प्रमुख कारण परिग्रह है। अतएव इसे 'कलह का पिटारा' नाम दिया गया है।

२०. **पवित्थरो**–धन–धान्य आदि का विस्तार। व्यापार–धन्धा आदि का चारों तरफ फैलाव करना परिग्रह का रूप है।

२१. **अणत्थो**–परिग्रह नानाविध अनर्थों वध–बन्धनादि दुष्परिणामों अथवा अनर्थों का मूल है।

२२. **संथवो**–संस्तव का अर्थ है परिचय, बारम्बार निकट का सम्बन्ध। संस्तव मोह एवं आसक्ति को बढ़ाता है।

२३. **अगुत्ति**–अपनी इच्छाओं या कामनाओं का गोपन न करना, उन पर नियन्त्रण न रखकर स्वच्छन्द छोड़ देना।

'अगुप्ति' के स्थान पर कहीं 'अकीर्ति' नाम उपलब्ध होता है। परिग्रह अपकीर्ति–अपयश बदनामी का कारण बनता है।

२४. **आयासो**–आयास का अर्थ है–खेद या प्रयास। परिग्रह जुटाने के लिए मानसिक और शारीरिक खेद होता है, प्रयास करना पड़ता है। अतः इसे आयास कहा जाता है।

२५. **अविओगो**–विभिन्न पदार्थों के रूप में–धन, मकान या दुकान आदि के रूप में जो परिग्रह एकत्र किया है, उसे बिछुड़ने न देना। चमड़ी चली जाये पर दमड़ी न जाये, ऐसी मनोवृत्ति।

२६. **अमुत्ती**–मुक्ति अर्थात् निर्लोभता। उसका न होना अर्थात् लोभ की वृत्ति होना। यह मानसिक भाव परिग्रह है।

२७. **तण्हा**–तृष्णा का सामान्य अर्थ है–अप्राप्त पदार्थों की लालसा और प्राप्त वस्तुओं की वृद्धि की अभिलाषा। तृष्णा ही परिग्रह का मूल है।

२८. **अणत्थओ**–परिग्रह का एक नाम 'अनर्थ' पहले बताया जा चुका है। वहाँ अनर्थ का आशय उपद्रव या दुष्परिणाम से था। यहाँ 'अनर्थक' का अर्थ 'निरर्थक' है। पारमार्थिक हित और सुख के लिए परिग्रह निरर्थक–निरुपयोगी है। अथवा जो जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक न हो उसका संग्रह करना निरर्थक होता है।

२९. **आसत्ती**–गहरी ममता, मूर्च्छा, गृद्धि–ये सभी परिग्रह के रूप हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. असंतोसो–मन में बाह्य पदार्थों के प्रति सन्तुष्टि न होना। भले ही पदार्थ उपलब्ध न हों परन्तु अन्त में यदि 'असन्तोष' है तो वह भी परिग्रह है।

94. There are thirty synonyms of the impiety called aparigraha based on its basic attributes. They express the extent of parigraha. They are as under :

1. Parigraha—To keep cash, material things and even one's body with feeling of attachment.

2. Sanchaya—To store things much more than one's need.

3. Chaya—To store things with a feeling that he may or may not get them in future.

4. Upachaya—To increase the quantity of things one possesses.

5. Nidhaan (Treasure)—To keep mony buried underground, in safe, in bank or in any other concealed manner.

6. Sambhaar—To keep greater stock of food grains, clothes and the like.

7. Sankar—To collect and store different things. Here the purpose is that the other person may not easily be able to locate the precious thing and may not take it away. With this attitude to mix a thing of much lesser value in a thing of greater value.

8. To care more than necessary (Aadar)—To have sense of care in other things. To have extremely great care of ones body, money and the like.

9. Pind—To have heap like stock of a thing or of different things. To collect them out of greed.

10. Dravyasaar—To consider money as the essence of life. To consider money more important than one's life.

11. Mahechha—Cause of extreme unlimited desire

12. Pratibandh—To become attached to a thing. To get deeply bound to a woman or money out of delusion. Not to discard it even if one wants to discard it.

13. Lobhatma—One whose very nature is greed.

14. Mahaddika—To have very great ambition or to beg for a thing.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐

15. Upakaran—Things needed in daily life are called upakaran. To go on collecting such things without calculating actual need.

16. Sanrakshana—To safeguard the articles one possesses with a feeling of great attachment.

17 Bhaar—Parigraha is the greatest load (hurdle) in life.

18. Sampatotpadak—Parigraha gives rise to many types of troubles and ill thoughts.

19. Kali-Karand—It is the box of quarrels. The main cause of war, enmity, opposition or fight is parigraha.

20. Pravistar—It lies in extending the stock of money, food grains and the like. To extend one's trade or business in all direction is a form of parigraha.

21. Anarth—Parigraha is at the root of many types of calamities, killings and the like or suchlike troubles.

22. Sanstav—Sanstav means introduction; a closer contact. Sanstav increases delusion and attachment.

23. Agupti or Akirti—To conceal one's desire or lust. Not to keep them under control but to allow them full freedom. In some texts the term akirti is found instead of agupti.

Parigraha is the cause of disrespect so it is called Apakirti also.

24. Aayaas (to make effort)—To collect items of external parigraha one has to make great mental and physical effort. He has to keep on contemplating or worrying about it.

25. Aviyog—Not to allow money, house, shop and other suchlike things which one has collected, to go astray. To have such attitude that one may undergo physical serious trouble but not loss money.

26. Amukti—Mukti means selflessness. Not to have it means to have greed. Such a mental attitude is parigraha.

27. Trishna—Ordinary meaning of Trishna is to have a keen desire to have such things, which one does not have and to increase the number of substances one has. Such a desire (Trishna) is the very root of parigraha.

28. Anarthak—Earlier the word was anarth, which means ill result. Here it is anarthak, which means nirarthak or worthless. Parigraha is of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

no use for having the ecstatic pleasure of salvation the lasting welfare of the soul.

29. Aasakti—Deep attachment, total absorption – all this is parigraha.

30. Asantosh—Not to feel satisfied in the mind with the external things. Even if one does not have such things, if there is feeling of dissatisfaction in the mind at the end, it is parigraha.

देव एवं मनुष्यगण भी परिग्रह के पाश में बँधे हैं GODS AND HUMANS : VICTIMS OF PARIGRAHA

९५. तं च पुण परिग्गहं ममायंति लोहघत्था भवणवर–विमाण–वासिणो परिग्गहरुई परिग्गहे विविहकरणबुद्धी देवणिकाया य असुर–भुयग–गरुल–विज्जु–जलण–दीव–उदहि–दिसि–पवण–थणिय–अणवण्णिय–पणवण्णिय–इसिवाइय–भूयवाइय–कंदिय–महाकंदिय–कुहंड–पयंगदेवा पिसाय–भूय–जक्ख–रक्खस–किण्णर–किंपुरिस–महोरग–गंधव्वा य तिरियवासी। पंचविहा जोइसिया य देवा बहस्सई–चंद–सूर–सुक्क–सणिच्छरा राहु–धूमकेउ–बुहा य अंगारका य तत्ततवणिज्जकणयवण्णा जे य गहा जोइसिम्मि चारं चरंति, केऊ य गइरईया अट्ठावीसइविहा य णक्खत्तदेवगणा णाणासंठाणसंठियाओ य तारगाओ ठियलेस्सा चारिणो य अविस्साम–मंडलगई उवरिचरा।

उड्ढलोयवासी दुविहा वेमाणिया य देवा सोहम्मी–साण–सणंकुमार–माहिंद–बंभलोय–लंतक–महासुक्क–सहस्सार–आणय–पाणय–आरण–अच्चुया कप्पवरविमाणवासिणो सुरगणा, गेविज्जा अणुत्तरा दुविहा कप्पाईया विमाणवासी महिड्ढिया उत्तमा सुरवरा।

एवं च ते चउव्विहा सपरिसा वि देवा ममायंति भवण–वाहण–जाण–विमाण–सयणासणाणि य णाणाविहवत्थभूसणापवरपहरणाणि य णाणामणिपंचवण्णदिव्वं य भायणविहिं णाणाविहकामरूवे वेउव्वियअच्छरगणसंघाते दीव–समुद्दे दिसाओ विदिसाओ चेइयाणि वणसंडे पव्वए य गामणयराणि य आरामुज्जाणकाणणाणि य कूव–सर–तलाग–वावि–दीहिय–देवकुल–सभप्पव–वसहिमाइयाइं बहुयाइं कित्तणाणि य परिगिण्हित्ता परिग्गहं विउलदव्वसारं देवावि सइंदगा ण तित्तिं ण तुट्ठिं उवलभंति।

अच्चंत–विउललोहाभिभूयसत्ता वासहर–इक्खुगार–वट्ट–पव्वय–कुंडल–रुयग–वरमाणुसोत्तर–कालोदहि–लवण–सलिल–दहपइ–रइकर–अंजणक–सेल–दहिमुह–ओवाउप्पाय–कंचणक–चित्त–विचित्त–जमकवरिसिहरिकूडवासी।

वक्खार–अकम्मभूमिसु सुविभत्तभागदेसासु कम्मभूमिसु जे वि य णरा चाउरंतचक्कवट्टी वासुदेवा बलदेवा मंडलीया इस्सरा तलवरा सेणावई इब्भा सेट्ठी रट्ठिया पुरोहिया कुमारा दंडणायगा माडंबिया सत्थवाहा कोडुंबिया अमच्चा एए अण्णे य एवमाई परिग्गहं संचिणंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 13

Illustration No. 13

परिग्रह के जाल में फँसे देवगण, चक्रवर्ती एवं वासुदेव

देवों का परिग्रह—महान ऋद्धि सम्पन्न इन्द्र और सामानिक देव भी अपनी-अपनी परिषद् के साथ परिग्रह में अत्यन्त आसक्त रहते हैं। वे देव-भवन, वाहन, यान, विमान, शयन, आसन और विविध प्रकार के वस्त्राभूषण, उत्तमकोटि के शस्त्र, पाँच प्रकार के वर्ण वाली दिव्य मणियों के समूह और इच्छानुसार विविध प्रकार के मोहक रूप बनाने वाली अप्सराओं, अपने अभियोगिक देवों आदि पर ममत्व भाव रखते हैं।

चक्रवर्ती का परिग्रह—चारों दिशाओं और भरत क्षेत्र के छह खण्डों पर अधिकार रखने वाले चक्रवर्ती भी अपने चौदह रत्नों और नव निधियों पर ममत्व रखते हैं और परिग्रह में आसक्त रहते हैं।

वासुदेव का परिग्रह—भरत क्षेत्र के तीन खण्डों पर अधिकार रखने वाले वासुदेव भी अपने दिव्य चक्ररत्न, धनुष, गदा, शंख, खड्ग, मणि, जयमाला आदि रत्नों पर ममत्व रखते हैं और परिग्रह में मूर्च्छा भाव रखते हैं।

—सूत्र 95, पृ. 230

GODS, CHAKRAVARTIS AND VASUDEVS ENTRAPPED IN PARIGRAHA

Covetousness of gods – Glorious Indra and other Samanik gods along with their assembly are intensely attached to their possessions. They are very fond of their mansions, vehicles, celestial-vehicles, beds, seats, variety of dresses and ornaments, special weapons, heaps of multi-coloured gems, goddesses capable of changing appearance at will, and attendant gods.

Possessions of Chakravartis – A chakravarti, the lord of four directions and six divisions of Bharat Area is also very fond of his fourteen jewels and nine treasures. He too is intensely attached to his possessions.

Possessions of Vasudevs – A Vasudev, the lord of three divisions of Bharat area, is also attached to his Divine Disc (Chakra Ratna), bow, mace, conch-shell, sword, gems and garland of victory. He too is intensely attached to his possessions.

— Sutra-95, page 230

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंत असरणं दुरंतं अधुवमणिच्चं असासयं पावकम्मणेम्मं अवकिरियव्वं विणासमूलं वहबंधपरिकिलेसबहुलं अणंतसंकिलेसकारणं, ते तं धणकणगरयणणिचयं पिंडिया चेव लोहघत्था संसारं अइवयंति सव्वदुक्खसंणिलयणं।

९५. परिग्रह के लोभ से ग्रस्त–लालच के जाल में फँसे हुए, परिग्रह में रुचि रखने वाले, श्रेष्ठ भवनों में और विमानों में निवास करने वाले (भवनवासी एवं वैमानिक देव) ममत्वपूर्वक इसे ग्रहण करते हैं। नाना प्रकार से परिग्रह को संचित करने की बुद्धि वाले देवों के समूह–निकाय, यथा–असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत्कुमार, ज्वलन (अग्नि) कुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार (ये दस प्रकार के भवनवासी देव) तथा अणपन्निक, पणपन्निक, ऋषिवादिक, भूतवादिक, क्रन्दित, महाक्रन्दित, कूष्माण्ड और पतंग (ये आठ प्रकार व्यन्तरनिकाय के अन्तर्गत देव) और (पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग एवं गन्धर्व, ये आठ प्रकार के महर्द्धिक व्यन्तर देव) तथा तिर्यक्लोक–मध्यलोक में विचरण करने वाले पाँच प्रकार के ज्योतिष्क देव, बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र और शनैश्चर, राहु, केतु, बुध, (तपाये हुए स्वर्ण जैसे वर्ण वाला–मंगल), और अंगारक, केतु अन्य जो भी ग्रह ज्योतिष्चक्र में संचरण करते हैं, तथा गति में प्रीति अनुभव करने वाले, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण, नाना प्रकार के संस्थान–आकार वाले तारागण, स्थिर कान्ति वाले अर्थात् मनुष्य क्षेत्र–अढाई द्वीप से बाहर स्थिर रहने वाले ज्योतिष्क और मनुष्य क्षेत्र के भीतर संचरण करने वाले, जो तिर्यक् लोक के ऊपरी भाग में (समतल भूमि से ७९० योजन से लगाकर ९०० योजन तक की ऊँचाई में) रहने वाले तथा अविश्रान्त–लगातार–बिना रुके वर्तुलाकार गति करने वाले हैं (ये सभी देव परिग्रह में आसक्त रहते हैं)।

(इनके अतिरिक्त) ऊर्ध्वलोक में निवास करने वाले वैमानिक देव दो प्रकार के हैं–कल्पोपपन्न और कल्पातीत। सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, ये उत्तम कल्प–विमानों में वास करने वाले–कल्पोपपन्न हैं। (इनके ऊपर) नौ ग्रैवेयकों और पाँच अनुत्तर विमानों में रहने वाले दोनों प्रकार के देव कल्पातीत हैं। ये विमानवासी (वैमानिक) देव महान् ऋद्धि के धारक, श्रेष्ठ सुरवर हैं।

ये चारों निकायों के (देव), अपनी–अपनी परिषद् (परिवार) सहित परिग्रह में मूर्च्छाभाव रखते हैं। 'ये मेरे हैं' इस प्रकार की ममत्व बुद्धि रखते हैं। ये सभी देव भवन, हस्ती आदि वाहन, रथ आदि अथवा विमान आदि यान, पुष्पक आदि विमान, शय्या, भद्रासन, सिंहासन प्रभृति आसन, विविध प्रकार के वस्त्र एवं उत्तमोत्तम शस्त्रास्त्रों को, अनेक प्रकार की मणियों से बने पंचरंगी दिव्य भाजनों–पात्रो को, वैक्रियलब्धि से इच्छानुसार रूप बनाने वाली कामरूपा अप्सराओं के समूह को और द्वीपों, समुद्रों, पूर्व आदि दिशाओं, ईशान आदि विदिशाओं, चैत्य वृक्षों, वनखण्डों और पर्वतों को, ग्रामों और नगरों को, आरामों, उद्यानों–और जंगलों को, कूप, सरोवर, तालाब, बावड़ी, लम्बी बावड़ी, देवालय, सभा, प्रपा और बस्ती को और बहुत–से स्तुतियोग्य धर्मस्थानों को ममत्वपूर्वक स्वीकार करते हैं। इस प्रकार विपुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट द्रव्य वाले परिग्रह को ग्रहण करके भी इन्द्रों सहित देवगण को तृप्ति और सन्तुष्टि का अनुभव नहीं होता।

सब देव अत्यन्त तीव्र लोभ से अभिभूत संज्ञा वाले हैं, अतः हेमवन्त, महाहिमवन्त आदि वर्षधर पर्वतों, **इषुकार**–(धातकीखण्ड और पुष्करवर द्वीपों को विभक्त करने वाले दक्षिण और उत्तर दिशाओं में लम्बे) पर्वत, **वृत्तपर्वत**–(शब्दापाती आदि गोलाकार पर्वत), **कुण्डल**–(जम्बूद्वीप से ग्यारहवें कुण्डल नामक द्वीप में कुण्डलाकार) पर्वत, **रुचकवर**–(पन्द्रहवें रुचक नामक द्वीप में मण्डलाकार रुचकवर नामक पर्वत), **मानुषोत्तर**– (मनुष्यक्षेत्र की सीमा निर्धारित करने वाला) पर्वत, कालोदधिसमुद्र, लवणसमुद्र, गंगा आदि महानदियाँ, पद्म, महापद्म आदि ह्रद–सरोवर, **रतिकर पर्वत**–(आठवें नन्दीश्वर नामक द्वीप के कोण में स्थित झालर के आकार के चार पर्वत), अंजनक पर्वत (नन्दीश्वर द्वीप के चक्रवाल में रहे हुए कृष्ण वर्ण के पर्वत), **दधिमुख पर्वत**–(अंजनक पर्वतों के पास की सोलह पुष्करणियों में स्थित १६ पर्वत), **अवपात पर्वत**–(वैमानिक देव मनुष्य क्षेत्र में आने के लिए जिन पर उतरते हैं), **उत्पात पर्वत**–(भवनपति देव जिनसे ऊपर उठकर मनुष्य क्षेत्र में आते हैं–वे तिगिंछ कूट आदि), **कांचनक**– (उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्रों में स्थित स्वर्णमय पर्वत), **चित्र–विचित्र पर्वत** (निषध नामक वर्षधर पर्वत के निकट शीतोदा नदी के किनारे चित्रकूट और विचित्रकूट नामक पर्वत), **यमकवर**–(नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत के समीप के शीता नदी के तट पर स्थित दो पर्वत), **शिखरी**–(समुद्र में स्थित गोस्तूप आदि पर्वत) **खूट**–(नन्दनवन के कूट) आदि में रहने वाले ये देव भी असीम परिग्रह के सुख–भोग से तृप्ति और संतुष्टि का अनुभव नहीं कर पाते हैं। (फिर अन्य प्राणियों का तो कहना ही क्या ! वे परिग्रह से कैसे तृप्त हो सकते हैं ?)

वक्षस्कार पर्वतों (विजयों को विभक्त करने वाले चित्रकूट आदि पर्वत) में तथा अकर्मभूमियों में (हैमवत आदि भोगभूमि के क्षेत्रों में) और भलीभाँति विभक्त प्रदेश वाली भरत, ऐरवत आदि पन्द्रह कर्मभूमियों में जो भी मनुष्य निवास करते हैं, जैसे–चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, माण्डलिक राजा (मण्डल के अधिपति महाराजा), ईश्वर–युवराज, बड़े–बड़े ऐश्वर्यशाली लोग, तलवर (राज–सम्मानित मस्तक पर स्वर्णपट्ट बाँधे हुए राजस्थानीय), सेनापति, इभ्य (हस्ति प्रमाण स्वर्ण राशि के स्वामी), श्रेष्ठी (श्री देवता द्वारा अलंकृत चिह्न को मस्तक पर धारण करने वाले सेठ), राष्ट्रिक (राष्ट्र अर्थात् देश की उन्नति–अवनति के विचार के लिए नियुक्त अधिकारी), पुरोहित (शान्तिकर्म करने वाले), राजकुमार, दण्डनायक (कोतवाल), माडम्बिक (मडम्ब के अधिपति–छोटे राजा), सार्थवाह (अनेक छोटे व्यापारियों आदि को साथ लेकर विदेश यात्रा करने वाले बड़े व्यापारी), कौटुम्बिक (बड़े कुटुम्ब के प्रधान या गाँव के मुखिया) और अमात्य (मंत्री), ये सब और इनके अतिरिक्त अन्य जो भी मनुष्य हैं, वे सब परिग्रह का संचय करते हैं।

वह परिग्रह अनन्त है–जिसका कोई अन्त या परिमाण नहीं है। जो किसी को भी शरण देने में समर्थ नहीं है। अर्थात् दुःख से रक्षा करने में असमर्थ है, दुःखमय अन्त वाला है, अस्थिर एवं प्रतिक्षण विनाशशील होने से अशाश्वत है, पापकर्मों का मूल है, ज्ञानीजनों के लिए त्याज्य है, विनाश का मूल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण है, वध और बन्धन का कारण है, अर्थात् परिग्रह के कारण जीवों को वध-बन्धन-क्लेश-परिताप उत्पन्न होता है अथवा परिग्रह स्वयं परिग्रही के लिए वध-बन्धन आदि नाना प्रकार के घोर क्लेश का कारण बन जाता है, इस प्रकार वे पूर्वोक्त देव आदि धन, कनक, रत्नों आदि का संचय करते हुए लोभ से ग्रस्त होते हैं और समस्त प्रकार के दुःखों के केन्द्र इस संसार में परिभ्रमण करते हैं।

95. Bhavanavasi celestial beings and those living in Vimans who are greedy and have an interest in attachment to wealth get involved in it with great keenness. Such celestial beings have an interest in collecting various types of worldly things. Those gods are ten type of Bhavanpati gods namely Asur Kumar, Nag Kumar, Suparn Kumar, Vidyut Kumar, Agni (Jvalan) Kumar, Dveep Kumar, Udadhi Kumar, Dik Kumar, Pawan Kumar, Stanit Kumar and eight types of Vyantar gods namely Annapannik, Panapannik, Rishivadik, Bhootvadik, Krandit, Mahakrandit, Kooshamand and Patang, eight types of opulent Vyantar gods namely Pishach, Bhoot, Yaksh, Rakshas, Kinnar, Kimpurush, Mahorag and Gandharva. In the Madhya (middle) world (Tiryak Lok), there are five types of Jyotishk gods namely Brihaspati, Moon, Sun, Planets such as Brihaspati, Shukra, Saturn, Rahu, Ketu, Budh, molten gold-like Mars (Mangal), Angarak and Ketu, constellations and stars, which move in the Jyotishk circle. The twenty eight types of celestial beings of constellations and the star gods of different shape that spread stable light as they remain static outside the human area while within the human inhabited two and a half dveep, they move. They are located in the space between 790 yojans and 900 yojans higher from the levelled ground. They move in circle continuously. All these celestial beings are attached to their mundane wealth.

In addition, the gods in heavens are of two types—Kalpopapanna and Kalpateet. Saudharm, Ishan, Sanat Kumar, Mahendra, Brahmlok, Lantak, Mahashukra, Sahasrar, Aanat, Pranat, Aaran, Achyut reside in their heavenly abodes. They are Kalpopapanna. Above them; there are nine Graiveyaks, and gods living in five Anuttar vimans. All these gods are Kalpateet (without any distinction in status). All these gods who reside in Vimans possess great wealth and are prominent among gods.

These four types of gods remain in a state of attachment with their family and their cabinet. They have feeling of possessiveness. They have attachment in their bhawans, elephants, means of transport, chariots, Vimans such as Pushpak, beds, seats, clothes of various types, weapons,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

divine pots studded with many types of precious stones in five colours, the lusty fairies they create with their fluid power, continents, seas, the directions such as east and others, sub-directions, holy trees, forests, hills, villages, towns, gardens, orchards, forests, wells, tanks, lakes, long lakes, temples, assembly halls, colonies and many famous religious places. Thus even after possession of such great wealth, the celestial beings including their masters (Indras) do not have a feeling of satisfaction.

All the celestial beings experience a state of delusion due to their extreme greed. Some gods reside in Himavant, Mahahimavant mountains, long mountains that divide Dhataki region and Pushkaravar continent in southern and northern direction, round Shabdapati mountains, Kundal mountain which is in the Kundal dveep—the eleventh from Jambu dveep in the shape of ear ring, spherical Ruchakavar mountain which is in thirteenth Ruchak dveep. Manushottar mountain that determines the limits of area inhabited by human beings, Kalodadhi Sea, Lavan Sea, great rivers like Ganga, great lakes like Padma, Mahapadma, four Ratikar mountains which are located at the corner of Nandishvar dveep like a margin, black mountains called Anjanak mountains lying within the area of Nandishvar dveep, sixteen Dadhimukh mountains situated near sixteen lakes close to Anjanak mountains, Avapat mountains where Vaimanik gods get down for coming to the world inhabited by human beings, Utpat mountains such as Tiginchh Koot from where the bhavanpati gods go up in order to come to human world, golden kanchanak mountains located in Devakuru and Uttarkuru areas, two yamkar mountains located at the bank of Sita river flowing near Neelavant mountain, two Chitrakoot and Vichitrakoot mountains at the bank of Sitoda river near Nishadh mountain, Shikhari—the Gostup mountain located in the sea, Khoot—the koots of Nandan forest. These gods also do not feel fully satisfied with the unlimited possessions and means of enjoyment they have. When such living beings do not feel satisfied with their possessions how then the other living beings can attain satisfaction.

Human beings reside in Vakshaskar mountains such as Chitrakoot mountain and others that divide the Vijayas. There are human beings in Akarma areas such as Haimavat and others. Fifteen Karma Bhoomis

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

such as Bharat, Airavat and others are also inhabited by men like Chakravati, Vasudev, Baladeva, Mandlik Kings, Crown princes; many prosperous people, persons honoured by the state (having gold ornament on their forehead as a mark of that honour), commandar in chiefs, rich people having wealth upto the height of an elephant, noblemen (who wear the emblem given to them by the king—the god of wealth), the state officials (appointed to look after the welfare and to save the country from decline), traders (who move out for business with other small traders), headmen of villages or heads of large families and ministers. All these people and suchlike others also collect more and more articles that increase their attachment.

Parigraha (attachment in worldly objects) has no end. It is not capable of helping anyone. It is incapable of saving people from misery. Its end is also painful. It is unstable. It is not permanent as it is destroyed every moment. It is the fundamental cause of all sins. It is worthy to be discarded by the person learned in scriptures. It is the cause of killing and bondage. People experience trouble, pain, hurt and bondage because of the feeling of attachment (parigraha). Attachment itself becomes the cause of dreadful quarrels leading to killings and bondage for the persons involved in it. Thus the above-mentioned celestial beings and the prosperous human beings, who collect and store money, gold and jewels remain engrossed in greed. They move in this world, which is full of all type of troubles.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि अब्रह्मचर्य की तरह परिग्रह ने भी सभी संसारी प्राणियों को अपने जाल में फँसा रखा है। ऊँची से ऊँची श्रेणी के देव जिन्हें मन इच्छित कामभोग प्राप्त हैं, वे भी आसक्ति और ममत्वरूप परिग्रह से बँधे हैं। यद्यपि यहां चारों निकाय के देवों को परिग्रही बताया है फिर भी पञ्चम स्वर्ग–ब्रह्मलोक के अन्त में सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट; ये पूर्वोत्तर आदि आठ दिशाओं में निवास करने वाले लोकान्तिक देव प्रायः एक भव–मनुष्यजन्म धारण करके मोक्ष पाते हैं, ये परिग्रह के प्रति अत्यल्प ममत्व रखते हैं। तीर्थंकर–प्रभु जब विरक्त होकर मुनिदीक्षा धारण करने के अभिमुख होते हैं, तब ये लोकान्तिक देव उन्हें प्रतिबोधित करने आते हैं। ये देवर्षि होते हैं, जिनवाणी के ज्ञाता और अध्येता होते हैं। ये अपनी समस्त आयु प्रायः इसी प्रकार के उत्तम चिन्तन–मनन में व्यतीत कर देते हैं। इसी प्रकार अनुत्तरविमानवासी देवों का भी मोह उपशान्त होता है। इसलिए चारों निकाय के देवों में इन्हें परिग्रह के बारे में अपवाद समझना चाहिए। मानवों में षट्खण्ड चक्रवर्ती सम्राट् १६ हजार देव जिसकी सेवा करते हैं और छह खण्ड के विशाल साम्राज्य का स्वामी होता है वह भी इस आसक्ति और ममत्व से ग्रस्त सदा असंतुष्ट और अतृप्त ही रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह का वास्तविक स्वरूप प्रकाशित करने के लिए शास्त्रकार ने उसे 'अणंतं असरणं दुरंतं' कहने के साथ 'अधुवमणिच्चं, असासयं, पावकम्मणेम्मं, विणासमूलं, वहबंधपरिकिलेसबहुलं, अणंतसंकिलेसकारणं, सव्वदुक्खसंनिलयणं' इत्यादि विशेषणों द्वारा परिग्रह की व्यापकता, अस्थिरता और सब प्रकार के अनर्थों व पापों का मूल कारण बताया है।

परिग्रह से उत्पन्न होने वाले विविध प्रकार के मानसिक संक्लेश शारीरिक यातनाएँ अनुभवसिद्ध हैं और समग्र लोक इनका साक्षी है। अतएव शास्त्रकार ने परिग्रह को अनन्त संक्लेश का कारण कहा है।

अन्तिम पाठ में शास्त्रकार यही बताते हैं कि परिग्रह की सीमा अनन्त है। इसको सीमित करने के लिए सन्तोष और विरक्ति की जरूरत है। जिसने परिग्रह त्याग कर विरति ले ली वही लोभरूपी महाशत्रु को जीतता है और सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त होता है।

Elaboration—The present lesson clearly indicates that like non-chastity, attachment also has kept the living beings in this mundane world in its grip. Even the gods of high categories who have desired means of enjoyment and who are capable of creating the things they like with their fluid power, are bound in the chains of attachment. Among the human beings Chakravarti is the ruler of all the six parts of Bharat or Airavat. He has 16,000 gods at his service. He also remains always not fully satisfied due to his attachment for wealth and the family.

In order to indicate the real nature of parigraha, the author has called it 'Anant Asarnam durantam' and also 'adhuvamanichcham, asasyam, pavakammanemam, vinasamulam, vahabandhparikilesabahulam, anantsankilesakaranam, savvadukhasannilayanam'. With these characteristics he has brought home that attachment (parigraha) is the fundamental cause of all the sins and misfortunes and that it is prevalent all over and keeps one restless.

One experiences the mental distress and physical troubles as a result of this attachment. The entire world is witness to it. So it is mentioned in scriptures that parigraha is the cause of mundane troubles.

In the last aphorism, the author has mentioned that there is no limit to attachment. Contentment and detachment are essential to bring it within limits only then a person can conquer his great enemy, the greed. He then becomes liberated of all troubles.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६. परिग्गहस्स य अट्ठाए सिप्पसयं सिक्खए बहुजणो कलाओ य बावत्तरिं सुणिउणाओ लेहाइयाओ सउणरुयावसाणाओ गणियप्पहाणाओ, चउसट्ठिं च महिलागुणे रइजणणे, सिप्पसेवं, असि-मसि-किसि-वाणिज्जं, ववहारं अत्थसत्थईसत्थच्छरुप्पगयं, विविहाओ य जोगजुंजणाओ, अण्णेसु एवमाइएसु बहुसु कारणसएसु जावज्जीवं णडिज्जए संचिणंति मंदबुद्धी।

परिग्गहस्सेव य अट्ठाए करंति पाणाण-वहकरणं अलिय-णियडिसाइसंपओगे परदव्वाभिज्जा सपरदारअभिगमणासेवणाए आयासविसूरणं कलहभंडणवेराणि य अवमाणणविमाणणाओ इच्छामहिच्छप्पिवाससययतिसिया तण्हगेहिलोहघत्था अत्ताणा अणिग्गहिया करेंति कोहमाणमायालोहे।

अकित्तणिज्जे परिग्गहे चेव होंति णियमा सल्ला दंडा य गारवा य कसाया सण्णा य कामगुण-अण्हगा य इंदियलेस्साओ सयणसंपओगा सचित्ताचित्तमीसगाइं दव्वाइं अणंतगाइं इच्छंति परिघेत्तुं।

सदेवमणुयासुरम्मि लोए लोहपरिग्गहो जिणवरेहिं भणिओ णत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए।

९६. परिग्रह के लिए बहुत लोग सैकड़ों प्रकार के शिल्प या हुनर तथा उच्च श्रेणी की-निपुणता उत्पन्न करने वाले लेखन से लेकर पक्षियों की बोली तक की, गणित आदि बहत्तर कलाएँ सीखते हैं तथा नारियाँ रति उत्पन्न करने वाले चौंसठ महिलागुणों-कलाओं को सीखती हैं। कोई शिल्प द्वारा बड़े लोगों की सेवा करते हैं। कोई असिकर्म-तलवार आदि शस्त्रों को चलाने का अभ्यास करते हैं, कोई मसिकर्म-लिपि आदि लिखने की शिक्षा लेते हैं, कोई कृषि कर्म, खेती करते हैं, कोई वाणिज्य-व्यापार सीखते हैं, कोई व्यवहार अर्थात् विवाद के निपटारे की, न्यायशास्त्र की शिक्षा लेते हैं। कोई अर्थशास्त्र-राजनीति आदि की, कोई धनुर्वेद आदि शास्त्र एवं छुरी आदि शस्त्रों को पकड़ने और चलाने की शिक्षा लेते हैं। कोई अनेक प्रकार के वशीकरण आदि योगों की शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार परिग्रह के सैकड़ों कारणों-उपायों में प्रवृत्त होकर मनुष्य आजीवन विडम्बना पाते हैं। परिग्रह के गुलाम बनकर नाचते हैं वे मन्दबुद्धि परिग्रह का संचय करने में लगे रहते हैं।

परिग्रह के लिए लोग प्राणियों की हिंसा करते हैं, झूठ बोलते हैं, दूसरों को ठगते हैं, निकृष्ट घटिया वस्तु की मिलावट करके उत्कृष्ट दिखलाते हैं और पराये द्रव्य में लालच करते हैं। स्वदार-गमन में शारीरिक एवं मानसिक खेद का तथा परस्त्री की प्राप्ति न होने पर मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हैं। परिग्रह के लिए कलह-विवाद लड़ाई तथा वैर-विरोध करते हैं, अपमान तथा यातनाएँ सहन करते हैं और चक्रवर्ती आदि के समान बड़ी-बड़ी इच्छाओं की पिपासा से निरन्तर प्यासे बने रहते हैं। तृष्णा प्राप्त-अप्राप्त द्रव्य की प्राप्ति की लालसा पदार्थों सम्बन्धी गृद्धि-आसक्ति तथा लोभ में ग्रस्त रहते हैं। वे त्राणहीन अपनी इन्द्रियों तथा मन पर किसी प्रकार के नियंत्रण नहीं करके क्रोध, मान, माया और लोभ में रचे-पचे रहते हैं।

इस सर्वत्र निन्दनीय परिग्रह में ही तीनों शल्य-(१) मायाशल्य, (२) मिथ्यात्वशल्य, और (३) निदानशल्य पैदा होते हैं, इसी में तीन दण्ड-(१) मनोदण्ड, (२) वचनदण्ड, और (३) कायदण्ड-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपराध पैदा होते हैं-(१) ऋद्धि, (२) रस, तथा (३) साता रूप तीन गौरव-सम्पत्ति, गरिष्ठ भोज्य पदार्थों एवं सुख-साधनों की प्राप्ति का अहंकार उत्पन्न होता है, क्रोधादि चार कषाय होते हैं। इसी में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह नामक चारों संज्ञाएँ होती हैं, इन्द्रियों के शब्दादि विषय तथा हिंसादि पाँच आस्रवद्वार, इन्द्रियविकार तथा कृष्ण, नील एवं कापोत नामक तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। परिग्रह के कारण ही स्वजनों के साथ संयोग सम्बन्ध होते हैं। और परिग्रहवान् असीम-अनन्त सचित्त, अचित्त एवं मिश्र-द्रव्यों को ग्रहण करने की इच्छा करते हैं।

देवों, मनुष्यों और असुरों सहित इस त्रस-स्थावररूप जगत् में जिनेन्द्र भगवन्तों-तीर्थंकरों ने (पूर्वोक्त स्वरूप वाले) **लोभ**-परिग्रह का प्रतिपादन किया है। (वास्तव में) परिग्रह के समान संसार में अन्य कोई दूसरा फंदा पाश व प्रतिबन्ध नहीं है।

96. Many persons learn arts of hundreds of types for parigraha (increasing attachment to wealth). In order to gain expertise of highest quality, they learn seventy two arts of men which include art of writing, mathematics and learning the language of birds. Women learn sixty four arts that produce sensual enjoyment. With the help of such education, they serve the elite. Some persons train themselves in handling swords and other weapons. Some learn the art of writing. Some learn agriculture. Some learn trade and commerce. Some learn law to dispense justice. Some learn economics, political science while some get military training. Some learn astrology to overcome effect of constellations. Thus by engaging themselves in hundreds of suchlike causes of parigraha, many people remain disturbed throughout their life. They remain slaves of attachment. They have low intellect. They remain engaged in increasing wealth that causes attachment.

People cause violence to living beings due to attachment to wealth (parigraha). They tell a lie. They cheat others. They mix low quality substance and declare the mixture as of best quality. They are greedy for property of others. They experience physical weakness and mental agony in mating with their own wife. They experience mental distress when they are unable to have the woman belonging to others. They resort to quarrel and inimical behaviour due to this attachment for wealth. They undergo troubles and dishonour. They remain continuously obsessed in efforts of satisfying their mighty desires and ambitions. They remain engaged in craving what they do no have and the greed for it. They are without any protection. They have no control over their senses. They remain engrossed in passions like anger, greed, ego and deceit.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The three cursed thorns—namely crookedness, wrong faith or perception and desire of specific fruit of efforts (nidaan) arise due to this feeling of attachment which is condemned everywhere. They lead to mental, vocal and physical punishment. They feel pride in their wealth, enjoyments and comforts. They remain in a state affected by four passions — anger, greed, ego and deceit. They have desire for food, mating, attachment and also a sense of fear. They are slave to the subject of their senses. They engage in violence and the like—the gateway of inflow of Karmas. They remain adversely affected by desire for sensual gratification. They remain absorbed in adverse thought activity called black, blue and grey leshyas (thought reflection or thought colours). The family relationship develops due to parigraha (attachment). One who is deeply engaged in attachment, he has a desire to have living, non-living and mixed substances without any limit.

In this world inhabited by celestial beings, human beings, demon-gods, mobile and immobile living beings, Tirthankars have laid a stress on greed (as mentioned above) in the form of attachment. In reality, there is no other bondage more important and tight than parigraha (feeling of attachment).

विवेचन : मूल पाठ में बहत्तर कलाओं और चौंसठ महिलागुणों का निर्देश किया गया है। कलाओं के नाम जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार २, रायपसेणिय आदि अनेक आगमों में उल्लिखित हैं, उनका वर्णन कई बार किया जा चुका है। वस्तुतः कलाओं की कोई संख्या निर्धारित नहीं हो सकती। समय-समय पर कलाओं की संख्या और स्वरूप बदलता रहता है। आधुनिककाल में अनेक नवीन कलाओं का आविष्कार हुआ है। प्राचीनकाल में जो कलाएँ प्रचलित थीं, उनका वर्गीकरण, बहत्तर कलाएँ तथा महिलाओं के चौंसठ गुणों के वर्णन में किया गया है।

पुरुषों की बहत्तर कलाओं का तथा ६४ महिलागुणों का उल्लेख पढ़ने पर प्राचीनकालीन शिक्षा-पद्धति एवं जीवन-पद्धति का अच्छा चित्र हमारे समक्ष उभरकर आता है। आगमों से यह भी विदित होता है कि ये कलाएँ सूत्ररूप में, अर्थरूप और प्रयोग से सिखलाई जाती थीं।

इस समग्र वर्णन का सारांश यह है कि परिग्रह के लिए मनुष्य आजीवन विविध कार्य करता है, उसके लिए मथता है, मगर कभी तृप्त नहीं होता और अधिकाधिक परिग्रह के लिए तरसता-तरसता ही मृत्यु के शिकंजे में फँस जाता है।

Elaboration—In the original text seventy two arts of men and sixty four arts of women have been mentioned. The names of these arts are mentioned in Vakshaskar 2 of Jambudveep Prajnapti, Raipaseniya Sutra and many other Agams. In fact there is no definite limit of the number of arts. The number and the nature of the arts change from time to time. In

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

the present age, many new arts have been invented. The arts which were prevalent in the ancient period have been listed as 72 arts for men and 64 arts for women.

One can have a good understanding of the education and way of life of the ancient period by going though these 72 arts of men and 64 arts of women. It is also mentioned in the scriptures that the training in these arts was provided in those day.

The very essence of this entire description is that man engages himself in different activities for parigraha (increasing his possessions and becoming attached to them). He makes all out efforts for them and never feels satisfied. He tries more and more for it and in the process succumbs to death.

परिग्रह पाप का कटुफल BITTER FRUITS OF ATTACHMENT

९७. परलोगम्मि य णट्ठा तमं पविट्ठा महयामोहमोहियमई तिमिसंधयारे तसथावरसुहुमबायरेसु पज्जत्तमपज्जत्तग–साहारण–पत्तेयसरीरेसु य अण्डय–पोयय–जराउय–रसय–संसेइम–सम्मुच्छिम–उब्भिय–उववाइएसु य णरय–तिरिय–देव–मणुस्सेसु जरामरणरोगसोगबहुलेसु पलिओवमसागरोवमाइं अणाइयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टंति जीवा लोहवससण्णिविट्ठा। एसो सो परिग्गहस्स फलविवागो इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ ण अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति।

एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरणामधिज्जो कहेसी य परिग्गहस्स फलविवागं।

एसो सो परिग्गहो पंचमो उ णियमा णाणामणिकणगरयण–महरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवरमोत्तिमग्गस्स फलहभूओ।

चरिमं अहम्मदारं समत्तं। त्ति बेमि॥

९७. परिग्रह में आसक्त प्राणी परलोक में और इस लोक में सुगति एवं सुख–शान्ति को नष्ट कर देते हैं। (सन्मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं) अज्ञानरूपी घोर अंधकार में डूबे रहते हैं। तीव्र मोहनीयकर्म के उदय से मोहित मति वाले विवेकशून्य हो जाते हैं। लोभ के वश में पड़े हुए जीव त्रस, स्थावर, सूक्ष्म और बादर पर्यायों में तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक अवस्थाओं में यावत् चार गति वाले संसार–कानन में सतत परिभ्रमण करते रहते हैं।

परिग्रहरूप अधर्म का यह फलविपाक इस लोक और परलोक में अल्प सुख और अत्यन्त दुःख प्रदान करने वाला है। घोर भय से परिपूर्ण है, गाढ़ कर्मबन्ध का कारण है, दारुण है, कठोर है और असाता (दुःखों) का हेतु है। हजारों वर्षों में अर्थात् बहुत दीर्घकाल के प्रयत्न पश्चात् इससे छुटकारा मिलता है। किन्तु इसके फल को भोगे बिना कदापि छुटकारा नहीं मिलता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार ज्ञातकुलनन्दन महात्मा महावीर जिनेश्वर देव ने पूर्वोक्त परिग्रहरूप आस्रवद्वार कहा है। अनेक प्रकार की चन्द्रकान्त आदि मणियों, स्वर्ण, कर्केतन आदि रत्नों तथा बहुमूल्य अन्य द्रव्यरूप यह परिग्रह निर्लोभता सुखरूप मोक्षमार्ग के लिए अर्गला के समान प्रतिरोधक है।

इस प्रकार यह अन्तिम आस्रवद्वार समाप्त हुआ।

॥ पंचम आस्रव द्वार समाप्त ॥

97. The persons deeply absorbed in feeling of attachment (parigraha) adversely affect their present life and also the next life, their happiness and the peace of mind. They go astray from the right path. They remain overpowered by the dreadful darkness of ignorance. They lose sense of discrimination due to the effect of serious deluding Karma. As a result of their greed, the mobile, immobile, subtle and gross living beings wander about in the mundane world of continuous chain of birth, death and rebirth consisting of four states of existence in various forms—complete and incomplete.

Such result of adharm in the form of attachment provides very little happiness and extreme trouble in this life and in succeeding life. It is full of dreadful fear. It is the cause of thick bondage of Karma. It is harsh, troublesome and cause of pain. One can be free from this bondage only after serious efforts lasting for a very long period of thousands of years. One can never discard it without experiencing its consequences.

Bhagavan Mahavir has propounded that parigraha is a hurdle in the path of liberation. This parigraha (attachment) leads to collection of many types of precious stones, gold, jewels and other valuables. It dries up happiness. Thus the last door of inflow is concluded.

● END OF THE FIFTH CHAPTER ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्रवद्वार का उपसंहार
CONCLUSION OF ASRAV DVAR

शास्त्रकार ने पूर्वोक्त पाँच अध्ययनों में पाँच आश्रवों का वर्णन किया है। अब पाँच गाथाओं द्वारा उनका उपसंहार करते हैं।

९८. एएहिं पंचहिं असंवरेहिं, रयमादिणित्तु अणुसमयं।
चउविहगइपेरंतं, अणुपरियट्टंति संसारे ॥ १ ॥

९८. इन पूर्वोक्त (प्राणातिपात आदि) पाँच आस्रवद्वारों के निमित्त से जीव प्रतिसमय आत्म-प्रदेशों के साथ कर्मरूपी रज का संचय करके चार गतिरूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

The author has described five asravas (inflow of Karma) in the preceding five chapters. Now he concludes them with five verses.

98. A living being collects every moment the Karmic matter with the above said five gateways of asravas (inflow of Karma) namely violence to life force and others. As a result thereof he wanders in the mundane world consisting of four states of existence.

९९. सव्वगइपक्खंदे, काहिंति अणंतए अकयपुण्णा।
जे य ण सुणंति धम्मं, सोऊण य जे पमायंति ॥ २ ॥

९९. जो आस्रवद्वारों का निरोध नहीं करते वे पुण्यहीन प्राणी धर्म का श्रवण नहीं कर पाते। अथवा श्रवण करके भी उसका आचरण करने में प्रमाद करते हैं, व अनन्तकाल तक चार गतियों में गमनागमन (जन्म-मरण) करते रहेंगे।

99. Those unlucky persons who do not close the asrava dvars (inflow of Karma) cannot listen to scriptures. Even if they listen to scriptures, they remain slack in putting them into practice. They shall remain wandering in the mundane world of four states of existence for an infinite period.

१००. अणुसिट्ठं वि बहुविहं, मिच्छदिट्ठिया जे णरा अहम्मा।
बद्धणिकाइयकम्मा, सुणंति धम्मं ण य करेंति ॥ ३ ॥

१००. जो पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं, धर्म से हीन हैं, जिन्होंने निकाचित (अत्यन्त प्रगाढ़) कर्मों का बन्धन किया है, वे उत्तम गुरुजनों के पास अनेक तरह से शिक्षा (ज्ञान) पाकर, धर्म का श्रवण तो करते हैं किन्तु उसका आचरण नहीं कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्रव सेवित जीव चारगति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है। मोक्ष नहीं प्राप्त करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 14

Illustration No. 14

आस्रवद्वार का उपसंहार

हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह—इन पाँचों आस्रवद्वार के निमित्त से आत्मा प्रतिसमय कर्मरूपी रज का संग्रह करके चार गतिरूप (नरक, तिर्यंच, मनुष्य एवं देव) संसार सागर में परिभ्रमण करता रहता है। ऊपर के चित्र में आस्रवों के माध्यम से आत्मा पर कर्म रज का संग्रह दिखाया है और नीचे के चित्र में आस्रव सेवित आत्मा को चार गतिरूप संसार में परिभ्रमण करता बताया है। आश्रव सेवित जीव मोक्ष नहीं जा सकता।

—सूत्र 98, पृ. 244

CONCLUSION OF DOOR OF INFLOW

Violence, falsity, stealing, non-celibacy, and covetousness, these five doors of inflow of karma cause the soul to acquire Karmic dust every moment and as a consequence it continues to drift in the sea of the cycles of rebirth in four genuses (infernal, animal, human and divine). The illustrations at the top show this acquisition of karmic dust. Those at the bottom show the entrapped soul moving about in four genuses. A soul open to inflow of karmas does not get liberated.

— Sutra-98, page-244

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

100. There are persons who have wrong faith or wrong perception. They are ignorant about dictum of scriptures. They have collected Nikachit Karma (karmas the effect of which can never be avoided). Such persons may gain scriptural knowledge in different ways from the teachers. But they cannot mould their conduct accordingly.

१०१. किं सक्का काउं जे, णेच्छह ओसहं मुहा पाउं।
जिणवयणं गुणमहुरं, विरेयणं सव्वदुक्खाणं ॥ ४॥

१०१. जिन भगवान के वचन समस्त दुःखों का नाश करने के लिए गुणयुक्त मधुर विरेचन - औषध के समान हैं, किन्तु निःस्वार्थ बुद्धि से दी जाने वाली इस औषध को जो पीना ही नहीं चाहते, उनके लिए क्या किया जा सकता है !

101. The sermon of Tirthankar is the sweat medicine having the quality of bringing an end to all the troubles. But what can be done in case of those persons who do not want to make use of such a medicine although it is provided with an attitude of selflessness.

१०२. पंचेव य उज्झिऊणं, पंचेव य रक्खिऊणं भावेणं।
कम्मरय-विप्पमुक्कं, सिद्धिवर-मणुत्तरं जंति ॥ ५॥

१०२. जो प्राणी हिंसा आदि पाँच आस्रवों को त्यागकर, अहिंसा आदि पाँच संवरों का भावपूर्वक पालन करते हैं, वे समस्त कर्मरूपी रज से सर्वथा रहित होकर सर्वोत्तम सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त कर लेते हैं।

॥ आस्रवद्वार नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त ॥

102. Those persons attain the unique state of salvation, who discard five asravas namely violence and others and meticulously practice five samvars (stoppages of inflow of Karmas).

● FIRST SHRUT SKANDH CONCLUDED ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

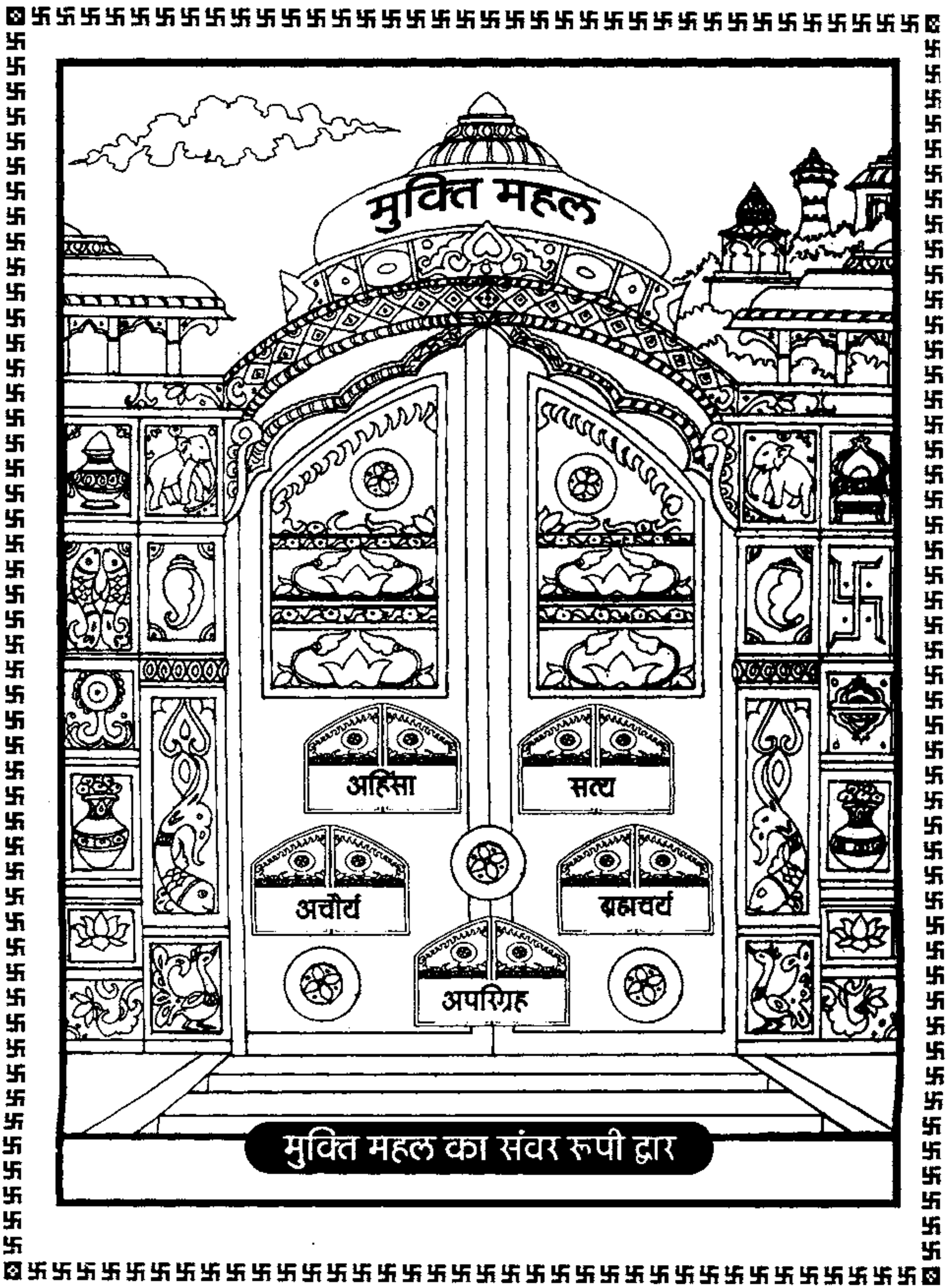

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय श्रुतस्कंध : संवरद्वार

Second Volume : GATEWAYS OF SAMVAR

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवरद्वार
GATEWAYS OF SAMVAR

प्रथम श्रुत स्कंन्ध में पाँच आश्रवों का विस्तृत विवेचन किया गया है। आश्रव का विपरीत संवर है। संवर का महत्त्व जाने बिना आश्रवों से विरक्ति नहीं हो सकती। इसलिये यहाँ सर्वप्रथम पाँच संवरों का दिग्दर्शन निम्नोक्त पाठों द्वारा कराया गया है।

Five Asravas (causes of inflow) have been discussed in detail in the first section (Shrutskandh). Samvar (blockage of inflow) is opposite of Asrava. Without knowing the importance of Samvar apathy for Asravas cannot be attained. That is why introduction of five samvars is given hereunder as the starting point.

भूमिका INTRODUCTION

१०३. जंबू ! एत्तो संवरदाराइं, पंच वोच्छामि आणुपुव्वीए।
जह भणियाणि भगवया, सव्वदुक्खविमोक्खणट्ठाए॥ १॥

१०३. श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं-हे आयुष्मान् जम्बू ! अब मैं उसी प्रकार पाँच संवरद्वारों का अनुक्रम से कथन करूँगा जिस प्रकार भगवान ने सर्वदुःखों से मुक्ति पाने के लिए कहे हैं॥ १॥

103. Shri Sudharma Swami states, 'O Jambu ! I shall now tell you five gateways of Samvar (stoppage of inflow of Karma) in the very order as they have been narrated by Bhagavan Mahavir for salvation from all miseries (1).

१०४. पढमं होइ अहिंसा, बिइयं सच्चवयणं ति पण्णत्तं।
दत्तमणुण्णाय संवरो य, बंभचेर-मपरिग्गहत्तं च॥ २॥

१०४. (इन संवरद्वारों में) प्रथम द्वार अहिंसा है, दूसरा सत्यवचन है, तीसरा स्वामी की आज्ञा से दिया हुआ और अनुमति प्रदत्त (अदत्तादानविरमणद्वार) है, चौथा ब्रह्मचर्य और पाँचवा परिग्रह त्याग रूप अपरिग्रह द्वार है॥ २॥

104. (Out of the gateways of Samvar), the first is Ahimsa (non-violence). The second is truth. The third is to take only that which is given with the order and consent of its master. The fourth is chastity (celibacy) and the fifth is non-attachment (aparigraha) or discarding the feeling of attachment (2).

१०५. तत्थ पढमं अहिंसा, तस-थावर-सव्वभूय-खेमकरी।
तीसे सभावणाओ, किंचि वोच्छं गुणुद्देसं॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०५. इन संवरद्वारों में प्रथम जो अहिंसा है, वह त्रस और स्थावर-समस्त प्राणियों का क्षेम-कुशल करने वाली है। मैं पाँच भावनाओं सहित उस अहिंसा के गुणों का संक्षिप्त कथन करूँगा॥ ३॥

105. Of these gateways of Samvar the first, Ahimsa, is instrumental in the well being of all living beings, mobile and immobile. I will state in brief the attributes of that Ahimsa alongwith the five intrinsic sentiments (3).

विवेचन : ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के बन्ध का कारण आस्रव कहलाता है। आस्रव द्वारों को रोक देने का कार्य संवर कहलाता है। संवर के पाँच भेद कहे गये हैं- अहिंसा, सत्य, दत्तादान, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। तीन गुप्ति, पाँच समिति, दस श्रमण धर्म, अनित्यत्व आदि बारह भावनायें ये सभी संवर के साधन हैं। अतः इन सब संवरों को अहिंसादि पाँच संवरों एवं उनकी भावनाओं में अन्तर्गत कर लिया गया है।

सरलतापूर्वक संवर का अर्थ समझाने के लिए एक उदाहरण दिया गया है-जिस प्रकार एक नौका अथाह समुद्र में स्थित है। पानी में पड़ा काष्ठ धीरे-धीरे गल जाने या जीर्ण हो जाने से नौका में कुछ छिद्र हो गये और समुद्र का जल नौका में प्रवेश करने लगा। जल के भार के कारण वह नौका कभी भी डूब सकती है। तब चतुर नाविक ने उन छिद्रों को देखकर उन्हें बन्द कर दिया। नौका के डूबने की आशंका समाप्त हो गई। अब नौका सकुशल किनारे लग जायेगी।

इसी प्रकार इस संसार-सागर में कर्म-वर्गणारूपी अथाह जल भरा है, अर्थात् सम्पूर्ण लोक में अनन्त-अनन्त कार्मण-वर्गणाओं के सूक्ष्म पुद्‌गल ठसाठस भरे हुए हैं। उस अथाह जल के बीच में आत्मारूपी नौका स्थित है। हिंसा आदि आस्रवरूपी छिद्रों के द्वारा उसमें कर्मरूपी जल भरा जा रहा है। यदि उस जल को रोका न जाये तो कर्मों के भार से वह नौका एक दिन डूब जायेगी-अर्थात् आत्मा नरकादि अधोगति में चली जायेगी। मगर विवेक ज्ञान-सम्पन्न नाविक कर्मागमन के कारणों को देखता है और उन्हें शीघ्र बन्द कर देता है, अर्थात् अहिंसा आदि के आचरण से हिंसादि आश्रवों को रोक देता है। जब आस्रव रुक जाते हैं, कर्मबन्ध के कारण समाप्त हो जाते हैं तो कर्मों का नवीन बन्ध रुक जाता है और आत्मारूपी नौका कुशलक्षेम संसार-सागर से पार पहुँच जाती है।

यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि नवीन पानी के आगमन को रोकने के साथ ही नौका में जो जल पहले भर चुका है, उसे भी उलीचकर हटा देना पड़ता है। इसी प्रकार जो कर्म पहले बँध चुके हैं, उन्हें निर्जरा द्वारा नष्ट करना आवश्यक है। किन्तु यह क्रिया संवर का नहीं, निर्जरा का विषय है। यहाँ केवल संवर का ही प्रतिपादन किया जा रहा है।

प्रथम गाथा में प्रयुक्त 'आणुपुब्वीए' पद से यह प्रकट किया गया है कि संवरद्वारों की प्ररूपणा अनुक्रम से की जायेगी। अनुक्रम द्वितीय गाथा में स्पष्ट कर दिया गया है। प्रथम संवरद्वार अहिंसा है, दूसरा सत्य, तीसरा दत्त (अदत्तादानत्याग), चौथा ब्रह्मचर्य और पाँचवाँ अपरिग्रहत्व है। इनमें अहिंसा को प्रथम स्थान दिया गया है, क्योंकि अहिंसा प्रधान और मूल व्रत है। सत्यादि चारों व्रत अहिंसा की रक्षा के लिए हैं। निर्युक्तिकार ने कहा है-

निद्दिट्ठं एत्थ वयं इक्कं चिय जिणवरेहिं सव्वेहिं।
पाणाइवायवेरमणमवसेसा तस्स रक्खट्ठा॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् समस्त तीर्थंकर भगवन्तों ने एक प्राणातिपातविरमणव्रत का ही कथन किया है। शेष (चार) व्रत उसी की रक्षा के लिए हैं।

अहिंसा को **'तस–थावर–सव्वभूयखेमकरी'** कहकर उसकी असाधारण महिमा प्रकट की गई है। अहिंसा प्राणीमात्र के लिए मंगलमयी है, सब जीवों का क्षेम कल्याण करने वाली है।

Elaboration—It has been mentioned earlier that the cause of bondage of eight types of Karma such as knowledge obscuring Karma and others is called Asrava. The antonym of Asrava is Samvar. Samvar closes the gateways of asrava (inflow of Karma). Samvar is also of five types (non violence, truth, to take what is given, chastity and non-attachment). The methods of attaining Samvar are three guptis, five samitis, ten duties of a monk and twelve deep thought activities about real nature of the world such as its non-permanence and others. So all this has been included in these five Samvars namely non-violence and others and their intrinsic sentiments.

An illustration is narrated in order to make one understand easily the meaning of Samvar. A boat is stationed in deep sea. Slowly and gradually the wood of the boat gets damaged as it remained in sea for a long period. So some holes appear in the boat and the water of the sea starts entering the boat. Due to the weight of that water, the boat can sink any time. The expert boatsman closed those holes when he saw them. So the fear of sinking withered away. Now boat will safely arrive at the bank.

Similarly the water of Karma particles is in the sea of mundane existence. In other words subtle Karmic molecules, infinite in number, are fully occupying the entire space in the world. They are so subtle that they are invisible. The soul in the form of boat is stationed in that sea. The water of Karma has entered the said boat through the holes of non-violence and other Asravas. If this inflow of water of Karma is not stopped, that boat shall sink one day. In other words, the soul than shall go to the lower state of existence namely, hell. But the person, who is equipped with the knowledge of discrimination, is watchful about the causes of inflow of Karmas. He stops that inflow with practice of non-violence. When the inflow of Karmic matter stops, the causes of bondage of Karma come to an end. So the new bondage of Karma stops. Then the boat in the form of soul crosses the sea of wanderings in mundane world safely.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Here one should further understand that simultaneously with the stopping of inflow of water in the boat one has to remove the water that has already entered the boat. So it is essential to destroy the already collected Karma through Nirjara. But that is the subject of nirjara and not of Samvar (stoppage of inflow). Here only Samvar is being discussed.

The word anupuvviye in the first verse indicates that the gateways of Samvar shall be discussed in their respective order and that order has been classified in the second verse. First gateway of Samvar is non-violence, second is truth, third is what is given (to discard stealing), fourth is chastity and fifth is non-attachment. In this order the first place is of non-violence because non-violence is the primary vow. The other four vows namely truth and others are to assist it in its practice. The commentator has also said. All the Tirthankars have laid stress on the vow of avoiding violence to life force. The other four vows are for its support.

By calling Ahimsa (non-violence) as thavar-savrabhiya khemakari its unique importance has been depicted. Ahimsa is meritorious for all the living beings. It incorporates the protection and welfare of all.

संवरद्वारों की महिमा **IMPORTANCE OF SAMVAR**

१०६. ताणि उ इमाणि सुव्वय ! महव्वयाइं लोयहियसव्वयाइं सुयसागर-देसियाइं तवसंजममहव्वयाइं सीलगुणवरव्वयाइं सच्चज्जवव्वयाइं णरय-तिरिय-मणुय-देवगइ-विवज्जगाइं सव्वजिणसासणगाइं कम्मरयविदारगाइं भवसयविणासगाइं दुहसयविमोयणगाइं सुहसयपवत्तणगाइं कापुरिसदुरुत्तराइं सप्पुरिसणिसेवियाइं णिव्वाणगमणसग्गप्पयाणगाइं संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया।

१०६. श्री सुधर्मा स्वामी अपने अन्तेवासी जम्बू स्वामी से कहते हैं-हे सुव्रत ! हे उत्तम व्रतों के धारक और पालक जम्बू ! पहले जिन नामों का उल्लेख किया जा चुका है ऐसे ये अहिंसादि पाँच महाव्रत समस्त लोक के लिए हितकारी हैं या लोक का सर्वहित करने वाले हैं। श्रुतरूपी सागर में इनका वर्णन किया गया है। ये तप और संयमरूप व्रत हैं या इनमें तप एवं संयम का कभी क्षय नहीं होता है। इन महाव्रतों में शील और उत्तम गुणों का समूह सन्निहित है। सत्य और ऋजुता-सरलता-निष्कपटता इनमें मुख्य है। ये महाव्रत नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में परिभ्रमण करने से रक्षा करने वाले हैं, अर्थात् मुक्ति को देने वाले हैं। समस्त तीर्थंकरों ने इनका उपदेश दिया है। ये कर्मरूपी रज का क्षय करने वाले हैं। सैकड़ों भवों-जन्म-मरणों का अन्त करने वाले हैं। सैकड़ों दुःखों से छुटकारा दिलाकर सैकड़ों सुखों की प्राप्ति कराने वाले हैं। कायर पुरुषों के लिये इन महाव्रतों का निष्ठापूर्वक पालन करना दुष्कर है। सत्पुरुषों के द्वारा सेवित है, अर्थात् धीर-वीर पुरुषों ने इनका सेवन किया है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(सेवन करते हैं और करेंगे)। ये मोक्ष में जाने का सम्यक् मार्ग हैं, और सुगति में पहुँचाने वाले हैं। ऐसे इन पाँच महाव्रत रूप संवरद्वार का कथन भगवान महावीर ने किया है।

106. Shri Sudharma Swami said to his disciple Jambu Swami, 'O Jambu ! The five great vows namely non-violence and other, which have been mentioned earlier are beneficial for the entire world. The welfare of the universe is in their practice. They have been narrated in the scriptures. These vows are in the nature of austerities and self-restraint. They are never devoid of austerities and restraint. They contain most important code of conduct. Most prominent among them are truth and straight forwardness or non-crookedness. They (the great vows) protect the living beings from wandering in hellish, animal, human and celestial state of existence. In other words they lead one to salvation. All the Tirthankars have stressed upon them in their teachings. They destroy the Karmic dust attached to the soul. They bring an end to hundreds of wanderings in births and deaths. These vows save the living beings from hundreds of troubles and provide hundreds of pleasures. The courageous, noble and good natured persons have practiced them (practice them and shall practice). They are the true path leading to liberation. Bhagavan Mahavir has narrated them in detail.

विवेचन : संवरद्वारों को महाव्रत कहा गया है। किन्तु एक अपेक्षा से अणुव्रतों को भी संवर के अन्तर्गत माना है। श्रावकों के पालन करने योग्य व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। अणुव्रतों में हिंसादि पापों का पूर्णतया त्याग नहीं होता-एक मर्यादा रहती है किन्तु महाव्रत कृत, कारित और अनुमोदना रूप तीनों करणों से तथा मन, वचन और काय रूप तीनों योगों से पालन किये जाते हैं। अणुव्रतों की अपेक्षा महान् होने से इन्हें महाव्रत कहा गया है।

इन महाव्रतों से संवर और निर्जरा-दोनों की सिद्धि होती है, अर्थात् नवीन कर्मों का आना भी रुकता है और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा भी होती है। संयम संवर का और तप निर्जरा का कारण है। मुक्ति-प्राप्ति के लिए संवर और निर्जरा दोनों अपेक्षित हैं। इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए इन्हें **कर्म-रजविदारक** कहा गया है।

महाव्रतों को **भवशतविनाशक** भी कहा है, अर्थात् इनकी आराधना से बहुत से भवों-जन्म-मरणों का अन्त हो जाता है। इनकी आराधना से जीव दुःखों से बच जाता है और सुखों को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

महाव्रतों या संवरों का वर्णन प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावनाओं सहित किया जायेगा। कारण यह है कि भावनाएँ एक प्रकार से व्रत का अंग हैं और उनका अनुसरण करने से व्रतों के पालन में सरलता होती है, सहायता मिलती है और व्रत में पूर्णता आ जाती है। भावनाओं की उपेक्षा करने से व्रत-पालन में बाधा आती है। अतएव व्रतधारी को व्रत की भावनाओं को भलीभाँति समझकर उनका यथावत् पालन करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—Here the gateways of Samvar (stoppage of inflow of Karma) is called great vows (Mahavrat). But in another context even minor vows (anuvrat) have been included in Samvar. The vows laid down for the householder devotees (Shravaks) are called anuvrat. In minor vows, the sins such as violence and other are not avoid completely. They are avoided to a limited extent. But the major vows are practiced mentally, vocally, physically in doing, getting done and also in supporting or appreciating activity being done. Since great vows or major vows are very great as compared to minor vows they are called great vows (Mahavrat).

The great vows result in both Samvar (stoppage of inflow of new Karma) and nirjara (destruction of Karma already collected). Self-restraint is the cause of Samvar while austerity is the cause of nirjara. To attain liberation, both Samvar and nirjara are necessary so they are called the sifters of Karma dust.

Major (great) vows are also called destroyers of hundred of wandering in life-spans. Their practice brings an end to many births and deaths. A living being saves himself from hundreds of troubles by their practice. He becomes capable of having many pleasures.

The great vows or the Samvars shall be discussed along with five thought reflections of each vow. This is because the thought reflections are in fact a part of the vows. By following them, it becomes easy to practice the vows. They assist in practice of the vows. The vows then can be meticulously followed. In case one ignores the thought reflections, he shall face difficulty in practicing the vows. So the practitioner of vows should properly understand the relevant thought activities and practice them meticulously.

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन : अहिंसा
FIRST CHAPTER : AHIMSA

शास्त्रकार ने प्रथम संवरद्वार का प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी भूमिका में पाँचों संवरद्वारों के निरूपण का उद्देश्य, उनका स्वरूप, महत्त्व बताने के साथ उनमें अहिंसा संवर को सबसे प्रमुख मानने का कारण बताया है। अब यहाँ शास्त्रकार ने अपनी चिर परिचित शैली के अनुसार सर्वप्रथम अहिंसा भगवती के गुण निष्पन्न साठ नाम बतायें हैं।

Before commencing the first Samvardvar, the author has detailed the purpose, definition and importance of all the five doors. He has also mentioned in the introduction the reason for Ahimsa being the most important of these doors. Now the author, in his known style, first of all gives sixty synonyms of Ahimsa derived from the attributes.

अहिंसा भगवती के साठ नाम SIXTY SYNONYMS OF NON-VIOLENCE (AHIMSA)

१०७. तत्थ पढमं अहिंसा जा सा सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स भवइ दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा।

१ णिव्वाणं २ णिव्वुई ३ समाही ४ सत्ती ५ कित्ती ६ कंती ७ रई य ८ विरई य ९ सुयंग १० तित्ती ११ दया १२ विमुत्ती १३ खंती १४ सम्मत्ताराहणा १५ महंती १६ बोही १७ बुद्धी १८ धिई १९ समिद्धी २० रिद्धी २१ विद्धी २२ ठिई २३ पुट्ठी २४ णंदा २५ भद्दा २६ विसुद्धी २७ लद्धी २८ विसिट्ठदिट्ठी २९ कल्लाणं ३० मंगलं ३१ पमोओ ३२ विभूई ३३ रक्खा ३४ सिद्धावासो ३५ अणासवो ३६ केवलीण ठाणं ३७ सिवं ३८ समिई ३९ सीलं ४० संजमो त्ति य ४१ सीलपरिघरो ४२ संवरो य ४३ गुत्ती ४४ ववसाओ ४५ उस्सओ ४६ जण्णो ४७ आययणं ४८ जयणं ४९ अप्पमाओ ५० अस्साओ ५१ वीसाओ ५२ अभओ ५३ सव्वस्स वि अमाघाओ ५४ चोक्ख ५५ पवित्ता ५६ सूई ५७ पूया ५८ विमल ५९ पभासा य ६० णिम्मलयर त्ति एवमाईणि णिययगुणणिम्मियाहं पज्जवणामाणि होंति अहिंसाए भगवईए।

१०७. उन (पूर्वोक्त) पाँच संवरद्वारों में प्रथम संवरद्वार 'अहिंसा' है। यह अहिंसा देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समग्र लोक के लिए–द्वीप के समान आश्रय देने वाली है, शरण देने वाली है अथवा दीपक के समान ज्ञान का प्रकाश देने वाली है। त्राण है–संसार के विविध प्रकार के दुःखों से पीड़ित जनों के लिए यही एकमात्र गति है, प्राप्त करने योग्य है तथा समस्त सद्गुण एवं सुख इसी में प्रतिष्ठित सन्निहित हैं। अहिंसा के गुण निष्पन्न नाम इस प्रकार हैं –

(१) निर्वाण–मुक्ति का कारण है।

(२) निवृत्ति–आत्मिक एवं मानसिक स्वस्थतारूप है।

(३) समाधि–समता का कारण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) शक्ति–आध्यात्मिक शक्ति का कारण है। कहीं-कहीं 'सत्ती' के स्थान पर 'संती' पद मिलता है, जिसका अर्थ है-शान्ति। अहिंसा में समस्त विग्रह विरोध, समाप्त हो जाने से वह परम 'शान्ति' भी कहलाती है।

(५) **कीर्ति**–कीर्ति या प्रशंसा का कारण है।

(६) **कान्ति**–अहिंसा के आराधक में शारीरिक एवं आत्मिक कान्ति-तेजस्विता उत्पन्न हो जाती है।

(७) **रति**–प्राणीमात्र के प्रति प्रीति, मैत्री, अनुरक्ति-आत्मीयता को उत्पन्न करने वाली है।

(८) **विरति**–पापों व दुष्कृत्यों से विरक्ति देने वाली है।

(९) **श्रुताङ्ग**–श्रुतज्ञान देने के कारण अर्थात् सत्-शास्त्रों के अध्ययन-मनन से अहिंसा उत्पन्न होती है, इस कारण इसे 'श्रुतांग' कहा गया है।

(१०) **तृप्ति**–सन्तोषवृत्ति या तृप्ति भी अहिंसा का एक रूप है।

(११) **दया**–कष्ट पाते हुए, मरते हुए या दुःखित प्राणियों की करुणाप्रेरित भाव से रक्षा करना, यथाशक्ति दूसरे के दुःख का निवारण करना अहिंसा का रूप है।

(१२) **विमुक्ति**–कर्म बन्धनों से पूरी तरह छुड़ाने वाली है।

(१३) **क्षान्ति**–क्षमा अथवा सहिष्णुता भी अहिंसा का ही अंग है।

(१४) **सम्यक्त्वाराधना**–संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्थारूप सम्यक्त्व की आराधना-सेवना का कारण है।

(१५) **महती**–समस्त व्रतों में या समस्त जगत् में अहिंसा महान्-प्रधान है।

(१६) **बोधि**–रत्नत्रयरूप बोधि का कारण है।

(१७) **बुद्धि**–बुद्धि को सार्थकता एवं सफलता प्रदान करने वाली है।

(१८) **धृति**–चित्त की धीरता-दृढ़ता है।

(१९) **समृद्धि**–मानसिक और आत्मिक-सब प्रकार की सम्पन्नता से युक्त है। जीवन को आनन्दित करने वाली है।

(२०) **ऋद्धि**–आत्मिक एवं भौतिक ऋद्धि-प्राप्ति का कारण है।

(२१) **वृद्धि**–पुण्य-धर्म की एवं दया आदि सद्गुणों की वृद्धि का कारण है।

(२२) **स्थिति**–मुक्ति में प्रतिष्ठित करने वाली है।

(२३) **पुष्टि**–पाप का क्षय करके पुण्य वृद्धि के द्वारा जीवन को पुष्ट बनाने वाली है।

(२४) **नन्दा**–स्व और पर को आनन्द-प्रमोद प्रदान करने वाली है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२५) **भद्रा**–स्व का और पर का भद्र–कल्याण करने वाली है।

(२६) **विशुद्धि**–आत्मा को शुद्ध बनाने वाली है।

(२७) **लब्धि**–केवलज्ञान आदि समस्त लब्धियों का कारण है।

(२८) **विशिष्ट दृष्टि**–विचार और आचार में अनेकान्त–प्रधान सम्यक् दृष्टि प्रदान करने वाली है।

(२९) **कल्याण**– शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य प्रदान करने वाली है / आत्मा का कल्याण करने वाली है।

(३०) **मंगल**–समस्त पापों का विनाश कर, सुख उत्पन्न करने वाली है।

(३१) **प्रमोद**–स्वयं को तथा दूसरों को हर्ष उत्पन्न करने वाली है।

(३२) **विभूति**–समस्त आध्यात्मिक ऐश्वर्य का कारण है।

(३३) **रक्षा**–प्राणियों को दुःख से बचाने वाली है, आत्मा की पापों से रक्षा करने वाली है।

(३४) **सिद्धावास**–मुक्तिधाम में पहुँचाने वाली, मोक्ष का हेतु है।

(३५) **अनास्रव**–आते हुए कर्मों का निरोध करने वाली है।

(३६) **केवलि–स्थानम्**–केवलियों के लिए स्थानरूप है। केवली सदा अहिंसाभाव में स्थित रहते हैं।

(३७) **शिव**–सुख स्वरूप, समस्त उपद्रवों का शमन करने वाली है।

(३८) **समिति**–सम्यक् प्रवृत्ति है।

(३९) **शील**–सदाचार स्वरूप वाली है।

(४०) **संयम**–मन और इन्द्रियों की प्रवृत्ति का निरोध तथा जीवरक्षा रूप है।

(४१) **शीलपरिग्रह**–सदाचार अथवा ब्रह्मचर्य का घर है।

(४२) **संवर**–आस्रव का निरोध करने वाली है।

(४३) **गुप्ति**–मन, वचन, काय की असत् प्रवृत्तियों को रोकने वाली है।

(४४) **व्यवसाय**–विशिष्ट–उत्कृष्ट निश्चय या उत्कृष्ट संकल्परूप है।

(४५) **उच्छ्रय**–प्रशस्त भावों की उन्नति–वृद्धि करने वाली है।

(४६) **यज्ञ**–अभयदान, सेवा, करुणा, परोपकार रूप यज्ञ है। अथवा आत्मदेव की भाव पूजा है।

(४७) **आयतन**–समस्त सद्‌गुणों का स्थान या आश्रय है।

(४८) **जयना**–अहिंसा यतना रूप है। प्राणियों की रक्षा के प्रति जागरूक रहना। यह अभय दान दात्री है।

(४९) **अप्रमाद**–प्रमाद लापरवाही आदि का त्याग सतत जागरूकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५०) **आश्वास**–समस्त प्राणियों के लिए आश्वासन सान्त्वनारूप है। कष्ट में धैर्य बंधाने वाली है।

(५१) **विश्वास**–समस्त जीवों के विश्वास का कारण है।

(५२) **अभय**–प्राणियों को निर्भयता प्रदान करने वाली तथा आराधक को भी निर्भय बनाने वाली है।

(५३) **सर्वस्य अमाघात**–प्राणिमात्र की हिंसा का निषेध करने वाली अमारी–घोषणा स्वरूप है।

(५४) **चोक्ष**–चोखी, सर्वोत्तम, शुद्ध तथा भली है।

(५५) **पवित्रा**–अत्यन्त पावन है तथा वज्र सरीखे घोर पाप के आघात से रक्षा करने वाली है।

(५६) **शुचि**–भाव की शुद्धता एवं निर्मलता है।

(५७) **पूता**–पूजा, विशुद्ध या प्रशस्तभाव से देवपूजारूप है।

(५८) **विमला**–आत्मा की निर्मलता का कारण है।

(५९) **प्रभासा**–आत्मा को दीप्ति प्रदान करने वाली, प्रकाशमय है।

(६०) **निर्मलतरा**–अत्यन्त निर्मल अथवा आत्मा को अतीव निर्मल बनाने वाली है।

अहिंसा भगवती के (पूर्वोक्त तथा इसी प्रकार के अन्य) अपने गुणों से निष्पन्न हुए नाम हैं।

107. Out of the five gateways of Samvar the first one is non-violence. The following are synonyms of non-violence. It is like an **island** for the entire world consisting of gods, human beings and demon gods as it gives them **support**. It serves as a lamp providing the light of knowledge. It provides **protection** or shelter to the people suffering various types of troubles in the world. All the good qualities and happiness are in it. Non-violence has the following attribute-based synonyms.

(1) Nirvan (Liberation)—It is the cause of salvation (liberation).

(2) Nirvriti—It provides metaphysical and mental health.

(3) Samadhi—It provides equanimity.

(4) Strength (Shakti)—It is the cause of spiritual strength. In some text the word is Santi instead of Satti, which means peace. Since non-violence finishes all disputes or opposition, it is called ultimate peace.

(5) Kirti (Praise)—Non-violence is the cause of praise or appreciation.

(6) Kanti (Glow)—Practitioner of Ahimsa gets physical and spiritual glow.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 15

Illustration No. 15

अहिंसा के गुण निष्पन्न नाम

प्रथम संवरद्वार में अहिंसा के 60 गुण निष्पन्न नाम बताये गये हैं। जिसमें से कुछ प्रमुख को चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है–

(1) **द्वीप**–अहिंसा को द्वीप के समान आश्रय देने वाला कहा गया है। यह देव, मनुष्य और असुर सहित सम्पूर्ण लोक के प्राणियों को द्वीप के समान शरण देने वाली है। इसे **दीपक** के समान ज्ञान का प्रकाश देने वाली भी कहा है। अहिंसा संवर से भावित सुसाधु इस द्वीप में सर्वोच्च स्थान पर बैठा दिखाया गया है।

(2) **निर्वाण**–अहिंसा को मोक्ष का हेतु बताया गया है।

(3) **निवृत्ति-समाधि**–यह अहिंसा समस्त पाप दुर्ध्यान एवं दुःखों से निवृत्त करके शान्ति एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाली। चित्त को शान्त एवं एकाग्र रखने वाली है।

(4) **ऋद्धि**–अहिंसा को आत्मिक एवं भौतिक लक्ष्मी प्राप्ति का कारण माना है।

(5) **बोधि**–सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र रत्नत्रय रूपी बोधि का कारण माना गया है।

(6) **कान्ति-शान्ति-रति**–अहिंसा के आराधक में शारीरिक एवं आत्मिक कान्ति–तेजस्विता उत्पन्न हो जाती है। उसके अन्दर प्राणिमात्र के प्रति प्रीति–मैत्री का भाव उत्पन्न हो जाता है। क्षमा, सहिष्णुता भी अहिंसा से ही उत्पन्न होते हैं।

–सूत्र 107, पृ. 254-257

QUALITIVE SYNONYMS OF AHIMSA

In the first door of Samvar 60 synonyms, based on quality, of Ahimsa are mentioned. Some important ones are explained here with the help of illustrations –

(1) Dveep (Island) – Ahimsa is said to be a place of refuge like an island. It provides refuge to all living beings of this universe, including divine beings, humans, and demons. With Ahimsa enkindled a noble ascetic is shown sitting at the highest place on the island. It is also said to be the source of light of knowledge, like a lamp.

(2) Nirvana (Liberation) – It is said to be cause of liberation.

(3) Nivritti-Samadhi – Ahimsa releases mind from all sins, evil thoughts and miseries and provides peace and joy. It keeps the mind calm and focused.

(4) Riddhi (Wealth) – Ahimsa is believed to be the source of spiritual and material wealth.

(5) Bodhi (Enlightenment) – It is said to be the cause of enlightenment in the form of the three gems – right knowledge, right perception/faith and right conduct.

(6) Kanti-Shanti-Rati – A practitioner of Ahimsa is endowed with physical and spiritual glow (kanti). He is infused with the feeling of universal fraternity. Forgiveness and tolerance are also born out of Ahimsa.

— Sutra-107, pages-254-257

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(7) **Rati (Affection)**—It produces love and affection for all the living beings.

(8) **Virati**—It saves one from indulging in sins.

(9) **Shrutang (Part of scriptures)**—It generates from the study of scriptures. So it is called shrutanga.

(10) **Satisfaction (Tripti)**—Satisfaction or the state of contentment is also a form of non-violence.

(11) **Compassion (Daya)**—To provide probition out of compassion to a being in suffering or dying and to make effort to remove his trouble is a synonym of Ahimsa.

(12) **Vimukti (Freedom)**—It provides total release from bondage.

(13) **Kshanti (Forgiveness)**—Forgiveness or tolerance is also a part of Ahimsa.

(14) **Samyaktvaradhana (Practice of right faith)**—Craving for liberation, freedom from sensual feelings, compassion and faith which are the symptoms of right faith are in fact the cause of non-violence.

(15) **Most Important (Mahati)**—Non-violence is most important among all the vows or in the entire world.

(16) **True Knowledge (Bodhi)**—It is the cause of attainment of right knowledge.

(17) **Buddhi (Wisdom)**—It imparts purpose and success to wisdom.

(18) **Firmness (Dhriti)**—It is the firmness of mind.

(19) **Wealth (Smriddhi)**—It is full of mental and spiritual wealth. It provides bliss in life.

(20) **Riddhi**—It is the cause of attainment of mental and spiritual wealth.

(21) **Vriddhi**—It is the cause of increase in good qualities such as meritorious activities compassion and others.

(22) **Sthiti**—It stabilises one in salvation.

(23) **Pushti**—It develops or fortifies the human life by reducing the sin and increasing noble and meritorious qualities.

(24) **Nanda**—It provides ecstatic pleasure to the self and to others.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(25) **Bhadra**—It brings about welfare of the self and of others.

(26) **Vishudhi**—It purifies the soul.

(27) **Labdhi**—It is the cause of all merits namely perfect knowledge and others.

(28) **Vishisht Drishti**—It provides right perception in thought and conduct—proper assessment of many viewpoints.

(29) **Kalyan**—It provides physical and mental health or welfare leading to spiritual beatitude.

(30) **Mangal (Auspcious)**—It destroys all sins and generates happiness.

(31) **Pramod**—It provides happiness to self and to others.

(32) **Vibhuti**—It is the cause of all supernatural wealth.

(33) **Raksha (Protection)**—It saves the living being from sins or troubles. It protects the souls from sins.

(34) **Sidhavas**—It leads one to salvation. It is the cause of liberation.

(35) **Anasrav**—It stops the inflow of Karma.

(36) **Kevali-sthanam**—The place of stay for omniscients. The omniscients always remain in a state of non-violence.

(37) **Shiva**—It is manifestation of happiness. It subsides all the troubles.

(38) **Samiti**—It is the right behaviour.

(39) **Sheel**—It is good conduct.

(40) **Samyam**—It is the restraint of mind and senses. It is instrumental in protection of living beings.

(41) **Sheel Parigraha**—It is the abode of good conduct or chastity.

(42) **Samvar**—It stops asrav (inflow of Karma).

(43) **Gupti**—It stops wrong activities of mind, word and body.

(44) **Vyavasaya**—It is in strong determination.

(45) **Uchharaya**—It increases good thoughts.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(46) **Yajna**—To make one free from fear, to serve, to be compassionate, to help others—all these are yajna (sacrifice). It is the worship that pleases the soul—the godhood in the soul.

(47) **Ayatan**—It is the seat of all good qualities.

(48) **Jayana**—It lies in alertness towards protection of beings. It inspires fearlessness.

(49) **Apramaad (Devoid of Slackness)**—It is discarding of slackness. It lies in being ever alert.

(50) **Aashvasan (Support)**—It is support for all living beings. It provides solace in pain.

(51) **Vishvas (Trust)**—It is the cause of trust in all living beings.

(52) **Abhaya (Fearlessness)**—It provides freedom from fear to all living beings. It makes the practitioner fearless.

(53) **Sarvasya Amaghat**—It is the declaration prohibiting violence to all the living beings.

(54) **Choksha**—It is the best and meritorious for all.

(55) **Pavitra**—It is extremely pure. It saves from the attack of dreadful, vajra-like sin.

(56) **Shuchi**—It is purity of thought.

(57) **Poota (Worship)**—It is the worship of god with a pure or meritorious bent of mind.

(58) **Vimala (Spotless)**—It is the cause of dirt-free (spotless) state of soul.

(59) **Prabhasa (Brightness)**—It provides brightness or aura to the soul.

(60) **Nirmalatara**—It makes the soul totally clean.

The (above said and other suchlike) synonyms of Ahimsa are based on its qualities.

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में अहिंसा को भगवती कहकर भगवान की तरह असंख्य गुणों वाली बताकर उसकी असाधारण महिमा प्रकट की गई है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि चाहे नर हो, सुर हो अथवा असुर हो, या इनसे भिन्न पशु-पक्षी आदि हों, सबके लिए अहिंसा ही शरणभूत है। अथाह सागर में डूबते हुए मनुष्य को जैसे द्वीप मिल जाये तो उसकी रक्षा हो जाती है, उसी प्रकार संसार-सागर में दुःख पा रहे हुए प्राणियों के लिए भगवती अहिंसा त्राणदायिनी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा के साठ नामों का साक्षात् उल्लेख करने के पश्चात् शास्त्रकार ने बतलाया है कि इसके इनके अतिरिक्त अन्य नाम भी हैं और वे भी गुणनिष्पन्न ही हैं।

जो लोग अहिंसा का अत्यन्त संकीर्ण अर्थ करते हैं, उन्हें अहिंसा के इन साठ नामों से फलित होने वाले अर्थ पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। निर्वाण, निर्वृत्ति, समाधि, तृप्ति, क्षान्ति, बोधि, धृति, विशुद्धि आदि-आदि नाम साधक की आन्तरिक भावनाओं को प्रकट करते हैं, अर्थात् मानव की इस प्रकार की सात्विक भावनाएँ भी अहिंसा में गर्भित हैं। ये भगवती अहिंसा के विराट् स्वरूप के अंग हैं। रक्षा, समिति, दया आदि नाम पर के प्रति चरितार्थ होने वाले साधक के व्यवहार के द्योतक हैं। तात्पर्य यह है कि इन नामों से प्रतीत होता है कि दुःखों से पीड़ित प्राणी को दुःख से बचाना भी अहिंसा है, पर-पीड़ाजनक कार्य न करते हुए यतनाचार-समिति का पालन करना भी अहिंसा का अंग है और विश्व के समग्र जीवों पर दया-करुणा करना भी अहिंसा है। कीर्ति, कान्ति, रति, चोक्षा, पवित्रा, शुचि, पूता आदि नाम उसकी पवित्रता के प्रकाशक हैं। नन्दा, भद्रा, कल्याण, मंगल, प्रमोदा आदि नाम प्रकट करते हैं कि अहिंसा की आराधना का फल क्या है ! इसकी आराधना से आराधक की चित्तवृत्ति किस प्रकार कल्याणमयी, मंगलमयी बन जाती है।

इस प्रकार अहिंसा के उल्लिखित नामों से उसके विविध रूपों का, उसकी आराधना से आराधक के जीवन में प्रादुर्भूत होने वाली प्रशस्त वृत्तियों का एवं उसके परिणाम-फल का स्पष्ट चित्र उभर आता है। अहिंसा का अन्तिम फल निर्वाण परम पद मोक्ष अथवा असीम शान्ति की प्राप्ति है।

Elaboration—In the present lesson non-violence is termed as God. It has been expressed as one having innumerable good traits like God. Its unique grandeur has been described. Simultaneously it has been clearly pointed that it is the support for all—human beings, gods, demons, animals, birds and others. Just as a drowning person saves himself if he finds an island, similarly ahimsa is the support for living beings drowning in the mundane world of life and death.

The author, after mentioning sixty synonyms of ahimsa, has stated that it has other synonyms also based on its qualities.

Those persons who give a very limited meaning to non-violence, they should deeply study the meanings arising out of the above sixty synonyms of non-violence (ahimsa) and contemplate over them deeply. The synonyms nirvan (liberation), nirvriti (controlling activity), samadhi (equanimity), tripti (satisfaction), kshanti (benevolence), bodhi (true spiritual knowledge), dhriti (patience), vishuddhi (purity) and others indicate the inner attitude of the practitioner. Such noble feelings of people lie in non-violence. They are the limbs of the gigantic state of ahimsa. The synonyms protection (raksha), equanimity, compassion, declaration prohibiting all types of killings indicate the behaviour of its

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

practitioner towards others. In a nutshell these synonyms indicate that to save a living being adversely affected by troubles from that sad state is also ahimsa. While not engaging oneself in activities causing harm to others, to practice discernment in conduct is also a part of non-violence. To have compassion for all living beings in the would is also ahimsa. The synonyms keerti, (honour), kanti (brightness), rati (affection), choksha (extremely pure), pavitra (chaste), shuchi (purity), poota and others indicate its sanctity. Synonyms nanda, bhadra, kalyan, mangal, pramoda indicate what are the consequences of practicing non-violence. They indicate that the nature of its practitioner becomes beneficial and meritorious.

Thus the above synonymous of ahimsa vividly depict its different forms, the noble thought-activities generating in the person by its practice and the consequences airing out of it. The ultimate result of practice of non-violence is attainment of salvation or liberation that provides unlimited peace.

अहिंसा की महिमा GLORY OF ASHIMSA

१०८. एसा सा भगवई अहिंसा जा सा भीयाण विव सरणं,

पक्खीणं विव गमणं, तिसियाणं विव सलिलं, खुहियाणं विव असणं, समुद्दमज्झे व पोयवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्ठियाणं व ओसहिबलं, अडवीमज्झे व सत्थगमणं, एत्तो विसिट्ठतरिया अहिंसा जा सा पुढवी–जल–अगणि–मारुय–वणस्सइ–बीय–हरिय–जलयर–थलयर–खहयर–तस–थावर–सव्वभूय–खेमकरी।

१०८. यह अहिंसा भगवती (अद्‌भुत महिमा वाली) है, (संसार के समस्त) भयभीत प्राणियों के लिए शरणदाता है। पक्षियों के लिए आकाश में गमन करने–उड़ने के समान (स्वतंत्र अवकाश देने वाली) है। यह अहिंसा प्यास से पीड़ित प्राणियों के लिए जल के समान (शान्तिप्रदायिका) है। भूखों के लिए भोजन के समान (तृप्ति व पुष्टि देने वाली) है। समुद्र के मध्य में डूबते हुए जीवों के लिए जहाज समान (तारने वाली) है। चतुष्पद–पशुओं के लिए आश्रम पद (पशुशाला के समान सुरक्षित स्थान) के समान है। दुःखों से पीड़ित–रोगी जनों के लिए औषध–बल के समान (आरोग्य प्रदात्री) है। भयानक जंगल में सार्थ–संघ के साथ गमन करने के समान (सुरक्षा देने वाली) है।

(क्या भगवती अहिंसा वास्तव में जल, अन्न, औषध, यात्रा में सार्थ (समूह) आदि के समान ही है? नहीं।) भगवती अहिंसा इनसे भी अत्यन्त विशिष्ट और श्रेष्ठ है, जो पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बीज, हरितकाय, जलचर, स्थलचर, खेचर, त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का क्षेम–कुशल–मंगल कल्याण करने वाली है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

108. Non-violence has unique grandeur. It provides support (to all the living beings) who are afraid in the world. For birds it is like flying in the sky. (It provides them independence). It provides peace to the troubled just as water gives relief to the person in sad state due to thirst. It is like food for the hungry (It provides them satisfaction and strength). It is like a ship to the persons drowning in the ocean (It saves them). It is the place of safety for living beings just as a shed is the place of safely for animals. Just as medicine provides relief to the diseased, it provides improvement in health. It provides protection just as the travellers in the company of a caravan feel protected while passing through dreadful forest.

(Is non-violence, in reality similar to water, food, medicine, a caravan in travels?) In fact it is much more helpful than these above mentioned : One saves himself immediately when he gets the support of non-violence. It causes welfare of all the living beings—earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied, plant-bodied living beings, seeds, greenery, living beings moving in water, on land, in sky, the mobile and the immobile living beings.

विवेचन : जो प्राणी भय से ग्रस्त है, जिसके सिर पर चारों ओर से भय मंडरा रहा हो, उसे यदि निर्भयता का स्थान-शरण मिल जाये तो कितनी प्रसन्नता होती है ! अहिंसा समस्त प्राणियों के लिए इसी प्रकार शरणप्रदात्री है।

खुले आकाश में विचरण करने वाले पक्षी को धरती पर अनेक संकट आने की आशंका बनी रहती है। वह थोड़ी-सी भी आपत्ति की संभावना होते ही धरती छोड़कर आकाश में उड़ने लगता है। आकाश उसके लिए अभय का तथा स्वतंत्रता का स्थल है। अहिंसा भी अभय का स्थान है। प्यास से पीड़ित को पानी और भूखे को भोजन मिल जाये तो उसकी पीड़ा एवं पीड़ाजनित व्याकुलता मिट जाती है, उसे शान्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार अहिंसा परम शान्तिदायिनी है। जैसे समुद्र में डूबते के प्राणों पर संकट आ जाता है तब जहाज का सहारा मिलता है और उसके प्राणों की रक्षा हो जाती है, उसी प्रकार संसार-समुद्र में डूबने वाले प्राणियों की रक्षा करने वाली, उबारने वाली अहिंसा है। चौपाये जैसे अपने वाड़े (पशुशाला) में पहुँचकर निर्भयता का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार भगवती अहिंसा भी अभय का स्थान है। जैसे सुनसान तथा हिंसक जन्तुओं से व्याप्त भयानक अटवी में एकाकी गमन करना संकटमय होता है। सार्थ (समूह) के साथ जाने पर भय नहीं रहता, इसी प्रकार जहाँ अहिंसा है, वहाँ भय नहीं रहता।

इन उपमाओं के निरूपण के पश्चात् सूत्रकार ने स्पष्ट किया है कि अहिंसा के लिए ये उपमाएँ पूर्णोपमाएँ नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि दुःख या भय का प्रतीकार करने वाली इन वस्तुओं से न तो सदा के लिए दुःख दूर होता है और न परिपूर्ण रूप से रक्षा होती है। कभी-कभी तो भोजन, औषध आदि उल्टे दुःख के कारण भी बन जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु अहिंसा में कोई ऐसा खतरा नहीं है। एक बार प्राप्त होने के पश्चात् उसका विनाश नहीं होता। इस आशय को व्यक्त करने के लिए शास्त्रकार ने कहा है–**'एत्तो विसिट्ठतरिया अहिंसा'** अर्थात् अहिंसा इन सब उपमाभूत वस्तुओं से भी अत्यन्त विशिष्ट है।

Elaboration—A person is very much frightened. He senses fear all around. He shall feel extremely happy if he finds a place where he can be fearless. Non-violence provides similar support to all the living beings.

A bird flying in the air has many lurking doubts in its mind when it comes on earth. It starts flying away from the earth leaving that place when it feels the possibility of the slightest trouble. Sky is the place of fearless state and the area of freedom for it. Non-violence also is a place where one can remain without any fear.

In case a person troubled due to thirst gets water and a hungry person gets food, his trouble and restlessness arising out of it disappears. He experiences peace similarly in non-violence, which provides unique peace. Just as a ship saves the life-force of a drowning person, similarly non-violence protects the living beings drowning in the worldly ocean of life, death and re-birth. Quadruped, experience freedom from fear when they reach the cowshed. Similarly non-violence is such as place where one experiences freedom from fear.

Just as it is troublesome to move alone in wilderness and in dreadful forest full of ferocious violent beasts. That fear no longer persists if one is in the company of a group. Similarly one does not have fear if he is in the company of non-violence.

After narrating these comparative examples, it is mentioned in the scriptures that these synonyms do not completely indicate all the qualities. In brief, such things which treat pain or fear cannot remove the same forever. They cannot provide protection forever. Sometimes even food or medicine become the cause of trouble. But there is no such danger in non-violence. Once attained it never dies down. To describe it the writer has mentioned that non-violence is by far the best even as compared to these illustrations.

अहिंसा के विशुद्ध द्रष्टा और आराधक TRUE PRACTITIONERS OF NON-VIOLENCE

१०९. एसा भगवई अहिंसा जा सा अपरिमिय–णाणदंसणधरेहिं सील–गुण–विणय–तव–संयम–णायगेहिं तित्थयरेहिं सव्वजगजीववच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरेहिं (जिणचंदेहिं) सुदिट्ठा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओहिजिणेहिं विण्णाया, उज्जुमईहिं विदिट्ठा, विउलमईहिं विदिआ, पुव्वधरेहिं अहीया, वेउव्वीहिं पतिण्णा, आभिणिबोहियणाणीहिं सुयणाणीहिं ओहिजाणीहिं मणपज्जवणाणीहिं केवलणाणीहिं आमोसहिपत्तेहिं खेलोसहिपत्तेहिं जल्लोसहिपत्तेहिं विप्पोसहिपत्तेहिं सव्वोसहिपत्तेहिं बीयबुद्धीहिं कुट्ठबुद्धीहिं पयाणुसारीहिं संभिण्णसोएहिं सुयधरेहिं मणबलिएहिं वयबलिएहिं कायबलिएहिं णाणबलिएहिं दंसणबलिएहिं चरित्तबलिएहिं खीरासवेहिं महुआसवेहिं सप्पियासवेहिं अक्खीणमहाणसिएहिं चारणेहिं विज्जाहरेहिं।

चउत्थभत्तिएहिं एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं उक्खित्तचरएहिं णिक्खित्तचरएहिं अंतचरएहिं पंतचरएहिं लूहचरएहिं समुयाणचरएहिं अण्णइलाएहिं मोणचरएहिं संसट्ठकप्पिएहिं तज्जायसंसट्ठकप्पिएहिं उवणिएहिं सुद्धेसणिएहिं संखादत्तिएहिं दिट्ठलाभिएहिं पुट्ठलाभिएहिं आयंबिलिएहिं पुरिमड्ढिएहिं एक्कासणिएहिं णिव्विइएहिं भिण्णपिंडवाइएहिं परिमियपिंडवाइएहिं अंताहारेहिं पंताहारेहिं अरसाहारेहिं विरसाहारेहिं लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं अंतजीवीहिं पंतजीवीहिं लूहजीविहिं तुच्छजीवीहिं उवसंतजीवीहिं पसंतजीवीहिं विवित्तजीवीहिं अखीरमहुसप्पिएहिं अमज्जमंसासिएहिं ठाणाइएहिं पडिमंठाईहिं ठाणुक्कडिएहिं वीरासणिएहिं णेसज्जिएहिं डंडाइएहिं लगंडसाईहिं एगपासगेहिं आयावएहिं अप्पावएहिं अणिट्ठुमएहिं अकंडूयएहिंधुयकेसमंसुलोमणएहिं सव्वगायपडिकम्मविप्पमुक्केहिं समणुचिण्णा, सुयहरविइयत्थकायबुद्धीहिं।

धीरमइबुद्धिणो य जे ते आसीविसउग्गतेयकप्पा णिच्छयववसायपज्जत्तकयमईया णिच्चं सज्झायज्झाणअणुबद्धधम्मज्झाणा पंचमहव्वयचरित्तजुत्ता समिया समिइसु, समियपावा छव्विहजगवच्छला णिच्चमप्पमत्ता एएहिं अण्णेहि य जा सा अणुपालिय भगवई।

१०९. यह भगवती अहिंसा वह है जिसे अपरिमित–अनन्त केवलज्ञान–दर्शन को धारण करने वाले, शील गुण, विनय, तप और संयम के नायक–मार्गदर्शक धर्म तीर्थ की संस्थापना करने वाले, जगत् के समस्त जीवों के प्रति असीम वात्सल्य धारण करने वाले, तीन लोकों में पूजनीय जिनवरों (जिनचन्द्रों) ने अपने केवलज्ञान–दर्शन द्वारा सम्यक् रूप में देखा है।

विशिष्ट अवधिज्ञानियों ने इसे विशेष रूप से जाना है। ऋजुमति–मनःपर्यवज्ञानियों ने विशेष रूप में देखा–परखा है। विपुलमति–मनःपर्यायज्ञानियों ने भलीभाँति ज्ञात किया है। चतुर्दश पूर्वश्रुत के धारक मुनियों ने इसका अध्ययन किया है। वैक्रियलब्धि के धारकों ने इसका आजीवन पालन किया है। इसी प्रकार मतिज्ञानियों ने, श्रुतज्ञानियों ने, अवधिज्ञानियों ने, मनःपर्यवज्ञानियों ने, केवलज्ञानियों ने, आमर्षौषधिलब्धि के धारकों, श्लेष्मौषधिलब्धिधारकों, जल्लौषधिलब्धिधारकों, विप्रुडौषधिलब्धिधारकों, सर्वौषधिलब्धिप्राप्त, बीजबुद्धि–कोष्ठबुद्धि–पदानुसारिबुद्धि–लब्धि के धारकों, संभिन्नश्रोतस्लब्धि के धारकों, श्रुतधरों, मनोबली, वचनबली और कायबली मुनियों, ज्ञानबली, दर्शनबली तथा चारित्रबली महापुरुषों ने, मध्वास्रवलब्धिधारी, सर्पिरास्रवलब्धिधारी तथा अक्षीणमहानसलब्धि के धारकों ने इसकी आराधना की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार चारणों और विद्याधरों ने, एक–एक उपवास करने वालों चतुर्थभक्तिकों से लेकर दो, तीन, चार, पाँच दिनों, इसी प्रकार एक मास, दो मास, तीन मास, चार मास, पाँच मास एवं छह मास तक का अनशन–उपवास करने वाले तपस्वियों ने, इसी प्रकार उत्क्षिप्तचरक, निक्षिप्तचरक, अन्तचरक, प्रान्तचरक, रूक्षचरक, समुदानचरक, अन्नग्लायक, मौनचरक, संसृष्टकल्पिक, तज्जातसंसृष्टकल्पिक, उपनिधिक, शुद्धैषणिक, संख्यादत्तिक, दृष्टलाभिक, अदृष्टलाभिक, पृष्ठलाभिक, आचाम्लक, पुरिमार्धिक, एकाशनिक, निर्विकृतिक, भिन्नपिण्डपातिक, परिमितपिण्डपातिक, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, अरसाहारी, विरसाहारी, रूक्षाहारी, तुच्छाहारी, अन्तजीवी, प्रान्तजीवी, रूक्षजीवी, तुच्छजीवी, उपशान्तजीवी, प्रशान्तजीवी, विविक्तजीवी साधकों ने एवं दूध, मधु और घृत का यावज्जीवन त्याग करने वालों ने, मद्य और माँस से रहित आहार करने वालों ने, कायोत्सर्ग करके एक स्थान पर स्थित रहने का अभिग्रह करने वालों ने, प्रतिमा–स्थायिकों ने, स्थानोत्कटिकों ने, वीरासनिकों ने, नैषधिकों ने, दण्डायतिकों ने, लगण्डशायिकों ने, एकपार्श्वकों ने, आतापकों ने, अपाव्रतों ने, अनिष्ठीवकों ने, अकंडूयकों ने, धूतकेश–श्मश्रु लोम–नख अर्थात् सिर के बाल, दाढ़ी, मूँछ और नखों का संस्कार करने का त्याग करने वालों ने, सम्पूर्ण शरीर के प्रक्षालन आदि संस्कार के त्यागियों ने, श्रुतधरों के द्वारा तत्त्वार्थ को अवगत करने वाली बुद्धि के धारक महापुरुषों ने (अहिंसा भगवती का) सम्यक् प्रकार से आचरण किया है।

(इनके अतिरिक्त) आशीविष सर्प के समान उग्र तेज से सम्पन्न महापुरुषों ने, वस्तुतत्त्व का निश्चय करके पुरुषार्थ में पूर्ण कार्य करने वाली बुद्धि से सम्पन्न प्रज्ञापुरुषों ने, नित्य स्वाध्याय और चित्तवृत्तिनिरोध रूप ध्यान करने वाले तथा धर्मध्यान में निरन्तर चित्त को लीन रखने वाले पुरुषों ने, पाँच महाव्रतरूप चारित्र से युक्त तथा पाँच समितियों से सम्पन्न, पापों का शमन करने वाले, षट्जीवनिकायरूप जगत् के वत्सल, निरन्तर अप्रमादी रहकर विचरण करने वाले महात्माओं ने तथा अन्य विवेकविभूषित सत्पुरुषों ने अहिंसा भगवती की आराधना की है।

109. Tirthankars, the omniscients who establish the order, whose knowledge and perception was unlimited, who had immense compassion for all the living beings in the world and who are honoured by the living beings of all the three worlds have seen it (Ahimsa) clearly and fully through their perfect knowledge and perfect perception.

Prominent persons having transcendental knowledge have specially known it. Those who had mental knowledge of simple order (rijumati) also saw it and judged it. The possessors of mental knowledge of high order (vipulmati) had known it quite clearly. Those who had knowledge of fourteen Purvas studied it. Those who had fluid power, practiced it throughout their life. Similarly those who had sensory knowledge. scriptural knowledge, transcendental knowledge, mental knowledge, perfect knowledge, who had unique qualities such as curing others with

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

their saliva, perspiration, stool and any thing from their body practiced it. Those who had such an intellect that they could understand the whole text from just a word or from a line, those saints who were based in scripture, practiced it. The saints who possessed power of mind, speech, body, knowledge, perception, knowing everything with one sense organ only, who could satisfy hunger of others with their special power practiced non-violence throughout their life.

Similarly there are Charans, Vidyadhars and those observing one day fast, two days fast, three days fast, four days fast, five days fast and so on, one month fast, two months fast, three months fast, four months fast, five months fast and six months fast, ukshipt charak (saints who accept food kept outside the cooking vessel), nikshipt charak (who accept food kept in the cooking pot), ant charak (who accept tasteless food), pranta charak (who accept only the left out food), ruksh charak (who accept dry food), samudaan charak (who accept food from all class–high, medium and low), mauna charak (who observe total silence while collecting food). There are Sansrisht Kalpik, tajjat Sansrisht Kalpik, Upanidhik, Shuddhaishanik, Sankhyadattik, Drisht labdhik, Adrisht labdhik, Prishth labdhik, Aachamlak, Purimardhik, Ekaashanik, Nirvrikritik, Bhinnapindpatik, Antahari, Prantahari, Arasahari, Virasahari, Rukshahari, Tuchhahari, Antajivi, Prantajivi, Rukshajivi, Tuchhajivi, Upashantjivi, Prashantjivi, Viviktajivi practitioners. There are those who have discarded milk, honey and ghee for the entire life. There are those who take foods that has no wine and meat. There are those who have taken a vow to remain at one place in the state of meditation. There are those who have installed idols, Sthanotkatiks (those who remain in a particular posture of sitting on raised feet at one place) Veerasaniks, Naishadhiks, Dandayatiks, Lagandashayiks, Ekaparshvaks, Aatapaks, Apavrats, Anishthivaks, Akanduyaks, Dhootakesh, Shmashniloamas (those who have discarding setting the hair, beard, mountains, nails in order). There are those who have discarded full bath. There are those who have an intellect that can make one understand all the essentials and their true nature. All those persons had practiced non-violence in proper way.

(In addition) there are great men who have an aura like a snake that has poison in its molars. There are intelligent people who after

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

determining the real nature use their intellect in completing the task through efforts. There are persons who study scriptures and practice meditation daily in which they control their thoughts. There are persons who remain continuously absorbed in meditation according to code laid in scriptures. There are people who practice five major vows of the monk, who observe five Samitis, who subdue sinful activities, who have a great affection for living beings of six categories and those monks who continuously remain vigilant during their wanderings. There also those who have a sense of discernment. All such persons have practiced non-violence.

विवेचन : आगम की उक्त स्पष्ट सूची के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि तीर्थंकर भगवन्तों से लेकर विशिष्ट ज्ञान के धारकों, अतिशय लोकोत्तर बुद्धि के धनियों, विविध लब्धियों से सम्पन्न उग्र तपस्वियों, महामुनियों, आहार-विहार में अतिशय संयमशील एवं ध्यानयोग निरत साधकों आदि ने इस अहिंसा भगवती की सम्यक् रूप में निर्दोष परिपालना की है।

सूत्र में बताया है-अनेक प्रकार की लब्धियों के धारक सत्पुरुषों ने इस अहिंसा भगवती की सम्यक् रूप में आराधना की है। इस प्रसंग में कुछ लब्धियों का तथा विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं का उल्लेख भी यहाँ किया गया है। यों तो भगवतीसूत्र में १० प्रकार की लब्धियों का वर्णन है। औपपातिकसूत्र में भगवान के विविध लब्धिधारी श्रमणों का वर्णन है तथा प्रवचन सारोद्धार आदि ग्रन्थों में भी २८ प्रकार की एवं ३१ प्रकार की लब्धियों का वर्णन मिलता है। दशाश्रुतस्कंध, औपपातिक एवं स्थानांगसूत्र आदि में विविध प्रतिभाओं का भी वर्णन आता है। विस्तृत वर्णन वहाँ पर किया गया है। यहाँ उनका सामान्य परिचय इस प्रकार है-

आमर्षौषधिलब्धिधारक-विशिष्ट तपस्या के प्रभाव से किसी-किसी तपस्वी में ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि उसके शरीर का स्पर्श होने पर सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। वह तपस्वी आमर्षौषधिलब्धि का धारक कहलाता है।

श्लेष्मौषधिलब्धिधारी-जिनका श्लेष्म-कफ रोगनाशक है।

जल्लौषधिलब्धिधारी-जिनके शरीर के मैल में रोगनाशक सामान्य शक्ति हो।

विप्रुडौषधिलब्धिधारी-जिनका मल-मूत्र, रोग विनाशक औषधि रूप हो।

सर्वौषधिलब्धिधारी-जिनका मल, मूत्र, कफ, मैल आदि सभी कुछ व्याधिविनाशक हो।

बीजबुद्धिधारी-जैसे छोटे बीज से विशाल वृक्ष उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार बीजक के समान एक साधारण अर्थ के ज्ञान के सहारे अनेक अर्थों को विशद् रूप से ज्ञान करने की क्षमता वाली क्षयोपशमजनित बुद्धि के धारक।

कोष्ठबुद्धिधारी-जैसे कोठे में भरा धान्य क्षीण नहीं होता, वैसे ही प्राप्त ज्ञान चिरकाल तक उतना ही बना रहे-कम न हो, ऐसी शक्ति से सम्पन्न।

पदानुसारीबुद्धिधारक-एक पद को सुनकर ही अनेक पदों को जान लेने की बुद्धि-सामर्थ्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभिन्नश्रोतसूलब्धिधारी–एक ही इन्द्रिय से देखना, सुनना, सूँघना आदि सभी इन्द्रियों के विषय को ग्रहण करने की क्षमता वाले। जैसे नाक से सुनना, कान से देखना आदि।

श्रुतधर–आचारांग आदि आगमों के विशिष्ट ज्ञाता।

मनोबली–जिनका मनोबल अत्यन्त सुदृढ़ हो।

वचनबली–जिनके वचनों में कुतर्क, कुहेतु का निरसन करने का विशिष्ट सामर्थ्य हो।

कायबली–भयानक परीषह और उपसर्ग आने पर भी पर्वत के समान अचल रहने की शारीरिक शक्ति के धारक।

ज्ञानबली–मतिज्ञान आदि ज्ञानों के बल वाले।

दर्शनबली–सुदृढ़ तत्त्वार्थश्रद्धा के बल से सम्पन्न।

चारित्रबली–विशुद्ध चारित्र की शक्ति से युक्त।

क्षीरास्रवी–जिनके वचन दूध के समान मधुर प्रतीत हों।

मधुरास्रवी–जिनकी वाणी मधु-सी मीठी हो।

सर्पिरास्रवी–जिनके वचन घृत जैसे स्निग्ध–स्नेहयुक्त हों। अथवा जिनके पात्र में पड़ा तुच्छ अन्न भी क्षीर-मधु–घृत की तरह तृप्ति व पुष्टि देने वाला है।

अक्षीणमहानसिक–इस लब्धि के धारक जब तक स्वयं भोजन न कर लें तब तक लाखों को तृप्तिजनक भोजन करा सकते हैं। वह भोजन तभी समाप्त होता है जब लाने वाला स्वयं भोजन कर ले।

चारण–आकाश में विशिष्ट गमन करने की शक्ति वाले। विद्याचारण और जंघाचारण।

विद्याधर–विद्या के बल से आकाश में चलने की शक्ति वाले।

उत्क्षिप्तचरक–अन्न पकाने के पात्र में से बाहर निकालकर रखे हुए भोजन में से ही आहार ग्रहण करने के अभिग्रहधारी।

निक्षिप्तचरक–पकाने के पात्र में रक्खे हुए भोजन को ही लेने का अभिग्रह करने वाला।

अन्तचरक–नीरस या चना आदि साधारण कोटि का ही आहार लेने का अभिग्रह करने वाले।

प्रान्तचरक–बचा-खुचा ही आहार लेने की प्रतिज्ञा–अभिग्रह वाले।

रूक्षचरक–रूखा-सूखा ही आहार लेने की प्रतिज्ञा वाले।

समुदानचरक–सधन, निर्धन एवं मध्यम श्रेणी के घरों से समभावपूर्वक भिक्षा ग्रहण करने वाले।

अन्नग्लायक–ग्लानि उत्पन्न करने जैसी ठण्डी–बासी भिक्षा स्वीकार करने वाले।

मौनचरक–मौन धारण करके भिक्षा के लिए जाने वाले श्रमण।

संसृष्टकल्पिक–भरे (लिप्त) हाथ या पात्र से आहार लेने की प्रतिज्ञा वाले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तज्जातसंसृष्टकल्पिक–जो पदार्थ ग्रहण करना है उसी से भरे हुए हाथ या पात्रादि से भिक्षा लेने के कल्प वाले मुनि।

उपनिधिक–समीप में ही भिक्षार्थ जाने के अथवा समीप में रहे हुए पदार्थ को ही ग्रहण करने के अभिग्रह वाले मुनि।

शुद्धैषणिक–निर्दोष आहार की गवेषणा करने वाले मुनि।

संख्यादत्तिक–दत्तियों की संख्या निश्चित्त करके आहार लेने वाले।

दृष्टलाभिक–दृष्ट स्थान से दी जाने वाली या दृष्ट पदार्थ की भिक्षा ही ग्रहण करने वाले श्रमण।

अदृष्टलाभिक–अदृष्टपूर्व–पहले नहीं देखे दाता के हाथ से भिक्षा लेने वाले।

पृष्टलाभिक–'महाराज ! यह वस्तु लेंगे ?' इस प्रकार प्रश्न पूछने पर प्राप्त भिक्षा लेने वाले।

आचाम्लिक–आयंबिल तप करने वाले।

पुरिमार्धिक–दो पौरुषी दिन चढ़े बाद आहार लेने वाले।

एकासनिक–नित्य एकाशन तप करने वाले।

निर्विकृतिक–घी, दूध, दही आदि के त्यागी या इन रसों (विगयों) से रहति भिक्षा लेने वाले।

भिन्नपिण्डपातिक–पात्र में बिखरे पड़े आहार को लेने वाले।

परिमितपिण्डपातिक–घरों एवं आहार के परिमाण का निश्चय करके परिमित आहार ग्रहण करने वाले।

अरसाहारी–रसहीन–हींग आदि वघार से रहित आहार लेने वाले।

विरसाहारी–पुराना होने से नीरस हुए धान्य का आहार लेने वाले।

उपशान्तजीवी–भिक्षा मिलने और न मिलने की स्थिति में उद्विग्न न होकर शान्तभाव में स्थिर रहने वाले।

प्रतिमास्थायिक–एकमासिकी आदि भिक्षुप्रतिमाओं को धारण करने वाले।

स्थानोत्कुटुक–उकडू आसन से एक जगह बैठने वाले।

वीरासनिक–वीरासन से बैठने वाले। (पैर धरती पर टेककर कुर्सी पर बैठे हुए मनुष्य के नीचे से कुर्सी हटा लेने पर उसका जो आसन रहता है, वह वीरासन है।)

नैषधिक–दृढ़ आसन से बैठने वाले।

दण्डायतिक–डंडे के समान लम्बे लेटकर रहने वाले।

लगण्डशायिक–सिर और पाँवों की एड़ियों को धरती पर टिकाकर और शेष शरीर को अधर रखकर शयन करने वाले।

एकपार्श्विक–एक ही पसवाड़े से सोने वाले।

आतापक–गर्मी में आतापना लेने वाले तथा सर्दी में शीत सहने वाले।

अप्रावृत्तिक–प्रावरण–वस्त्ररहित होकर शीत, उष्ण, दंश–मशक आदि के परीषह सहन करने वाले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिष्ठीवक–नहीं थूकने वाले।

अकण्डूयक–शरीर को खुजली आने पर भी नहीं खुजलाने वाले।

सुयधर विदित्थ काम बुद्धि–श्रुत एवं अर्थ दोनों के विशिष्ट ज्ञाता मुनि।

इस प्रकार के महान् तपोधनी सत्पुरुषों द्वारा आचरित अहिंसा प्रत्येक कल्याणकामी के लिए आचरणीय है।

Elaboration—A study of the above comprehensive list mentioned in the scriptures, makes it crystal clear that there are Tirthankars, other learned people, persons having advanced intellect, ascetics, persons who have accumulated special powers by practicing austerities, persons who observe strict restraint in wanderings and in acceptance of food, persons who continuously practice meditation. All such great men had practiced non-violence meticulously in a faultless manner in the past.

In the text there are many words which cannot be understood without knowing their detailed meaning. So they are being explained in brief.

In the aphorism it has been stated that many persons who possessed several special powers had practiced non-violence in a proper manner. In this context some special powers and various types of vows (pratimas) have also been mentioned. In Bhagavati Sutra ten special powers (labdhis) have been mentioned. In Aupapatik Sutra there is the description of several monks who possessed such powers. In Pravachan Saroddhar and other texts there is the description of 28 types and of 31 types of special powers (labdhis). There they have been mentioned in detail. Here a brief description is being given. It is as follows :

Aamarshaushadhi labdhi dharak—Due to special austerities, some monk gets such a power that his very touch destroys all diseases. That monk is called aamarshaushadhi labdhi dharak.

Shleshamaushadhi labdhi dhari—The monk whose cough cures diseases.

Jallaushadhi labdhi dhari—One whose dirt collected on the body due to perspiration is capable of curing diseases.

Viprudaushadhi labhdi dhari—One whose urine and stool are capable of curing diseases.

Sarvaushadhi labdhi dhari—One whose dust on the body, urine, stool, saliva and all suchlike discharges are capable of curing diseases.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Beej-buddhi dhari—Just as a small seed grows into a large tree, a person with such an intellect is capable of having deeper knowledge leading to several interpretations by first having an ordinary knowledge from teacher.

Koshth-buddhi dhari—One who can retain knowledge in the same condition for a very long time and it is not forgotten just as foodgrain remains intact in a silo.

Padanusari-buddhi dharak—One who is capable of knowing many stanzas by just listening to one stanza.

Sambhinnasrotasa labdhi dhari—One who is capable to see, hear, smell and the like with just one sense organ.

Shrutadhar—One who has expert knowledge of Acharanga and other Agams.

Manobali—One whose mind is extremely firm.

Vachanbali—One who is capable of giving a suitable, logical, rational reply to the misinterpretations raised by any person.

Kayabali—One who has such a physical strength that he is capable of being stable as a rock even at the time of troubles and turbulations or sufferings or tortures by any one.

Jnanabali—One who has sensory knowledge, scriptural knowledge and others.

Darshanbali—One who has staunch faith in true meaning.

Chaaritrabali—One who has strength of pure character.

Ksheerasravi—One whose speech is sweet as milk.

Madhurasravi—One whose voice is as sweat as honey.

Sarpirasravi—One whose words are loveable like butter. One whose foodstuff in the pot is satisfying and nutritive like milk etc., though ordinary.

Akshinamahanasik—With this special power one can satisfy millions of monks with the food that he has. The food finishes only when he, himself eats.

Charan—Those who have special power to move (fly) in the air.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vidyadhar—Those who can move in the air with the help of their special acquired skill.

Utkshipt Charak—Those who have taken a vow to accept only that food which had already been taken out from cooking put.

Nikshipt Charak—Those who accept only that food which is still in the cooking pot.

Anta charak—Those who accept only tasteless food such as gram.

Pranta charak—Those who have a vow to accept only the left out food after every one has taken.

Ruksha charak—Those who accept dry food (which normally no one accepts).

Samudan Charak—Those who accept alms from rich, medium and poor with equanimity.

Annaglayak—Those who accept only cold, stale food which is normally disliked.

Mauna charak—Those who remain silent while collecting alms.

Sansrishtakalpik—Those who accept food only if the hand or pot of the giver is besmeared with it.

Tajjaat sansrishtakalpik—Those who have a view to accept desired thing only if the hands of the giver is already besmeared with it.

Upanidhik—Those who accept only that food which is very near the giver or near which he (the monk) has come.

Shudhaishanik—Those who accept only that food which is strictly according to prescribed code for collecting it.

Sankhyadattik—Those who decide earlier how many servings they can accept and then accept strictly according to it.

Dashtalabhik—Those who accept food etc. only if it is offered from a visible place.

Adrishtalabhik—Those who accept food only from that person unseen earlier.

Prishtalabhik—Those who accept food only if the giver asks, Sir, will you accept this thing.

Aachamlik—Those who practice aayambil.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Purimardhik—Those who go for collection of alms only after two quarters of the day have passed.

Ekasanik—Those who take food only once in a day (always do ekasana).

Nirvikritiki—Those who accept food free from butter, milk, curd and the like.

Bhinnapindpatik—Those who accept food, which is scattered in the pot.

Parimitapindapatik—Those who decide about number of houses and areas of food before going out for collection.

Arasahari—Those who accept food free from such elements that makes it tasty.

Virasahari—Those who accept food prepared from old grain and thus tasteless.

Upashantajivi—Those who remain in a state of equanimity whether they get alms or not.

Pratimasthayik—Those who have accepted special vows of a monk such as lasting for one months or so in a particularly defined manner.

Sthanotkatik—Those who sit at a place as a person sits while milking a cow.

Virasanik—Those who sit as one sits in a chair but there is no chair.

Naishayik—Those who sit firmly in a particular posture.

Dandayatik—Those who lie down straight like a stick.

Lagandashayik—Those who sleep keeping only the heels and head touching the ground and not any other part of the body.

Ekaparshavik—Those who sleep only on one side.

Atapik—Those who bask in the sun in summer and tolerate cold in winter.

Apravritik—Those who train themselves in bearing heat, cold, mosquito, lute and suchlike troubles.

Anishthivik—Those who never spit.

Akanduyak—Those who do not scratch their body even at the time of itching.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Suyadhar vidith kaam budhi—Those who have expert knowledge of scriptures and their meaning.

The practice of non-violence by the great saints undergoing suchlike austerities is worthy of practice by every one who desires his welfare.

आहार की निर्दोष विधि FAULTLESS METHOD OF TAKING FOOD

११०. इमं च पुढवि–दग–अगणि–मारुय–तरुगण–तस–थावर–सव्वभूयसंजमदयट्ठयाए सुद्धं उञ्छं गवेसियव्वं।

अकयमकारियमणाहूयमणुद्दिट्ठं अकीयकडं णवहि य कोडिहिं सुपरिसुद्धं, दसहि य दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम–उप्पायणेसणासुद्धं ववगयचुयचावियचत्तदेहं च फासुयं च ण णिसज्जकहापओयणक्खासुओवणीयं ति ण तिगिच्छा–मंत–मूल–भेसज्जकज्जहेउं, ण लक्खणुप्पाय–सुमिण–जोइस–णिमित्त–कहकप्पउत्तं, ण वि डंभणाए, ण वि रक्खणाए, ण वि सासणाए, ण वि डंभण–रक्खण–सासणाए भिक्खं गवेसियव्वं, ण वि वंदणाए, ण वि माणणाए, ण वि पूयणाए, ण वि वंदण–माणण–पूयणाए भिक्खं गवेसियव्वं।

११०. अहिंसा का सम्यक् पालन करने के लिए उद्यत श्रमण को पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय–इन स्थावर और (द्वीन्द्रिय आदि) त्रस, इस प्रकार सभी प्राणियों के प्रति संयमरूप दया पालन के लिए शुद्ध–निर्दोष भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए।

निर्दोष भिक्षा कैसी होती है? जो आहार साधु के लिए नहीं बनाया गया हो, दूसरे से नहीं बनवाया गया हो, जो गृहस्थ द्वारा निमंत्रण देकर या पुनः बुलाकर न दिया गया हो, जो साधु के निमित्त तैयार न किया गया हो, साधु के उद्देश्य से खरीदा नहीं गया हो, जो नव कोटियों से विशुद्ध हो, शंकित आदि दश दोषों से सर्वथा रहित हो, जो उद्गम के सोलह, उत्पादन के सोलह और एषणा के दस दोषों से रहित हो, जिस देय वस्तु में से बाहर आकर गिरने वाले जीव–जन्तु स्वतः पृथक् हो गये हों, वनस्पतिकायिक आदि जीव स्वतः या किसी के द्वारा मृत हो गये हों या दाता द्वारा दूर करा दिये गये हों अथवा दाता ने स्वयं दूर कर दिये हों, इस प्रकार जो भिक्षा अचित्त हो, जो सर्वथा शुद्ध अर्थात् भिक्षा सम्बन्धी अन्य दोषों से रहित हो, रमणीय हो, ऐसी भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए।

गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए गए हुए साधु को आसन पर बैठकर, धर्मोपदेश देकर या कथा–कहानी सुनाकर प्राप्त किया हुआ आहार नहीं ग्रहण करना चाहिए। वह आहार चिकित्सा, मंत्र, जड़ी–बूटी, औषध आदि बताकर उसके निमित्त प्राप्त नहीं होना चाहिए। स्त्री–पुरुष आदि के शुभाशुभसूचक लक्षण, उत्पात–भूकम्प, अतिवृष्टि, दुर्भिक्ष आदि स्वप्न ग्रहदशा, मुहूर्त्त आदि का प्रतिपादक ज्योतिषशास्त्र, विस्मयजनक चामत्कारिक प्रयोग या जादू के प्रयोग के कारण दिया जाता आहार नहीं होना चाहिए, अर्थात् साधु को लक्षण, उत्पात, स्वप्नफल या कुतूहलजनक प्रयोग आदि बतलाकर भिक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिए। दम्भ अर्थात् माया का प्रयोग करके भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। गृहस्वामी के घर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रक्षा या पुत्र आदि की रखवाली करने के बदले प्राप्त होने वाली भिक्षा नहीं लेनी चाहिए–गृहस्थ के पुत्रादि को शिक्षा देने या पढ़ाने के बदले में भी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। पूर्वोक्त निमित्तों से भिक्षा नहीं स्वीकार करनी चाहिए। गृहस्थ का वन्दन–स्तवन–प्रशंसा करके, सन्मान–सत्कार करके अथवा पूजा–सेवा करके और वन्दन, मानन एवं पूजन–इन तीनों को करके भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए।

110. A monk who has taken a vow to practice non-violence properly in respect of earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied, plant-bodied immobile living being, two-sensed and other mobile living beings and so he has a feeling of self-restraint and of compassion for all, he should therefore seek only faultless food according to the code.

What is the faultless food? The food which has not been prepared, or got prepared for a monk, which has no been offered through invitation or with the request to the monk for visiting again, which has not been specially prepared for the monk, which has not been purchased specially for the monk, which is pure in nine ways (mind, word and deed—doing, getting done and appreciating it), which is free from all the ten faults such as doubt and others, which is free from ten faults of origin, sixteen faults of preparing and ten faults of collecting it by monk is called faultless food. The substance from which living beings have already separated themselves, from which the plant-bodied living beings have themselves or through some one have already died, from which the giver has already separated or got separated the living beings and thus which has become free from life, is called faultless food. A monk should seek such food which is totally pure, which means totally free from faults relating to alms.

A monk should not accept food after sitting in the house of the householder, after delivering lecture on scriptures or after telling a story. He should not collect the food on the basis of telling medicine, herbs and the like for treatment. He should not accept food by telling good or bad signs of men and women, predicting about earthquake, famine, dreams, good time for household activity, astrology, or any wonder-causing incident or by using magic. A monk should not collect alms by making use of ego, crookedness or in exchange of his services like looking after the son of the householder or teaching that son. He should not accept food by serving or by appreciating, honouring or respecting the householder.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में अहिंसा के आराधक साधु को निर्दोष भिक्षा की गवेषणा करने का प्रतिपादन किया गया है। सूत्र में जिन दोषों का उल्लेख हुआ है, उनमें कतिपय विशिष्ट पदों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

नवकोटिपरिशुद्ध–आहारशुद्धि की नौ कोटियाँ (मर्यादा) ये हैं–(१) आहारादि की प्राप्ति हेतु साधु स्वयं हिंसा न करे, (२) दूसरों से हिंसा न करावे, (३) उस निमित्त हिंसा करने वाले का अनुमोदन न करे, (४) स्वयं न पकावे, (५) दूसरे से न पकवावे, (६) पकाने वाले का अनुमोदन न करे, (७) स्वयं न खरीदे, (८) दूसरे से क्रय नहीं करावे, और (९) क्रय करते हुए या किये हुए का अनुमोदन न करे। मन, वचन और काय के योग से ये नव कोटियाँ हैं।

Elaboration—In the present aphorism, it has been mentioned that a monk who is a practitioner of non-violence should seek only faultless food. Some special words occurring in the aphorism regarding faults about food are defined as follows—

Navakotiparishudh—There are nine limitations regarding purity of food. They are—(1) monk should not commit any violence for procuring food. (2) He should not get any violence done. (3) He should not appreciate one who commits violence. (4) He should not cook food himself. (5) He should not get the food cooked from others. (6) He should not appreciate one who cooks food. (7) He should not purchase himself. (8) He should not get anything purchased by others. (9) He should not appreciate who purchases for him. These nine restrictions should be practised through mind, word and action.

एषणा सम्बन्धी दस दोष

(१) **शंकित**–दोष की आशंका होने पर भी भिक्षा ले लेना।

(२) **म्रक्षित**–भिक्षा देते समय हाथ, पात्र या आहार सचित्त पानी आदि से लिप्त होना।

(३) **निक्षिप्त**–सचित्त पदार्थ पर रखी अचित्त वस्तु ग्रहण करना।

(४) **पिहित**–सचित्त पदार्थ से ढँकी वस्तु लेना।

(५) **संहृत**–किसी पात्र में से दोषयुक्त वस्तु पृथक् करके उसी पात्र से दी जाने वाली भिक्षा ग्रहण करना।

(६) **दायक**–अबोध बालक आदि अयोग्य दाता से भिक्षा लेना।

(७) **उन्मिश्र**–सचित्त अथवा सचित्तमिश्रित से मिला हुआ आहार लेना।

(८) **अपरिणत**–जो पूर्ण रूप से अचित्त न हुआ हो, ऐसा आहार लेना।

(९) **लिप्त**–तत्काल लीपी हुई भूमि पर से भिक्षा लेना।

(१०) **छर्दित**–जो आंशिक रूप से नीचे गिर रहा हो या टपक रहा हो, ऐसा आहार लेना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Ten Faults Relating to Food

(1) **Shankit**—To accept doubtful food.

(2) **Prakshit**—To accept food with hands, pot or food full of life-bearing water.

(3) **Nikshipt**—To accept lifeless food kept on a living thing.

(4) **Pihit**—To accept food covered with a thing bearing life.

(5) **Sanhrit**—To accept food from the same pot from which faulty material has been separated.

(6) **Dayak**—To accept food from a child or incapable person who is ignorant about faults regarding food.

(7) **Unmishra**—To accept faultless food mixed with faulty food.

(8) **Aparinat**—To accept food which has not becomes completely free from life.

(9) **Lipt**—To accept food from ground that has just been plastered.

(10) **Chhardit**—The food that is partly falling down or dripping.

(१) सोलह उद्गम–दोष

दाता के कारण लगने वाले भिक्षा सम्बन्धी १६ दोष–

(१) आधाकर्म–किसी एक–अमुक साधु–विशेष के निमित्त से छह काय के जीवों की हिंसा करके किसी वस्तु को पकाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है–(१) आधाकर्म दोष से दूषित आहार का सेवन करना, (२) आधाकर्मी आहार के लिए निमंत्रण स्वीकार करना, (३) आधाकर्मी आहार का सेवन करने वालों के साथ रहना, (४) आधाकर्मी आहारसेवी की प्रशंसा करना।

(२) औद्देशिक–भिक्षुओं के लिए तैयार किया हुआ आहारादि औद्देशिक कहलाता है। आधाकर्मी आहार किसी विशिष्ट–अमुक एक साधु के उद्देश्य से और औद्देशिक सामान्य रूप से किन्हीं भी साधुओं के लिए बनाया गया होता है। यही इन दोनों में अन्तर है। जिन साधु के लिए बना वही साधु को देना आधाकर्म है। एक साधु के लिए बना और दूसरे साधु को दिया वो उसके लिए औदेशिक है। बीच के 22 तीर्थंकरों के और महाविदेह के साधुओं को औद्देशिक आहार कल्पता है। पर आधाकर्म तो किसी भी साधु को नहीं कल्पता है।

(३) पूतिकर्म–निर्दोष आहार में दूषित आहार का अंश मिला हो तो वह पूतिकर्म दोष से दूषित होता है।

(४) मिश्रजात–अपने लिए तथा साधु के लिए दोनों के लिए तैयार किया गया आहार मिश्रजात दोषयुक्त कहलाता है।

(५) स्थापना–साधु के लिए अलग रखा हुआ आहार लेना स्थापना दोष है।

(६) प्राभृतिका–साधु को आहार देने के निमित्त से जीमनवार के समय को आगे–पीछे करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) **प्रादुष्करण**–अन्धेरे में रक्खी हुई वस्तु को लाने के लिए उजाला करके या अन्धकार में से प्रकाश में लाया आहार लेना।

(८) **क्रीत**–साधु के निमित्त खरीदकर लाया आहार लेना।

(९) **प्रामित्य**–साधु के लिए उधार लिया हुआ आहार लेना।

(१०) **परिवर्तित**–साधु के लिए आहार में अदल-बदल करना।

(११) **अभिहृत**–साधु के सामने-उपाश्रय आदि में आहार लाकर देना।

(१२) **उद्भिन्न**–साधु को देने के लिए किसी बन्द पात्र आदि को खोलना, जैसे-लाख आदि के लेप को हटाना।

(१३) **मालापहृत**–ऊपर रखा आहार निसरणी आदि पर चढ़कर उतारकर देना।

(१४) **आच्छेद्य**–दुर्बलों से या आश्रित जनों से छीनकर साधु को आहार देना।

(१५) **अनिसृष्ट**–अनेक स्वामियों की वस्तु को उन सबकी अनुमति के बिना देना।

(१६) **अध्यवपूर**–अपने लिए बनने वाले भोजन में अधिक सामग्री मिला देना-अधिक रसोई तैयार करना।

उद्‌गम के इन सोलह दोषों का निमित्त दाता होता है, अर्थात् दाता के कारण ये दोष होते हैं।

Sixteen Faults of Production

Sixteen faults that occur due to the person who offers food are as follows—

(1) Aadhakarm—To cook food for a particular monk by causing violence to six types of living beings is called aadhakarm. This fault is committed in four ways—(1) To accept such a faulty food, (2) To accept invitation for such a food, (3) To live with those who accept such food, (4) To appreciate those who accept such food.

(2) Auddeshik—Food prepared for monks is called auddeshik, Aadhakarmi food is that which is prepared for a particular monk while auddheshik food is that which is prepared in general for monks. This is the only difference between them. To give food to the monk for whom it is cooked is aadhakarm. To give food prepared for a particular monk to some other monk is auddeshik. Tirthankars other than the first and the last as well as the ascetics living in Mahavideh area can accept auddeshik food. But addhakarmic food is prohibited for all ascetics at all times

(3) Pootikarm—Faultless food in which faulty food is mixed.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(4) **Mishrajat**—Food prepared for both oneself and the monk collectively.

(5) **Sthapana**—To keep separately for monks. To accept such food.

(6) **Prabhritika**—To shift the time of feast for serving the guest in order to offer food to the monks.

(7) **Pradushkaran**—To switch on light in order to offer food kept in the dark.

(8) **Kreet**—To purchase food for the monk.

(9) **Pramilya**—To get food on credit for the monk.

(10) **Parivartit**—To exchange food for offering to the monk.

(11) **Abhihrit**—To bring food in the place of stay of monk for offering to him.

(12) **Udbhinn**—To open a sealed box for offering food brought in it.

(13) **Malaphrit**—To bring the food for offering by using a ladder.

(14) **Aachhedya**—To snatch food from the weak or dependents for offering to the monk.

(15) **Anisrisht**—To offer a thing belonging to many persons jointly without consent of all.

(16) **Adhyavapoor**—To add more quantity in the thing to be prepared for oneself in order to offer out of it to a monk.

The cause of these faults is the giver. So monk commits these faults due to slackness of the giver.

(२) सोलह उत्पादन दोष

जो दोष भिक्षा ग्रहण करने वाले साधु के निमित्त से लगते हैं, वे उत्पादन दोष हैं।

(१) धात्री–धायमाता जैसे कार्य–बच्चे को खिलाना आदि कार्य करके आहार प्राप्त करना।

(२) दूती–गुप्त अथवा प्रकट सन्देश पहुँचाकर आहार प्राप्त करना।

(३) निमित्त–शुभ–अशुभ निमित्त बतलाकर आहार प्राप्त करना।

(४) आजीव–प्रकट या अप्रकट रूप से अपनी जाति या कुल का परिचय देकर भिक्षा प्राप्त करना।

(५) वनीपक–याचक की भाँति दीनता दिखलाकर आहार प्राप्त करना।

(६) चिकित्सा–वैद्यवृत्ति से आहार प्राप्त करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) क्रोध–क्रोध करके या गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखाकर आहार प्राप्त करना

(८) मान–अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी इत्यादि बतलाकर आहार प्राप्त करना।

(९) माया–छल करके आहार प्राप्त करना।

(१०) लोभ–आहार में लोभ करना, आहार के लिए जाते समय लालचवश ऐसा निश्चय करके जाना कि आज तो अमुक वस्तु ही लायेंगे और उस वस्तु के न मिलने पर उसके लिए भटकना।

(११) पूर्व-पश्चात् संस्तव–आहार देने से पहले या पश्चात् दाता की प्रशंसा करके आहार लेना।

(१२) विद्या–विद्या के प्रयोग से आहारलाभ करना।

(१३) मंत्र–मंत्र के प्रयोग से आहार प्राप्त करना।

(१४) चूर्ण–अदृश्य करने वाले चूर्ण–सुरमा आदि का प्रयोग करके भिक्षालाभ करना।

(१५) योग–पैर में लेप करने आदि द्वारा सिद्धियाँ दिखलाकर आहार प्राप्त करना।

(१६) मूलकर्म–गर्भाधान, गर्भपात आदि भवभ्रमण के हेतुभूत पापकृत्य बतलाकर आहार प्राप्त करना।

अहिंसा धर्म का आराधक श्रमण उक्त दोषों का परिहार करके भिक्षा प्राप्त करता है। आहार व भिक्षा सम्बन्धी विविध दोषों व विधियों का विस्तृत वर्णन दशवैकालिक – अध्ययन ५ तथा आचारांग – भाग २ प्रथम अध्ययन में किया गया है।

SIXTEEN FAULTS OF METHODS PROCUREMENT

The faults committed due to negligence of an ascetic are called faults of procurement.

(1) **Dhatri**—A nurse or governess caring for a child is called dhatri. To collect alms by attending to the children like a dhatri.

(2) **Dooti**—To collect alms by serving as messanger, secretly or openly.

(3) **Nimitt**—To collect alms by telling good and bad omens.

(4) **Aajeev**—To collect alms by revealing ones clan or family in a distinct or non-distinct way.

(5) **Vaneepak**—To collect food like a beggar expressing one's distressed condition.

(6) **Chikitsa**—To collect food as a reward for treating persons.

(7) **Krodh**—To collect food by becoming angry or causing fear of bad prophecy.

(8) **Maan**—To collect alms by showing himself as very remarkable, auspicious and the like.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(9) **Maya**—To collect alms in a deceitful manner.

(10) **Lobh**—To be greedy for food, to decide greedily about specific food before going for alms and to wander about if that food is not available.

(11) **Poorva-Pashchat-Sanstav**—To appreciate the doner before or after he offers.

(12) **Vidya**—To collect food by using some art or skill.

(13) **Mantra**—To collect food by reciting some mantra.

(14) **Churna**—To collect alms by using some powder or coryllium that makes one invisible.

(15) **Yoga**—To collect alms by applying some paste on foot and showing that he has attained super powers.

(16) **Moolakarm**—To collect alms by telling methods of having conception or abortion which are causes of sin.

A monk practicing non-violence avoids such faults. The detailed description of various faults concerning food and the ways of collecting food is available in Chapter 5 of Dashavaikalik Sutra and first Chapter of Acharanga Sutra Part-II.

१११. ण वि हीलणाए, ण वि णिंदणाए, ण वि गरहणाए, ण वि हीलण-णिंदण-गरहणाए भिक्खं गवेसियव्वं। ण वि भेसणाए, ण वि तज्जणाए, ण वि तालणाए, ण वि भेसण-तज्जण-तालणाए भिक्खं गवेसियव्वं। ण वि गारवेणं, ण वि कुहणयाए, ण वि वणीमयाए, ण वि गारव-कुहण-वणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं।

ण वि मित्तयाए, ण वि पत्थणाए, ण वि सेवणाए, ण वि मित्त-पत्थण-सेवणाए भिक्खं गवेसियव्वं। अण्णाए अगढिए अदुट्ठे अदीणे अविमणे अकलुणे अविसाई अपरितंतजोगी जयणघडणकरणचरियविणयगुणजोगसंपउत्ते भिक्खू भिक्खेसणाए णिरए।

१११. (शुद्ध निर्दोष भिक्षा की एषणा करने वाले श्रमण को) न तो गृहस्थ की हीलना करके-जाति आदि के आधार पर बदनामी करके, न दाता की निन्दा करके न गर्हा करके-अन्य लोगों के समक्ष दाता के दोष बताकर भिक्षा नहीं लेनी चाहिए या हीलना, निन्दना एवं गर्हा-तीनों को एक साथ करके भी भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए। इसी तरह साधु को भय दिखलाकर, डाँटकर या धमकी देकर और थप्पड़-मुक्का मारकर भी भिक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिए या तीनों एक साथ करके भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए। ऋद्धि, रस और साता का गौरव करके भी भिक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए, न अपनी दरिद्रता दिखाकर, या मायाचार करके, न भिखारी की भाँति दीनता दिखाकर भिक्षा की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गवेषणा करनी चाहिए और न यह तीनों-गौरव-दरिद्रता और भिखारी की तरह दीनता दिखाकर भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए।

इसी प्रकार मित्रता प्रकट करके, प्रार्थना करके और सेवा करके भी अथवा मित्रता प्रदर्शन, प्रार्थना और सेवा तीनों एक साथ करके भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए। किन्तु अपने स्वजन, कुल, जाति आदि का परिचय न देते हुए, अज्ञात रूप से आहार में आसक्ति-मूर्छा से रहित होकर, आहार और आहारदाता के प्रति द्वेष न करते हुए, अदीन-दैन्यभाव से मुक्त रहकर, भोजनादि न मिलने पर मन में उदासी न लाते हुए, अपने प्रति हीनता-करुणता का भाव न रखते हुए-दयनीय न होकर, विषादरहित वचन-चेष्टा रखकर, निरन्तर मन-वचन-काय को धर्मध्यान में लगाते हुए-प्राप्त संयमयोग में उद्यम, अप्राप्त संयम योगों की प्राप्ति में चेष्टा, विनय के आचरण और क्षमादि के गुणों के योग से युक्त होकर साधु को भिक्षा की गवेषणा में तत्पर होना चाहिए।

विवेचन : आहारादि-ग्रहण के साथ अनेकानेक विधिनिषेध जुड़े हुए हैं। उन सबका अभिप्राय यही है कि साधु ने जिन महाव्रतों को अंगीकार किया है, उनका भलीभाँति रक्षण एवं पालन करते हुए ही उसे आहारादि प्राप्त करना चाहिए। आहारादि के लिए उसे संयमविरुद्ध कोई क्रिया नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार शरीर, आहार आदि के प्रति ममत्वविहीन होकर सब दोषों से बचकर भिक्षा की गवेषणा करने वाला मुनि ही अहिंसा भगवती की विधिवत् आराधना करने में समर्थ होता है।

111. A true monk seeks faultless food. He does not disgrace the householder. He does not dishonour others or talk ill of others on the basis of caste. He does not condemn the donor in front of others by pointing out the faults of the donor, or of the food given. The alms should be collected without condemning, dishonouring or disgracing the giver. Similarly a monk should not collect alms by frightening, threatening or slapping the donor. He should not collect alms in a fit of ego of prosperity, comforts and enjoyments. He should not collect it by expressing his pitiable condition, or by deceit or by expressing his anger. He should not collect alms by exhibiting his status, anger or wretched state.

Similarly one should not seek bhiksha by exhibiting friendship, by requesting for it or by serving others. He should seek it without mentioning his relatives, family or caste. He should collect it without any attachment in food. He should have no hatred for the food or for the donor. He should be free from feeling of wretchedness. He should not feel sad if he finds no food. He should not have any disgust or pity towards his own self. He should be free from disgust. He should engage mind, speech and body continuously in sacred thoughts. He should make sincere efforts towards gratification of his self-restraint and to attain the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

state in restraint, which he has not got as yet. He should practice humility and benevolence. In such a state he should go for collection of food (always).

Elaboration—Many codes and restrictions have been laid down in respect of collection of food. The purpose of all these is that the monk should be able to follow properly all the major vows, that he has accepted. He should accept food meticulously safe-guarding the restrictions and following his ascetic conduct. He should not do any activity against his ascetic discipline while seeking alms. Thus he should remain non-attached towards his body and the food. He should seek alms avoiding all the faults relating to Bhiksha. Only such a monk is capable of properly practicing non-violence.

जिन प्रवचन का उद्देश्य और फल PURPOSE OF WORD OF THE OMNISCIENT AND ITS RESULT

११२. इमं च णं सव्वजगजीव–रक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणविउसमणं।

११२. यह प्रवचन (धर्मशास्त्र) श्रमण भगवान महावीर ने जगत् के समस्त जीवों की रक्षा–दया की समीचीन आराधना के लिए कहा है। यह जिन प्रवचन आत्मा के लिए हितकर है, परलोक–आगामी जन्मों में शुद्ध फल प्रदान करने वाला भविक है तथा भविष्यत् काल में भी कल्याणकर है। यह भगवद्–प्रवचन शुद्ध–निर्दोष है और दोषों से मुक्त रखने वाला है, नीति एवं तर्कसंगत है और किसी के प्रति अन्यायकारी नहीं है, मुक्ति–प्राप्ति का सरल–सीधा मार्ग है, यह अनुत्तर–सर्वोत्तम है तथा समस्त दुःखों और पापों को उपशान्त करने वाला है।

112. For practicing compassion for all the living beings and protecting them, Bhagavan Mahavir has delivered this sermon. It is beneficial for the soul. It is certainly going to provide meritorious results in succeeding lives. It is good in future also. It is faultless. It is going to keep one free from faults. It is logical and is not unjust towards anyone. It is the straight and easy path for attaining liberation. It is unique. It is capable of pacifying all the troubles and the sins.

अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाएँ–प्रथम भावना : ईर्यासमिति
FIVE SENTIMENTS OF MAJOR VOW OF AHIMSA—FIRST SENTIMENT : IRIYA SAMITI

अब शास्त्रकार ने यहाँ अहिंसा संवर में रूचि, जिज्ञासा श्रद्धा, उत्साह, दृढ़ता में वृद्धि करने वाली पाँच भावनाओं का वर्णन किया है। इन पांच भावनाओं का अनुसरण करके अहिंसा भगवती की पूर्ण रूप से उपासना हो सकती है। इन पांच भावनाओं का स्वरूप इस प्रकार है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११३. तस्स इमा पंच भावणाओ पढमस्स वयस्स होंति—पाणाइवायवेरमण—परिरक्खणट्ठयाए।

पढमं ठाण—गमण—गुणजोगजुंजणजुगंतरणिवाइयाए दिट्ठीए ईरियव्वं कीड—पयंग—तस—थावर—दयावरेण णिच्चं पुप्फ—फल—तय—पवाल—कंद—मूल—दग—मट्टिय—बीय—हरिय—परिवज्जिएण सम्मं। एवं खलु सव्वपाणा ण हीलियव्वा, ण णिंदियव्वा, ण गरहियव्वा, ण हिंसियव्वा, ण छिंदियव्वा, ण भिंदियव्वा, ण वहेयव्वा, ण भयं दुक्खं च किंचि लब्भा पावेउं, एवं ईरियासमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

११३. पाँच महाव्रतों में से प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाएँ प्राणातिपातविरमण अर्थात् अहिंसा महाव्रत की रक्षा के लिए कही गई हैं, जो इस प्रकार हैं-

इनमें प्रथम है- खड़े होने, ठहरने और गमन करने में स्व और पर किसी को पीड़ा नहीं देते हुए गाड़ी के युग (जूवे) प्रमाण भूमि पर दृष्टि रखकर अर्थात् ३.५ हाथ आगे की भूमि देखते हुए निरन्तर कीट, पतंग, त्रस, स्थावर जीवों की दया में तत्पर होकर, फूल, फल, छाल, प्रवाल-पत्ते-कौंपल-कंद, मूल, जल, मिट्टी, बीज एवं हरितकाय-दूब आदि को (कुचलने से) बचाते हुए, सम्यक् प्रकार की यतना के साथ चलना चाहिए। इस प्रकार चलने वाले साधु को किसी भी प्राणी की हीलना-उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, गर्हा नहीं करनी चाहिए, उनकी हिंसा नहीं करनी चाहिए, उनका छेदन नहीं करना चाहिए, भेदन नहीं करना चाहिए, उन्हें व्यथित नहीं करना चाहिए। इन पूर्वोक्त जीवों को लेश मात्र भी भय या दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए। इस प्रकार के सम्यक् आचरण से साधु ईर्यासमिति में मन, वचन, काय की प्रवृत्ति से भावित होता है तथा शबलता-(मलिनता) से रहित, संक्लेश से रहित, निरतिचार चारित्र की भावना से युक्त, संयमशील एवं अहिंसक सुसाधु कहलाता है।

Now the author describes the five sentiments that infuse interest, curiosity, faith, enthusiasm and resolve in Ahimsa Samvar. One can immaculately practice. Ahimsa by acquiring these five sentiments. The sentiments are detailed as follows :

113. Out of the five major vows, five sentiments have been mentioned in context of the first major vow of non-violence so as to ensure its proper practice. They are as follows—

The first one is — one should properly use his sense of discrimination in standing staying and in going. He should not cause trouble to any one. He should properly look at a distance of one yoke or 3.5 cubits from himself. He should continuously have a feeling of compassion for all mobile living beings such as ants, moths and also for immobile living beings. He should avoid trampling flowers, fruits, bark, leaves, buds, root, water, earth, tiny grass etc. He should walk with a sense of right

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

discrimination; while walking in such a manner, the monk should not cause harm or condemn any living being. He should not disgrace or despise any one. He should not cause violence to them. He should not cut or pierce them. He should not trouble them. He should not cause even the slightest fear or trouble to the above-mentioned living beings. By following such a proper conduct, the monk develops the sentiment saturated with iriya samiti (the principle laid down for proper movement). He is then considered a monk free from faulty behaviour and free from any disturbing conduct. He then has the faultless conduct. He is called a monk truly following the life of self-restraint and of non-violence.

द्वितीय भावना : मनःसमिति SECOND SENTIMENT : EQUANIMITY OF MIND

११४. बिइयं च मणेण पावएणं पावगं अहम्मियं दारुणं णिस्संसं वह–बंध–परिकिलेसबहुलं भय–मरण–परिकिलेससंकिलिट्ठं ण कयावि मणेण पावएणं पावगं किंचि वि झायव्वं। एवं मणसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

११४. दूसरी भावना मनःसमिति है। पापरूप दुष्ट मन से पापमय, अधर्मयुक्त दारुण–भयानक, निर्दय, वध, बन्ध और संताप से भरपूर एवं भय, मृत्यु और संक्लेश से कलुषित–मलिन पाप में डूबे हुये धृष्ट मन से लेशमात्र भी पाप युक्त चिन्तन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार के शुद्ध आचरण से–मनः समिति की प्रवृत्ति से अन्तरात्मा भावित होती है तथा निर्मल, संक्लेशरहित, अखण्ड निरतिचार चारित्र की भावना से युक्त, संयमशील एवं अहिंसक आत्मा सुसाधु कहलाता है।

114. Second sentiment is equanimity of mind. One should never have sinful, dreadful, cruel thoughts in his mind which are against the scriptures. One should not have thoughts wherein there is predominance of killing, bondage and quarrel. He should not have even the slightest thought wherein there is an element of fear, death or trouble with such pure conduct. Thus following the equanimity of mind, the inner soul gets benefited. A soul which is free from dirt, free from disputes and which is following continuously faultless conduct, which is saturated in the spirit of self-restraint and non-violence, is called a good monk.

तृतीय भावना : वचनसमिति THIRD SENTIMENT : EQUANIMITY IN SPEECH

११५. तइयं च वईए पावियाए पावगं ण किंचि वि भासियव्वं। एवं वइ–समिति–जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११५. अहिंसा महाव्रत की तीसरी भावना वचनसमिति है। पापरूप वाणी के द्वारा किंचित् मात्र भी सावद्य अधर्मयुक्त कठोर, घातक एवं संक्लेशजनक वचन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की वाक्समिति (भाषासमिति) के योग से युक्त अन्तरात्मा वाला निर्मल, संक्लेशरहित और अखण्ड चारित्र की भावना से ओतप्रोत अहिंसक साधु सुसाधु होता है।

115. The third sentiment of the great vow of non-violence is equanimity of speech. One should not utter harsh, pinching or hurting word that may cause even the slightest fault in respect of practice of Dharma. He should not use language having an element of sin. A monk who practices equanimity of speech, has dirtless inner self and faultless conduct; he is saturated with the feeling of non-violence. He is called a real true monk.

चतुर्थ भावना : आहारैषणासमिति FOURTH SENTIMENT : EQUANIMITY IN SEEKING FOOD

११६. चउत्थं आहारएसणाय सुद्धं उंछं गवेसियव्वं अण्णाए अगढिए अदुट्ठे अदीणे अकलुणे अविसाई अपरितंतजोगी जयण-घडण-करण-चरिय-विणय-गुण-जोग-संपओगजुत्ते भिक्खू भिक्खेसणाए जुत्ते समुदाणेऊण भिक्खचरियं उंछं घेत्तूण आगओ गुरुजणस्स पासं गमणागमणाइयारे पडिक्कमण-पडिक्कंते आलोयणदायणं य दाऊण गुरुजणस्स गुरुसंदिट्ठस्स वा जहोवएसं णिरइयारं च अप्पमत्तो पुणरवि अणेसणाए पयओ पडिक्कमित्ता पसंते आसीणसुहणिसण्णे मुहुत्तमित्तं च झाणसुहजोगणाणसज्झायगोवियमणे धम्ममणे अविमणे सुहमणे अविग्गहमणे समाहियमणे सद्धासंवेगणिज्जरमणे पवयणवच्छलभावियमणे उट्ठिऊण य पहट्ठतुट्ठे जहारायणियं णिमंतइत्ता य साहवे भावओ य विइण्णे य गुरुजणेणं उपविट्ठे।

संपमज्जिऊण ससीसं कायं तहा करयलं, अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अगरहिए अणज्झोववण्णे अणाइले अलुद्धे अणत्तट्ठिए असुरसुरं अचवचवं अदुयमविलंबियं अपरिसाडियं आलोयभायणे जयं पयत्तेण ववगय-संजोग-मणिंगालं च विगयधूमं अक्खोवंजणाणुलेवणभूयं संजमजायामायाणिमित्तं संजम-भारवहणट्ठयाए भुंजेज्जा पाणधारणट्ठयाए संजएण समियं एवं आहारसमिइजोगेणं भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

११६. चौथी भावना एषणासमिति है। आहार की एषणा सम्बन्धी समस्त दोषों से रहित, मधुकरी वृत्ति से-अनेक घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए। भिक्षा लेने वाला साधु अज्ञात रहे-अज्ञात सम्बन्ध वाला रहे, अर्थात् अपने कुल, परिवार व सम्बन्धों का परिचय देकर भिक्षा प्राप्त न करे। गृद्धि-आसक्ति से रहित हो, अदुष्ट-द्वेष से रहित हो, अर्थात् भिक्षा न देने वाले, अपर्याप्त भिक्षा देने वाले या नीरस भिक्षा देने वाले दाता पर द्वेष न करे। करुण-दीन या दयनीय-दयापात्र न बने। भिक्षा न मिलने पर विषाद न करे। मन-वचन-काय की सम्यक् प्रवृत्ति में निरन्तर निरत रहे। प्राप्त संयमयोगों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 16

Illustration No. 16

अहिंसा संवर की पाँच भावनाएँ

इस अहिंसा संवर को पुष्ट करने के लिए पाँच भावनाएँ बताई गई हैं–

(1) **इर्यासमिति भावना**–इस भावना से भावित साधु खड़े होने, ठहरने और चलने में 'स्व' और 'पर' को पीड़ा नहीं देते हुए, साढ़े तीन हाथ (युग प्रमाण) आगे की भूमि देखते हुए त्रस एवं स्थावर जीवों की हिंसा से बचते हुए सम्यक् प्रकार से यतना के साथ चलते हैं।

(2) **मनः समिति भावना**–इस भावना से भावित साधु अपने मन में पापकारी कलुषित विचारों को नहीं आने देते और छह काय जीवों की हिंसा से सदैव ही बचने का शुद्ध भाव मन में रखते हैं।

(3) **वचन समिति भावना**–वचन समिति भावना से भावित साधु अहिंसक निर्दोष वाणी का उपयोग करते हैं।

(4) **एषणा समिति भावना**–आहार की गवेषणा करते समय साधु गृहस्थ के घर में जाये तब यदि भोजन चूल्हे पर चढ़ा हो, अग्नि आदि का स्पर्श होता हो, सचित्त वस्तु का स्पर्श होता हो, दाता कच्चा जल देवे, नमक के ढेले आदि सचित्त वस्तु देवे तो वह मुनि को लेना नहीं कल्पता।

(5) **आदान-निक्षेपण समिति**–संयम साधना में उपयोगी उपकरणों–वस्त्र, पात्र, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि को यत्नापूर्वक ग्रहण करना और यत्नापूर्वक रखना, आदान-निक्षेपण समिति है। इन उपकरणों की प्रतिदिन प्रातः और सांय के समय प्रतिलेखना (देखना–निरीक्षण करना), प्रमार्जना (पूंजना) आदि करना चाहिए।

–सूत्र 113-117, पृ. 285-290

FIVE SENTIMENTS OF AHIMSA SAMVAR

Five sentiments have been prescribed for enhancing this Ahimsa Samvar –

(1) Care in movement – Ascetics enkindled with this feeling move taking proper care while standing walking and stopping. They move observing three and half cubit ground in front, avoiding mobile and immobile beings and not causing pain to self and others.

(2) Care of mind – Ascetics enkindled with this feeling do not allow sinful thoughts to rise in their mind. They always nurture attitude of refraining from indulgence in violence towards all six classes of living beings.

(3) Care of speech – Ascetics enkindled with this feeling always employ faultless non-violent speech.

(4) Care in alms-seeking – Ascetics enkindled with this feeling avoid accepting faulty food. Some of these faults are – food being cooked, food in touch of fire or any thing having living organism, non-boiled water, lump of salt or any other thing with living organism.

(5) Care in taking and placing things – Ascetics enkindled with this feeling accept and places ascetic equipment with proper care. This includes clothes, pots, ascetic-broom, and handkerchief. They also inspect and cleanse these every morning and evening.

— Sutra-113-117, pages-285-290

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रक्षा के लिए यतनाशील एवं अप्राप्त संयमयोगों की प्राप्ति के लिए उद्यमवान, विनय का आचरण करने वाला तथा क्षमा आदि गुणों की प्रवृत्ति से युक्त रहे। ऐसी भिक्षाचर्या में तत्पर भिक्षु ऊँच-नीच अनेक घरों में भ्रमण करके थोड़ी-थोड़ी भिक्षा ग्रहण करे। भिक्षा प्राप्त करके अपने स्थान पर गुरुजन के समक्ष आये। जाने-आने में लगे हुए अतिचारों-दोषों का प्रतिक्रमण करे। प्रतिक्रमण से निवृत्त होकर लाया हुआ आहार-पानी गुरुजनों को दिखला दे, फिर गुरुजन के अथवा गुरुजन द्वारा निर्दिष्ट किसी अग्रगण्य साधु के आदेश पर मार्गदर्शन के अनुसार, सब अतिचारों-दोषों से रहित एवं अप्रमत्त होकर विधिपूर्वक अनेषणाजनित दोषों की निवृत्ति के लिए पुनः प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) करे। तत्पश्चात् शान्त भाव से सुखपूर्वक बैठकर मुहूर्त्तभर धर्मध्यान, गुरु की सेवा आदि शुभ योग, तत्त्वचिन्तन अथवा स्वाध्याय के द्वारा अपने मन को, चित्त को स्थिर करके श्रुत-चारित्ररूप धर्म में संलग्न करे, चित्तशून्यता से रहित होकर, संक्लेश से मुक्त रहकर, कलह अथवा दुराग्रह से रहित मन वाला होकर, समाधियुक्त मन वाला-अपने चित्त को उपशम में स्थापित करने वाला, श्रद्धा, संवेग-मोक्ष की अभिलाषा और कर्मनिर्जरा में चित्त को संलग्न करने वाला होकर, मन में तीर्थंकर के प्रवचनों के प्रति वात्सल्य भाव से ओतप्रोत होकर, ऐसा साधु अपने आसन से उठे और हृष्ट-तुष्ट होकर यथारात्निक-दीक्षा में छोटे-बड़े के क्रमानुसार अन्य साधुओं को आहार के लिए भावपूर्वक निमंत्रित करे।

गुरुजनों द्वारा लाये हुए आहार को वितरण कर देने के बाद उचित आसन पर बैठे। फिर मस्तक सहित शरीर को तथा हथेली को भलीभाँति प्रमार्जित करके-पूंज करके आहार में अनासक्त होकर, स्वादिष्ट भोजन की लोलुपता से रहित होकर तथा रसों में आसक्तिरहित होकर, दाता की तथा भोजन की निन्दा नहीं करता हुआ, सरस वस्तुओं में आसक्ति न रखता हुआ, अकलुषितभावपूर्वक, लोलुपता से रहित होकर, परमार्थ बुद्धि का धारक साधु (भोजन करते समय) 'सुड़्-सुड़्' ध्वनि न करता हुआ, 'चप-चप' आवाज न करता हुआ, न बहुत जल्दी-जल्दी और न बहुत देर से, भोजन को भूमि पर न गिराता हुआ, प्रकाशयुक्त चौड़े पात्र में (भोजन करे।) भोजन करते हुए यतनापूर्वक, आदरपूर्वक एवं संयोजनादि सम्बन्धी दोषों से रहित, अंगार तथा धूम दोष से रहित होकर आहार करे, जिस प्रकार गाड़ी की धुरी में तेल देते हों, अथवा घाव पर मलहम लगाते हों, उसी प्रकार केवल संयमयात्रा के निर्वाह के लिए एवं संयम के भार को वहन करने के लिए प्राणों को धारण करने के उद्देश्य से साधु को सम्यक् प्रकार से-यतना के साथ भोजन करना चाहिए।

इस प्रकार आहारसमिति (एषणासमिति) में समीचीन रूप से प्रवृत्ति के योग से अन्तरात्मा भावित करने वाला साधु, निर्मल, संक्लेशरहित तथा अखण्डित चारित्र की भावना वाला अहिंसक संयमी मोक्षमार्ग का आराधक होता है।

116. The fourth sentiment is equanimity in collection of alms. A monk should collect food free from all faults relating to it as mentioned in the scriptures. He should act like a bumble-bee collecting a little each from many houses. He should remain away from familiarity. He should not

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

develop familiarity. He should not introduce himself by stating his family, his caste and his relatives. He should be free from attachment for food. He should be free from hatred. He should not despise a person who uses to offer food, who offers insufficient food or who offers tasteless food. He should not seek mercy. He should not feel sad if he is not able to get any offering. He should continuously engage himself in right state of mind, speech and action. A monk should strive for safe-guarding the element he has got beneficial to his ascetic discipline and he should make efforts to procure those beneficial things in ascetic life which he has not got as yet. He should be humble. He should have good qualities like benevolence and others. Such a monk while collecting alms visits houses high and low and should accept only a little form each of them. After collecting bhiksha, he should come to his spiritual master. He should repent for the faults if any incurred in coming and going. After pratikarman (prescribed code of repentance), he should show the food and water that he has collected to his master. Thereafter as directed by his master or any senior monk appointed by the master for guidance, he should again do repentance keeping his body in a state of meditation (non-attachment towards the body) and free from slackness, for the faults incurred in collection of alms as prescribed in the scriptures. Thereafter he should sit quietly in meditation about Dharma for 48 minutes. He should engage in service of his master. He should engage his mind in study of scriptures and meditate on its inner thought. He should engage himself in right knowledge and right conduct. He should avoid the state of mental void. He should be free from disturbance, quarrel or stubborn attitude. He should have an equanimous mind. He should establish his mind in a state of subdued passions. He should have deep faith. He should have a keen desire for liberation and shedding of Karmas. He should have deep interest in lessons about scriptures. He should get up in such a state of mind and invite happily and in a contented manner other monks, junior and senior to him, for food according to their seniority in ascetic life.

After distributing the food among the monks, he should take his seat. He should then clean his body and the palm of his hand properly. He should then take his food in a detached manner. He should not be greedy about tasty food. He should not be attached to their juices. He should not condemn the food or the doner. He should not have attachment in tasty

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

food. He should not have hatred against anyone. He should be totally free from greed. He should have an attitude of service to all. He should not make any condemnable sound while eating. He should neither eat very quickly nor very slowly. He should not drop any food on the ground while eating. He should take food in a careful manner from a broad pot and where there is light. He should take food in a dignified manner. He should avoid faults regarding mixing the food. He should avoid other faults regarding eating food. He should take food in such a manner as a cart is oiled or an ointment is placed on the wound. He should take food only to properly lead the life of self-restraint, to undergo ascetic discipline in a proper manner and to keep his life-force in order in ascetic conduct. A monk should engage himself in the state of equanimity regarding food, keep his soul free from dirt or troubles and lead the life of faultless conduct. Such a saint following the principles of non-violence is a true practitioners of path leading to salvation.

पाँचवीं भावना : आदान–निक्षेपणसमिति

FIFTH SENTIMENT : DISCRIMINATION IN KEEPING AND PICKING UP THINGS

११७. पंचमं आयाणणिक्खेवणसमिई–पीढ–फलग–सिज्जा–संथारग–वत्थ–पत्त–कंबल–दंडग–रयहरण–चोलपट्टग–मुहपोत्तिय–पायपुंछणाई एवं पि संजमस्स उवबूहणट्ठयाए वायातव–दंसमसग–सीयपरिरक्खणट्ठयाए उवगरणं रागदोसरहियं परिहरियव्वं संजमेणं णिच्चं पडिलेहण–पप्फोडण–पमज्जणयाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइ सययं णिक्खियव्वं च गिण्हियव्वं च भायणभंडोवहिउवगरणं एवं आयाणभंडणिक्खेवणासमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

११७. अहिंसा महाव्रत की पाँचवीं भावना आदान–निक्षेपणसमिति है। इसका स्वरूप इस प्रकार है–संयम के उपकरण पीठ–पीढ़ा, चौकी, फलक पाट, शय्या–शयन का आसन, संस्तारक–घास का बिछौना, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्ट, मुखवस्त्रिका, पादप्रोंछन–पैर पोंछने का वस्त्रखण्ड, ये अथवा इनके अतिरिक्त उपकरण संयम की रक्षा या वृद्धि के उद्देश्य से तथा पवन, धूप, डांस, मच्छर और शीत आदि से शरीर की रक्षा के लिए धारण–ग्रहण करना चाहिए। (शोभावृद्धि आदि किसी अन्य प्रयोजन से नहीं)। साधु सदैव इन उपकरणों के प्रतिलेखन, प्रस्फोटन–झटकारने और प्रमार्जन करने में, दिन में और रात्रि में सतत अप्रमत्त रहे और भाजन–पात्र, भाण्ड–मिट्टी के बर्तन, उपधि–वस्त्र तथा अन्य उपकरणों को यतनापूर्वक रखे या उठाये।

इस प्रकार आदान–निक्षेपणसमिति के योग से भावित अन्तरात्मा वाला साधु निर्मल, असंक्लिष्ट तथा अखण्ड–निरतिचार चारित्र की भावना से युक्त अहिंसक संयमशील सुसाधु होता है अथवा ऐसा सुसाधु ही अहिंसक होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

117. Fifth sentiment of the major vow of non-violence is equanimity in keeping and picking of things. Its nature is as follow :

The items of use in ascetic life are small seat, small table, board, bedding of hay, cloth to sit, cloth to wear, pots, blanket, wooden rod, broom, cloth to cover the body, mukhvastrika (cloth at the mouth) piece of cloth for cleaning the feet and other suchlike articles used to save oneself from wind, sun, mosquito bite and cold. He should accept them only for advancement in ascetic life and not for outward grandeur. A monk should always be vigilant in inspecting these articles, in spreading them, in cleaning them during the day and at night. He should place his articles carefully and pick them up in a very careful manner.

Thus a monk who practices equanimity in keeping them and in picking them up, his inner self remains free from pollution, or disturbance. He has the sentiment of practicing faultless ascetic conduct. He is non-violent and strict in ascetic discipline. He is the true monk. Only such a monk can be fully non-violent.

विवेचन : पूर्वोक्त पाठ में अहिंसा महाव्रत के परिपूर्ण पालन के लिए आवश्यक पाँच भावनाओं के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है और यह स्पष्ट किया है कि इन भावनाओं के अनुसार आचरण करने वाला ही पूर्ण अहिंसक हो सकता है, वही सुसाधु कहलाने योग्य है, वही चारित्र को निर्मल-निरतिचार रूप से पालन कर सकता है। अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ पाँच समितियों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रथम ईर्यासमिति भावना– साधु को अनेक प्रयोजनों से गमनागमन करना पड़ता है। किन्तु उसका गमनागमन विशिष्ट विधि के अनुसार होना चाहिए। गमन करते समय उसे अपने महाव्रत को ध्यान में रखना चाहिए और पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक स्थावर जीवों को तथा कीड़े-मकोड़े आदि छोटे-मोटे त्रस जीवों को किंचित् मात्र भी आघात न लगे, उनकी विराधना न हो जाये, इस ओर सतत सावधान रहना चाहिए। उसके सामने यह सिद्धान्त स्पष्ट होना चाहिये कि "मैं विश्व में प्राणिमात्र की रक्षा और दया के लिये साधु बना हूँ।" उसे छोटे-बड़े सभी प्राणियों के प्रति दया परायण रहना चाहिये। साधु को वार्त्तालाप में चित्त न लगाते हुए गन्तव्य मार्ग पर ही दृष्टि रखनी चाहिए। आगे की साढ़े तीन हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए एकाग्र भाव से चलना चाहिए। इस प्रकार का चिन्तन और प्रयोग इस भावना के साथ होना चाहिये।

दूसरी मनःसमिति भावना– अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करने के लिए मन में उठने वाले बुरे विचार या भावों से सदा बचते रहना चाहिए। मन आत्मा का सूक्ष्म किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली साधन है। वह कर्मबन्ध का और कर्मनिर्जरा का भी प्रधान हेतु है। उस पर नियन्त्रण रखने के लिए सतत् जागरूक रहने की आवश्यकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जरा-सी सावधानी हटी और वह कहीं का कहीं दौड़ जाता है। अतः सावधान रहकर सदैव यह चिन्तन करना आवश्यक है कि मन में किसी भी प्रकार का पापमय, अधार्मिक या अप्रशस्त विचार उत्पन्न न हो. इसके लिए सदा शुद्ध भावों, शुभ ध्यानों में मन को संलग्न रखना चाहिए।

तीसरी वचन-समिति भावना- इसमें वाणी-प्रयोग सम्बन्धी विवेक को जगाए रखने की मुख्यता है। वध-बन्धकारी, क्लेशोत्पादक, पीड़ाजनक अथवा तीखे, मन को चुभने वाले वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। साधु के लिए मौन सर्वोत्तम है किन्तु वचनप्रयोग आवश्यक होने पर हित-मित, सत्य और मधुर वचनों का ही प्रयोग करना चाहिए।

चौथी आहार-एषणा भावना- आहार की प्राप्ति साधु को भिक्षा द्वारा ही होती है। अतएव जैनागमों में भिक्षा सम्बन्धी विधि बहुत विस्तारपूर्वक प्रतिपादित की गयी है। भिक्षा सम्बन्धी दोषों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। आहार पकाने में हिंसा अवश्यभावी है। किन्तु इस हिंसा से पूरी तरह बचाव भी हो और भिक्षा भी प्राप्त हो जाए, ऐसा मार्ग भगवान् ने बतलाया है। इसी प्रयोजन से साधु जीवन के लिए उद्गमदोष, उत्पादनदोष से रहित शुद्ध भिक्षा चर्या बताई है।

पाँचवीं आदान-निक्षेपणसमिति भावना- साधु अपने शरीर पर भी ममत्वभाव नहीं रखते, किन्तु **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** उक्ति के अनुसार संयम-साधना का निमित्त मानकर उसकी रक्षा के लिए अनेक उपकरणों को स्वीकार करते हैं। इन उपकरणों को उठाते समय एवं रखते समय यतना रखनी चाहिए। यथासमय शास्त्र विधिनुसार उनका प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन भी अप्रमत्त रूप से करते रहना चाहिए।

इस प्रकार अहिंसा महाव्रत की इन भावनाओं के यथावत् परिपालन से व्रत निर्मल, निरतिचार बनता है और इन निरतिचार व्रतों का पालक साधु ही सुसाधु है, वही मोक्ष की साधना में सफलता प्राप्त करता है।

Elaboration—In the above mentioned aphorism relating to five sentiments, the nature of five sentiments, which are essential for meticulously practicing the major vow of Ahimsa have been discussed. Only such person who conducts his life according to them, can be totally non-violent. Only that person is fit to be called a good monk. He alone can lead a faultless ascetic life.

The five thought-reflections relating to the vow of non-violence are famously known as five samitis.

First sentiment is equanimity in movement (Iriya Samiti). A monk has to move about for various purposes. But his movement should be according to the special code. He should keep in mind his major vow while moving about. So that it may not cause hurt to any earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied and plant-bodied immobile living being or any small or gross mobile living being. He should be vigilant continuously that it may not cause any disgust in them. He should be clear about the fact that he has become a monk. So in order to save

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

oneself from activity causing hurt to oneself and others, one should not look hither and thither. He should not engage himself in any talk. He should keep an eye only on the path he is treading. He should move with concentration looking closely upto a distance of 3.5 cubits ahead of him. Such thought and action should accompany this sentiment.

The second sentiment is equanimity of the mind in order to practice non-violence meticulously. One should keep his mind continuously away from bad thoughts and activities. Mind is the subtlest and extremely powerful instruments of the soul. It is the primary cause of bondage of Karma and also of shedding of Karma. In order to control it, one has to be continuously vigilant. A little slackness may take it far away. So it is necessary to look after it continuously. In case any type of sinful, irreligious or bad thought arises one should immediately engage himself in religious contemplation.

In the third sentiment regarding speech, one should keep awake his sense of discrimination regarding speech. He should not use such words which cause killing, bondage, quarrels, hurt or which are harsh. To observe silence is the best for a monk. But when it is necessary to speak, he should only use limited words and these also should be sweet, to the point and relating to the welfare of others.

Fourth sentiment is about collection of food. A monk collects food through offering. So in Jain scriptures the method for it and the taboos relating to it have been described in detail. The faults relating to collection of alms have already been discussed earlier. Violence is certainly there in cooking food. But the lord has stated the method with which it (the violence) can be totally avoided and the food can also be procured. To keeping this fact in mind, the faults relating to preparation and collection of food have been narrated.

Fifth sentiment is equanimity in taking and placing a thing. A monk does not have any attachment for his body. But the physical body is necessary for religious practices. So he accepts various articles necessary for leading the life of self restraint as a monk. He should have proper care or vigilance while picking up such articles. He should look into them at regular intervals as prescribed in the code. He should clean them without any slackness.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thus by following these five sentiments of the major vow of non-violence, the practice of vow becomes spotless and free from all faults. Only that monk is a real monk who practices his vow in a faultless manner. He alone attains success in his practice for salvation.

११८. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिं पि कारणेहिं मण–वयण–कायपरिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलसो अच्छिद्दो असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुण्णाओ।

११८. इस प्रकार मन, वचन और काय से सुरक्षित इन पाँच भावना रूप उपायों से यह अहिंसा-संवरद्वार पालित-सुप्रणिहित होता है। अतएव धैर्यशाली और मतिमान् पुरुष को सदा जीवनपर्यन्त सम्यक् प्रकार से इसका पालन करना चाहिए। यह अनास्रव है, अर्थात् नवीन कर्मों के आस्रव को रोकने वाला है, दीनता से रहित है, कालुष्य-मलीनता से रहित और अच्छिद्र-अनास्रवरूप है, अपरिस्रावी-कर्मरूपी जल के आगमन को अवरुद्ध करने वाला है, मानसिक संक्लेश से रहित है, शुद्ध है और सभी तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात-अभिमत है।

118. Thus non-violence, the gateway of Samvar is guarded through five methods above-mentioned, meticulously followed mentally, vocally and physically. So the intelligent steadfast person should follow them properly throughout his life. It is Anasrava, which means that it stops the inflow of Karma. It is devoid of wretchedness. It is free from polluted bent of mind. It is free from any gaps. It stops the entrance of Karma water in the self. It is free from mental disturbances. It is pure. It is the dictum of all the Tirthankars.

विवेचन : हिंसा आस्रव का कारण है तो उसकी विरोधी अहिंसा आस्रव को रोकने वाली हो, यह स्वाभाविक ही है।

अहिंसा के पालन में दो गुणों की अपेक्षा रहती है–धैर्य की और विवेक की। विवेक के अभाव में अहिंसा के वास्तविक आशय को समझा नहीं जा सकता और वास्तविक आशय को समझे बिना उसका आचरण नहीं किया जा सकता है। विवेक विद्यमान हो और अहिंसा के स्वरूप को वास्तविक रूप में समझ भी लिया जाए, मगर साधक में यदि धैर्य न हो तो भी उसका पालन होना कठिन है। अहिंसा के उपासक को व्यवहार में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं, संकट भी झेलने पड़ते हैं, ऐसे प्रसंगों पर धीरज ही उसे अपने व्रत में अडिग रख सकता है। अतएव पाठ में **'धिइमया मइमया'** इन दो पदों का प्रयोग किया गया है।

Elaboration—Violence is the cause of inflow of Karma. So it is natural that non-violence stops the inflow.

Two qualities are necessary for the practice of non-violence in life, namely perseverance and sense of discrimination. In the absence of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

discrimination, the real nature of non-violence cannot be understood and without understanding the real nature, non-violence cannot be practiced in conduct. In case discrimination is there and the real nature of non-violence has also been understood, still in the absence of perseverance, it is difficult to follow it. One who practices non-violence, he faces many difficulties in daily life. He has to undergo many troubles; on such occasions, only perseverance can keep him firm in his vow. So in the aphorism two words 'dhiyimaya mayimaya' have been used.

११९. एवं पढमं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ। एवं णायमुणिया भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं।

॥ पढमं संवरदारं समत्तं। त्ति बेमि॥

११९. इस प्रकार (विधि पूर्वक पांचों भावनाओं का पालन करने से) प्रथम (अहिंसा) संवर द्वार स्पष्ट होता है, पालित होता है, शोधित होता है, तीर्ण होता है, कीर्तित, आराधित और (जिनेन्द्र भगवाने की) आज्ञा के अनुसार पालित होता है। ऐसा ज्ञात कुल नन्दन भगवान महावीर ने प्रज्ञापित किया है एवं प्ररूपित किया है। यह सिद्धवरशासन प्रसिद्ध है, सिद्ध है, बहुमूल्य है, सम्यक् प्रकार से उपदिष्ट है और प्रशस्त है।

प्रथम संवर द्वार समाप्त हुआ। वैसा मैं कहता हूँ। (जैसा मैंने सुना है।)

119. Following the method mentioned above, one can practice the first gateway of Samvar. He can purify his self. He can meticulously follow it. His reputation spreads far and wide. He becomes a true follower of the order. He is than practitioner according to the order laid by Tirthankars. Such is the famous, precious and properly defined order of Siddhas. It is meritorious.

This concludes the first door of Samvar. So I say (as I have heard).

विवेचन : यहाँ प्रथम अहिंसा संवरद्वार की महिमा अनेक विशेषणों द्वारा व्यक्त करते हुये इसका उपसंहार किया गया है। इस संवरद्वार में जो-जो कथन किया गया है, उसी प्रकार से इसका समग्र रूप में परिपालन किया जाता है।

॥ प्रथम संवरद्वार समाप्त॥

Elaboration—Here the first door of Samvar, Ahimsa, has been concluded by mentioning its importance in the form of adjectives. Whatever has been mentioned here is observed completely and meticulously.

● FIRST GATEWAY OF SAMVAR CONCLUDED ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्ययन : सत्य
SECOND CHAPTER : TRUTH

प्रथम संवरद्वार प्राणातिपात विरमण रूप अहिंसा के विशद् विवेचन के पश्चात् द्वितीय संवरद्वार सत्य का निरूपण किया जा रहा है। अहिंसा की पूर्ण साधना के लिए असत्य से विरत होकर सत्य की समाराधना आवश्यक है। सत्य की समाराधना के बिना अहिंसा की आराधना नहीं हो सकती। वस्तुतः सत्य अहिंसा को पूर्णता प्रदान करता है। वह अहिंसा को अलंकृत करता है। अतएव अहिंसा के पश्चात् सत्य का निरूपण किया जाता है। सत्य की महिमा और उसके स्वरूप का वर्णन निम्नलिखित सूत्र पाठ में किया गया है।

After discussing in detail non-violence, the first gateway of Samvar, truth, the second gateway is narrated here. In order to properly follow non-violence in all aspects, it is essential to discard falsehood and to practice truth meticulously. Without practicing truth, non-violence cannot be practiced. In fact truth provides completeness to non-violence. It beautifies non-violence. So after non-violence, truth is going to be discussed. The concept of truth and its glory has been described in the following text.

सत्य की महिमा **THE GLORY OF TRUTH**

१२०. [१] जंबू ! बिइयं य सच्चवयणं सुद्धं सुचियं सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं सुपइट्ठियं सुपइट्ठियजसं सुसंजमिय–वयण–बुइयं सुरवर–णरवसभ–पवरबलवग–सुविहियजणबहुमयं, परमसाहुधम्मचरणं, तव–णियमपरिग्गहियं सुगइपहदेसगं य लोगुत्तमं वयमिणं।

विज्जाहरगगणगमणविज्जाण साहकं सग्गमग्ग–सिद्धिपहदेसगं अवितहं, तं सच्चं उज्जुयं अकुडिलं भूयत्थं अत्थओ विसुद्धं उज्जोयकरं पभासगं भवइ सव्वभावण जीवलोए, अविसंवाइ जहत्थमहुरं।

पच्चक्खं दयिवयं व जं तं अच्छेरकारगं अवत्थंतरेसु बहुएसु मणुसाणं सच्चेण महासमुद्दमज्झे वि मूढाणिया वि पोया। सच्चेण य उदगसंभमम्मि वि ण वुज्झइ ण य मरंति थाहं ते लहंति।

सच्चेण य अगणिसंभमम्मि वि ण डज्झंति उज्जुगा मणुस्सा।

सच्चेण य तत्ततेल्ल–तउलोहसीसगाइं छिवंति धरेंति ण य डज्झंति मणुस्सा।

पव्वयकडकाहिं मुच्चंते ण य मरंति। सच्चेण य परिग्गहिया, असिपंजरगया समराओ वि णिइंति अणहा य सच्चवाई। वहबंधभियोगवेर–घोरेहिं पमुच्चंति य अमित्तमज्झाहिं णिइंति अणहा य सच्चवाई। सादेव्वाणि य देवयाओ करेंति सच्चवयणे रत्ताणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं सच्चं भगवं तित्थयरसुभासियं दसविहं, चोद्दसपुव्वीहिं पाहुडत्थविइयं, महरिसीण य समयप्पइण्णं, देविंदणरिंदभासियत्थं, वेमाणियसाहियं, महत्थं, मंतोसहिविज्जासाहणत्थं, चारणगणसमणसिद्धविज्जं, मणुयगणाणं वंदणिज्जं, अमरगणाणं अच्चणिज्जं, असुरगणाण य पूयणिज्जं, अणेगपासंडिपरिग्गहियं जं तं लोगम्मि सारभूयं, गंभीरयरं महासमुद्दाओ, थिरयरगं मेरुपव्वयाओ, सोमयरगं चंदमंडलाओ, दित्तयरं सूरमंडलाओ, विमलयरं सरयणहयलाओ, सुरभियरं गंधमादणाओ, जे वि य लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभगा य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाइं पि ताइं सच्चे पइट्ठियाइं।

१२०. [१] श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने प्रमुख शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहा-हे जम्बू ! यह सत्यवचन नाम का दूसरा संवर है। सत्य शुद्ध-निर्दोष, शुचि-पवित्र, शिव-समस्त प्रकार के उपद्रवों से रहित, सुजात-प्रशस्त-विचारों से उत्पन्न होने के कारण सुभाषित-सुन्दर सुस्पष्ट वचन रूप है। यह उत्तम व्रतरूप है और सम्यक् विचारपूर्वक कहा गया है। इसे ज्ञानीजनों ने कल्याण के साधन के रूप में देखा है, अर्थात् ज्ञानियों की दृष्टि में सत्य कल्याण का कारण है। यह सुप्रतिष्ठित है-सुस्थिर कीर्ति वाला है, समीचीन रूप में संयमयुक्त वाणी से कहा गया है। सत्य सुरवरों-उत्तम कोटि के देवों, नरवृषभों-श्रेष्ठ मानवों, अतिशय बलधारियों एवं सुसाधुजनों द्वारा बहुमत-अतीव मान्य किया गया है। श्रेष्ठ-उत्कृष्ट साधुओं का धार्मिक अनुष्ठान है और तप एवं नियम से स्वीकृत किया गया है। सदगति के पथ का प्रदर्शक है और यह व्रत लोक में उत्तम माना गया है।

यह सत्य विद्याधरों की आकाशगामिनी विद्याओं को सिद्ध करने वाला है। स्वर्ग के मार्ग का तथा मुक्ति के मार्ग का प्रदर्शक है। यथातथ्य अर्थात् मिथ्याभाव से रहित है, ऋजुक-सरलभाव से युक्त है, कुटिलता से रहित है, विद्यमान पदार्थों का ही प्रयोजनवश कथन करने वाला है, सर्व प्रकार से शुद्ध है-असत्य या अर्द्धसत्य की मिलावट से रहित है (असत्य का सम्मिश्रण जिसमें नहीं होता वही विशुद्ध सत्य कहलाता है) सत्य ज्ञान को प्रकाशित करने वाला है, इस जीवलोक में समस्त पदार्थों का विसंवादरहित-यथार्थप्ररूपक है। यह यथार्थ होने के कारण मधुर है और मनुष्यों का बहुत-सी विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं में आश्चर्यजनक कार्य करने वाले देवता के समान है, अर्थात् मनुष्यों पर आ पड़े घोर संकट की स्थिति में वह देवता की तरह सहायक बनकर संकट से उबारने वाला है।

किसी महासमुद्र के बीच में दिशा भ्रम से ग्रस्त हो जाने के कारण जिनकी बुद्धि कार्य नहीं कर रही हो, ऐसे सैनिकों के जहाज भी सत्य के प्रभाव से ठहर जाते हैं, डूबते नहीं हैं। सत्य का ऐसा प्रभाव है कि भँवरों से युक्त जल के प्रवाह मे भी मनुष्य बहते नहीं हैं, मरते नहीं हैं, किन्तु थाह पा लेते हैं।

सत्य के प्रभाव से जलती हुई अग्नि के भयंकर घेरे में पड़े हुए मानव जलते नहीं हैं। सत्यनिष्ठ सरल हृदय वाले सत्य के प्रभाव से तपे-उबलते हुए तेल, राँगे, लोहे और सीसे को छू लेते हैं, हथेली पर रख लेते हैं, फिर भी जलते नहीं हैं। मनुष्य पर्वत के शिखर से गिरा दिये जाते हैं-नीचे फैंक दिये जाते हैं, फिर भी (सत्य के प्रभाव से) मरते नहीं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 17

Illustration No. 17

सत्य की महिमा

सत्यभाषी मनुष्य को यदि विपत्तियाँ आकर घेर लें तो भी उसका सत्य-व्रत उसके लिए देव के समान आश्चर्यकारी प्रत्यक्ष सहायक होता है। चित्र में सत्य की इसी महिमा को दिखाया गया है।

1. महासमुद्र की ऊँची-ऊँची लहरों में चलती नौका के नाविकों की बुद्धि भ्रमित होने पर भी वह नौका उस महासमुद्र में डूबती नहीं है, किनारे लग जाती है। क्योंकि उस नौका में सत्यवादी मनुष्य बैठा हुआ है।

2. विषैला सर्प भी बिना दंश मारे ही सत्यवादी व्यक्ति के पास से गुजर जाता है।

3. सत्य के प्रभाव से भयंकर अग्नि का उपद्रव भी सत्यव्रती व्यक्ति को नहीं जला सकता है।

4. सत्यनिष्ठ व्यक्ति को पर्वत के शिखर से नीचे फैंकने पर भी वह सुरक्षित बच जाता है।

5. सत्यव्रती मनुष्य संग्राम में शत्रुओं द्वारा तलवार से घेरे जाने पर भी अक्षत् शरीर- सकुशल बाहर निकल आता है।

—सूत्र 120, पृ. 296

GLORY OF TRUTH

Even when a truthful person is in great trouble his vow of truthfulness miraculously protects him like a god. These illustrations show this glory of truth.

(1) A boat rocking on high waves in a turbulent ocean does not drown in spite of confused boatmen. It reaches the shore because a truthful person is sitting in the boat.

(2) A poisonous snake crawls away from near a truthful person without biting him.

(3) Even a forest fire does not burn a truthful man because of the power of truth.

(4) A truthful person is saved even when thrown from a hilltop.

(5) A truthful person comes out unharmed from a battle even after being surrounded by swordsmen.

— Sutra-120, page-296

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य के (सुरक्षा-कवच को) धारण करने वाले मनुष्य चारों ओर से तलवारों के घेरे में घिरे होने पर भी अक्षत-शरीर (सकुशल) संग्राम से बाहर निकल आते हैं।

सत्यवादी मानव वध, बन्धन सबल प्रहार और घोर वैर-विरोधियों के बीच में से मुक्त हो जाते हैं-बच निकलते हैं। सत्यवादी शत्रुओं के घेरे में से बिना किसी क्षति के सकुशल बाहर आ जाते हैं। सत्य वचन में अनुरागी जनों का देवता भी सान्निध्य करते हैं-उसके साथ रहकर उनकी सेवा-सहायता करते हैं।

तीर्थंकरों द्वारा भली प्रकार से वर्णित यह सत्य भगवान् दस प्रकार का है। इसे चौदह पूर्वों के ज्ञाता महामुनियों ने प्राभृतों (पूर्वगत विभागों) से जाना है एवं महर्षियों ने इसे सिद्धान्त रूप में जाना है-साधुओं के द्वितीय महाव्रत में सिद्धान्त द्वारा स्वीकार किया गया है। देवेन्द्रों और नरेन्द्रों ने इसका अर्थ कहा है अथवा देवेन्द्रों एवं नरेन्द्रों को इसका अर्थ तत्त्वरूप से कहा गया है। यह सत्य वैमानिक देवों द्वारा समर्थित एवं आसेवित है। महान् प्रयोजन वाला है। यह मंत्र औषधि और विद्याओं की सिद्धि का कारण है-सत्य के प्रभाव से मंत्र और विद्याओं की सिद्धि होती है। यह चारण (विद्याचारण, जंघाचारण) आदि मुनिगणों की विद्याओं को सिद्ध करने वाला है। मानवगणों द्वारा वंदनीय है-स्तवनीय है, अर्थात् स्वयं सत्य तथा सत्यनिष्ठ पुरुष, मनुष्यों की प्रशंसा-स्तुति का पात्र बनता है। अमरगणों-देवसमूहों के लिए भी अर्चनीय तथा असुरकुमार आदि भवनपति देवों द्वारा भी पूजनीय होता है। अनेक प्रकार के व्रत धारण करने वाले पाखण्डी साधुओं ने भी इसे स्वीकार किया है। इस प्रकार की महिमा से मण्डित यह सत्य लोक में सारभूत है। महासागर से भी अधिक गम्भीर है। सुमेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर-अटल है। चन्द्रमण्डल से भी अधिक सौम्य-शान्तिदायक है। सूर्यमण्डल से भी अधिक तेजस्वी है। शरत्-काल के आकाश तल से भी अधिक निर्मल है। गन्धमादन (गजदन्त गिरि-विशेष) से भी अधिक सुगन्धित है। लोक में जो भी समस्त मंत्र हैं, वशीकरण आदि योग हैं, जप हैं, प्रज्ञप्ति प्रभृति विद्याएँ हैं, दस प्रकार के जृंभक देव हैं, धनुष आदि अस्त्र हैं, जो भी तलवार आदि शस्त्र हैं अथवा अर्थनीति आदि लौकिक शास्त्र हैं, कलाएँ हैं, आगम आदि धर्म शास्त्र हैं, वे सभी सत्य में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् ये सब सत्य से ही उपलब्ध या सिद्ध होते हैं।

120. [1] Shri Sudharma Swami told his principal disciple, Jambu Swami, "O Jambu ! The second Samvar is true word. Truth is pure and faultless. It is sacred. It causes welfare as it is free from all disturbances. It arises from good, noble thoughts, so it is said in a good dignified manner. It is in the form of the best vow. It is said after right contemplation. The learned have seen it as a means of welfare for mankind. According to scholars, it is the cause of welfare. It has a stable reputation. It is uttered by the persons whose words are blessed with self-restraint. It is respected by the gods of higher heavenly abode,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

prominent men, persons who have extreme power and the learned. It is the religious practice of grand monks. It is accepted as an austerity and as a doctrine. It is the guide for treading the right path. This vow of truth is prominent in the world.

Truth provides success to Vidyadhars in accomplishing the art of flying in the sky. It is the guide for the path leading to heavenly abode and the path leading to salvation. It is free from wrong perception. It is saturated with simplicity. It is free from deceit. It propounds only what is right. It is pure from all angles. It is free from falsehood or partial truth; only that is truth which has absolutely no mixture of falsehood. So it is faultless. It defines all substances in the world truly as they are in reality. It is sweet because it is true. It is like a good instrument for human beings in performing wonderful deeds in different situations. In other words when men are in deep trouble, it helps them like a god to get out.

There is a great sea. The soldiers sailing in a ship have become non-plussed. They have lost the direction. So their intelligence does not function properly. Even then the ship becomes stable and does not sink due to the practice of truth. Such is the effect of truth that man does not drown even in rapid flow and whirlpool. He does not drown or die but is able to find the land.

As a result of truth, persons surrounded by fire from all sides do not burn.

A person with a simple heart who has faith in truth, he, as a result of that truth, does not get burnt even if he touches boiling oil, iron or lead or holds such an articles on his palm.

A man is thrown or dropped from the top of a hill, still he does not die due to the influence of truth.

A person who has armour of truth is surrounded by swordsmen or he is facing such person in the battle, he comes out safe and sound from there since he practices truth. A truthful person gets himself liberated even when surrounded by terrible enemies or even when he is attacked or chained. He comes out safe and sound without any damage even when he is surrounded by enemies. Even the gods accompany a person who strictly practices truth. They help him and serve him.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The truth as propounded by Tithankars is of ten types. The monks who are learned in fourteen Purvas have understood it from their relevant Chapters. It has been provided to the saints as the fundamental principle. The monks have accepted it as the second major vow. It has been told to the kings of gods and of human beings as a basic essential. The truth is supported and followed by celestial beings of heavenly abodes. It serves great purpose. It is the cause of success in mantra, medicines and skills. It is only with the help of truth that one can achieve success in them. It provides success to Charan monks in training in flying with the help of their skill. It is appreciated by human hangs. People praise the person who speaks the truth and have firm faith in him. The celestial beings, the demon gods and Bhavanapati gods worship the follower of truth. Many types of mendicants accept it in their way of life. Truth appreciated in such a manner is the very essence in this world. It is more serene than the ocean. It is more stable than the Sumeru mountain. It is more pleasant than the lunar circle. It is more bright than the solar orbit. It is cleaner than the sky in winter. It is more pleasant than the Gajadant mountain that emits fragrance. All the mantras in the world, all the processes to control others in the world, all the recitations, all the systems of education, the ten types of Jrimbhik gods, all the arts including art of handling bow, sword and other weapons and all the Agams are based on truth. They depend only on truth.

दोषयुक्त सत्य का त्याग AVOIDANCE OF FAULTY TRUTH

[२] सच्चं वि य संजमस्स उवरोहकारगं किंचि ण वत्तव्वं, हिंसासावज्जसंपउत्तं भेयविकहकारगं अणत्थवायकलहकारगं अणज्जं अववाय–विवायसंपउत्तं वेलंबं ओजधेज्जबहुलं णिल्लज्जं लोयगरहणिज्जं दुद्दिट्ठं दुस्सुयं अमुणियं, अप्पणो थवणा परेसु णिंदा; ण तंसि मेहावी, ण तंसि धण्णो, ण तंसि पियधम्मो, ण तंसि कुलीणो, ण तंसि दाणवई, ण तंसि सूरो, ण तंसि पडिरूवो, ण तंसि लट्ठो, ण पंडिओ, ण बहुस्सुओ, ण वि य तंसि तवस्सी, ण यावि परलोयणिच्छयमई असि, सव्वकालं जाइ–कुल–रूव–वाहि–रोगेण वावि जं होई वज्जणिज्जं दुहओ उवयारमइक्कंतं एवं विहं सच्चं वि ण वत्तव्वं।

[२] किन्तु जो सत्य संयम में बाधक हो–रुकावट पैदा करता हो, वैसा सत्य तनिक भी नहीं बोलना चाहिए (क्योंकि जो वचन तथ्य होते हुए भी हितकर नहीं, प्रशस्त नहीं, हिंसाकारी है, वह सत्य में परिगणित नहीं होता)। जो वचन हिंसा एवं पाप से युक्त हो, जो भेद–फूट उत्पन्न करने वाला हो, जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकथाकारक हो-स्त्री आदि से सम्बन्धित चारित्रनाशक या अन्य प्रकार से अनर्थ का हेतु हो, जो निरर्थक वाद या कलहकारक हो अर्थात् जो वचन निरर्थक वाद-विवादरूप हो और जिससे कलह उत्पन्न हो, जो वचन अनार्य हो-अनाड़ी लोगों के योग्य हो-आर्य पुरुषों के बोलने योग्य न हो अथवा अन्याययुक्त हो, जो अन्य के दोषों को प्रकाशित करने वाला हो, विवादयुक्त हो, दूसरों की विडम्बना-फजीहत करने वाला हो, जो विवेकशून्य जोश और धृष्टता से भरा हुआ हो, जो लज्जा रहित हो, जो संसार में या सत्पुरुषों द्वारा निन्दनीय हो, ऐसा वचन नहीं बोलना चाहिए। जो घटना भलीभाँति स्वयं न देखी हो, जो बात सम्यक् प्रकार से सुनी न हो, जिसे ठीक तरह-यथार्थ रूप में जान नहीं लिया हो, उसे या उसके विषय में बोलना नहीं चाहिए।

इसी प्रकार अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा भी (नहीं करनी चाहिए), जैसे-तू बुद्धिमान नहीं-बुद्धिहीन है, तू धनवान नहीं-दरिद्र है, तू धर्मप्रेमी नहीं है, तू कुलीन नहीं है, तू दानपति-दानेश्वरी नहीं है, तू शूरवीर नहीं है, तू सुन्दर नहीं है, तू भाग्यवान नहीं है, तू पण्डित नहीं है, तू बहुश्रुत-अनेक शास्त्रों का ज्ञाता नहीं है, तू तपस्वी भी नहीं है, तुझमें परलोक सम्बन्धी निश्चय करने की बुद्धि भी नहीं है, आदि। अथवा ऐसा वचन जो सदा-सर्वदा जाति (मातृपक्ष), कुल (पितृपक्ष), रूप (सौन्दर्य), व्याधि (कोढ़ आदि बीमारी), रोग (ज्वरादि) से सम्बन्धित हो, जो पीड़ाकारी या निन्दनीय होने के कारण वर्जनीय हो-न बोलने योग्य हो, अथवा जो वचन द्रोह-कारक अथवा द्रव्य-भाव से आदर एवं उपचार से रहित हो-शिष्टाचार के अनुकूल न हो अथवा उपकार का उल्लंघन करने वाला हो, इस प्रकार का यथार्थ-सद्भूतार्थ वचन भी नहीं बोलना चाहिए।

[2] The truth which causes obstruction in life of self-restraint, should not be uttered even in the slightest form. (It is because such a word although true, is not auspicious. It does not cause welfare. It is violent. So it cannot be termed as truth). There is a talk which is true but it contains elements of violence. It is going to create friction. It is going to result in bad opinion about women, administration or the state or in some other way. It is going to produce useless discussion or dispute. It is not the talk of civilised people. It is the talk of the rustic. It contains elements of injustice. It is just to publicise faults of others. It is full of disgust for them. It is affecting the reputation of others. It lacks sense of discrimination. It is full of false ego. It is shameless. It is condemned by the common people and the worthy. One should not engage in such a talk. A person has not seen an incident properly himself. He has not rightly heard about it. He has not understood it properly in true context. In such a case he should not talk about it.

Similarly one should not praise his own act. He should also not condemn others. He should not address other as worthless, poor,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

irreligious or as not belonging to a good family, not engaging in charity, not brave, not beautiful, not a lucky one, not educated, not having knowledge of scriptures or not observing austerities. He should not call a person as one not having a proper understanding about future or of next life. A word which relates to one's class, family, complexions, diseases (such as leprosy), illness (such as fever) and which is going to hurt or condemn others, should not be used. It is not worthy to be uttered. Such a word is going to cause bitterness. It is devoid of respect or cultured behaviour. It is transgressing the limits of gratitude. Such a word may be expressing the truth but even then it should not be uttered.

बोलने योग्य सत्य वचन WORDS WORTHY TO BE UTTERED

[३] अह केरिसगं पुणाई सच्चं तु भासियव्वं ?

जं तं दव्वेहिं पज्जवेहि य गुणेहि कम्मेहिं बहुविहेहिं सिप्पेहिं आगमेहि य णामक्खायणिवायउवसग्ग-तद्धिय-समास-संधि-पद-हेउ-जोगिय-उणाइ-किरियाविहाणधाउ-सर-विभत्ति-वण्णजुत्तं तिकल्लं दसविहं पि सच्चं जह भणियं तह य कम्मुणा होइ। दुवालसविहा होइ भासा, वयणं वि य होइ सोलसविहं। एवं अरहंतमणुण्णायं समिक्खियं संजएण कालम्मि य वत्तव्वं।

[३] (यदि पूर्वोक्त प्रकार के तथ्य-वास्तविक वचन भी बोलने योग्य नहीं हैं तो) प्रश्न उपस्थित होता है कि फिर किस प्रकार का सत्य बोलना चाहिए ?

(प्रश्न का उत्तर यह है-) जो सत्य वचन द्रव्यों-त्रिकालवर्ती पुद्गलादि द्रव्यों से, पर्यायों से-नवीनता, पुरातनता आदि क्रमवर्त्ती अवस्थाओं से तथा गुणों से अर्थात् वर्णादि सहभावी गुणों से युक्त हों अर्थात् द्रव्यों, पर्यायों या गुणों के प्रतिपादक हों तथा कृषि आदि कर्मों से अथवा उठाने-रखने आदि क्रियाओं से, अनेक प्रकार की चित्रकला, वास्तुकला आदि शिल्पों से तथा आगमों के सिद्धान्तसम्मत अर्थों से युक्त हों और जो नाम देवदत्त आदि संज्ञापद, आख्यात-तीनों कालों के वाचक क्रियापदों, निपात-'वा, च' आदि अव्यय, प्र, परा आदि उपसर्ग, तद्धितपद-जिनके अन्त में तद्धित प्रत्यय लगा हो, जैसे 'नाभेय' आदि पद, समास-अनेक पदों को मिलाकर एक पद बना देना, जैसे 'राजपुरुष' आदि, सन्धि-समीपता के कारण अनेक पदों का जोड़, जैसे विद्या + आलय = विद्यालय आदि, हेतु-अनुमान का वह अंग जिससे साध्य को जाना जाए, जैसे धूम से अग्नि का किसी विशिष्ट स्थल पर अस्तित्व जाना जाता है, यौगिक-दो आदि के संयोग वाला पद अथवा जिस पद के अवयवार्थ से समुदायार्थ जाना जाए, जैसे 'उपकरोति' आदि, उणादि-उणादिगण के प्रत्यय जिन पदों के अन्त में हों, जैसे 'साधु' आदि, क्रिया को सूचित करने वाला पद, जैसे 'पाचक' (पकाने की क्रिया करने वाला), धातु-क्रियावाचक 'भू-हो' आदि, स्वर-'अ, आ' इत्यादि अथवा संगीतशास्त्र सम्बन्धी षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि सात स्वर, विभक्ति-प्रथमा आदि, वर्ण-'क, ख' आदि व्यंजनयुक्त अक्षर, इनसे युक्त हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ऐसा वचन बोलना चाहिए)। त्रिकालविषयक सत्य दस प्रकार का होता है। जैसा मुख से कहा जाता है, उसी प्रकार कर्म से अर्थात् लेखन क्रिया से तथा हाथ, पैर, आँख आदि की चेष्टा से, मुँह बनाना आदि आकृति से अथवा जैसा कहा जाए वैसी ही क्रिया करके बतलाने से अर्थात् कथन के अनुसार अमल करने से सत्य होता है। बारह प्रकार की भाषा होती है। वचन सोलह प्रकार का होता है। इस प्रकार अरिहन्त भगवान द्वारा अनुज्ञात-आदिष्ट तथा सम्यक् प्रकार से विचारित सत्य-वचन अवसर आने पर ही संयमी साधु को बोलना चाहिए।

[3] In case the true words of the above-mentioned type are not worthy to be uttered, then what type of truth should be uttered ?

The reply to the said question is as follows—The words should have basic attribute of truth in fundamentals and in modes. It should express properly the past, the present and the future state in its respective order. It should explain properly the attributes. It should properly express activities like agriculture, the placing and picking up of things, various types of acts like painting and architecture. It should express meaning in accordance with scriptures. It should be grammatically correct. It should express the tense and the name correctly as laid down in the grammar. It should properly express prefix, suffix, conjunction, the use of word by joining two or more words according to the rules defined in grammar. In Sanskrit grammar there is a detailed account how words expressing different activities are to be formed just as cook (pachak)—one who does cooking is formed from the word paach (to cook). There are rules about vowels, consonants and use of seven tones concerning music. All these rules should be kept in mind while pronouncing such words. The action should be in accordance with the word uttered. Even the facial expression should be there accordingly; only then it can be termed as truth. Language is of twelve types. The word is of sixteen types. A monk should speak strictly in accordance with the rules laid down by the omniscient, keeping in mind the occasion when it should be used.

विवेचन : उपरोक्त पाठ में सत्य की महिमा का विशद निरूपण किया है, जो वचन सत्य-तथ्य होने पर भी किसी को पीड़ा उत्पन्न करने वाला अथवा अनर्थकारी होने से सदोष हो, वैसा वचन भी बोलने योग्य नहीं है। यह कथन अनेक उदाहरणों सहित प्रतिपादित किया गया है तथा किस प्रकार का सत्य भाषण करने योग्य है, इसका भी उल्लेख किया गया है। सत्य, भाषा और वचन के भेद भी बतलाये गये हैं।

इस सम्पूर्ण कथन से साधक के समक्ष सत्य का सुस्पष्ट चित्र उभर आता है। सत्य की महिमा का प्रतिपादन करने वाला अंश सरल-सुबोध है। उस पर अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रकार ने ठाणांग सूत्र के दशवें स्थान में मूल पाठ में दस प्रकार के सत्य बताये हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है–

जणवय–सम्मय–ठवणा नाम–रूवे पडुच्चसच्चे य।
ववहार–भाव–जोगे, दसमे ओवम्मसच्चे य॥

१. **जनपदसत्य**–जिस देश–प्रदेश में किसी वस्तु विशेष के लिए जो शब्द प्रयुक्त होता हो, वहाँ उस वस्तु विशेष के लिए उसी शब्द का प्रयोग करना जनपद सत्य कहलाता है, जैसे महाराष्ट्र में माता को 'आई' कहना, पंजाब में नाई को 'राजा' कहना।

२. **सम्मतसत्य**–बहुत लोगों ने जिस शब्द को जिस वस्तु का वाचक मान लिया हो, उसे सम्मत सत्य कहते हैं जैसे 'देवी' शब्द पटरानी का वाचक मान लिया गया है। अतः पटरानी को 'देवी' कहना सम्मत सत्य है।

३. **स्थापनासत्य**–जिसकी मूर्ति हो उसे उसी के नाम से कहना, स्थापना सत्य कहलाता है। जैसे–इन्द्रमूर्ति को इन्द्र कहना या शतरंज की गोटियों को हाथी, घोड़ा आदि कहना।

४. **नामसत्य**–जिसका जो नाम हो उसे गुण न होने पर भी उस शब्द से कहना, जैसे–कुल की वृद्धि न करने वाले को भी 'कुलवर्द्धन' कहना।

५. **रूपसत्य**–इसमें गुण की अपेक्षा रूप को प्रधानता दी जाती है। साधु के गुण न होने पर भी वेषमात्र से असाधु को साधु कहना।

६. **प्रतीत्यसत्य**–अपेक्षाविशेष से कोई वचन बोलना, जैसे–दूसरी उँगली की अपेक्षा से किसी उँगली को छोटी या बड़ी कहना, द्रव्य की अपेक्षा सब पदार्थों को नित्य कहना या पर्याय की अपेक्षा से सबको क्षणिक कहना।

७. **व्यवहारसत्य**–जो वचन लोकव्यवहार की दृष्टि से सत्य हो, जैसे–रास्ता तो कहीं जाता नहीं, किन्तु कहा जाता है कि यह रास्ता अमुक नगर को जाता है, गाँव आ गया आदि।

८. **भावसत्य**–अनेक गुणों की विद्यमानता होने पर भी किसी प्रधान गुण की विवक्षा करके कहना, जैसे–तोते में लाल वर्ण होने पर भी उसे हरा कहना।

९. **योगसत्य**–संयोग के कारण किसी वस्तु को किसी शब्द से कहना, जैसे–दण्ड धारण करने के कारण किसी को दण्डी कहना।

१०. **उपमासत्य**–समानता के आधार पर किसी शब्द का प्रयोग करना, जैसे–मुख–चन्द्र आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा के बारह प्रकार

आगमों में भाषा के विविध दृष्टियों से अनेक भेद-प्रभेद बताये गये हैं। उन्हें विस्तार से समझने के लिए दशवैकालिक तथा प्रज्ञापनासूत्र का भाषापद देखना चाहिए। बोलियों की दृष्टि से उस समय भारतवर्ष में प्रचलित भाषायें बारह मानी जाती थीं इसलिये प्रस्तुत पाठ में उस समय प्रचलित बारह प्रकार की भाषाएँ बतलाई गई हैं, जिनके नाम ये हैं-(१) प्राकृत, (२) संस्कृत, (३) मागधी, (४) पैशाची, (५) शौरसेनी, और (६) अपभ्रंश। ये गद्य और पद्य के भेद मिलाकर बारह प्रकार की हैं।

सोलह प्रकार के वचन

एक वचन, बहुवचन आदि वचनों स्त्री-पुरुष आदि तीन लिंगों, प्रत्यक्ष-परोक्ष आदि तीनों कालों का तथा अपनीतवचन और अध्यात्मवचन आदि के विवेक सत्यवादी को होना चाहिये इस अपेक्षा से 16 प्रकार के वचनों का उल्लेख मूल पाठ में किया है। टीकाकार श्री अभयदेव सूरि ने सोलह प्रकार के वचन निम्नलिखित गाथा उद्धृत करके गिनाये हैं-

वयणतियं लिंगतियं कालतियं तह परोक्ख पच्चक्खं।
उवणीयाइ चउक्कं अज्झत्थं चेव सोलसमं॥

अर्थात् वचनत्रिक, लिंगत्रिक, कालत्रिक, परोक्ष, प्रत्यक्ष, अपनीत आदि चतुष्क और सोलहवाँ अध्यात्मवचन, ये सब मिलकर सोलह वचन हैं।

वचनत्रिक-एकवचन, द्विवचन, बहुवचन।

लिंगत्रिक-स्त्रीलिंग, पुंलिंग, नपुंसकलिंग।

कालत्रिक-भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यत्काल।

प्रत्यक्षवचन-यथा यह पुरुष है।

परोक्षवचन-यथा वह मुनिराज।

अपनीतादिचतुष्क-(१) अपनीतवचन अर्थात् प्रशंसा का प्रतिपादक वचन, जैसे-यह रूपवान् है। (२) उपनीतवचन-दोष प्रकट करने वाला वचन, जैसे यह दुराचारी है। (३) उपनीतापनीतवचन-प्रशंसा के साथ निन्दावाचक वचन, जैसे-यह रूपवान् है किन्तु दुराचारी है। (४) अपनीतोपनीतवचन-निन्दा के साथ प्रशंसा प्रकट करने वाला वचन, जैसे-यह दुराचारी है किन्तु रूपवान् है।

अध्यात्मवचन-जिस अभिप्राय को कोई छिपाना चाहता है, फिर भी अकस्मात् उस अभिप्राय को प्रकट कर देने वाला वचन। जैसे - मैं दुःखी हूँ अथवा आत्मा को लेकर अध्यात्म भावना से वचन योग करना अध्यात्म वचन कहलाता है।

अतः दस प्रकार के सत्य का, बारह प्रकार की भाषा का और सोलह प्रकार के वचनों का संयमी पुरुष को तीर्थंकर भगवान की आज्ञा के अनुसार, अवसर के अनुकूल प्रयोग करना चाहिए, जिससे किसी को पीड़ा उत्पन्न न हो-जो हिंसा का हेतु न बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—In the said aphorism, the importance of truth has been explained in detail and in an effective manner. A word, which is based on facts and reality but is going to cause hurt to other or is harmful due to some fault, is bad and should not be used. This fact has been explained through many examples. It has also been described what type of truth is worth uttering. The forms of truth, language and word formation have also been narrated.

This puts forth a clear picture of truth before its practitioner. The text that conveys the importance of truth is simple and easy to comprehend. It does not need any further elaboration.

TEN TYPES OF TRUTH

In the tenth chapter of Sthananga Sutra ten forms of truth have been mentioned. They are as follows—

1. Janpad Satya—A word commonly used in any area or in any state for a particular thing. It should be used there accordingly. For instance barber is called Raja in Panjab.

2. Sammat Satya—The word that has been accepted as proper expression by the majority. For instance the chief queen is addressed as devi (the goddess).

3. Sthapana Satya—To call an idol by the same name which it represents for instance to call items of the chessboard as elephant, horse and others. To address idol of Indra as Indra.

4. Naam Satya—To address a person by his name although he has not the qualities that the social name represents. For instance a person is christened as 'Kul-vardhan' but he is not bringing any development in the family.

5. Roop Satya—To call a monk as a monk on the basis of his dress although he has no traits of a monk.

6. Pratitya Satya—To utter a word in certain context. For instance to call one finger as small and the other as long with reference to a particular finger. To call everything permanent in substantial context or to call everything transient in context of mode.

7. Vyavahar Satya—The word that is true due to its common use in expression. For instance to say this path leads to a particular town whereas it does not lead to anything.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8. Bhaava Satya—For instances a substance has many qualities but to express it with that which is most prominent. For instance to call a parrot as green although it has red beak also.

9. Yog Satya—To address a thing with a particular word as it is joined with another thing. For instance to call a person as dandi (one holding stick) as he is holding danda (the stick).

10. Upama Satya—To express a word due to its certain similarity with the illustration for instance to call a beautiful woman as Chandra-mukhi (one who has face as beautiful as the moon).

TWELVE TYPES OF LANGUAGE

In the scriptures (Agams) language has been classified from different angles. In order to understand them in detail one should study Dashvaikalik Sutra and Prajnapana Sutra. In the present aphorism, twelve types of languages have been mentioned. They are the languages prevalent at that time. They are—(1) Prakrit, (2) Sanskrit, (3) Magadhi, (4) Paishachi, (5) Shauraseni, and (6) Apabhramsh. Six in prose and six in verse. So there are twelve languages.

SIXTEEN PARTS OF SPEECH

The original text mentions sixteen parts of speech covering three numbers including singular, three genders including masculine, three tenses including present, adjectives of four kinds and concealed meaning. The person who wants to speak truth should have knowledge of these sixteen.

Abhayadev Suri has mentioned sixteen parts of speech. They are as follows—

Three on the basis of number (Vachan trik)—Singular, to express two; plural.

Three genders (Ling trik)—Masculine, feminine, neutral gender.

Three tense (Kaal trik)—Past, present and future.

Expression of Present State (Pratyaksh Vachan).

For instance—This is the man.

Expression about distant person—(Paroksh Vachan).

For instance 'that monk'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Upaneetadi Chatushk—(1) Upaneet Vachan (word expressing appreciation for instance beautiful), (2) Apneet Vachan (word expressing disgust. For instance he is a rogue), (3) Upaneetapaneet Vachan (word expressing appreciation and disgust both for instance to say he is beautiful but of bad character), (4) Apaneetapaneet Vachan—(To express disgust and also some appreciation. For instance to say he is of bad conduct but beautiful).

Adhayatma Vachan—A word which expresses the truth although one wanted to conceal it.

A person practicing life of self-restraint should use the said types of truth including twelve types of language and sixteen types of words as laid down by the Omniscient and according to the occasion; so that it may not cause any hurt or violence to any one.

सत्य वचन बोलने का सुफल GOOD RESULT OF MAJOR VOW OF TRUTH

१२१. इमं च अलिय–पिसुण–फरुस–कडुय–चवलवयण–परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विउसमणं।

१२१. भगवान महावीर ने इस प्रवचन सत्य सिद्धान्त को अलीक–मिथ्या वचन, पिशुन–चुगली, परुष–कठोर, कटु–कटुक और चपल–चंचलतायुक्त वचनों से (जो असत्य के रूप हैं) आत्मा की सुरक्षा के लिये सम्यक् प्रकार से फरमाया है। यह भगवत्प्रवचन आत्मा के लिए हितकर है, जन्मान्तर में शुभ भावना से युक्त है, भविष्य के लिये श्रेयस्कर है, शुद्ध–निर्दोष है, न्यायसंगत है, मोक्ष के लिये सीधा–सरल मार्ग है, सर्वोत्कृष्ट है अतः समस्त दुःखों और पापों को पूरी तरह उपशान्त–नष्ट करने वाला है।

121. Falsehood (aleek), back-biting (pishun), harsh (parush), bitter (katu) and incoherent (chapal) are different forms of untrue speech. The Omniscient Tirthankar has given this direction lucidly so that one may guard the self from such words. This word of the Omniscient is beneficial for the soul. It is full of good attitude in later life and worthy in future. It is chaste, faultless, just and straight path leading to salvation. It is the best of all. It completely subsides or destroys all the troubles and the consequences of sins.

सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ FIVE SENTIMENTS OF MAJOR VOW OF TRUTH

शास्त्रकार ने सत्य संवर का दृढ़ता, उत्साह और श्रद्धापूर्वक पालन करने के लिये पांच भावनायें तथा उनके चिन्तन और प्रयोग का तरीका आगे के पाठ में बतलाये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In the following text the author has narrated five sentiments and method of pondering over them and applying in order to observe the Satya Samvar resolutely with enthusiasm and faith.

प्रथम भावना–अनुवीचिभाषण FIRST SENTIMENT—IMPROPER WORD (ANUVEECH BHASHAN)

१२२. तस्स इमा पंच भावणाओ बिइयस्स वयस्स अलियवयणस्स वेरमण–परिरक्खणट्ठयाए।

पढमं–सोऊण संवरट्ठं परमट्ठं सुट्ठु जाणिऊणं ण वेगियं ण तुरियं ण चवलं ण कडुयं ण फरुसं ण साहसं ण य परस्स पीडाकरं सावज्जं, सच्चं च हियं च मियं च गाहगं च सुद्धं संगयमकाहलं च समिक्खियं संजएण कालम्मि य वत्तव्वं।

एवं अणुवीइसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर–चरण–णयण–वयणो सूरो सच्चज्जवसंपुण्णो।

१२२. द्वितीय व्रत– सत्य महाव्रत की ये आगे कही जाने वाली ये पाँच भावनाएँ हैं, जो असत्य वचन के विरमण की रक्षा के लिए हैं अर्थात् इन पाँच भावनाओं का विचारपूर्वक पालन करने से असत्य-विरमणरूप सत्य महाव्रत की पूरी तरह रक्षा होती है।

प्रथम अनुवीचिभाषण रूप भावना है। सद्गुरु से सत्यव्रतरूप संवर के अर्थ–आशय को सुनकर एवं उसके शुद्ध परमार्थ–रहस्य को सम्यक् प्रकार से जानकर जल्दी–जल्दी–सोच–विचार किये बिना नहीं बोलना चाहिए, कड़वा वचन नहीं बोलना चाहिए, चपलतापूर्वक नहीं बोलना चाहिए, कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, विचारे बिना सहसा नहीं बोलना चाहिए, दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाला एवं पापयुक्त वचन भी नहीं बोलना चाहिए। किन्तु सत्य, हितकारी, परिमित, अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने वाला, शुद्ध–निर्दोष, संगत–युक्तियुक्त एवं पूर्वापर–अविरोधी, स्पष्ट तथा पहले बुद्धि द्वारा सम्यक् प्रकार से विचारित वचन अवसर के अनुसार साधु को बोलना चाहिए।

इस प्रकार अनुवीचि समिति के-निरवद्य वचन बोलने की यतना के योग से भावित अन्तरात्मा–साधक हाथों, पैरों, नेत्रों और मुख पर संयम रखने वाला होकर, पराक्रमी तथा सत्य और आर्जव धर्म से सम्पन्न हो जाता है।

122. There are five sentiments of truth—the second great vow. They are for properly avoiding false speech. One who meticulously follows them, he can properly practice the major vow of truth.

The first of the said five sentiments is thoughtful speech. After carefully listening the meaning and purport of the vow of truth from his teacher and understanding its underlying secret, he should not speak in a hurry without properly considering its likely effect. He should never speak harsh word. He should not utter pinching word. He should not

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

speak in a distorted manner. He should not speak without proper thought. He should not speak such word that may cause trouble to others. He should not speak with an attitude of causing harm. He should speak what is true, beneficial, limited and reflects proper meaning. It should be clear and faultless and logical. It should be in proper context, distinct and properly thought of from all angles. A monk should speak in such a manner according to the situation.

Thus a monk should ensure thoughtful speech taking care that it causes no harm. He should have restraint on hands, feet, eyes and mouth. Such a monk is a true practitioner of courage, truth and self-restraint.

दूसरी भावना—अक्रोध **SECOND SENTIMENT : NOT TO BE ANGRY**

१२३. बिइयं—कोहो ण सेवियव्वो, कुद्धो चंडिक्किओ मणूसो अलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज, फरुसं भणेज्ज, अलियं—पिसुणं—फरुसं भणेज्ज, कलहं करिज्जा, वेरं करिज्जा, विकहं करिज्जा, कलहं—वेरं—विकहं करिज्जा, सच्चं हणेज्ज, सीलं हणेज्ज, विणयं हणेज्ज, सच्चं—सीलं—विणयं हणेज्ज, वेसो हवेज्ज, वत्थुं हवेज्ज, गम्मो हवेज्ज, वेसो—वत्थुं—गम्मो हवेज्ज, एयं अण्णं च एवमाइयं भणेज्ज कोहग्गिसंपलित्तो तम्हा कोहो ण सेवियव्वो। एवं खंतीइ भाविओ भवइ अंतरप्पा संणयकर—चरण—णयण—वयणो सूरो सच्चज्जवसंपण्णो।

१२३. दूसरी भावना क्रोधनिग्रह-क्षमाशीलता है। (सत्य के आराधक को) क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि क्रोधी मनुष्य रौद्रभाव वाला हो जाता है और (ऐसी अवस्था में) मिथ्या वचन बोलता है, वह चुगलखोरी के वचन बोलता है, कठोर वचन बोलता है। मिथ्या, पिशुन और कठोर-तीनों प्रकार के वचन बोलता है। कलह करता है, वैर-विरोध करता है, विकथा करता है तथा कलह-वैर-विकथा-ये तीनों करता है। वह सत्य का घात करता है, शील-सदाचार का नाश करता है, विनय का विघात करता है और सत्य, शील तथा विनय-इन तीनों का घात करता है। असत्यवादी द्वेष का पात्र बनता है, दोषों का घर बन जाता है और तिरस्कार का पात्र बनता है तथा द्वेष, दोष और तिरस्कार-इन तीनों का पात्र बनता है। क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हृदय मनुष्य ऐसे और इसी प्रकार के अन्य पापयुक्त वचन बोलता है। अतएव क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए। इस तरह क्षमा से भावित सुसंस्कृत अन्तरात्मा-अन्तःकरण वाला हाथों, पैरों, नेत्रों और मुख को संयमित करने वाला, धर्मवीर साधक, सत्यता और सरलता से परिपूर्ण हो जाता है।

123. Second sentiment is control over anger—a state of forgiveness. One who practices truth, he should not be in a fit of anger. An angry person is ferocious. In such a state he can adopt falsehood in speech. He

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

back-bites. He speaks harsh words. He speaks false, back-biting and harsh words. He quarrels. He becomes inimical. He takes interest in talk about women, food, administration and the state. He may do all the said three. He goes against truth and good conduct. He adversely affects feelings of gratitude. He ignores all the three namely truth, good conduct and humility. A false person becomes the subject of hatred in the world. He becomes a storehouse of faults and a subject of dishonour. He becomes subject of all the three namely hatred, faults and disrespect. A person whose heart is burning with anger utters suchlike unpalatable words. So one should never be angry. A person who remains forgiving is a true practitioners of the restraint of hands, feet and mouth. Such a monk is courageous and straight forward in his ascetic conduct.

तीसरी भावना–निर्लोभता **THIRD SENTIMENT : ABSENCE OF GREED**

१२४. तइयं–लोभो ण सेवियव्वो, १ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं खेत्तस्स व वत्थुस्स व कएण, २ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, कित्तीए लोभस्स व कएण, ३ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, इड्ढीए व सोक्खस्स व कएण, ४ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, भत्तस्स व पाणस्स व कएण, ५ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, पीढस्स व फलगस्स व कएण, ६ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, सेज्जाए व संथारगस्स व कएण, ७ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, वत्थस्स व पत्तस्स व कएण, ८ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, कंबलस्स व पायपुंछणस्स व कएण, ९ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, सीसस्स व सिस्सिणीए व कएण, १० लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, अण्णेसु य एवमाइसु बहुसु कारणसएसु।

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलीयं, तम्हा लोभो ण सेवियव्वो, एवं मुत्तीए भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर–चरण–णयण–वयणो सूरो सच्चज्जवसंपण्णो।

१२४. तीसरी भावना लोभसंयम–निर्लोभता युक्त है। लोभ का सेवन नहीं करना चाहिए। (क्योंकि):–

(१) लोभी मनुष्य लोभ के वशीभूत होकर क्षेत्र–खेत–खुली भूमि और वास्तु–मकान आदि के लिए असत्य भाषण करता है।

(२) लोभी–लालची मनुष्य प्रतिष्ठा के लिये या लोभ–धन–प्राप्ति के लिए असत्य भाषण करता है।

(३) लोभी–लालची मनुष्य ऋद्धि–वैभव या इन्द्रिय सुख के लिए असत्य भाषण करता है।

(४) लोभी–लालची मनुष्य भोजन के लिए या पानी (पेय) के लिए असत्य भाषण करता है।

(५) लोभी–लालची मनुष्य पीठ–पीढ़ा या फलक–पाट प्राप्त करने के लिए असत्य भाषण करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) लोभी-लालची मनुष्य शय्या या संस्तारक-छोटे बिछौने के लिए असत्य भाषण करता है।

(७) लोभी-लालची मनुष्य वस्त्र या पात्र के लिए असत्य भाषण करता है।

(८) लोभी-लालची मनुष्य कम्बल या पादप्रोंछन के लिए असत्य भाषण करता है।

(९) लोभी-लालची मनुष्य शिष्य या शिष्या के लिए असत्य भाषण करता है।

(१०) लोभी-लालची मनुष्य इस प्रकार के सैकड़ों कारणों-प्रयोजनों से असत्य भाषण करता है।

अर्थात् लोभ भी असत्य भाषण का एक कारण है, अतएव (सत्य के आराधक को) लोभ का सेवन नहीं करना चाहिए। इस प्रकार मुक्ति-निर्लोभता से भावित अन्तःकरण वाला साधु हाथों, पैरों, नेत्रों और मुख पर अंकुश रखने वाला धर्मवीर साधक, सत्यता और सरलता से परिपूर्ण हो जाता है।

124. Third sentiment is control over greed. One should not be greedy because—

(1) A greedy person, tells lies due to greed for land, field, houses and the like.

(2) A greedy persons makes false statement to attain money and respect.

(3) A greedy person adopts falsehood in speech in order to have wealth, prosperity and pleasures.

(4) A greedy person makes false statement to have food and water.

(5) A greedy person utters false words to have wooden plank and seat.

(6) A greedy person tells a lie in order to have a bedding and the like.

(7) A greedy monk tell a lie in order to have clothes and pots.

(8) A greedy monk makes false statement to procure blanket and cloth for cleaning the fect.

(9) A greedy monk utters false words in order to have male and female disciples.

(10) A greedy monk makes false statement due to hundreds of reasons of the type mentioned above.

A greedy persons utters false words as greed is a cause of falsehood. One (who practices truth) should not be greedy. A monk who has a heart saturated with selflessness has restraint of hands, feet, eyes and mouth. He is courageous and equipped with truth and simplicity.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथी भावना–निर्भयता FOUKTH SENTIMENT—FEARLESSNESS

१२५. चउत्थं–ण भाइयव्वं, भीयं खु भया अइंति लहुयं, भीओ अबितिज्जओ मणूसो, भीओ भूएहिं घिप्पइ, भीओ अण्णं वि हु भेसेज्जा, भीओ तवसजमं वि हु मुएज्जा, भीओ य भरं ण णित्थरेज्जा, सप्पुरिसणिसेवियं च मग्गं भीओ ण समत्थो अणुचरिउं, तम्हा ण भाइयव्वं। भयस्स वा वाहिस्स वा रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा अण्णस्स वा एवमाइयस्स। एवं धेज्जेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर–चरण–णयण–वयणो सूरो सच्चज्जवसंपण्णो।

१२५. चौथी भावना निर्भयता–भय का त्याग है। भयभीत नहीं होना चाहिए। भयग्रस्त मनुष्य को अनेक भय शीघ्र ही जकड़ लेते हैं। भीरु मनुष्य अकेला–असहाय होता है। भयाक्रांत मनुष्य भूत–प्रेतों से ग्रस्त हो जाता है। दूसरों को भी डरा देता है। भयभीत हुआ पुरुष निश्चय ही तप और संयम को भी छोड़ बैठता है। भीरु साधक भार का निस्तार नहीं कर सकता अर्थात् स्वीकृत कार्यभार अथवा संयमभार का भलीभाँति निर्वाह नहीं कर सकता है। भीरु सत्पुरुषों द्वारा सेवित मार्ग का अनुसरण करने में समर्थ नहीं होता। इसलिये (किसी मनुष्य, पशु–पक्षी या देवादि अन्य निमित्त के द्वारा जनित अथवा आत्मा द्वारा जनित) भय से, व्याधि–कुष्ठ आदि से, ज्वर आदि रोगों से, वृद्धावस्था से, मृत्यु से या इसी प्रकार के अन्य इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग आदि के भय से डरना नहीं चाहिए। इस प्रकार का चिन्तन करके धैर्य–चित्त की स्थिरता अथवा निर्भयता से भावित अन्तरात्मा–अन्तःकरण वाला साधु हाथों, पैरों, नेत्रों और मुख से संयत, सत्य व्रत पालन में शूरवीर तथा सत्यता और निष्कपटता से युक्त (भवित) हो जाता है।

125. Fourth sentiment is absence of fear. One should not feel frightened. A frightened person soon falls a prey to fear. He is without any assistance. He causes fear to others also. A frightened person certainly discards austerities and self-restraint. A frightened person cannot overcome fear. He cannot properly discharge his social or religious duties. He cannot properly practice monkhood. A coward person is not capable of treading the path followed by the true monks. So one should not feel frightened as a result of the fear, disease, illness, state of old age or death created by human beings, animals, birds or celestial beings. He should not feel afraid of any segregation from things of his liking and forced acceptance of things he does not like. Such a monk has a stable state of mind. He has control over his hands, feet, eyes and mouth. He is brave and truthful. He leads the life of straight-forwardness.

पाँचवीं भावना–हास्य–संयम FIFTH SENTIMENT—DISCARDING LAUGHTER

१२६. पंचमगं–हासं ण सेवियव्वं अलियाइं असंतगाइं जंपंति हासइत्ता। परपरिभवकारणं च हासं, परपरिवायप्पियं च हासं, परपीलाकारगं च हासं, भेयविमुत्तिकारगं च हासं, अण्णोण्णजणियं च होज्ज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हासं, अण्णोण्णगमणं च होज्ज मम्मं, अण्णोण्णगमणं च होज्ज कम्मं, कदंप्पाभियोगगमणं च होज्ज हासं, आसुरियं किव्विसत्तणं च जणेज्ज हासं, तम्हा हासं ण सेवियव्वं। एवं मोणेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर–चरण–णयण–वयणो सूरो सच्चज्जवसंपण्णो।

१२६. पाँचवीं भावना हास्य संयम–वचन संयम रूप है। हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए। हँसोड़ व्यक्ति अलीक–दूसरे में विद्यमान गुणों को छिपाने वाले असत्य वचन तथा अविद्यमान को प्रकाशित करने वाले या अशोभनीय और अशान्तिजनक वचनों का प्रयोग करते हैं। परिहास दूसरों के परिभव–अपमान–तिरस्कार का कारण होता है और हँसी में परकीय निन्दा ही प्रिय लगती है। हास्य दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाला होता है। हास्य चारित्र का विनाशक, शरीर की आकृति को विकृत करने वाला है और मोक्षमार्ग का भेदन करने वाला है। हास्य परस्पर एक दूसरे से होता है, फिर परस्पर में परदारगमन आदि कुचेष्टा–मर्म का कारण होता है। एक–दूसरे के मर्म–गुप्त चेष्टाओं को प्रकाशित करने वाला बन जाता है, हँसी–हँसी में लोग एक–दूसरे की गुप्त चेष्टाओं को प्रकट करके फजीहत करते हैं। हास्य कन्दर्प–हास्यकारी अथवा आभियोगिक–आज्ञाकारी सेवक जैसे देवों में जन्म का कारण होता है। हास्य असुर जाति के भवनवासी देवों की पर्याय में एवं किल्विषिक देवों की पर्याय में उत्पन्न कराता है, अर्थात् साधु तप और संयम के प्रभाव से कदाचित् देवगति में उत्पन्न हो तो भी अपने हँसोड़पन के कारण निम्न कोटि के देवों में उत्पन्न होता है। वैमानिक आदि उच्च कोटि के देवों में नहीं उत्पन्न होता। इस कारण हँसी का सेवन नहीं करना चाहिए। इस प्रकार मौन से भावित अन्तःकरण वाला साधु हाथों, पैरों, नेत्रों और मुख पर नियंत्रण करने वाला धर्मवीर तथा सत्य और निष्कपट भाव से सम्पन्न हो जाता है।

126. Fifth contemplation is avoiding laughter. A monk should not laugh at others. A clown tries to conceal good qualities of others and project such things, which actually do not exist. He utters unpleasant words that disturb peace. Laughter becomes the cause of disrespect to others. In laughter, there is disgust for others. He likes dishonouring others. Laughter causes pain to others; laughter adversely affects good conduct. It spoils physical expression. It disturbs path leading to salvation. Laughter is mutual among two or more persons. Later it becomes the cause of illicit relation with the wife of the other person. It becomes the cause of making public the secrets or bad behaviour of others. People make a fool of others by publicising their secret activities. Laughter results in leading one soul to have re-birth among low category of gods who are in service of other gods or assist them to enjoy through their clownish activities. Laughter produces non-godliness and wretchedness. In other words a monk due to his austerities and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

restraints may take re-birth as a celestial being but due to his clownish nature, he shall take birth in gods of low category. He does not take birth in gods of heavenly abode. A monk who observes silence develops restraint of hands, feet and mouth. He then possess the qualities of courage, truth and simplicity.

विवेचन : उपरोक्त पाँच सूत्रों में अहिंसा महाव्रत के समान सत्य महाव्रत की पाँच भावनायें बताई हैं, इनकी निरन्तर अनुप्रेक्षा करते रहने से ये भावनायें साधक की अन्तर आत्मा में मजबूत संस्कार रूप में जम जाती है और यह संस्कार अमिट हो जाते हैं।

वाणी व्यवहार मानव की एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है। पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी वाणी से बोलते हैं किन्तु मानव की वाणी की अर्थपरकता या सोद्देश्यता उनकी वाणी में नहीं होती। अतएव व्यक्त वाणी मनुष्य की एक अनमोल विभूति है।

विचारणीय है कि जो वस्तु अनमोल है, जो प्रबलतर पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुई है, उसका उपयोग किस प्रकार करना उचित है? यदि कोई मनुष्य अपनी वाणी का प्रयोग पाप के उपार्जन में करता है तो वह निश्चय ही अभागा है, विवेकविहीन है। इस वाणी की सार्थकता और सदुपयोग यही हो सकता है कि इसे धर्म और पुण्य की प्राप्ति में व्यय किया जाये। यह तभी सम्भव है जब इसे पापोपार्जन का निमित्त न बनाया जाये।

इसी उद्देश्य से सत्य को महाव्रत के रूप में स्थापित किया गया है और इससे पूर्व सत्य की महिमा का प्रतिपादन किया गया है।

असत्य के प्रधान कारण पाँच हैं। उनके त्याग की यहाँ प्रेरणा की गई है। असत्य का एक कारण है-सोच-विचार किये बिना, जल्दबाजी में, जो मन में आये, बोल देना। इस प्रकार बोल देने से अनेकों बार घोर अनर्थ उत्पन्न हो जाते हैं। 'अन्धे की सन्तान अन्धी होती है' द्रौपदी के इस अविचारित वचन ने कितने भीषण अनर्थ उत्पन्न नहीं किये? स्वयं द्रौपदी को अपमानित होना पड़ा, पाण्डवों की दुर्दशा हुई और महाभारत जैसा दुर्भाग्यपूर्ण संग्राम हुआ, जिसमें करोड़ों को प्राण गँवाने पड़े। अतएव जिस विषय की जानकारी न हो, जिसके विषय में सम्यक् प्रकार से विचार न कर लिया गया हो, जिसके परिणाम के सम्बन्ध में पूरी तरह सावधानी न रखी गई हो, उस विषय में वाणी का प्रयोग करना उचित नहीं है। तात्पर्य यह है कि जो भी बोला जाये, सुविचारित एवं सुज्ञात ही बोला जाये। भलीभाँति विचार करके बोलने वाले को पश्चाताप करने का अवसर नहीं आता, उसे लांछित नहीं होना पड़ता और उसका सत्यव्रत अखंडित रहता है।

सत्य महाव्रत की पांच भावनाओं में प्रथम भावना का नाम **'अनुवीचिसमिति'** कहा गया है। तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में इसका अर्थ किया गया है-**'अनुवीचिभाषणम्-निरवद्यानुभाषणम्'** अर्थात् निरवद्य भाषा का प्रयोग करना अनुवीचिभाषण कहलाता है। तत्त्वार्थभाष्य में भी सत्यव्रत की प्रथम भावना के लिए **'अनुवीचि'** भाषण शब्द का ही प्रयोग किया गया है। अतएव भलीभाँति विचारकर बोलने के साथ-साथ भाषा सम्बन्धी अन्य दोषों से बचना भी इस भावना के अन्तर्गत है।

दूसरी भावना क्रोध निग्रह रूप क्षमा भावना का पालन करने के लिए क्रोधवृत्ति पर विजय प्राप्त करना भी आवश्यक है। क्रोध ऐसी वृत्ति है जो मानवीय विवेक को विलुप्त कर देती है और कुछ काल के लिए पागल बना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देती है। क्रोध का उद्रेक होने पर सत्-असत् का भान नहीं रहता और असत्य बोला जाता है। कहना चाहिए कि क्रोध के अतिशय आवेश में जो बोला जाता है, वह असत्य ही होता है। अतएव सत्य महाव्रत की सुरक्षा के लिए क्रोध-प्रत्याख्यान अथवा अक्रोधवृत्ति परमावश्यक है।

तीसरी भावना लोभत्याग या निर्लोभता है। क्रोध के बाद सत्य महाव्रत के पालन में बाधक लोभ है, लोभ से होने वाली हानियों का मूल पाठ में ही विस्तार से कथन कर दिया गया है। शास्त्र में लोभ को समस्त सद्गुणों का विनाशक कहा है। जब मनुष्य के सिर पर लोभ का भूत सवार हो जाता है तो उसे भले बुरे किसी का भी भान नहीं रहता। उसकी वाणी लुब्धता के कारण सत्य वचन से हट जाती है। अतएव सत्यव्रत की सुरक्षा चाहने वाले को निर्लोभवृत्ति धारण करनी चाहिए। किसी भी वस्तु के प्रति लालच उत्पन्न नहीं होना चाहिए।

चौथी भावना भय-प्रत्याख्यान है। भय मनुष्य की बड़ी से बड़ी दुर्बलता है। भय मनुष्य के मस्तिष्क में छिपा हुआ विषाणु है जो उसे कायर, भीरु, निर्बल, सामर्थ्यशून्य और निष्प्राण बना देता है। भय वह पिशाच है जो मनुष्य की वीर्यशक्ति को पूरी तरह सोख देता है। शास्त्रकार ने कहा है कि भयभीत पुरुष को भूत-प्रेत ग्रस्त कर लेते हैं। बहुत बार तो भय स्वयं ही भूत बन जाता है और उस मनोविनिर्मित भूत के आगे मनुष्य घुटने टेक देता है। मनुष्य के मन में व्याधि, रोग, वृद्धावस्था, मरण आदि के अनेक प्रकार के भय विद्यमान रहते है। इसलिये शास्त्रकार ने साधकों को सत्य की सुरक्षा के लिये स्पष्ट निर्देश दिया है कि किसी भी प्रकार के भय से विचलित नहीं होना चाहिये। साथ ही भय आत्मा को तभी तक ज्यादा सताता है जब तक उसे स्वपर का भेद विज्ञान नहीं हो जाता।

सारांश यह है कि भय की भावना आत्मिक शक्ति के परिबोध में बाधक है, साहस को तहस-नहस करने वाली है, समाधि की विनाशक है और संक्लेश को उत्पन्न करने वाली है। वह सत्य पर स्थिर नहीं रहने देती। अतएव सत्य भगवान के आराधक को निर्भय होना चाहिए।

पाँचवीं भावना है हास्यप्रत्याख्यान। सत्य महाव्रत और सत्य अणुव्रत दोनों के लिये हास्य बाधक है। सरल भाव से यथातथ्य वचनों के प्रयोग से हँसी-मजाक का रूप नहीं बनता। हास्य के लिए सत्य को विकृत करना पड़ता है। किसी के सद्गुणों को छिपाकर दुर्गुणों को उघाड़ा करना होता है। अभिप्राय यह है कि सर्वांश या अधिकांश में सत्य को छिपाकर असत्य का आश्रय लिए बिना हँसी-मजाक नहीं होता। इससे सत्यव्रत का विघात होता है और अन्य को पीड़ा होती है। अतएव सत्यव्रत के संरक्षण के लिए हास्यवृत्ति का परिहार करना आवश्यक है।

जो साधक हास्यशील होता है, साथ ही तपस्या भी करता है, वह तप के फलस्वरूप यदि देवगति पाता है तो भी किल्विषिक या आभियोगिक जैसे निम्न कोटि के देवों में जन्म पाता है। *श्री भगवतीसूत्र के शतक १, उ.२ में बताया गया है कि हास्य करने वाला साधु मरकर सौधर्म देवलोक से ऊपर नहीं जाता है और नीचे के* देवलोक में जहाँ जाता है वहाँ वह देवगणों में अस्पृश्य दास जैसी स्थिति में रहता है। उसे उच्च्य श्रेणी का देवत्व प्राप्त नहीं होता और यदि उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ हो तो हास्यशील होने से वो भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार हास्यवृत्ति महान् फल को भी तुच्छ बना देती है।

साधु को इस प्रकार का चिन्तन करना चाहिये कि हास्य संसार वर्द्धक और चारित्रनाशक चेष्टा है। इससे मेरी आत्मा का कोई लाभ नहीं है। बल्कि इतने शुद्ध संयम पालन के साथ हास्यक्रिया करना दूध के लोटे में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थोड़ा सा जहर डालने के समान है। इस प्रकार हास्य मुक्ति और वचन पालन के संस्कार जब अन्तरात्मा में जम जाते हैं, तो वह सत्यवीर साधक अपने साधु जीवन को सार्थक कर लेता है।

Elaboration—In the above said aphorisms 122 to 126, five sentiments of the vow of truth have been narrated just as the sentiments of the major vow of non-violence had been enumerated earlier.

Proper way of talking is an important trait of human beings. Animals also speak with their vocal power but their speech is meaningless and without any particular purpose so distinct power of speech is a precious wealth of man.

It is, therefore, worth consideration how that thing should be properly used, which is unique and which has been got as a result of very great meritorious Karmas. That person is certainly unlucky who uses his faculty of language in collecting demerit. He has no sense of discrimination. The proper utilization of this faculty lies in making use of it in activities relating to dharma and in such activities which can generate merit. It is possible only if it is not made a factor in collecting demerit (though sins).

So truth has been establish as a major vow. Its importance has already been narrated earlier.

There are five primary causes of falsehood. One has been advised to avoid them. One such cause is to speak without proper contemplation, to speak in a hurry or to speak whatever arises in mind without considering its likely result such a speech results in many calamities. Draupadi's words that the off-spring of a blind person is blind became the cause of a dreadful war. Draupadi herself had to face disgrace. The Pandavas had to pass through a terrible situation. The ferocious war Mahabharat took place in which millions of people lost their lives. So it is not proper to speak about the matter about which one does not have complete knowledge, which has not been properly considered and whose consequences have not been properly thought of. In a nutshell whatever is spoken, it should be well considered and properly known. The person who speaks after proper contemplation, he does not have to repent. Nobody casts aspersions on him. He does not adversely affect the practice of his vow of truth.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The first sentiment of the major vow of truth is Anuvichi Samiti. In the Sarvarthsiddhi commentary of Tattvarth Sutra, it has been interpreted as not to use language that is sinful—to use language free from sin. In Tattvarth Bhashya also the same term has been used for the first sentiment. So it should be understood that while speaking with proper contemplation one should avoid the other faults also relating to language.

In order to practice major vow of Truth faultlessly, it is essential to totally subdue anger. Anger wipes out the faculty of discrimination. It turns one mad for some time. In a fit of rage one loses the power of distinguishing truth and untruth. He then utters false. It can be said that whatever is uttered in extreme influence of anger, it is certainly false. So in order to safeguard the major vow of truth, one should avoid anger. It is essential to have the nature of remaining cool (free from anger).

The third contemplation is to discard greed. In the aphorism the disadvantages due to greed have been discussed in detail. In scriptures, greed is termed as destroyer of all good qualities. When a person is in the grip of greed, it does not remain difficult for him to do any bad deed. So the person who wants to meticulously safeguard his vow of truth, he should practice non-greediness. He should not have a sense of greed for any substance.

Fourth contemplation is avoiding fear. Fear is the greatest weakness of a man. It is the particle of poison hidden in his head which turns him coward, weak frightened, incapable and lifeless. Fear is that demon which dries up the entire potentiality of a man, fear is that behaviour which makes one to think about himself that he is worthless, useless and insignificant. The author has stated that the ghosts overpower a frightened person. Many times fear itself turns into a ghost and the man kneels down before it.

A man develops many types of fear in his mind such as that of illness, diseases, old age and death. In the aphorism, it has been directed that one should not have fear of illness.

In brief, the state of fear is an obstacle in the generation of the power of soul. It districts courage. It destroys the state of equanimity. It

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

generates hatred. It does not allow one to remain firm in truth. So the person who practices truth, should be fearless.

Fifth sentiment is avoidance of laughter. It is detrimental both to the major and minor vow of truth. The talk based on facts and is in simple manner does not take the form of laughter or mockery. Truth has to deform itself to create laughter. One has to speak in a self-created form. One has to conceal the virtues of the other and expose the faults. In other words one cannot resort to laughter or mockery without wholly or partly keeping the truth in the background and taking the support of falsehood. It adversely affects the vow of truth and causes pain to other. So one should avoid the nature of laughter in order to safely practice the vow of truth.

A person who is by nature resorting to mockery (laughter) and simultaneously he practices austerities; in case he takes re-birth as a god due to his practice of austerities, he shall be a god of very low status. It is mentioned in Bhagavati Sutra (1/2) that a monk indulging in laughter is not reborn in divine realms higher than Saudharma. Even there he is considered untouchable by other gods or as a servant. He does not become god of high status. Laughter even destroys acquired Avadhi Jnana. Thus the nature of laughter turns the auspicious result into an insignificant one.

उपसंहार CONCLUSION

१२७. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सव्वजिणमणुण्णाओ।

१२७. इस प्रकार यह संवर का सत्य रूप द्वार, मन वचन और काया तीनों की सब प्रकार से रक्षा करने वाली इन पांच कारण रूप भावनाओं से सम्यक् प्रकार से संवृत्त-आचरित एवं अच्छी तरह से दिल दिमाग में स्थापित हो जाता है। अतएव धैर्यवान तथा बुद्धिमान साधक को चाहिए कि वह आस्रव का निरोध करने वाले, निर्मल (अकलुष), निश्छिद्र-कर्म-जल के प्रवेश को रोकने वाले, कर्मबन्ध के प्रवाह से रहित, संक्लेश का अभाव करने वाले एवं समस्त तीर्थंकरों द्वारा आज्ञापित इस योग को निरन्तर जीवनपर्यन्त आचरण में उतारे।

127. Thus by practicing properly and meticulously all the five sentiments mentally, vocally and physically, this major vow of truth—the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

gateway of Samvar—becomes rightly established, rightly practiced and rightly conducted. So the practitioner of religious order who is perseverant and intelligent, he should continuously practice it throughout his life as it is defined by all the Tirthankars. It stops the inflow of Karmic matter. It destroys disturbances. It stops the entry of the water of Karma. It is dirtless and without any holes. It is without the flow of Karmas.

१२८. एवं बिइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवइ। एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं।

॥ बिइयं संवरदारं समत्तं॥ त्ति बेमि॥

१२८. इस प्रकार (पूर्वोक्त रीति से) सत्य नामक संवरद्वार उचित समय पर अंगीकृत, पालित, शोधित-निरतिचार आचरित या शोभाप्रदायक, तीरित-अन्त तक पार पहुँचाया हुआ, कीर्तित-दूसरों के समक्ष आदरपूर्वक कथित, अनुपालित-निरन्तर सेवित और भगवान की आज्ञा के अनुसार आराधित होता है। इस प्रकार ज्ञात वंश में उत्पन्न-भगवान महावीर स्वामी ने इस सिद्धवरशासन का कथन किया है, विशेष प्रकार से विवेचन किया है। यह तर्क और प्रमाण से सिद्ध है, सुप्रतिष्ठित किया गया है, भव्य जीवों के लिए इसका उपदेश किया गया है, यह प्रशस्त-कल्याणकारी-मंगलमय है।

॥ द्वितीय संवरद्वार समाप्त ॥ वैसा मैं कहता हूँ। (जैसा मैंने सुना है।)

विवेचन : इस प्रकार सुबोधिनी व्याख्या सहित द्वितीय संवर द्वार समाप्त हुआ। उल्लिखित पाठों में प्रस्तुत प्रकरण में कथित अर्थ का उपसंहार किया गया है। सुगम होने से इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं हैं।

128. If in the above-mentioned form truth, the gateway of Samvar, is continuously practiced according to the order laid down by the omniscient; it is accepted, nourished and faultlessly practiced at the proper time; it provides grace. It leads to the end of the mundane world. Bhagavan Mahavir, the omniscient has described the order of the omniscient in this manner. He has narrated in detail. It is based on logic and proper proof. It is well established. He has preached it for the worthy. It is noble, beatific and auspicious.

Elaboration—In the above-mentioned aphorism, the purport of this aphorism has already been explained. It is easily intelligible. So it does not need any further elucidation.

● SECOND GATEWAY OF SAMVAR CONCLUDED ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अध्ययन : दत्तानुज्ञात
THIRD CHAPTER : TO GET WITH PERMISSION

द्वितीय संवरद्वार के विविध पहलुओं का भलीभांति निरूपण करने के पश्चात् अचौर्य नामक तृतीय संवरद्वार का विवेचन प्रस्तुत है। सत्य के पश्चात् अचौर्य के विवेचन के टीकाकार ने दो कारण बतलाये हैं-प्रथम यह कि सूत्रक्रम के अनुसार अब अस्तेय का निरूपण ही संगत है, दूसरा असत्य का त्यागी वही हो सकता है जो अदत्तादान का त्यागी हो। अदत्तादान करने वाले सत्य का निर्वाह नहीं कर सकते। अतएव सत्यसंवर के अनन्तर अस्तेयसंवर का निरूपण करना उचित है। सर्वप्रथम अस्तेय का स्वरूप बताया गया है।

After discussing the second gateway of Samvar, non-stealing, the third gateway, is described here. The commentator has given two reasons for stating non-stealing after truth. The first reason is that according to the order in text non-stealing is discussed at this stage. The second reason is that only that person can discard falsehood who discards non-stealing. One who is engaged himself in stealing, he cannot follow truth. So it is appropriate to discuss non-stealing after discussing truth. First of all stealing has been defined.

अस्तेय का स्वरूप NATURE OF NON-STEALING

१२९. जंबू ! दत्तमणुण्णाय-संवरो णाम होई तइयं सुव्वया ! महव्वयं गुणव्वयं परदव्वहरणपडिविरइकरणजुत्तं अपरिमियमणंततण्हाणुगयमहिच्छमणवयणकलुसआयाणसुणिग्गहियं सुसंजमिय-मण-हत्थ-पायणिहुयं णिग्गंथं णिट्ठियं णिरुत्तं णिरासवं णिब्भयं विमुत्तं उत्तमणरवसभपवरबलवगसुविहियजणसम्मतं परमसाहुधम्मचरणं।

१२९. हे उत्तम व्रतों के धारक जम्बू ! तीसरा 'दत्तानुज्ञात' नामक संवरद्वार है। यह महान् व्रत है तथा यह गुणव्रत- इहलोक-परलोक सम्बन्धी उपकारों का कारणभूत भी है। यह पराये द्रव्य-पदार्थों के हरण से निवृत्तिरूप क्रिया से युक्त है, अर्थात् इस व्रत में परायी वस्तुओं के अपहरण का त्याग किया जाता है। यह व्रत अपरिमित-असीम, अनन्त तृष्णा से युक्त महा-अभिलाषा वाला मन एवं वचन द्वारा पापमय परद्रव्य हरण का भलीभाँति निग्रह करता है। इस व्रत के प्रभाव से मन इतना संयमशील बन जाता है कि परधन को ग्रहण करने में प्रवृत्त हुए हाथ और पैर रुक कर निश्चल हो जाते हैं, यह बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह की ग्रन्थियों से रहित है, सब धर्मों की पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ है। सर्वज्ञ भगवन्तों ने इसे उपादेय कहा है। यह आस्रव का निरोध करने वाला है। निर्भय है-इसका पालन करने वाले को राजा या शासन आदि का भय नहीं रहता और लोभ उसका स्पर्श भी नहीं करता। यह प्रधान बलशालियों तथा शास्त्रोक्त विधि से आचरण करने वाले साधुजनों द्वारा सम्मत है, श्रेष्ठ साधुओं का धर्माचरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

129. O Jambu, the practitioner of meritorious vows ! The third gateway of Samvar is to receive whatever is needed only with permission. It is a major vow. It is the cause of favours relating to this world and the next. It lies in discarding the desire of stealing things belonging to others. In this vow one takes an oath not to steal things belonging to others. This vow has no limit; mentally and vocally one subdues his infinite desire to engage in sinful act of robbing articles belonging to others. As a result of this vow, the mind gets involved so much in self-restraint that hands and feet become disinterested in having money belonging to others. It is without any internal or external hurdles. It is in all the religions. The omniscient have declared it as worthy of being followed. It stops the inflow of Karma. One who practices it does not have any fear of the king or of the administration. Greed cannot affect him. It is approved by heroic people and the true monks. It is the conduct of best monks.

विवेचन : अस्तेय महाव्रत है। जीवन पर्यन्त सूखे तिनके जैसे अत्यन्त तुच्छ पदार्थ को भी अदत्त या अननुज्ञात ग्रहण न करना अपने आप में एक महान् साधना है। इसका निर्वाह करने में आने वाली बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को समभाव से, मन में तनिक भी मलीनता लाये बिना, सहन कर लेना और वह भी स्वेच्छा से, कितना कठिन है ! अतएव इसे महाव्रत कहना सर्वथा समुचित ही है।

अस्तेय शब्द के तीन और पर्यायवाचक मिलते हैं। 1. अचौर्य, 2. अदत्तादान विरमण, 3. दत्तानुज्ञात

यह व्रत अनेकानेक गुणों का जनक है। इसके धारण और पालन से इस लोक में भी उपकार होता है और परलोक में भी, अतएव इसे गुणव्रत भी कहा गया है। यह व्रत सभी व्रतों के साथ सम्बद्ध होने से उनकी पराकाष्ठा तक को यह स्पर्श करता है। क्योंकि अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का भी तभी पालन हो सकता है जब जीवन में मन-वचन-काया से अचौर्य वृत्ति आ जायेगी।

अस्तेयव्रत की आराधना से अपरिमित तृष्णा और अभिलाषा के कारण कलुषित मन का निग्रह होता है। जो द्रव्य प्राप्त है, उसका व्यय न हो जाये, इस प्रकार की इच्छा को यहाँ तृष्णा कहा गया है और अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की बलवती लालसा को महेच्छा कहा गया है।

'सुसंजमिय-मण-हत्थ-पायनिहुयं' इस विशेषण के द्वारा शास्त्रकार ने यह सूचित किया है कि मन पर यदि सम्यक् प्रकार से नियंत्रण कर लिया जाये, मन पूरी तरह काबू में रहे तो हाथों और पैरों की प्रवृत्ति स्वतः रुक जाती है। जिस ओर मन नहीं जाता उस ओर हाथ-पैर भी नहीं हिलते। यह सूचना साधकों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। साधकों को सर्वप्रथम अपने मन को संयत बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने पर वचन और काय अनायास ही संयत हो जाते हैं।

Elaboration—Non-stealing is a major vow. It is a great spiritual practice not to accept even an insignificant article such as a piece of straw without the permission of its owner throughout life. One faces

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

many difficulties in practicing it. But he endures them in a state of equanimity with his own free will and without having even the slightest dejection in his mind. It is really very difficult. So it is totally proper to term it as a major vow.

There are three synonyms of Asteya - 1. Achorya (non-stealing), 2. Adattadan Viraman (abstain from taking what is not given) and 3. Dattanujnata (taking what is given).

This vow generates many virtues. Its practice is beneficial in this world and also in the next life. So it is also called Gunavrat. As it is associated with all other vows it touches their perfection. This is because Ahimsa, truth, celibacy and non-possession can be observed only when the attitude of non-stealing is embraced through mind, speech and body.

The mind is full of unlimited wants and desires. The practice of this vow subdues that polluted mind. One may not spend all what he has got; such a feeling is called want (trishna). The strong lust to have that which one has not get is called intense desire (Mahechchha).

The author has used the adjectives 'Susanjamiya-nun-hath-payanihuyam'. It means that if the mind is properly controlled and totally subdued, then the activity of hands and feet stops itself. Hands and feet do not move in that direction which is not followed by the mind. So the practitioner of spirituality should first of all try to bring his mind in self-restraint. By doing so, the speech and the body shall be controlled automatically.

१३०. जत्थ य गामागर–णगर–णिगम–खेड–कब्बड–मडंब–दोणमुह–संबाह–पट्टणासमगयं च किंचि दव्वं मणि–मुत्त–सिलप्पवाल–कंस–दूस–रयय–वरकणग–रयणमाइं पडियं पम्हुट्ठं विप्पणट्ठं, ण कप्पइ कस्सइ कहेउं वा गिण्हिउं वा अहिरण्णसुवण्णियेण समलेट्ठुकंचणेणं अपरिग्गहसंवुडेणं लोगम्मि विहरियव्वं।

१३०. जिसमें (अदत्तादानविरमण व्रत में) गाँव, खान, नगर, निगम, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, संबाध, पट्टन अथवा आश्रम (अथवा इनके अतिरिक्त किसी अन्य स्थान) में पड़ी हुई, उत्तम मणि, मोती, शिला, मूँगा, काँसा, वस्त्र, चाँदी, सोना, रत्न आदि कोई भी वस्तु गिरी हो, कोई उसे भूल गया हो, खोई हुई हो तो (उसके विषय में) किसी को कहना अथवा स्वयं उठा लेना नहीं कल्पता है। क्योंकि साधु को चांदी–सोने का त्यागी होकर, पाषाण और स्वर्ण में समभाव रखकर, परिग्रह से सर्वथा रहित और सभी इन्द्रियों से संवृत्त–संयत होकर ही लोक में विचरना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

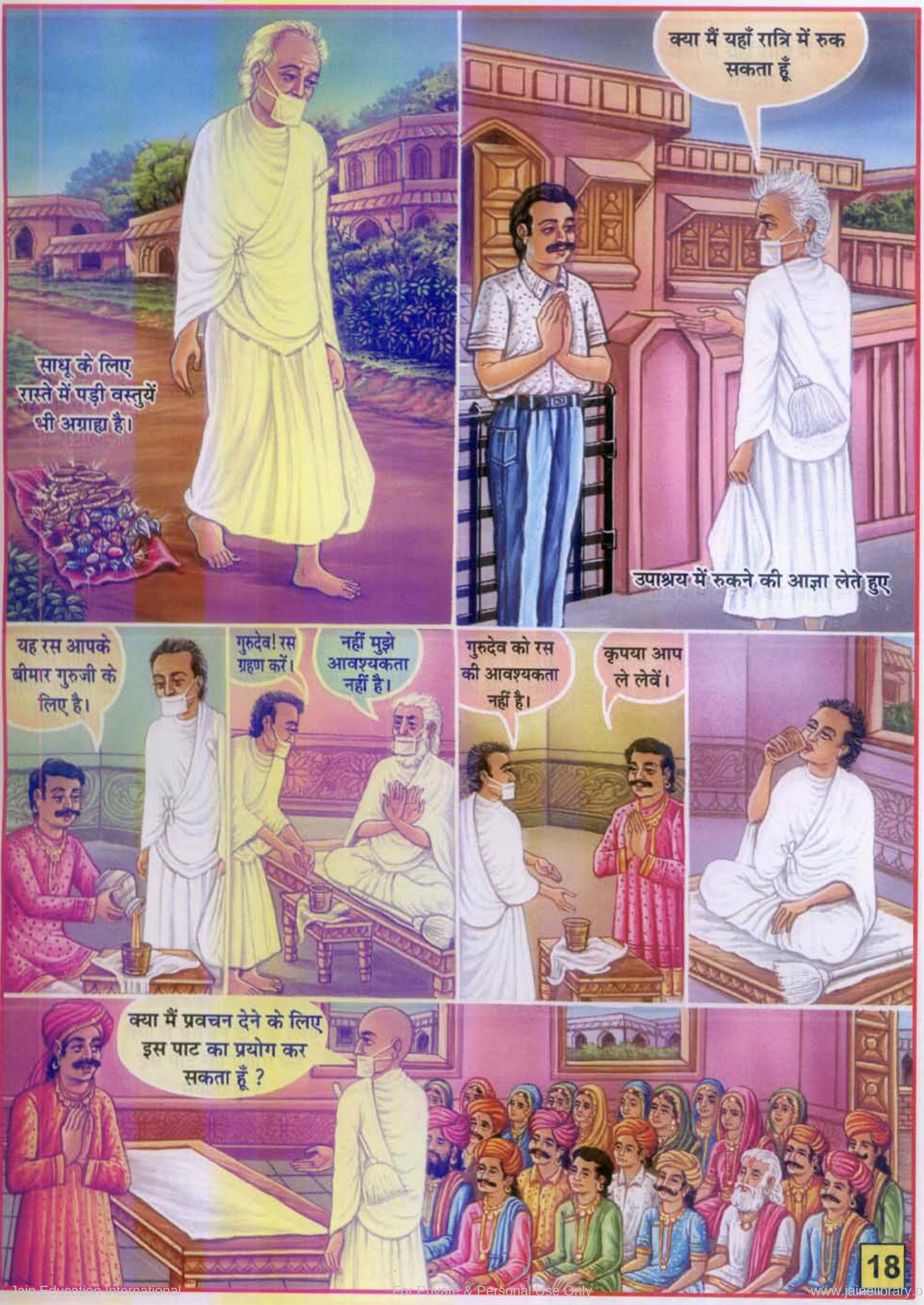

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 18

Illustration No. 18

अस्तेय व्रत

चित्र में दिखाया गया है कि अस्तेय व्रत के आराधक साधु रास्ते में पड़ी हुई कीमती से कीमती वस्तु भी ग्रहण नहीं करते हैं। यहाँ तक कि आज्ञा प्राप्त किये बिना उपाश्रय में भी नहीं रुकते हैं।

उदाहरण द्वारा अस्तेय व्रत का स्वरूप स्पष्ट किया गया है—गोचरी के लिए आये हुए साधु को गृहस्थ ने उनके बीमार गुरुजी के लिए रस दिया। रस लेकर वह गुरुजी के पास गये परन्तु गुरुजी ने उसे लेने से मना कर दिया। साधु वापस उस रस को लेकर गृहस्थ के पास आये और दोबारा गृहस्थ की आज्ञा प्राप्त कर रस स्वयं ग्रहण किया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो वस्तु जिसके लिए दी गई है, उसके अलावा दूसरे को उपयोग करना भी इस व्रत के आराधक को नहीं कल्पता।

नीचे के चित्र में बताया गया है कि व्याख्यान देने के लिए उपाश्रय में आये साधु पाट का प्रयोग भी आज्ञा लेकर ही करते हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि उपाश्रय में प्रवेश की आज्ञा लेने पर भी उसमें पड़ी हुई वस्तुओं के प्रयोग के लिए अलग से आज्ञा लेनी चाहिए।

—सूत्र 131, पृ. 319

VOW OF NON-STEALING

The illustration at top left shows that an ascetic observing vow of non-stealing does not ake even costly things lying on the path. He even does not stay in an Upashraya without getting permission (top right illustration).

Example of immaculate observation of the vow of non-stealing –A householder gives juice to an alms-seeking ascetic meant for his teacher. The ascetic brings the juice to the teacher who declines to consume it. The ascetic returns to the householder and only after seeking his permission drinks the juice himself. This clarifies that an observer of this vow cannot use a thing meant for some specific person.(center illustration)

The illustration at the bottom shows an ascetic, staying in an Upashraya, uses even a seat for discourse after seeking permission. This clarifies that even after getting permission to stay at a place an ascetic must seek permission he wants to use anything lying there.

— Sutra-131, pages-319

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

130. An articles such as precious stone, pearl, rock, coral, bronze, cloth, silver, gold, jewel and the like is lying or someone has forgotten or has lost in a village, shop, town, corporation, kheta, karbat, port, harbour, ashrama or at any other place. A person who is practicing the vow of adattadan virman (discarding that which is not given) can neither pick up such an article himself nor ask anyone to pick it up. It is because a monk has detached himself from desire for gold and silver. He considers gold and stone of same value for his self. He is totally without any feeling of attachment or collecting with such a feeling. He should wander in the world keeping his senses in self-restraint.

१३१. [१] जं वि य हुज्जाहि दव्वजायं खलगयं खेत्तगयं रण्णमंतरगयं वा किंचि पुप्फ–फल–तयप्पवाल–कंद–मूल–तण–कट्ठ–सक्कराइ अप्पं च बहुं च अणुं च थूलगं वा ण कप्पइ उग्गहम्मि अदिण्णंम्मि गिण्हिउं जे, हणि हणि उग्गहं अणुण्णविय गिण्हियव्वं, वज्जेयव्वो सव्वकालं अचियत्तघरप्पवेसो अचियत्तभत्तपाणं अचियत्तपीढ–फलग–सिज्जा–संथारग–वत्थ–पत्त–कंबल–दंडग–रयहरण–णिसिज्ज–चोलपट्टग–मुहपोत्तिय–पायपुंछणाइ भायण–भंडोवहि–उवगरणं परपरिवाओ परस्स दोसो परववएसेणं जं च गिण्हइ, परस्स णासेइ जं च सुकयं, दाणस्स य अंतराइयं दाणविप्पणासो पिसुण्णं चेव मच्छरियं च।

१३१. [१] (साधु को) कोई भी वस्तु, जो खलिहान में पड़ी हो, या खेत में पड़ी हो, या जंगल में पड़ी हो, जैसे कि फूल हो, फल हो, प्रवाल हो, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ या कंकर आदि हो, वह अल्प हो या बहुत हो, सूक्ष्म हो या स्थूल हो, स्वामी के दिये बिना या उसकी आज्ञा प्राप्त किये बिना ग्रहण करना नहीं कल्पता। घर और स्थंडिलभूमि भी आज्ञा प्राप्त किये बिना ग्रहण करना उचित नहीं है।

(तो फिर साधु को किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए? यह विधान किया जाता है कि) साधु को उपाश्रय में रहने वाली वस्तु का उपभोग या ग्रहण वहां के स्वामी या अधिकारी की प्रतिदिन आज्ञा लेकर करना चाहिए तथा अप्रीतिकारक घर में प्रवेश वर्जित करना चाहिए अर्थात् जिस घर के लोगों में साधु के प्रति अप्रीति हो, ऐसे घरों में किसी वस्तु के लिए प्रवेश करना योग्य नहीं है। अप्रीतिकारक के घर से आहार–पानी तथा पीठ, फलक–पाट, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्ड–विशिष्ट कारण से लेने योग्य लाठी और पादप्रोंछन–पैर साफ करने का वस्त्रखण्ड आदि एवं भाजन–पात्र, भाण्ड–मिट्टी के पात्र तथा उपधि–वस्त्रादि उपकरण भी ग्रहण नहीं करने चाहिए। साधु जो दूसरे की निन्दा करता है, दूसरे के दोष देखता है या किसी पर द्वेष करता है। *(आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, रुग्ण अथवा शैक्ष आदि)* दूसरे के नाम से जो कोई वस्तु ग्रहण करता है तथा जो उपकार को या किसी के सुकृत को छिपाता है–नष्ट करता है, जो दान में अन्तराय करता है, अर्थात् दिये जाने वाले दान में किसी प्रकार से विघ्न डालता है, जो दान का विप्रणाश करता है अर्थात् दाता के नाम को छिपाता है, जो पैशुन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता-चुगली करता है और मात्सर्य-ईर्ष्या-द्वेष करता है। वह सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा से विरुद्ध करता है, अतएव इनसे बचना चाहिये।

131. (1) An article is lying at a threshing ground, in a farm or a forest. It may be a flower, a fruit, a vegetable, a straw, a piece of wood, or a piece of stone. It may be in small quantity or in large quantity. It may be little or large. A monk is not allowed to accept it without the permission of its owner or without being offered by the owner. It is not proper for him to occupy a place for stay or to use vacant land for call of nature without permission.

(How then a monk should have a thing?) It is laid down in the code that daily a monk should seek permission everyday from the owner or manager of the place of stay. He should avoid those houses, wherein his entry is not liked or those houses whose residents have an ill feeling towards him. He should not go to such houses for any desired article. From any such house he should not seek food, water, plank, bedding, cloth, pot, blanket, stick, cloth for cleaning feet, or earthen put and the like. A monk should not condemn any person. He should not see faults of others. He should not have hatred towards anyone. A monk accepts any article in the name of the acharya, upadhyaya, old monk, sick monk or a recently initiated monk. He conceals the gratitude or a good act of others. He conceals the name of the donor. He causes any hurdle in the offering. He back bites. He is jealous of others. (Such a monk transgresses the order of Bhagavan or the omniscient. So one should avoid such a behaviour).

ये अस्तेय व्रत के आराधक नहीं NOT TRUE PRACTITIONER OF THE VOW OF NON-STEALING

[२] जे वि य पीढ–फलग–सिज्जा–संथारग–वत्थ–पाय–कंबल–मुहपोत्तिय–पायपुंछणाइ–भायण–भंडोवहिउवगरणं असंविभागी, असंगहरुई, तवतेणे य वइतेणे य रूवतेणे य आयारे चेव भावतेणे य, सद्दकरे झंझकरे कलहकरे वेरकरे विकहकरे असमाहिकरे सया अप्पमाणभोई सययं अणुबद्धवेरे य णिच्चरोसी से तारिसए णाराहए वयमिणं।

[२] जो भी चौकी; पाट, शय्या, बिछौना, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका और पादप्रोंछन आदि, पात्र, मिट्टी के पात्र-भाण्ड और अन्य उपकरणों का जो आचार्य आदि साधर्मिकों में उचित रूप से विभाजन नहीं करता, वह अस्तेयव्रत का आराधक नहीं होता। जो असंग्रहरुचि है अर्थात् एषणीय पीठ, फलक आदि गच्छ के लिए आवश्यक या उपयोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकरणों का जो स्वार्थी (आत्मंभरी) होने के कारण संग्रह करने में रुचि नहीं रखता, जो तपस्तेन है अर्थात् तपस्वी न होने पर भी तपस्वी के रूप में अपना परिचय देता है, वचनस्तेन-वचन का चोर है, जो रूपस्तेन है अर्थात् सुविहित साधु न होने पर भी जो सुविहित साधु का वेष धारण करता है, जो आचार का चोर है अर्थात् आचार से दूसरों को धोखा देता है और जो भावस्तेन है अर्थात् दूसरे के ज्ञानादि गुण के आधार पर अपने आपको ज्ञानी प्रकट करता है, जो रात्रि में उच्च स्वर से स्वाध्याय करता या बोलता है अथवा गृहस्थों जैसी भाषा बोलता है, जो गच्छ में भेद उत्पन्न करने वाले कार्य करता है, जो कलहकारी, वैरकारी और विकथा करने वाला, अशान्ति पैदा करने वाला है, जो शास्त्रोक्त प्रमाण से सदा अधिक भोजन करता है, जो सदा वैर बाँधकर रखने वाला और तीव्र क्रोध करने वाला है, ऐसा पुरुष इस अस्तेयव्रत की आराधना नहीं कर सकता।

[2] The Acharya and the like has stools, beds, bedding, pieces of cloth, pots, blankets, sticks, brooms, mats, covering cloth, mouth-kerchiefs (mukh-vastrika) and cloth for cleaning feet, earthen pots and others articles of common use by the monks. If he does not properly distribute them, he transgresses the vow of non-stealing. Such a bent of mind is that of attachment, the stool, board and the like are useful and essential for monks. But due to his selfish nature, he does not keep them in store for other monks. He does not practice austerities but introduces himself as an austere monk. So he is a thief in respect of austerities. He does not make correct interpretation or statement so he is thief of speech. He is dressing himself as a monk but is not practising the code meant for the monk. So he is thief in respect of appearance. He is not following the ascetic conduct and is thus deceiving others. So he is thief in respect of conduct. He poses himself as expert in scriptures on the basis of the knowledge of other monks. So he is thief in respect of monkhood. He recites in a loud voice at night or talks loudly at night. He talks like a householder. He does such acts that cause friction in the organisation. He is quarrelsome. He creates enmity and disturbs equanimity. He always takes more food then the amount prescribed in scriptures. He prolongs enmity. He continues his angry attitude. Such a monk transgresses the code. He is not true practitioner of the vow of non-stealing.

विवेचन : अस्तेयव्रत की आराधना की विधि यहाँ बतलाई गई है। प्रारम्भ में कहा गया है कि अस्तेयव्रत के आराधक को कोई भी वस्तु, चाहे वह मूल्यवान हो या मूल्यहीन हो, बहुत हो या थोड़ी हो, छोटी हो या मोटी हो, यहाँ तक कि धूल या कंकर जैसी तुच्छतर वस्तु ही क्यों न हो, बिना दी हुई या अननुज्ञात ग्रहण नहीं करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। ली जाने वाली वस्तु का दाता अथवा अनुज्ञाता भी वही होना चाहिए जो उसका स्वामी हो। व्रत की पूर्ण आराधना के लिए यह नियम सर्वथा आवश्यक ही है। मगर प्रश्न यह उठता है कि साधु जब मार्ग में चल रहा हो, ग्राम, नगर आदि से दूर जंगल में हो और उसे अचानक तिनका जैसी किसी वस्तु की आवश्यकता हो जाये तो वह क्या करे ?

इसका समाधान यह है कि शास्त्र में अनुज्ञा देने वाले पाँच बतलाये गये हैं-(१) देवेन्द्र, (२) राजा, (३) गृहपति (मण्डलेश, जागीरदार या ठाकुर), (४) सागारी (गृहस्थ), और (५) साधर्मिक। भगवती सूत्र के शतक १६, उ० २ में इसका उल्लेख है कि पूर्वोक्त परिस्थिति में तृण, कंकर आदि तुच्छ-मूल्यहीन वस्तु की यदि आवश्यकता हो तो साधु देवेन्द्र की अनुज्ञा से उसे ग्रहण कर सकते हैं।

इस आशय को व्यक्त करने के लिए मूल पाठ में इस व्रत या संवर के लिए **दत्तमणुण्णायसंवरो** (दत्त-अनुज्ञातसंवर) शब्द का प्रयोग किया गया है, केवल 'दत्तसंवर' नहीं कहा गया। इसका तात्पर्य यही है कि जो पीठ, फलक आदि वस्तु किसी गृहस्थ के स्वामित्व की हो उसे स्वामी के देने पर ग्रहण करना चाहिए और जो धूलि या तिनका जैसी तुच्छ वस्तुओं का कोई स्वामी नहीं होता-जो सर्व साधारण के लिए मुक्त हैं, उन्हें देवेन्द्र की अनुज्ञा से ग्रहण किया जाये तो वे अनुज्ञात हैं। उनके ग्रहण से व्रतभंग नहीं होता।

अदत्तादान के विषय में कुछ अन्य शंकाएँ भी उठाई जाती हैं, यथा-

शंका-साधु कर्म और नोकर्म का जो ग्रहण करता है, वह अदत्त है। फिर व्रतभंग क्यों नहीं होता ?

समाधान-जिसका देना और लेना सम्भव होता है, उसी वस्तु में स्तेय-चौर्य-चोरी का व्यवहार होता है। कर्म-नोकर्म के विषय में ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता, अतः उनका ग्रहण अदत्तादान नहीं है।

शंका-साधु रास्ते में या नगरादि के द्वार में प्रवेश करता है, वह अदत्तादान क्यों नहीं है ?

समाधान-रास्ता और नगरद्वार आदि सामान्य रूप से सभी के लिए मुक्त हैं, साधु के लिए भी उसी प्रकार अनुज्ञात हैं जैसे दूसरों के लिए। अतएव यहाँ भी अदत्तादान नहीं समझना चाहिए। अथवा जहाँ प्रमादभाव है वहीं अदत्तादान का दोष होता है। रास्ते आदि में प्रवेश करने वाले साधु में प्रमत्तयोग नहीं होता, अतएव वह अदत्तादानी नहीं है। तात्पर्य यह है कि जहाँ संक्लेशभावपूर्वक प्रवृत्ति होती है वहीं अदत्तादान होता है, भले ही वह बाह्य वस्तु को ग्रहण करे अथवा न करे।

अभिप्राय यह है कि जिन वस्तुओं में देने और लेने का व्यवहार सम्भव हो और जहाँ संक्लिष्ट परिणाम के साथ बाह्य वस्तु को ग्रहण किया जाये, वहीं अदत्तादान का दोष लागू होता है। जो अस्वामिक या सस्वामिक वस्तु सभी के लिए मुक्त है या जिसके लिए देवेन्द्र आदि की अनुज्ञा ले ली गई है, उसे ग्रहण करने अथवा उसका उपयोग करने से अदत्तादान नहीं होता। साधु को दत्त और अनुज्ञात वस्तु ही ग्राह्य होती है।

सूत्र में असंविभागी और असंग्रहरुचि पदों द्वारा व्यक्त किया गया है कि गच्छवासी साधु को गच्छवर्ती साधुओं की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना चाहिए। उसे स्वार्थी नहीं होना चाहिए। आहारादि शास्त्रानुसार जो भी प्राप्त हो उसका उदारतापूर्वक यथोचित संविभाग करना चाहिए। किसी दूसरे साधु को किसी उपकरण की या अमुक प्रकार के आहार की आवश्यकता हो और वह निर्दोष रूप से प्राप्त भी हो रहा हो तो केवल स्वार्थीपन के कारण उसे ग्रहण में अरुचि नहीं करनी चाहिए। गच्छवासी साधुओं को एक-दूसरे के उपकार और अनुग्रह में प्रसन्नता अनुभव करनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लिखित पाठ में 'तपस्तेन' अर्थात् 'तप का चोर' आदि पदों का प्रयोग किया गया है, उनका उल्लेख दशवैकालिकसूत्र में भी आया है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

तपःस्तेन–किसी स्वभावतः कृशकाय साधु को देखकर किसी ने पूछा–महाराज, अमुक गच्छ में मासखमण की तपस्या करने वाले सुने हैं, क्या आप वही मासक्षपक हैं?

यह सुनकर वह कृशकाय साधु मासक्षपक न होते हुए भी यदि अपने को मासक्षपक कह देता है तो वह तप का चोर है अथवा धूर्त्ततापूर्वक उत्तर देता है–'भई, साधु तो तपस्वी होते ही हैं, उनका जीवन ही तपोमय है।'

इस प्रकार गोलमोल उत्तर देकर वह तपस्वी न होकर भी यह धारणा उत्पन्न कर देता है कि यही मासक्षपक तपस्वी है। ऐसा साधु तपःस्तेन कहलाता है।

वचनस्तेन–इसी प्रकार किसी वाग्मी–कुशल व्याख्याता साधु का यश छल के द्वारा अपने ऊपर ओढ़ लेना–धूर्त्तता से अपने को वाग्मी प्रकट करने या कहने वाला वचनस्तेन साधु कहलाता है।

रूपस्तेन–किसी सुन्दर रूपवान् साधु का नाम किसी ने सुना है। वह किसी दूसरे रूपवान् साधु को देखकर पूछता है–क्या अमुक रूपवान् साधु आप ही हैं? 'वही साधु' न होने पर भी वह साधु यदि हाँ कह देता है अथवा छलपूर्वक गोलमोल उत्तर देता है, जिससे प्रश्नकर्त्ता की धारणा बन जाये कि यह वही प्रसिद्ध रूपवान् साधु है, तो ऐसा कहने वाला साधु रूप का चोर है।

रूप दो प्रकार का है–शरीर की सुन्दरता और सुविहित साधु का वेष। जो साधु सुविहित तो न हो किन्तु लोगों को अपने प्रति आकर्षित करने के लिए, अन्य साधुओं की अपेक्षा अपनी उत्कृष्टता प्रदर्शित करने के लिए सुविहित साधु का वेष धारण कर ले–मैला चोलपट्ट, मैल से भरा शरीर, सिर्फ दो पात्र आदि रखकर विचरे तो वह रूप का चोर कहलाता है।

आचारस्तेन–जो साधु समाचारी आदि का चोर है, वह आचारस्तेन कहलाता है। किसी साधु के आचार की उत्कृष्ट ख्याति किसी ने सुनी है। वह किसी दूसरे साधु से पूछता है–क्या आप वही हो जिनके आचार की ख्याति सुनी है। वही साधु न होने पर भी यदि हाँ कहे अथवा छलपूर्वक उत्तर दे कि साधु तो आचारवान् होते ही हैं। ऐसा कहने वाला साधु आचार का चोर है।

भावस्तेन–जो साधु श्रुतज्ञान आदि भाव की चोरी करे वह भावस्तेन कहलाता है। किसी और के मुँह से दूसरे साधु का शास्त्र संबंधी अपूर्व व्याख्यान सुनकर जो साधु ऐसा कहे कि यह व्याख्यान तो मैंने ही दिया है तो वह साधु भाव का चोर है।

Elaboration—The procedure of practising the vow of non-stealing has been narrated here in detail. It has been stated in the beginning that a practitioner of this vow should not pick up or take any thing however insignificant it may be, without the permission of its owner. The thing concerned may be costly or of a little value. It may be in large quantity or in small quantity. It may be thin or thick. It may be sand or stone. It should not be accepted without the consent of the owner. In order to

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

practice the vow of non-stealing this principle is essential. But the question may arise that a monk may suddenly find a straw which he needs when he is in a forest away from a village or a town during his wanderings what should he do then ?

The reply to it is that in scriptures, there are five beings who can grant permission. They are—(1) god Indra, (2) a king, (3) the owner of the house or the state, (4) a householder devotee, and (5) a co-religionist. In the above said condition, in case an insignificant thing like stone or straw is needed by the monk. He can accept it with the permission of Indra.

To distinctly express it in the aphorism the words 'datt manunnaya samvaro' have been used. Simply the word 'datt Samvar' has not been used. It means that the articles such as stool, beds and the like which belong to a householder should be accepted only if their owner offers them and the articles such as dust or stone, which do not belong to anyone, and which are free for use of the common men, should be take by a monk with the permission of god Indra. By accepting in this manner, he does not transgress the vow.

There are some other doubts relating to the vow of non-stealing namely when a monk acquires Karma or no-Karma, which is not offered. Why then it is said that he does not transgress the vow?

In respect of the said doubt, the reply is that stealing is in respect of that article which can be given and taken. In case of Karma and no-Karma such an activity is not possible. So to accept it is not stealing.

Another doubt is that a monk enters the gate or gate of the town during his wanderings. Why cannot it be termed as 'adattadan'.

The reply to it is that the road and the gate of the town is common for all passers-by. It is for the monks also in the same fashion as it is for others so it should not be considered as adattadan (act without permission of the owner). The fault of adattadan is only where there is slackness. A monk which coming to a road from any side is not in a state of slackness. So he is not committing the fault of stealing (adattadan). In a nutshell adattadan is only (in that condition) where any activity is with bad contemplation or planning whether the external object concerned is taken away or not.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The gist is that the fault of stealing (adattadan) is only in case of those things wherever the giving and taking is possible in normal behaviour and that thing is taken with an evil mind. In case a thing is owned or not owned by any person and is for free use for all or for which the permission of god Indra has been taken, its possession or use does not amount to stealing. A monk can take only the thing that is offered to him or a thing for which permission of god Indra has been taken.

The words 'asamvihhagi' and 'asangraharuchi' in the aphorism indicate that a monk belonging to a particular class (gachh) should take into consideration, the needs of all the monks in that class or group. He should not be selfish. He should with a broad mind divide among the monks the food and the like that has been collected according to the procedure laid down in the scriptures. He should not show lack of interest in acceptance of an article or food due to his selfish nature which is needed for any particular monk and which is being offered according to the code. The monks in the group should experience happiness in gratifying each other.

In the above aphorism, the words tapahsten (thief of austerities) and the like have been used. They are mentioned in Dashavaikalik Sutra also. They are explained hereunder—

Tapahsten—While looking at a naturally weak monk a person asked, 'Sir, I have heard that in this group some monks are observing fast for one month. Are you the same monk ?'

If after hearing it, the monk while not actually practising fast for one month, says that he is observing fast for one month, then he is a thief of austerities. If he replies in a cunning manner, 'O dear; monks always practice fasting. Their life is full of austerities. Then also he is thief of austerities.

Thus by replying in a crooked manner, he creates the impression in the mind of the other that he is the one doing austerities although he is not actually practicing austerities. Such a monk is thief of austerities (tapah sten).

Vachasten (Thief of Speech)—Similarly in a deceitful manner, to gain fame for himself about being an eloquent orator or commentator while actually that quality is in some other monk, and thus to declare oneself as an expert is thief of speech.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Thief of looks (Rupasten)—A person heard the fame of good looks of a monk. He after seeing a good-looking monk asks him if he is the same monk who is famous for his looks. If that monk replies in affirmative although actually he is not the monk whose fame of looks has spread far and wide or replies deceitfully in a crooked manner so that the person asking him may have the impression that he is the concerned monk famous for his looks, then he is thief of looks.

Beauty is of two types, namely the beauty of the physical body and the beauty of the dress of the monk in accordance with the code in scriptures. A monk is not strictly following the code as mentioned in scriptures. But in order to attract the public and to create an impression that he is the best amongst all in following the rules, he dresses himself in a dirty cloth, has his body besmeared with dirt and keeps only two pots, then he is called thief of looks or appearance.

Similarly one should understand thief of conduct (acharasten) and thief of contemplation.

अस्तेय के आराधक कौन ? WHO IS PRACTITIONER OF NON-STEALING

१३२. [प्र.] अह केरिसए पुणाई आराहए वयमिणं ?

[उ.] जे से उवहि–भत्त–पाण–संगहण–दाण–कुसले अच्चंतबाल–दुब्बल–गिलाण–वुड्ढ–खवग–पवत्ति–आयरिय–उवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सी–कुल–गण–संघ–चेइयट्ठे य णिज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविहं बहुविहं करेइ, ण य अचियत्तस्स गिहं पविसइ, ण य अचियत्तस्स गिण्हइ भत्तपाणं, ण य अचियत्तस्स सेवइ पीढ–फलग–सिज्जा–संथारग–वत्थ–पाय–कंबल–दंडग–रयहरण–णिसिज्ज–चोलपट्टय–मुहपोत्तियं पायपुंछणाइ–भायण–भंडोवहिउवगरणं ण य परिवायं परस्स जंपइ, ण यावि दोसे परस्स गिण्हइ, परववएसेण वि ण किंचि गिण्हइ, ण य विपरिणामेइ किंचि जणं, ण यावि णासेइ दिण्णसुकयं दाऊणं य ण होइ पच्छाताविए संभागसीले संग्गहोवग्गहकुसले से तारिसए आराहए वयमिणं।

१३२. [प्र.] (यदि पूर्वोक्त प्रकार के साधक इस व्रत की आराधना नहीं कर सकते) तो फिर कौन–सा साधक इस व्रत की आराधना कर सकता है।

[उ.] इस अस्तेयव्रत का आराधक वही साधु हो सकता है जो–वस्त्र, पात्र आदि धर्मोपकरण, आहार–पानी आदि का संग्रह करने और संविभाग करने में कुशल हो। जो अत्यन्त बाल, दुर्बल, रोगी, वृद्ध और मासक्षपक–मासिक उपवास आदि तपश्चर्या करने वाले साधु की, प्रवर्त्तक, आचार्य, उपाध्याय की, नवदीक्षित साधु की तथा साधर्मिक–लिंग एवं प्रवचन से समानधर्मा साधु की, तपस्वी, कुल, गण, संघ के चित्त की प्रसन्नता के लिए सेवा करने वाला हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो निर्जरा का अभिलाषी हो–कर्मक्षय करने का इच्छुक हो, जो यश–कीर्ति आदि की कामना न करते हुए किसी पर निर्भर न रहता हो, वही दस प्रकार का वैयावृत्य, अन्न–पान आदि अनेक प्रकार से करता है। वह अप्रीतिकारक गृहस्थ के कुल में प्रवेश नहीं करता और न अप्रीतिकारक के घर का आहार–पानी ग्रहण करता है। अप्रीतिकारक से पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, चोलपट्ट, मुखवस्त्रिका एवं पादप्रोंछन भी नहीं लेता है। वह दूसरों की निन्दा (परपरिवाद) नहीं करता और दूसरे के दोष नहीं देखता या प्रकट नहीं करता। जो दूसरे के नाम से (अपने लिए) कुछ भी ग्रहण नहीं करता और न किसी को दानादि धर्म भावना से विमुख करता है, दूसरे के दान आदि सुकृत का अथवा धर्माचरण का खण्डन नहीं करता है, जो दानादि देकर और वैयावृत्य आदि करके पश्चात्ताप नहीं करता है तथा जो प्राप्त आहारादि का यथा योग्य संविभाग करता हो, गच्छ के लिये उपकारी वस्तुओं या शिष्यादि का संग्रह करने तथा उन्हें भोजन–वस्त्र या अध्ययन आदि उपकारों से सन्तुष्ट करने में दक्ष हो, ऐसा साधु ही इस अस्तेय व्रत का आराधक होता है।

132. [Q.] In case the persons mentioned above cannot practice this vow of non-stealing then what type of human beings can practice it ?

[Ans.] The monk who practices properly the vow of non-stealing should be expert in collection and distribution of cloth, pots and the like, articles needed for ascetic discipline and also food water, and the like. He should always keep in mind the needs of extremely weak, diseased, aged monks, recently initiated monks, the monks practicing fast for one month, the monks observing austerities, the head of a group (pravartak), the acharya, the upadhyaya, the monks of the same organisation and dress, the monks that preach the same faith, the monks practicing fasts, the clan, the group and the organisation so that they really experience hearty satisfaction and he should properly serve them.

Only such a monk can practice ten types of service (Vaiyavritya) who is desirous of destroying his Karma, shedding his Karma, who is self-dependent and has no desire of fame. He takes food and water in different ways according to the code. He does not enter the house wherein the members of the family do not like others and does not collect food or water from such a house. He does not take stool, plank, bed, bedding, cloth, pot, blanket, stick, broom, mat, cloth to cover the body, mouth-kerchief or cloth for cleaning feet from such a house. He does not condemn others. He does not look into faults of others. He does not collect any thing using the name of others. He does not keep any one devoid of charity (in the form of guidance in accordance with scriptures). He does not criticise good acts like charity or good conduct of others. He

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

does not repent after making any offering or after serving others. He is expert in properly dividing the articles among Acharya, Upadhyaya and others. He stores the things properly. He is expert in assisting others in need. Such a monk is truly practicing the vow of non-stealing.

विवेचन : उपरोक्त पाठ में बताया गया है कि अस्तेयव्रत की आराधना के लिए किन-किन योग्यताओं की आवश्यकता है? जिस साधक में मूल पाठ में उल्लिखित गुण विद्यमान होते हैं, वही वास्तव में इस व्रत का पालन करने में समर्थ होता है। शास्त्रकार ने अचौर्य व्रत की आराधना को सरल बनाने के लिये वैयावृत्य-सेवा करने का उल्लेख किया है। वैयावृत्य (सेवा) के दस भेद हैं, जो इस प्रकार हैं-

वेयावच्चं वावडभावो इह धम्मसाहणनिमित्तं।
अन्नाइयाण विहिणा, संपायणमेस भावत्थो॥

आयरिय-उवज्झाए-थेर-तवस्सी-गिलाण-सेहाणं।
साहम्मिय-कुल-गण-संघ-संगयं तमिह कायव्वं॥[1]

अर्थात्-धर्म की साधना के लिए विधिपूर्वक आचार्य आदि के लिए अन्न आदि उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करना-प्राप्त करना वैयावृत्य कहलाता है। वैयावृत्य के दस पात्र हैं। साधु को इन दस की सेवा करनी चाहिए, अतएव वैयावृत्य के भी दस प्रकार होते हैं।

१. आचार्य-संघ के नायक, पंचविध आचार का पालन करने-कराने वाले।

२. उपाध्याय-विशिष्ट श्रुतसम्पन्न, साधुओं को सूत्रशिक्षा देने वाले।

३. स्थविर-श्रुत, वय अथवा दीक्षा की अपेक्षा से वृद्ध साधु, अर्थात् स्थानांग-समवायांग आदि आगमों के विज्ञाता, साठ वर्ष से अधिक वय वाले अथवा कम से कम बीस वर्ष की दीक्षा वाले।

४. तपस्वी-बेला-तेला आदि तथा आतापन योग आदि करने वाले।

५. ग्लाग-रुग्ण मुनि।

६. शैक्ष-नवदीक्षित।

७. साधर्मिक-समान वेष और समान धर्मानुयायी।

८. कुल-एक गुरु के शिष्यों का समुदाय अथवा एक वाचनाचार्य से ज्ञानाध्ययन करने वाले।

९. गण-अनेक कुलों के समूह या वृद्ध साधुओं की शिष्य परम्परा।

१०. संघ-साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं का समूह।

इन सबकी वैयावृत्य निर्जरा के हेतु करनी चाहिए, यश-कीर्ति आदि के लिए नहीं। भगवान ने वैयावृत्य को आभ्यन्तर तप के रूप में प्रतिपादित किया है। इसका सेवन दोहरे लाभ का कारण है-वैयावृत्यकर्त्ता कर्मनिर्जरा का लाभ करता है और जिनका वैयावृत्य किया जाता है, उनके चित्त में समाधि, सुख-शान्ति उत्पन्न होती है।

---

१. अभयदेव टीका से उद्धृत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि पर-निन्दा और पर को दोष देना दोष तो है किन्तु अदत्तादान के साथ उनका सम्बन्ध जोड़ना कैसे उपयुक्त हो सकता है? अर्थात् जो पर-निन्दा करता है और पर के साथ द्वेष करता है, वह अदत्तादानविरमण व्रत का पालन नहीं कर सकता और जो यह नहीं करता वही पालन कर सकता है, ऐसा क्यों कहा गया है?

इस प्रश्न का समाधान आचार्य अभयदेव ने इस प्रकार किया है-

सामीजीवादत्तं तित्थयरेणं तहेव य गुरूहिं।

अर्थात् अदत्त चार प्रकार का है-**स्वामी** अदत्त अर्थात् स्वामी के द्वारा बिना दिया, जीव-अदत्त, तीर्थंकर-अदत्त और गुरु-अदत्त।

निन्दा निन्दनीय व्यक्ति द्वारा तथा तीर्थंकर और गुरु द्वारा अननुज्ञात (अदत्त) है, इसी प्रकार दोष देना भी दूषणीय जीव एवं तीर्थंकर-गुरु द्वारा अननुज्ञात है, अतएव इनका सेवन अननुज्ञात-अदत्त का सेवन करना है। इस प्रकार अदत्तादान-त्यागी को पर-निन्दा और दूसरे को दोष लगाना या किसी पर द्वेष करना भी त्याज्य है।

Elaboration—In the present aphorism, the capabilities that are necessary for properly practicing the vow of non-stealing have been narrated. Only that monk who has the qualities as mentioned in the aphorism, is capable of properly practicing this vow.

Service is stated to be of tens types to collect properly the articles needed from practice of dharma by acharya and others is called vaiyavritya (service). The monks who should be served are of ten types namely—Acharya, Upadhyaya, Sthavir, Tapasvi, Glaan, Shaiksh, Saudharmik, Kula, Gana and Sangh. A monk should serve monks of these ten categories. Thus service is of ten types—

1. **Acharya**—The head of the organisation. He practices five types of conduct and ensures that the other monks follow it.

2. **Upadhyaya**—He has expert knowledge of scriptures. He teaches scriptures to other monks.

3. **Sthavir**—An experienced monk is in three froms namely due to his age, knowledge of scriptures or span of life as a monk. Here knowledge of scriptures means study Sthanang and Samvayang Sutra, age means at least sixty years of age and life as a monk means at least twenty years experience as a monk.

4. **Tapasvi**—It means that monk who has practiced part for a monk and suchlike special austerities.

5. **Glaan**—It means a sick monk.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. Shaiksh—It means newly initiated.

7. Saudharmik—It means monks who have similar dress and fallow the same code.

8. Kula—It means the group under the same teacher.

9. Gana—It means formation that consists of many groups (Kuls).

10. Sangh—The organisation of monks, nuns, householder devotees both male and female.

All these should be served with a desire to shed Karma and not for any fame. The omniscient has termed it as internal austerity. It provides two benefits—one who serves sheds his Karmas, secondly one who has been served gets equanimity, peace and comfort.

A question arises that it is bad to criticise others, to caste aspersion on others, but how far it is proper to call it stealing (adattadan). It is said that a person who criticise others or has hatred for others, he cannot practice the vow of non-stealing. But why is it so ?

Acharya Abhayadev has replied to it in the following manner—Stealing (adatt–not offered) is of four types—not offered by the owner, not offered by a living being, not offered by Trithankar and not offered by the teacher.

Criticism is not an offering by the person who is being criticised, or the Tirthankar or by the spiritual master. Similarly condemnation is also not offered by the person condemned, the Tirthankar or the spiritual master. So such an activity is practicing stealing (adattadan). The person who has discarded adattadan, he should not indulge in criticising or condemning others or having hatred towards others.

अस्तेय व्रत की आराधना का फल ADVANTAGE OF ITS PRACTICE

१३३. इमं च परदव्वहरणवेरमणपरिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विउवसमणं।

१३३. यह अचौर्य व्रत्त के सिद्धान्त रूप प्रवचन भगवान तीर्थंकर देव ने भलीभांति फरमाया है। यह प्रवचन आत्मा के लिए हितकारी है, आगामी भव में शुभ फल प्रदान करने वाला और भविष्य में कल्याणकारी है। यह प्रवचन शुद्ध है, न्याय-युक्ति-तर्क से संगत है, कुटिलता से रहित है, सर्वोत्तम है तथा समस्त दुःखों और पापों को विशेष रूप से शान्त कर देने वाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में अस्तेयव्रत सम्बन्धी भगवत्प्रवचन की महिमा बतलाई गई है। साथ ही व्रत के पालनकर्त्ता को प्राप्त होने वाले फल का भी निर्देश किया गया है।

133. This vow of avoiding taking away (stealing) an article belonging to others, has been narrated in a logical manner by Tirthankar. This lesson is beneficial for the soul. It is going to provide good result in the succeeding life. It is meritorious in future. It is best and logical. It easily leads to salvation. It is the best of all. It pacifies all the troubles and sins completely.

Elaboration—In the present lesson, the importance of the word of Tirthankar has been narrated. Simultaneously the benefits of it to the person who practices this vow have been mentioned.

पूर्वोक्त सूत्रपाठों में शास्त्रकार ने अस्तेय व्रत की महिमा, उसका स्वरूप और इसके विराधक-आराधक के बारे में स्पष्ट विवेचन किया है। अब यहां अचौर्य संवर को साधक के मन-वचन-काया में बद्धमूल करने हेतु इसकी पांच भावनायें निम्नोक्त सूत्र पाठों में बताई है –

In the aforesaid aphorisms the author has lucidly elaborated the importance of vow of non-stealing, its definition as well as its practicers and non practicers. Now he procedes to narrate the five sentiments that absorb this Achorya Samvar mentally, vocally and physically—

अस्तेय व्रत की पाँच भावनाएँ FIVE SENTIMENTS OF THE VOW OF NON-STEALING

१३४. तस्स इमा पंच भावणाओ होंति परदव्व-हरण-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए।

१३४. परद्रव्यहरणविरमण (अदत्तादानत्याग) व्रत की पूरी तरह रक्षा करने के लिए पाँच भावनाएँ हैं, जो आगे कही जा रही हैं।

134. There are five sentiments to completely safe-guard the vow of non-stealing. The same are being narrated here.

प्रथम भावना-निर्दोष उपाश्रय FIRST SENTIMENT- FAULTLESS UPASHRAYA

१३५. पढमं-देवकुल-सभा-प्पवा-वसह-रुक्खमूल-आराम-कंदरागर-गिरि-गुहा-कम्मंतउज्जाण-जाणसाला-कुवियसाला-मंडव-सुण्णघर-सुसाण-लेण-आवणे अण्णम्मि य एवमाइयम्मि दग- मट्टिय-बीज-हरिय-तसपाणअसंसत्ते अहाकडे फासुए विवित्ते पसत्थे उवस्सए होइ विहरियव्वं।

आहाकम्मबहुले य जे से आसित्त-सम्मज्जिय-उवलित्त-सोहिय-छायण-दूमण-लिंपण-अणुलिंपण- जलण-भंडचालणं अंतो बहिं च असंजमो जत्थ वट्टइ संजयाण अट्ठा वज्जियव्वो हु उवस्सओ से तारिसए सुत्तपडिकुट्ठे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं विवत्तवासवसहिसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं-अहिगरणकरणकारावण-पावकम्मविरओ दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

१३५. प्रथम भावना है। (विविक्त एवं निर्दोष वसति का सेवन करना) वह इस प्रकार है-देवालय, सभा-विचार-विमर्श का स्थान अथवा व्याख्यानस्थान, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजकों के ठहरने का स्थान, वृक्षमूल, आराम-लतामण्डप आदि से युक्त, दम्पत्तियों के रमण करने योग्य बगीचा, कन्दरा-गुफा, आकर-खान, गिरिगुहा-पर्वत की गुफा, कर्म-जिसके अन्दर सुधा (चूना) आदि तैयार किया जाता है, बाग-बगीचे, यानशाला-रथ आदि रखने की वाहनशालायें, कुप्यशाला-घर का सामान रखने का स्थान, मण्डप-विवाह आदि के लिए या यज्ञादि के लिए बनाया गया मण्डप, शून्य घर, श्मशान, पहाड़ में बना गृह तथा दुकान तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में जो भी सचित्त जल, मिट्टी, बीज, दूब हरी वनस्पति और चींटी-मकोड़े आदि त्रस जीवों से रहित हो, जिसे गृहस्थ ने अपने लिए बनवाया हो, ऐसे प्रासुक-जीव-जन्तु रहित हो, स्त्री, पशु एवं नपुंसक के संसर्ग से रहित हो और इस कारण जो योग्य हो, ऐसे उपाश्रय में साधु को विहरना चाहिए-ठहरना चाहिए।

(किस प्रकार के उपाश्रय-स्थान में नहीं ठहरना चाहिए? इसका उत्तर यह है-) साधुओं के निमित्त जिसके लिए हिंसा की जाये, ऐसे आधाकर्म के दोष से परिपूर्ण, आसिक्त-जल के छिड़काव वाले, संमार्जित-बुहारी से साफ किये हुए, उत्सिक्त-पानी से खूब सींचे हुए, शोभित-सजाये हुए, छादन-डाभ आदि से छाये हुए, दूमन-कलई आदि से पोते हुए, लिम्पन-गोबर आदि से लीपे हुए, अनुलिंपन-लीपे को फिर लीपा हो, ज्वलन-अग्नि जलाकर गर्म किये हुए या प्रकाशित किये हुए, भाण्डों-सामान को इधर-उधर हटाये हुए अर्थात् साधु के लिए कोई सामान इधर-उधर किया गया हो और जिस स्थान के अन्दर या बाहर (समीप में) जीवविराधना होती हो, ये सब जहाँ साधुओं के निमित्त से हों, वह स्थान-उपाश्रय साधुओं के लिए वर्जनीय है। ऐसा स्थान शास्त्र द्वारा निषिद्ध है।

इस प्रकार विविक्ति वास वसति (निर्दोष स्थान में निवास) रूप समिति के योग -चिन्तन युक्त प्रयोग से संस्कारित साधु का अन्तरात्मा सदा दोषयुक्त आचरण के करने और करवाने के पापकर्म से विरत हो जाता है तथा दत्त-अनुज्ञात अवग्रह में रुचि वाला होता है।

135. The first of the five sentiments is to have a lonely and faultless place of stay. Such a place is a temple, common place to assemble, a place meant for lectures, a place meant for serving water, a place meant for stay of mendicants, the root of a tree, a place covered with creeper for taking rest, a garden suitable for amorous enjoyments of couples, a cave, a mine, a hilly cave, a place where lime is prepared, a garden of flowering trees, a place stationing chariots, the store in a house, an enclosure for celebrating marriages, a place for yajnas, a vacant house (ruin), a cremation ground, a shop or house on a hill and any suchlike

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

place free from organic water, earth, seed, green grass, ants and suchlike mobile living beings, which the householder has build for his own use. It should be free from living beings. It should not have women, animals or eunuchs. It should be worthy due to above reasons. A monk should stay in such a place.

(What kind of place of stay should be avoided? The answer to this question is—) The following places of stay are prohibited in scriptures—A place replete with the Adhakarmi fault like indulging in violence for arranging a place of stay for monks. A place sprinkled with water, cleaned with a broom, drenched with water, decorated, thatched with coir etc., white-washed with lime, plastered with cow-dung etc., repeatedly plastered, warmed or lit by fire, made vacant by shifting things to accomodate monks and a place where living beings are harmed in the neighbourhood. When all this is being done to accomodate monks, such places are prohibited for monks. This is according to scriptures.

Thus a monk who stays in such a place free from faults and suitable for practicing state of equanimity, always saves himself from cause of bad state of existence and sins. He is the one interested in the vow of non-stealing.

द्वितीय भावना–निर्दोष संस्तारक SECOND SENTIMENT : FAULTLESS BEDDING

१३६. बिइयं–आराम–उज्जाण–काणण–वणप्पदेसभागे जं किंचि इक्कडं च कठिणगं च जंतुगं य परामेरकुच्च–कुस–डब्भ–पलाल–मूयग–वल्लय–पुप्फ–फल–तय–प्पवाल–कंद–मूल–तण–कट्ठ–सक्कराइ गिण्हइ सेज्जोवहिस्स अट्ठा ण कप्पए उग्गहे अदिण्णम्मि गिण्हिउं जे हणि हणि उग्गहं अणुण्णवियं गिण्हियव्वं।

एवं उग्गहसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं अहिगरण–करण–कारावण–पावकम्मविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

१३६. दूसरी भावना अनुज्ञात संस्तारक ग्रहण रूप है। वाटिका, बाग, बगीचे, कानन–नगर के समीप का वन और वन–नगर से दूर का वनप्रदेश आदि स्थानों में जो कुछ भी (अचित्त) सूखा घास तथा कठिन–घास की एक जाति विशेष, जन्तुक–पानी में उत्पन्न होने वाला घास, परा नामक घास, मेरा–मूंज का तृण, कूर्च–कूंची बनाने योग्य घास, कुश, डाभ, पलाल, मूयक नामक घास, वल्वज घास, पुष्प, फल, छाल, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, लकड़ी और कंकड़ आदि द्रव्य संस्तारक रूप उपधि के लिए अथवा संस्तारक एवं उपधि के लिए ग्रहण करता है तथा उपाश्रय के भीतर की ग्राह्य वस्तुओं को भी दाता द्वारा दिये बिना ग्रहण करना नहीं कल्पता। तात्पर्य यह है कि उपाश्रय की अनुज्ञा ले लेने पर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाश्रय के भीतर की घास आदि लेना हो तो उनके लिए पृथक् रूप से अनुज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। उपाश्रय की अनुज्ञा प्राप्त कर लेने मात्र से उसमें रखी अन्य तृण आदि वस्तुओं के लेने की अनुज्ञा ले ली, ऐसा नहीं मानना चाहिए।

इस प्रकार अवग्रहसमिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला साधु सदा दोषयुक्त आचरण के कारणभूत पापकर्म के करने और कराने से निवृत्त होता-बचता है और दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला होता है।

136. The second sentiment is about the bedding. The bedding a monk accepts is the lifeless grass, hard grass, grass growing in water, the hay, the grass with which broom is prepared, soft grass, such types of grass as para, mera, moojak, valvaj, flowers, fruit, skin of a tree, root, its wood and the like which he takes for use as bedding. If such articles are lying in the upashraya, the monks do not use them unless they are specifically offered by the owner or the donor. In other words, even if the permission for stay in the upashraya has been obtained, if he wants to use the grass and the like lying in it, he should seek permission for it. Simply by securing the permission for use of upashraya he should not take it for granted as permission for using things lying therein.

Thus a monk whose heart is in a state of equanimity regarding collection of articles saves himself from committing sin and getting sin committed. The sins leading to bad state of existence. He has a bent of mind to accept that only which is properly offered.

तृतीय भावना-शय्या-परिकर्मवर्जन

THIRD SENTIMENT : AVOIDING SINFUL ACTIVITIES FOR GETTING BED

१३७. तइयं-पीढफलगसिज्जासंथरगट्ठयाए रुक्खा ण छिंदियव्वा, ण छेयणेण भेयणेण सेज्जा कारियव्वा, जस्सेव उवस्सए वसेज्ज सेज्जं तत्थेव गवेसिज्जा, ण य विसमं समं करेज्जा, ण णिवाय-पवायउस्सुगत्तं, ण डंसमसगेसु खुभियव्वं, अग्गी धूमो ण कायव्वो, एवं संजमबहुले संवरबहुले संवुडबहुले समाहिबहुले धीरे काएण फासयंतो सययं अज्झप्पज्झाणजुत्ते समिए एगे चरिज्ज धम्मं।

एवं सेज्जासमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं अहिगरण-करणकारावण-पावकम्मविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

१३७. तीसरी भावना शय्या-परिकर्मवर्जन है। (साधु को) चौकी, पट्टे, शय्या और संस्तारक के लिए वृक्षों का छेदन नहीं करना चाहिए। वृक्षों के छेदन या भेदन से शय्या तैयार नहीं करवानी चाहिए। साधु जिसके उपाश्रय में निवास करे-ठहरे, वहीं शय्या की गवेषणा करनी चाहिए। वहाँ की भूमि यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषम (ऊँची-नीची) हो तो उसे सम न करे। पवनहीन स्थान को अधिक पवन वाला अथवा अधिक पवन वाले स्थान को पवनरहित-कम पवन वाला बनाने के लिए उत्सुक न हो-ऐसा करने की अभिलाषा भी न करे, डांस-मच्छर आदि के होने पर क्षुब्ध नहीं होना चाहिए और उन्हें हटाने के लिए आग या धुँआ आदि नहीं करना चाहिए। इस प्रकार संयम में प्रवीण, संवर की प्रधानता वाला, कषाय एवं इन्द्रियों के निग्रह की प्रधानता वाला, चित्त की समाधि की प्रधानता वाला धैर्यवान मुनि काय से इस व्रत का पालन करता हुआ निरन्तर आत्मा के ध्यान में लीन रहकर, समितियुक्त रहकर और एकाकी (राग-द्वेष से रहित) होकर धर्म का आचरण करे।

इस प्रकार शय्यासमिति के योग से भावित अन्तरात्मा वाला साधु सदा दुर्गति के कारणभूत पापकर्म से विरत होता है और दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला होता है।

137. The third sentiment is avoidance of sin for procuring bed. Its nature is as follows : One should not cut trees for preparing planks. He should not get prepared the bed by getting the trees cut. A monk should seek bed only in the locality where he is staying. In case the floor of the upasharaya (place of stay) is uneven, he should not make it even. He should not be anxious to make the place airy which is not airy and the place, which is very airy as not airy. He should not have a desire to do so. He should not feel dejected about mosquitoes. He should not create smoke to remove them. Thus a monk who is awakened towards his self-restraint, who is avoiding inflow of Karma, who is controlling his passions and senses, who is courageous in maintaining the state of equanimity remains continuously cautious about his soul while practicing this vow of non-stealing. He should remain in a state of equanimity, devoid of attachment and hatred while practicing his dharma.

Thus a monk who keeps his inner self in a state of equanimity towards bed remains detached from sinful activities, which are the cause of bad state of existence. He has an attitude to accept only, that which is offered to him according to the code in scriptures.

चतुर्थ भावना-अनुज्ञातभक्तादि **FOURTH SENTIMENT : FOOD OFFERED ACCORDING TO CODE**

१३८. चउत्थं-साहारण-पिंडपायलाभे सति भोत्तव्वं संजएणं समियं, ण सायसूपाहियं, ण खद्धं, ण वेगियं, ण तुरियं, ण चवलं, ण साहसं, ण य परस्स पीलाकरसावज्जं तह भोत्तव्वं जह से तइयवयं ण सीयइ। साहारणपिंडपायलाभे सुहुमं अदिण्णादाणवयणियमविरमणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं साहारणपिंडपायलाभे समिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं अहिगरण–करण–कारावण–पावकम्मविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

१३८. चौथी भावना अनुज्ञातभक्तादि है। वह इस प्रकार है–संघ के सब साधुओं के लिए सम्मिलित आहार–पानी आदि मिलने पर साधु को सम्यक् प्रकार से–यतनापूर्वक खाना चाहिए। शाक और दाल ही अधिक नहीं खानी चाहिये। सरस–स्वादिष्ट भोजन अधिक (या शीघ्रतापूर्वक) नहीं खाना चाहिए (क्योंकि ऐसा करने से अन्य साधुओं को अप्रीति उत्पन्न होती है और वह भोजन अदत्त हो जाता है) तथा जल्दी–जल्दी कवल निगलते हुए भी नहीं खाना चाहिए। ग्रास को झटपट मुँह में नहीं डालना चाहिये। चंचलतापूर्वक–हाथ गर्दन आदि बहुत हिला डुलाकर नहीं खाना चाहिए और न विचारविहीन होकर खाना चाहिए। जो दूसरों को पीड़ाजनक हो और सावद्य पापयुक्त हो इस तरह नहीं खाना चाहिए। साधु को इस रीति से भोजन करना चाहिए जिससे उसके तीसरे व्रत में बाधा उपस्थित न हो। यह अदत्तादानविरमणव्रत का सूक्ष्म–अत्यन्त रक्षा करने योग्य नियम है।

इस प्रकार सम्मिलित भोजन के लाभ में समिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला साधु सदा दुर्गति हेतु पापकर्म से विरत होता है और दत्त एवं अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला होता है।

138. Fourth sentiment is regarding taking offered food and the like. It is like this : When food and water is procured collectively for all the monks, a monk should eat it with proper discrimination. He should not consume the sweat juicy rich food in greater quantity (or hurriedly as it may cause dejection in the mind of other monks as that food then becomes not offered). He should not take the morsels of food hurriedly swallowing them. He should not take his meal in a state of restlessness. He should not eat without proper care and in a way that may cause trouble to others. A monk should take his food in such a way that it may not cause any transgression in the practice of this third vow of non-stealing. This is the subtle principle of properly safeguarding the vow of avoiding stealing.

Thus a monk who maintains a state of equanimity in his mind while jointly having his food, is always away from such sinful acts that may lead to bad state of existence in next life. He has an inclination of taking only that, which is offered strictly according to the code.

पाँचवी भावना–साधर्मिक–विनय FIFTH SENTIMENT : HUMILITY TOWARDS CO-RELIGIONIST

१३९. पंचमगं–साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो, उवगरणपारणासु विणओ पउंजियव्वो, वायणपरियट्टणासु विणओ पउंजियव्वो, दाणगहणपुच्छणासु विणओ पउंजियव्वो, णिक्खमणपवेसणासु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विणओ पउंजियव्वो, अण्णेसु य एवमाइसु बहुसु कारणसएसु विणओ पउंजियव्वो। विणओ वि तवो, तवो वि धम्मो तम्हा विणओ पउंजियव्वो गुरुसु साहुसु तवस्सीसु य।

एवं विणएण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं अहिगरण करण-कारावण-पावकम्मविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

१३९. पाँचवीं भावना साधर्मिक-विनय है। साधर्मिक साधुओं के प्रति विनय का प्रयोग करना चाहिए। (रुग्णता आदि की स्थिति में) उपकार और तपस्या की पारणा-पूर्ति में विनय का प्रयोग करना चाहिए। वाचना अर्थात् सूत्रग्रहण में और गृहीत सूत्र की पुनरावृत्ति में विनय का प्रयोग करना चाहिए। भिक्षा में प्राप्त अन्न आदि अन्य साधुओं को देने में तथा उनसे ग्रहण करने में और विस्मृत अथवा शंकित सूत्रार्थ सम्बन्धी पृच्छा करने में विनय का प्रयोग करना चाहिए। उपाश्रय से बाहर निकलते और उसमें प्रवेश करते समय विनय का प्रयोग करना चाहिए। इनके अतिरिक्त इसी प्रकार के अन्य सैकड़ों कारणों में (कार्यों के प्रसंग में) विनय का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि विनय भी अपने आप में तप है और तप भी धर्म है। अतएव विनय का आचरण करना चाहिए। (विनय किनका करना चाहिए?) गुरुजनों का, साधुओं का और (तेला आदि) तप करने वाले तपस्वियों का।

इस प्रकार विनय से युक्त अन्तःकरण वाला साधु अधिकरण-पाप के करने और करवाने से विरत तथा दत्त-अनुज्ञात अवग्रह में रुचि वाला होता है।

139. Fifth sentiment is humility towards co-religionist. One should follow it. He should behave with humility while dealing with a monk who is sick or who is completing his long fasting. He should practice it when he is taking lesson in scriptures and when he is revising them. He should practice it in offering the collected food to other monks and in accepting food from others. He should practice it when he wants to ask about the lesson, which he has forgotten or about which he has any doubt regarding its real meaning. He should practice it while going out from the Upashraya and while coming in. He should practice it in other suchlike activities also because humility is also a form of austerity and austerity is also dharma. So one should practice humility. For whom one should have a sense of humility ? He should exhibit it for his teachers, monks and those who are fasting for three days or more.

Thus a monk with his inner bent of mind practicing humility, remains detached in doing and getting done the sinful activities. He is interested in accepting only, that which is offered to him according to code.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन (सूत्राङ्क १३५ से १३९ तक) : तृतीय व्रत की पाँच भावनाएँ कही गई हैं। प्रथम भावना में निर्दोष उपाश्रय को ग्रहण करने का विधान किया गया है। आधुनिक काल में उपाश्रय शब्द से एक विशिष्ट प्रकार के स्थान का बोध होता है और सर्वसाधारण में वही अर्थ अधिक प्रचलित है। किन्तु वस्तुतः जिस स्थान में साधुजन ठहर जाते हैं, वही स्थान उपाश्रय कहलाता है। यहाँ ऐसे कतिपय स्थानों का उल्लेख किया गया है जिनमें साधु ठहरते थे। वे स्थान हैं-देवकुल-देवालय, सभाभवन, प्याऊ, मठ, वृक्षमूल, बाग-बगीचे, गुफा, खान, गिरिगुहा, कारखाने, उद्यान, यानशाला (रथादि रखने के स्थान), कुप्यशाला-घर-गृहस्थी का सामान रखने की जगह, मण्डप, शून्यगृह, श्मशान, पर्वतगृह, दुकान आदि।

इन या इस प्रकार से अन्य जिन स्थानों में साधु निवास करे वह निर्दोष होना चाहिए। साधु के निमित्त से उसमें किसी प्रकार का झाड़ना-पौंछना, लीपना-पोतना आदि आरम्भ-समारम्भ न किया जाये।

द्वितीय भावना का आशय यह है कि निर्दोष उपाश्रय की अनुमति प्राप्त हो जाने पर अपने संस्तारक (बिछौने) के लिये वहाँ रखे हुए सूखे घास, पवाल आदि की साधु को आवश्यकता हो तो उसके लिए पृथक् रूप से उसके स्वामी की अनुज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। ऐसा नहीं मानना चाहिए कि उपाश्रय की अनुमति ले लेने से उसके भीतर की वस्तुओं की भी अनुमति प्राप्त कर ली। जो भी वस्तु ग्रहण करनी हो वह निर्दोष और दत्त ही होनी चाहिए।

तीसरी भावना शय्यापरिकर्मवर्जन है। इसका अभिप्राय है कि साधु के निमित्त से पीठ, फलक आदि बनवाने के लिए वृक्षों का छेदन-भेदन नहीं होना चाहिए। उपाश्रय में ही शय्या की गवेषणा करनी चाहिए। वहाँ की भूमि विषम हो तो उसे समतल नहीं करनी चाहिए। वायु अधिक आये या कम आये, इसके लिए उत्कंठित होना नहीं चाहिए। उपाश्रय में डांस-मच्छर सतायें तो चित्त में क्षोभ उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए-उस समय में समभाव रहना चाहिए। डांस-मच्छर भगाने के लिए आग या धूम का प्रयोग करना नहीं चाहिए आदि।

चौथी भावना का सम्बन्ध प्राप्त आहारादि के उपभोग के साथ है। साधु जब अन्य साधुओं के साथ आहार करने बैठे तो सरस आहार जल्दी-जल्दी न खाये, अन्य साधुओं को ठेस पहुँचे, इस प्रकार न खाये। साधारण अर्थात् अनेक साधुओं के लिए सम्मिलित भोजन का उपभोग समभावपूर्वक, अनासक्त रूप से करे।

पाँचवीं भावना साधर्मिक विनय है। समान आचार-विचार वाले साधु साधर्मिक कहलाते हैं। बीमारी आदि की अवस्था में अन्य के द्वारा जो उपकार किया जाता है, वह उपकरण है। उपकरण एवं तपश्चर्या की पारणा के समय विनय का प्रयोग करना चाहिए, अर्थात् इच्छाकारादि देकर, जबर्दस्ती न करते हुए एकत्र या अनेकत्र गुरु की आज्ञा से भोजन करना चाहिए। वाचना, परिवर्तन एवं पृच्छा के समय विनय-प्रयोग का आशय है वन्दनादि विधि करना। आहार के देते-लेते समय विनयप्रयोग का अर्थ है-गुरु की आज्ञा प्राप्त करके देना-लेना। उपाश्रय से बाहर निकलते और उपाश्रय में प्रवेश करते समय विनयप्रयोग का अर्थ आवश्यकी और नैषेधिकी करना आदि है। अभिप्राय यह है कि प्रत्येक क्रिया आगमादेश के अनुसार करना ही यहाँ विनयप्रयोग कहा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—In aphorism 135 to 139, five sentiments of the third vow of non-stealing have been described. In the first sentiment the procedure of having faultless place of stay (upashraya) has been narrated. In the present age the word upashraya is understood to mean a particular place specially designated as such and this meaning is commonly prevalent. But in reality upashraya is that place where the monks stay. Here some such places are mentioned where they stay. They are the temple, the place where assembly is held, the place where water is served, hermitage, the root of a tree, a garden, a cave, a mine, a cave in hills, a factory, a orchard, a place where chariots are stationed, a store of a householder, an enclosure, a vacant house, a cremation ground, a house on a hill, a shop and the like.

Such and other suchlike places where a monk stays should be faultless. They should not in any way be cleaned, plastered and the like specifically for the stay of the monks. No activity involving hurt to living being should be done for monks.

The gist of the second sentiment is that even after securing the permission for stay in a faultless Upashraya, he should again seek permission if he has a need to use any hay or grass or straw lying therein. He should not take it for granted that the permission for use of Upashraya includes the permission for using the things lying therein. Whatever a monk wants to have should be free from any fault and should be the one that is properly offered.

The third sentiment is avoiding activity regarding preparation of bed. It means that trees should not be cut or pierced in order to get prepared stool, plank and the like specifically for a monk. A bed should be sought in the Upashraya itself. In case the ground is uneven, it should not be levelled, one should not feel bad whether it is airy or not. One should not feel disgusted if the mosquitoes trouble in the Upashraya. He should remain in a state of equanimity at that time. He should not lit fire or create smoke so that the mosquitoes may fly away.

The fourth sentiment is about food and its consumption. When a monk sits with other monks to take his meals, he should not take juicy food in a hurry. He should not take his food in such a way that it causes disturbance to other monks. He should take food in a state of equanimity and with a feeling of detachment while having it with other monks.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Fifth contemplation is humility towards co-religionist. A monk who practices the same code of conduct and has the same faith is called co-religionist. The attention given by other monks at the time of illness is called upakarn. A monk should be in a state of humility at the time of upakarn and also when one is completing the period of long fasting. In other words he should first seek permission. He should not compel others. He should seek permission of his spiritual master or those who are there. Humility at the time of taking lessons or seeking clarification about scriptures means that he should properly bow to them according to the code of humility at the time of taking or giving food means that he should take or offer only with the permission of the spiritual master. Humility at the time of going out and entering in the Upashraya means that he should utter the words 'avashyaki' and 'Naishedhiki' respectively at those times. In fact every activity should be according the code laid down in the scriptures and humility lies in following that code.

उपसंहार CONCLUSION

१४०. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ, सुप्पणिहियं, एवं जाव पंचहिं वि कारणेहि मण–वयण काय–परिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अछिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुण्णाओ।

एवं तइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ।

एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं।

॥ तइयं संवरदारं समत्तं त्ति बेमि॥

१४०. इस प्रकार यह तीसरा संवर द्वार मन–वचन–काया द्वारा पांच भावनाओं के चिन्तन प्रयोग से सुरक्षित होकर साधु के दिल–दिमाग में संस्कार रूप में अच्छी तरह बैठ जाता है। इन पांच भावनाओं का पालन जीवन पर्यन्त करना चाहिए। यह महाव्रत आश्रव का निरोधक, कलुषित भावों से रहित अछिद्र, शुभ भावों से युक्त एवं संक्लेश से रहित है। यह भावना योग समस्त जिनेन्द्रों द्वारा अनुज्ञात है। इस प्रकार यह तीसरा संवर द्वार सम्यक् रूप से पालित होता है, शोभित होता है। पार पहुंचाया जाता है। कीर्तित एवं आराधित होता है। ऐसा तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने कहा है। प्ररूपित किया है। यह प्रसिद्ध एवं प्रमाणों से सिद्ध है। सुप्रतिष्ठित है। भव्य जीवों के लिये इसका उपदेश किया गया है। यह प्रशस्त कल्याणकारी मंगलमय है।

॥ तृतीय संवरद्वार समाप्त॥ वैसा मैं कहता हूँ (जैसा मैंने सुना है।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

140. Thus bolstered by application and contemplation of the five sentiments through mind, speech and body this third Samvar dvar fixes into the mind of a monk as an intrinsic attitude (samskar). These five sentiments should be observed throughout life. This great vow blocks the inflow of karmas, is free of pervert feelings and any leakage, has noble thoughts and is free of troubles. This association of sentiments has been conveyed by all jinas. Thus this third Samvar dvar is rightly observed, concluded, praised and practiced. Tirthankar Bhagavan Mahavir Swami has said and preached so. This is well known and authenticated and established. This has been preached for the benefit of the deserving. This is noble, benefic and auspicious.

● THIRD GATEWAY OF SAMVAR CONCLUDED, SO I SAY ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ अध्ययन : ब्रह्मचर्य
FOURTH CHAPTER : BRAHMCHARYA (CHASTITY)

पिछले अध्ययन में तृतीय संवरद्वार अदत्तादानविरमणव्रत का निरूपण किया गया है। अचौर्य महाव्रत का सम्यक् प्रकार से परिपालन ब्रह्मचर्य व्रत को धारण और पालन करने पर ही हो सकता है। इसलिये अदत्तादानविरमण के पश्चात् ब्रह्मचर्य व्रत का निरूपण किया जा रहा है।

In the third gateway of Samvar the vow of avoiding stealing (adatt) has been described. The practice of this vow can be properly done only if one takes the vow of chastity (brahmcharya) and practices it properly. After the vow of non-stealing, the vow of chastity is going to be discussed.

ब्रह्मचर्य की महिमा IMPORTANCE OF CHASTITY

१४१. जंबू ! इत्तो य बंभचेरं उत्तम–तव–णियम–णाण–दंसण–चरित्त–सम्मत्त–विणय–मूलं, यम–नियम–गुणप्पहाणजुत्तं, हिमवंतमहंततेयमंतं, पसत्थगंभीरथिमियमज्झं, अज्जवसाहुजणाचरियं, मोक्खमग्गं, विसुद्धसिद्धिगइणिलयं, सासयमव्वाबाहमपुणब्भवं, पसत्थं, सोमं, सुभं, सिवमयलमक्खयकरं, जइवरसारक्खियं, सुचरियं, सुभासियं, णवरि मुणिवरेहिं महापुरिसधीरसूरधम्मियधिइमंताण य सया विसुद्धं, सव्वं भव्वजणाणुचिण्णं, णिस्संकियं णिब्भयं णित्तुसं, णिरायासं णिरुवलेवं णिव्वुइघरं णियमणिप्पकंपं तवसंजममूलदलियणेम्मं पंचमहव्वयसुरक्खियं समिइगुत्तिगुत्तं।

झाणवरकवाडसुकयं अज्झप्पदिण्णफलिहं सण्णद्धोच्छइयदुग्गइपहं सुगइपहदेसगं च लोगुत्तमं च।

वयमिणं पउमसरतलागपालिभूयं महासगडअरगतुंबभूयं महाविडिमरुक्खखंधभूयं महाणगरपागारकवाडफलिहभूयं रज्जुपिणिद्धो व इंदकेऊ विसुद्धणेगगुणसंपिणद्धं, जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्वं संभग्गमथियचुण्णियकुसल्लिय–पल्लट्ट–पडिय–खंडिय–परिसडिय–विणासियं विणयसीलतवणियम–गुणसमूहं। तं बंभं भगवंतं।

१४१. श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रमुख शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं– हे जम्बू ! इस अदत्तादानविरमण के बाद ब्रह्मचर्य व्रत है। यह ब्रह्मचर्य व्रत, उत्तम तप का, नियमों–उत्तरगुणों का, ज्ञान का, दर्शन का, चारित्र का, सम्यक्त्व का और विनय का मूल है। यह अहिंसा आदि यमों और अभिग्रहादि रूप नियम के प्रधान गुणों से युक्त है। यह हिमवान् पर्वत से भी महान् और तेजोवान् है।। इसका पालन करने से साधकों का अन्तःकरण उदार, गम्भीर और स्थिर हो जाता है। यह सरलात्मा साधुजनों द्वारा आचरित है और मोक्ष का मार्ग है। विशुद्ध–रागादिरहित सिद्ध गति का आश्रय है। शाश्वत एवं बाधा रहित तथा पुनर्भव से रहित बनाने वाला है। यह प्रशस्त–उत्तम गुणों वाला, सौम्य–शुभ या सुखरूप है। शिव–सर्व प्रकार के उपद्रवों से रहित, अचल और अक्षय–कभी क्षीण न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर

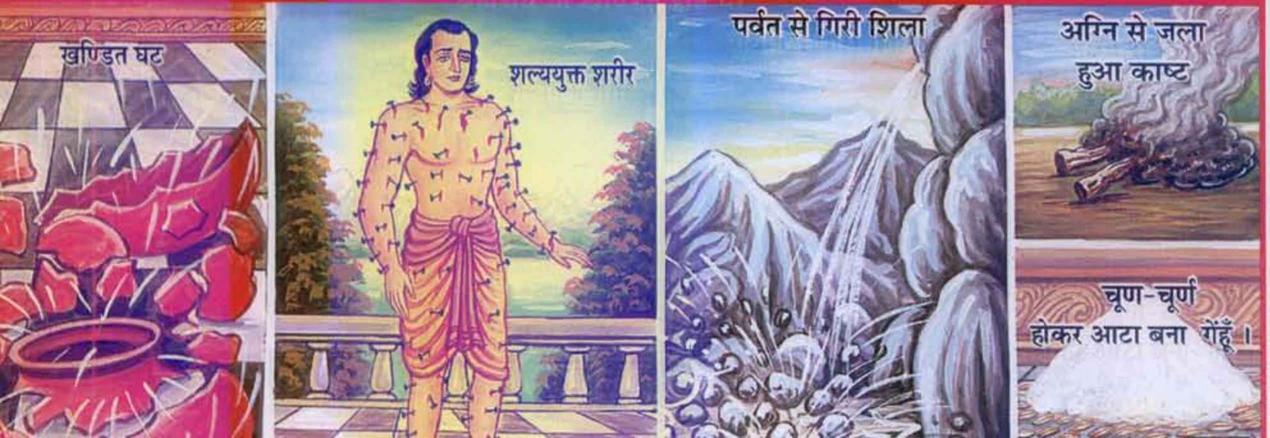

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 19

Illustration No. 19

ब्रह्मचर्य का स्वरूप

चित्र में उदाहरणों द्वारा ब्रह्मचर्य का स्वरूप बतलाया गया है–

(1) जिस प्रकार सरोवर की रक्षा उसके किनारे (पाल) करते हैं, उसी प्रकार धर्म रूपी सरोवर की रक्षा ब्रह्मचर्य रूपी पाल द्वारा होती है। (2) जिस प्रकार कपाट के बंद दरवाजों की रक्षा अर्गला करती है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए धर्म-ध्यान रूपी कपाट है, उस पर उत्तम भावना रूपी अर्गला लगी है, जो कपाट को खुलने नहीं देती। ब्रह्मचर्य व्रत दुर्गति के मार्ग को बंद कर देता है। (3) जिस प्रकार रथ के पहियों के आरों को उसकी नाभि धारण करती है, उसी प्रकार शांति आदि गुणों को ब्रह्मचर्य धारण करता है। (4) जैसे विशाल वृक्ष का स्कंध, शाखाएँ, टहनियाँ, पुष्प आदि का आधार होता है, उसी प्रकार समस्त प्रकार के व्रतों का आधार ब्रह्मचर्य है। (5) धर्मरूपी महानगर की रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य व्रत प्रकोट के कपाट की अर्गला के समान है। (6) अनेक रस्सियों में बँधा इन्द्रध्वज महोत्सव की शोभा बढ़ाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य अनेक गुणों से सुशोभित है।

ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर–

(1) जिस प्रकार भूमि पर पटका हुआ मिट्टी का घड़ा फूट जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर विनय, शील, तप आदि सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। (2) काँटे लगने से शरीर शल्ययुक्त छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार धर्म भी छिन्न-भिन्न हो जाता है। (3) पर्वत से लुढ़की हुई शिला खण्डित हो जाती है, उसी प्रकार अन्य व्रत भी खण्डित हो जाते हैं। (4) जिस प्रकार अग्नि द्वारा जली लकड़ी, पिसा हुआ गेहूँ चूर्ण-चूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य के नष्ट हो जाने से सभी गुण चूर-चूर हो जाते हैं।

—सूत्र 141, पृ. 346

EXPLAINING CELIBACY

The illustrations explain the greatness of celibacy with metaphors --

(1) Like the parapet protects a pool, celibacy protects the pool of religion. (2) A bolt on the door protects a cupboard. In the same way the bolt of noble attitude protects the cupboard of religious meditation that contains the gem of celibacy. Also, celibacy acts as bolt on the door that prevents passage to disgrace. (3) Like the central socket of a wheel holds its spokes, celibacy holds virtues like serenity. (4) As the trunk of a tree is the base of its branches, leaves and flowers, so is the vow of celibacy for all other vows.(5) For the security of the city of religion the vow celibacy acts as the door bolt of city gate. (6) The giant festival flag held with numerous holding ropes adds to the beauty of a festival; in the same way the flag of the vow of celibacy held with numerous holding ropes of virtues adds to the beauty of ascetic conduct.

When vow of celibacy is broken—

(1) As a pitcher thrown on ground shatters to pieces, so on breaking of the vow of celibacy all virtues including modesty, uprightness, and penance get destroyed. (2) As a body is filled with wounds when pierced by thorns, so religion gets damaged when vow of celibacy is broken. (3) As a rock tumbling down the slope of a hill breaks to pieces, so does all other vows shen vow of celibacy is broken. (4) As a piece of wood on burning and wheat grains on grinding turn to powder, so do all virtues when the vow of celibacy is broken.

— Sutra-141, pages-346

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने वाले पद (पर्याय-मोक्ष) को प्रदान करने वाला है। उत्तम मुनियों द्वारा सुरक्षित है, सम्यक् प्रकार से आचरित है और उपदिष्ट है। श्रेष्ठ मुनियों-महापुरुषों द्वारा जो धीर, शूरवीर और धार्मिक धैर्यशाली हैं, सदा अर्थात् कुमार आदि अवस्थाओं में भी विशुद्ध रूप से पाला गया है। यह कल्याण का कारण है। भव्यजनों द्वारा इसका आराधन-पालन किया गया है। यह शंकारहित है अर्थात् ब्रह्मचारी पुरुष विषयों के प्रति विरक्त होने से लोगों के लिए शंकनीय नहीं होते-उन पर कोई शंका नहीं करता। पहले के काल में शुद्ध ब्रह्मचारी पर इतना विश्वास किया जाता था कि उसे राजा के रनवास (रानियों के आवास) में आने जाने की छूट थी। अशंकनीय होने से ब्रह्मचारी निर्भीक रहता है-उसे किसी से भय नहीं होता है। यह व्रत तुष रहित चावल के समान सार युक्त है। इसके पालन में कोई खेद नहीं होता और यह रागादि के लेप से रहित है। चित्त की शान्ति का स्थल है और नियमतः अविचल है। यह तप और संयम का मूलाधार-नींव है। पाँचों महाव्रत इससे सुरक्षित रहते हैं अथवा पंच महाव्रतों में इसका अच्छी तरह रक्षण-जतन आवश्यक है। यह पाँच समितियों और तीन गुप्तियों से गुप्त (रक्षित) है।

(ब्रह्मचर्य की) रक्षा के लिए उत्तम ध्यान रूप सुनिर्मित कपाट वाला तथा अध्यात्म-सद्भावनामय चित्त ही (ध्यान रूपी कपाट को दृढ़ करने के लिए) लगी हुई अर्गला वाला है। यह व्रत दुर्गति के मार्ग को अवरुद्ध एवं आच्छादित कर देने वाला अर्थात् रोक देने वाला है और सद्गति के मार्ग का पथ प्रदर्शक है। यह ब्रह्मचर्यव्रत लोक में उत्तम है।

यह व्रत कमलों से सुशोभित सर (स्वतः बना तालाब) और तडाग (पुरुषों द्वारा निर्मित तालाब) के समान (मनोहर) धर्म की पाल के समान है, अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाला है। किसी महाशकट के पहियों के आरों के लिए नाभि के समान है, अर्थात् धर्म-चारित्र का आधार है-ब्रह्मचर्य के सहारे ही क्षमा आदि धर्म टिके हुए हैं। यह किसी विशाल वृक्ष के स्कन्ध के समान है, अर्थात् जैसे विशाल वृक्ष की शाखायें, प्रशाखायें, टहनियाँ, पत्ते, पुष्प, फल आदि का आधार स्कन्ध होता है, उसी प्रकार समस्त प्रकार के धर्मों का आधार ब्रह्मचर्य है। धर्मरूपी महानगर की रक्षा करने के लिये ब्रह्मचर्य प्रकोट के कपाट की दृढ़ अर्गला के समान है। डोरी से बँधे इन्द्रध्वज के सदृश है। अनेक निर्मल गुणों से व्याप्त है। (यह ऐसा आधारभूत व्रत है) जिसके भंग होने पर सहसा-एकदम सब विनय, शील, तप और गुणों का समूह मिट्टी के फूटे घड़े की तरह नष्ट हो जाते हैं, दहीं की तरह मथित हो जाते हैं, आटे की भाँति चूर्ण-चूरा-चूरा हो जाते हैं, काँटे लगे शरीर की तरह शल्ययुक्त हो जाते है, पर्वत से लुढ़की शिला के समान लुढ़का हुआ-गिरा हुआ, चीरी या तोड़ी हुई लकड़ी की तरह खण्डित हो जाते हैं तथा दुरवस्था को प्राप्त और अग्नि द्वारा दग्ध होकर बिखरे काष्ठ के समान विनष्ट हो जाते हैं। वह ब्रह्मचर्य भगवान है-अतिशयसम्पन्न है।

141. Sudharm Swami says to his principle disciple Jambu Swami—O Jambu ! The vow of chastity is after the vow of non-stealing. The vow of chastity is at the root of all austerities like fasting, codes, special qualities, knowledge, perception, conduct, right belief and humility. It

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

contains important qualities of non-violence and other basic principles. It is more gigantic than Himavan mountain and is grand. In its presence, the heart of man becomes generous, serene and stable. It is practiced by the monks who are straight formered. It is the path leading to salvation. It is pure, free from attachment, spotless and is like the home of liberated souls. It makes one immortal and free from all hurdles and also free from pangs of re-birth. It contains unique attributes. It is auspicious and in the forms of time happiness. It is free from all troubles, stable and provides that status (liberation) which is permanent. It is properly practiced by saints of the best category. They properly follow it and preach it. It is practiced by monks, great man, the brave, the courageous and those who have perseverance in dharma. They follow it meticulously always and even when they are young (or unmarried). It is beneficial. It is practiced by the worthy. It is free from any suspicion. A chaste person is free from any lust. So no body casts any aspersion on them. A chaste person remains fearless as nobody has any doubt about his conduct. He is not afraid of any one. This vow is like pure rice—devoid of husk. It is free from any dejection or element of attachment. It is the place for peace of the mind. It is always stable. It is the foundation of austerities and self-restraint. It is the protector of all the five vows, five states of equanimity and three guptis.

The heart full of good contemplation is like the door-bolt for the well-built gate in the form of best meditation. This vow stops the path leading to bad state of existence. It exposes the path leading to good state of existence. This vow of chastity is the best in the world.

This vow is the protective wall of Dharma, like the attractive banks of a pond or walls of a pool (man made) filled with beautiful lotus flowers. In other words it protects religion. It is like the centre socket for the spokes of a wheel of a cart. It is the foundation of the practice of dharma. The dharma of benevolence rests on the support of the vow of chastity. It is like the trunk of a large tree. Just as the branches, small branches, stalks, leaves, flowers of a large tree are on the support of the trunk, similarly all type of dharma is based on chastity. It is like the sturdy door-bolt of the main gate of the great city of religion. It is like the ceremonial flag tied to a rope. It is full of many spotless characteristics. It is such a vow that with the deviation from it, all the good qualities of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

humility, virginity, austerity wither away suddenly like a pot that breaks. They get churned like curd. They get groomed like flour. They get pierced like the body having thorn pricked into it. They get fallen like a rock fallen from a hill. They get pierced like a sawn piece of wood. They reach a sad state. They get destroyed like the scattered wood burnt with fire. The vow of chastity is like god. It is the most worthy one.

विवेचन : शास्त्रकार ने प्रस्तुत पाठ में प्रभावशाली शब्दों में ब्रह्मचर्य के महात्मय और स्वरूप का निरूपण किया है। उसे तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व एवं विनय का मूल कहा है।

जइ ठाणी जइ मोणी, जइ झाणी वक्कली तवस्सी वा।
पत्थंतो य अबंभं, बंभावि न रोयए मज्झ॥

सं पढियं तो गुणियं, तो मुणियं तो य चेइओ अप्पा।
आवडियपेल्लियामंतिओवि न कुणइ अकज्जं॥[2]

अर्थात् भले कोई कायोत्सर्ग में स्थित रहे, भले मौन धारण करके रहता हो, ध्यान में मगन हो, छाल के कपड़े धारण करता हो या तपस्वी हो, यदि वह अब्रह्मचर्य की अभिलाषा करता है तो मुझे नहीं सुहाता, फिर भले ही वह साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न हो !

शास्त्रादि का पढ़ना, गुनना-मनन करना, ज्ञानी होना और आत्मा का बोध होना तभी सार्थक है जब विपत्ति आ पड़ने पर भी और सामने से आमंत्रण मिलने पर भी मनुष्य अकार्य अर्थात् अब्रह्म सेवन न करे।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य की विद्यमानता में ही तप, नियम आदि का निर्दोष रूप से पालन सम्भव है। जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित हो गया उसका समग्र आचार खण्डित हो जाता है। इस तथ्य पर मूल पाठ में बहुत बल दिया गया है। जमीन पर पटका हुआ घड़ा जैसे फूट जाता है-किसी काम का नहीं रहता वैसे ही ब्रह्मचर्य के विनष्ट होने पर समग्र गुण नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य के भंग होने पर अन्य समस्त गुण मथे हुए दही जैसे, पिसे हुए धान्य जैसे चूर्ण-विचूर्ण (चूरा-चूरा) हो जाते हैं। इत्यादि अनेक उदाहरणों से इस तथ्य को समझाया गया है।

मूल पाठ में ब्रह्मचर्य के लिए **'सया विसुद्धं'** विशेषण का प्रयोग किया गया है। टीकाकार ने इसका अर्थ सदा अर्थात् 'कुमार आदि सभी अवस्थाओं में' किया है। कुछ लोग कहते हैं कि-

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा, पश्चाद्धर्मं चरिष्यसि॥

अर्थात् पुत्रहीन को सद्गति प्राप्त नहीं होती। फलतः उसे स्वर्ग तो कदापि मिल ही नहीं सकता। अतएव पुत्र का मुख देखकर-पहले पुत्र को जन्म देकर पश्चात् चारित्र धर्म का आचरण करना चाहिये। यह मान्यता रखने वालों से हम पूछते हैं कि जब देवव्रत ने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की तो उसे 'भीष्म' क्यों कहा गया? और उम्र भर उसे वंदन और पूजन के योग्य क्यों समझा गया। उसे इच्छा मृत्यु का वरदान क्यों मिला? और मरने के बाद उसकी उत्तम गति क्यों हुई? इसका जवाब सिर्फ एक है कि उसने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया।

2. अभयदेत टीका पृ.132 (आगमोदय)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः उपर्युक्त श्लोक कथन किसी मोहग्रस्त पिता का अपने कुमार पुत्र को संन्यास ग्रहण करने से विरत करने के लिए है। 'चरिष्यसि' इस क्रियापद से यह आशय स्पष्ट रूप से ध्वनित होता है। यह किसी सम्प्रदाय या परम्परा का सामान्य विधान नहीं है, अन्यथा 'चरिष्यसि' के स्थान पर 'चरेत्' अथवा इसी अर्थ को प्रकट करने वाली कोई अन्य क्रिया होती।

परन्तु धृतिमान और धर्मज्ञ पुरूष इस रीति को नहीं मानते। वे प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

अनेकानि सहस्राणि, कुमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवंगतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम्।।

अर्थात् हजारों बाल ब्रह्मचारी संतान उत्पन्न किये बिना ही स्वर्ग में चले गये।

तात्पर्य यह है कि स्वर्ग-प्राप्ति के लिए पुत्र को जन्म देना आवश्यक नहीं है। स्वर्ग-प्राप्ति यदि पुत्र उत्पन्न करने से ही होती हो तो वह बड़ी सस्ती, सुलभ और सुसाध्य हो जाये ! फिर तो कोई विरला ही स्वर्ग से वंचित रहे !

ब्रह्मचर्य उत्तमोत्तम धर्म है और वह प्रत्येक अवस्था में आचरणीय है। आर्हत परम्परा में तथा भारतवर्ष की अन्य परम्पराओं में भी ब्रह्मचर्य की असाधारण महिमा का गान किया गया है और अविवाहित महापुरुषों के प्रव्रज्या एवं संन्यास ग्रहण करने के अगणित उदाहरण उपलब्ध हैं।

ब्रह्मचर्य मत निरपवाद होता है बाकि के अहिंसा आदि व्रतों में तो कदाचित् अपवाद वश छूट भी दी जाती है। लेकिन ब्रह्मचर्य में जरा भी छूट नहीं है। किसी भी हालत में इसका खण्डन विहित नहीं है। जैसा कि भाष्यकार ने कहा है।

न वि किंचि अणुण्णायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं।
मोत्तुं मेहुणभावं, न तं विना रागदोसेहिं॥

अर्थात् तीर्थंकरों ने मैथुन के सिवाय न तो किसी बात को एकान्त रूप से अनुमत किया है और न एकान्ततः किसी चीज का निषेध किया है-सभी विधि-निषेधों के साथ आवश्यक अपवाद जुड़े हैं। सिर्फ मैथुन भाव का ही निरपवाद रूप से त्याग बताया है। कारण यह है कि मैथुन (तीव्र) राग-द्वेष अथवा रागरूप दोष के बिना नहीं होता।

ब्रह्मचर्य की इस असामान्य महिमा के कारण ही-

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जं करेंति ते॥

अर्थात् देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सभी उस ब्रह्मचारी को नमस्कार करते हैं, जो इस दुष्कर व्रत का आचरण करता है।

Elaboration—The author has narrated chastity and its importance in very important words. It is stated to be at the roots of austerities, codes, knowledge, perception conduct, right faith and humility. The purport is that only the person practicing chastity meticulously can practice

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

austerities of the high order. In the absence of chastity, they cannot be practiced properly. It is said, 'a person may be stable in meditation, he may practice silence, he may remain absorbed in concentration, he may wear bark of a tree as his dress, he may practice fasting; but I won't like him if he desires non-chastity even if he is god Brahma himself.'

The study of scriptures, reciting it, remembering it, to become scholar and to get knowledge about soul can be meaningful only if he does not resort to despicable act namely sex even when he is facing trouble or is instigated by the person before him.

In brief austerities, self-restraint and the vows can be practiced faultlessly only if one practices chastity. A person who liquidates his chastity, he adversely affects his entire conduct; this fact has been emphatically established in the aphorism. Just as a pot thrown on the ground breaks and is no longer of any use, similarly when one loses his chastity, he loses all the good qualities when chastity is destroyed, all other virtues becomes meaningless like churned curd or grinded corn. This fact has been explained with many examples.

Just as the boundary wall brings grace to the tank of lotus flowers. Similarly chastity protects dharma.

Central socket is the starting point of the spokes of a wheel and they cannot remain steady when it gets destroyed or damaged. The chariot cannot move in the absence of the wheel. Similarly in the absence of chastity dharma or conduct proves useless. It cannot bring about desired result. Many such illustrations depict the importance of celibacy the reader can easily understands its meaning.

In the aphorism the adjective 'Saya Visudham' has been used. The commentator has interpreted it as 'in all the conditions such as youth and others'. Since people say that a childless person does not get re-birth in good state of existence. He can never be born in heavenly abode so one should adopt ascetic conduct only after having a son.

Here is a question to those who subscribe to this belief—Why Devadutta was called Bhishma when he took the vow of celibacy ? Why, after that, he was considered object of salutation and worship ? Why he was blessed with the power of dying only when he desired ? The reply to all these questions is that he strictly and sincerely observed the vow of celibacy.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In fact such a statement is of a father out of his attachment in order to inspire his son to avoid monkhood. It is not a normal code of any sect or tradition as is evident from the use of word 'Charishyasi' and not 'Charet' in the verse.

Further in the same tradition there is another verse, which means that thousands of unmarried persons practicing chastity have taken rebirth in heavenly abode. This is what wise and religious people believe.

In brief, it is not necessary to give birth to a son in order to attain heaven. In case heaven could be attained just by giving birth to a son, it could be easily and cheaply got without much effort. Then the persons left out from a seat in heaven would have been only a few.

Chastity is the most important dharma. It is worthy to be practiced at every stage of life. According to the tradition of the omniscients and even in other tradition practiced in India, chastity is uniquely appreciated. Innumerable instances are available where unmarried persons have accepted monkhood.

In Jainism, exceptions have been narrated in respect of other vows in certain conditions but there is no exception or laxity permitted in case of the vow of chastity.

In other words, Tirthankars have not described any other matter except mating (sex) as totally acceptable or totally prohibited. In every case there are exceptions in certain essential conditions. It is because mating does not occur without extreme attachment or hatred. It does not happen without the fault of attachment.

The reason for such an exceptional importance of the vow of chastity is that only the very fortunate follow the extremely difficult vow of chastity even celestial beings, demon gods, gandharvas, yakshas, rakshasas and kinnar gods bow to those who practice the difficult vow of chastity or celibacy. They place their forehead at their feet.

बत्तीस उपमाओं से मण्डित ब्रह्मचर्य THIRTY TWO SIMILES OF VOW OF CHASTITY

१४२. तं बंभं भगवंतं – १. गहगणणक्खत्ततारगाणं वा जहा उडुवई। २.मणिमुत्तसिलप्पवालरत्तरयणागराणं य जहा समुद्दो। ३. वेरुलिओ चेव जहा मणीणं। ४. जहा मउडो चेव भूसणाणं। ५. वत्थाणं चेव खोमजुयलं। ६. अरविंदं चेव पुप्फजेट्ठं। ७. गोसीसं चेव चंदणाणं। ८.हिमवंतो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेव ओसहीणं। ९. सीतोदा चेव णिण्णगाणं। १०. उदहीसु जहा सयंभूरमणो। ११. रुगयवरे चेव मंडलियपव्वयाणं पवरे। १२. एरावण इव कुंजराणं। १३. सीहोव्व जहा मियाणं पवरे। १४. पवगाणं चेव वेणुदेवे। १५. धरणो जहा पण्णगिंदराया। १६. कप्पाणं चेव बंभलोए। १७. सभासु य जहा भवे सुहम्मा। १८. ठिइसु लवसत्तमव्व पवरा। १९. दाणाणं चेव अभयदाणं। २०. किमिराउ चेव कंबलाणं। २१.संघयणे चेव वज्जरिसहे। २२. संठाणे चेव समचउरंसे। २३. झाणेसु य परमसुक्कज्झाणं। २४.णाणेसु य परमकेवलं तु पसिद्धं। २५. लेसासु य परमासुक्कलेस्सा। २६. तित्थयरे चेव जहा मुणीणं। २७.वासेसु जहा महाविदेहे। २८. गिरिराया चेव मंदरवरे। २९. वणेसु जहा णंदणवणं पवरं। ३०. दुमेसु जहा जंबू, सुदंसणा विस्सुयजसा जीए णामेण य अयं दीवो। ३१.तुरगवई गयवई रहवई णरवई जह वीसुए चेव राया। ३२. रहिए चेव जहा महारहगए।

एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति एगम्मि बंभचेरे। जम्मि य आराहियम्मि आराहियं वयमिणं सव्वं सीलं तवो य विणओ य संजमो य खंती गुत्ती मुत्ती तहेव इहलोइय-पारलोइयजसो य कित्ती य पच्चओ य, तम्हा णिहुएण बंभचेरं चरियव्वं सव्वओ विसुद्धं जावज्जीवाए जाव सेयट्ठिसंजओ त्ति एवं भणियं वयं भगवया।

१४२. इस प्रकार प्रशस्त लक्षणों वाले भगवान ब्रह्मचर्य की बत्तीस उपमायें इस प्रकार हैं-

१. जिस प्रकार ग्रहगण, नक्षत्रों और तारों के बीच में चन्द्रमा प्रधान है, ऐसे ही सब व्रतों के बीच में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

२. मणि, मुक्ता, शिला, प्रवाल और लाल (रत्न) की उत्पत्ति के स्थानों (खानों) में समुद्र प्रधान है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य सर्व व्रतों का श्रेष्ठ उद्‌भव स्थान है।

३. मणियों में वैडूर्यमणि जैसे श्रेष्ठ है, वैसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है।

४. आभूषणों में मुकुट के समान है।

५. समस्त प्रकार के वस्त्रों में क्षौमयुगल-कपास के वस्त्रयुगल के सदृश है।

६. पुष्पों में श्रेष्ठ अरविंद कमलपुष्प के समान है।

७. चन्दनों में गोशीर्ष चन्दन के समान है।

८. सब औषधियों के जनक हिमवान् पर्वत की तरह यह भी सब व्रतों का जनक है।

९. जैसे नदियों में शीतोदा नदी प्रधान है, वैसे ही सब व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। (यहां सीतानदी भी समझ लेनी चाहिए, क्योंकि दोनों समान है)

१०. समस्त समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र जैसे महान् है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य महत्त्वशाली है।

११. जैसे माण्डलिक अर्थात् गोलाकार पर्वतों में रुचकवर (तेरहवें द्वीप में स्थित) पर्वत प्रधान है, उसी प्रकार सब व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. इन्द्र का ऐरावत नामक गजराज जैसे सर्व गजराजों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब व्रतों में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है।

१३. वन्य जन्तुओं में सिंह प्रधान है। वैसे ही सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान (आधिपत्य रखने वाला है।)

१४. ब्रह्मचर्य सुपर्णकुमार देवों में वेणुदेव इन्द्र के समान श्रेष्ठ है।

१५. जैसे नागकुमार जाति के देवों में धरणेन्द्र प्रधान है, उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

१६. ब्रह्मचर्य कल्पों में ब्रह्मलोक कल्प के समान उत्तम है, क्योंकि प्रथम तो ब्रह्मलोक का क्षेत्र महान् है सभी देवलोकों में ब्रह्मलोक देवलोक की चौड़ाई सबसे ज्यादा (5 रज्जू) है और तीर्थंकर को दीक्षा की प्रेरणा करने वाले लोकांतिक देव इसी देवलोक में रहते हैं इसलिए इसे उत्तम देवलोक कहा गया है और फिर वहाँ का इन्द्र अत्यन्त शुभ परिणाम वाला होता है।

१७. जैसे उपपात सभा, अभिषेक सभा, अलंकार सभा, व्यवसाय सभा और सुधर्मा सभा, इन पाँचों में सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य है।

१८. जैसे स्थितियों में लवसप्तमा-अनुत्तरविमानवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति है, उसी प्रकार सब व्रतों में ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट है। लवसप्तम देव 33 सागर की स्थिति वाले होते हैं और वे नियम से एकावतारी होते हैं (ये पांचों अनुत्तर विमान में होते हैं)।

१९. सब दानों में अभयदान के समान ब्रह्मचर्य सब व्रतों में श्रेष्ठ है।

२०. सब प्रकार के कम्बलों में किरमिची रंग के विशेष कम्बल के समान यह व्रतों में विशिष्ट है।

२१. संहननों में वज्रऋषभनाराचसंहनन के समान ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ है।

२२. संस्थानों में समचतुरस्रसंस्थान के समान ब्रह्मचर्य समस्त व्रतों में उत्तम है।

२३. ध्यानों में परमशुक्लध्यान के समान ब्रह्मचर्य सर्वप्रधान है।

२४. समस्त ज्ञानों में जैसे केवलज्ञान प्रधान है, उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

२५. लेश्याओं में परम शुक्ललेश्या सर्वोत्तम है, वैसे ही सब व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत सर्वोत्तम है।

२६. जैसे सब मुनियों में तीर्थंकर उत्तम होते हैं, ब्रह्मचर्यव्रत सब व्रतों में इसी प्रकार उत्तम है।

२७. जैसे सब क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र उत्तम है, ब्रह्मचर्य सभी व्रतों में वैसा ही श्रेष्ठ है।

२८. पर्वतों में गिरिराज सुमेरु की भाँति ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम व्रत है।

२९. जैसे समस्त वनों में नन्दनवन प्रधान है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

३०. जैसे समस्त वृक्षों में सुदर्शन जम्बू विख्यात है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य विख्यात है।

३१. जैसे अश्वाधिपति, गजाधिपति और रथाधिपति राजा विख्यात होता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्यव्रताधिपति विख्यात है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 21

Illustration No. 21

ब्रह्मचर्य की उपमाएँ

चित्र में ब्रह्मचर्य की बत्तीस उपमाएँ दिखाई गई हैं–(1) गृह-नक्षत्रों के समूह में चन्द्रमा सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। (2) रत्नों की उत्पत्ति-स्थानों में समुद्र प्रधान है, (3) मणियों में वैडूर्यमणि सर्वश्रेष्ठ है, (4) आभूषणों में मुकुट, (5) सभी प्रकार के वस्त्रों में कपास के वस्त्र युगल, (6) पुष्पों में कमल पुष्प, (7) चन्दन में गौशीर्ष चंदन, (8) औषधियों के पर्वतों में हिमवान् पर्वत, (9) नदियों में शीतोदा नदी, (10) समुद्रों में स्वयंभूरमण, (11) गोलाकार पर्वतों में रुचकवर पर्वत, (12) हाथियों में इन्द्र का ऐरावत, (13) वन्य-जीवों में सिंह, (14) सुपर्णकुमार देवों में वेणुदेव इन्द्र, (15) नागकुमार जाति में धरणेन्द्र, (16) कल्पविमानों में ब्रह्मलोक, (17) सभाओं में इन्द्र की सुधर्म सभा, (18) स्थिति में लव सप्तम देवों की स्थिति, (19) दानों में अभयदान, (20) कम्बलों में किरमिची रंग का कम्बल, (21) संहननों में वज्र-ऋषभनाराच संहनन, (22) संस्थानों में समचतुस्त्र संस्थान, (23) ध्यानों में परम शुक्ल-ध्यान, (24) ज्ञानों में प्रसिद्ध परम केवलज्ञान, (25) लेश्याओं में परम शुक्ल-लेश्या, (26) मुनियों में तीर्थंकर, (27) क्षेत्रों में महाविदेह, (28) पर्वतों में गिरिराज मेरु पर्वत, (29) वनों में श्रेष्ठ नन्दन वन और (30) वृक्षों में सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष, (31) जिस प्रकार अश्वपति, गजपति एवं रथपति राजा विख्यात होते हैं, उसी प्रकार सभी व्रतों में ब्रह्मचर्य विख्यात है, (32) जैसे रथिकों में महारथी (वासुदेव) श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार सभी व्रतों में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है।

–सूत्र 142, पृ. 354

METAPHORS FOR VOW OF CELIBACY

(1) As moon is prominent among planets and constellations, so is the vow of celibacy among all vows. (2) Sea is the best among sources of gems, (3) Catseye is the best among gems, (4) crown among ornaments, (5) cotton cloth among all clothes, (6) lotus flower among flowers, (7) Goshirsh sandal-wood among types of sandal-wood, (8) Himvan mountain among herbs bearing mountains, (9) Shitoda river among rivers, (10) Svayamburaman sea among seas, (11) Ruchakvar mountain among circular mountains, (12) Airavat, the elephant of Indra, among elephants, (13) lion among wild animals. (14) Venudev Indra among Suparna Kumar gods, (15) Dharanendra among Naag Kumar gods, (16) Brahmalok among Kalp Vimans, (17) Sudharma assembly of Indra among assemblies, (18) life-span of Lava Saptam gods, (19) charity of non-fear among charities, (20) crimson coloured blanket among blankets, (21) Vajra-rishabh-narach samhanan among types of body structures, (22) Samachaturasra Samsthan among types of body constitutions, (23) ultimate Shukla Dhyan among types of meditation, (24) Keval-jnana among types of knowledge, (25) ultimate Shukla leshya among soul complexions, (26) Tirthankar among sages, (27) Mahavideh Kshetra among areas (geographical), (28) Meru mountain among mountains, (29) Nandan Van among forests, and (3O) Jambu tree called Sudarshan among trees, (31) as a king having horses, elephants and chariots is famous among kings, so is the vow of celibacy among vows, and (32) as Maharathi (Vaasudev) is best among great warriors so is the vow of celibacy among all vows.

— Sutra-142, pages-354

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. जैसे रथिकों में महारथी राजा श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत सर्वश्रेष्ठ है। (श्री सूत्र कृतांग सूत्र के छठे अध्ययन में भगवान के लिए जो उपमाऐं दी गई हैं, उसमें से कई उपमाऐं यहां ब्रह्मचर्य के लिए दी गई हैं और शुरू में ही 'बंभं भगवंतं' बताकर शास्त्रकार ने ब्रह्मचर्य को भगवान बताया है। इससे ये कितना महान है इसकी प्रतिति होती है)

इस प्रकार एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर अनेक गुण स्वतः अधीन-प्राप्त हो जाते हैं। ब्रह्मचर्यव्रत के पालन करने पर निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या सम्बन्धी सम्पूर्ण व्रत अखण्ड रूप से पालित हो जाते हैं, तथा-शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति और इसी प्रकार इहलोक और परलोक सम्बन्धी यश और कीर्ति ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से प्राप्त हो जाती है। लोगों में प्रतीति होती है अर्थात् ब्रह्मचारी पर सबका विश्वास होता है। अतएव एकाग्र-स्थिरचित्त से तीन करण और तीन योग से विशुद्ध-सर्वथा निर्दोष ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और वह भी जीवनपर्यन्त, मृत्यु के आगमन तक। इस प्रकार भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्यव्रत का कथन किया है।

142. Chastity with noble attributes is illustrated in thirty two ways. They are as follows :

(1) Just as moon is prominent among planets, constellations and stars, the vow of chastity is most important among all vows.

(2) Just as sea is most important among places (sources) that produce precious stones, pearls, rocks, coral and jewels, vow of chastity is the best source of all vows.

(3) Just as Vaidurya (catseye) is best among precious stones chastity as best among the vows.

(4) It is like the crown among ornaments.

(5) It is like a dress of cotton among all dresses.

(6) Chastity is most important like crown among ornaments.

(7) Chastity is like lotus, the best among flower.

(8) Just as Himvaan mountain is the producer of medicinal herbs, similarly chastity is the source of all other vows.

(9) Just as Sitoda (and Sita) river is most important among rivers the vow of chastity is most important among vows.

(10) Brahmcharya is great among vows just as Svayamburaman seas is among all the seas.

(11) Just as Ruchakvar mountain is most important among all the mountains, vow of chastity is among all the vows.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(12) Brahmcharya is best among all vows just as Airawat elephant is among all the elephants.

(13) Brahmcharya is best (king) like lion among beasts.

(14) Brahmcharya is best like Venudev among Suparn Kumar gods.

(15) Bramcharya is prominent among vows just as god Dharnendra is prominent among gods of Nagakumar clans.

(16) Brahmalok is best among all heaven as its area is the largest and its Indra (master) has extremely meritorious thoughts. Its width is 5 Rajju. The gods who inspire a Tirthankar to get initiated belong to this heaven. Similarly vow of chastity is best among all the vows.

(17) Just as Sudharma assembly is best among all the five assemblies where gods take birth, where coronation takes place, where ornaments and rich robes are stored, where business is conducted, Bramcharya is best among vows.

(18) Just as the duration of life of gods of Anuttar heavenly abodes is the longests among all the life-span of living beings, Brahmcharya is best among all the vows. The Lavasaptama gods have a life-span of 33 Sagaropam, they reincarnate as Tirthankers and belong to the five Anuttar Vimans.

(19) Just as granting of pardon by making one free from fear of death penalty is the best among all charities, Brahmcharya is best among all vows.

(20) Kirmichi colour blanket is the best of all blankets. Similarly brahmcharya is among all the vows.

(21) Vajra-rishabh Narach structure of the body is the strongest among all body-structures. Similarly brahmcharya is among all the vows.

(22) Chaturasra-sansthan is the best among all shapes. Similarly brahmcharya is among all the vows.

(23) Shukla meditation (concentration) is the best among all meditations. Similarly brahmcharya is among all the vows.

(24) Omniscience is the best among all types of knowledge. Similarly vow of brahmcharya is among all vows.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(25) Shukla leshya is the best among all soul-complexions. Similarly brahmcharya is among all vows.

(26) Tirthankar is excellent among all monks. Similarly brahmcharya is among all the vows.

(27) Mahavideh area is the best among all lands. Similarly vow of brahmcharya (chastity) is among all the vows.

(28) Sumeru mountain is the highest among all mountains. Similarly brahmcharya is among all the vows.

(29) Nandan forest is the best among all forests. Similarly brahmcharya is among all the vows.

(30) Sudarshan Jambu is famous among all the trees. Similarly brahmcharya vow is famous among all the vows.

(31) The king who is master of horses, elephants and chariots is the most famous similarly brahmcharya is among all the vows.

(32) The Maharathi king is most famous among all warrior kings. Similarly vow is brahmcharya is among all the vows.

In the sixth chapter of Sutrakritanga Sutra numerous adjectives and superlatives have been mentioned for Bhagavan (Jina). Many of those have been repeated here for Brahmacharya. Even the epithet Bhagavan has been used for Brahmacharya at the begining. This indicates the greatness of this vow.

Thus by practicing the vow of charity one gets many virtues spontaneously. By practicing this vow all the vows of monkfood are practiced completely according to the code without any deviation, namely the vows of equanimity, austerity, humility, self-restraint, self-control, selflessness. Due to the practice of vow of brahmcharya, one gets fame in this life and in the next life. It is the cause of ones trustworthiness. Every one has a faith in brahmchari (one who practices vow of chastity). So one should practice this vow in doing, getting done and in supporting it, mentally, vocally and physically with a stable mind. He should practice it faultlessly throughout his life Bhagavan Mahavir has mentioned it in this manner.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४३. तं च इमं–

पंच महव्वयसुव्वयमूलं, समणमणाइलसाहुसुचिण्णं।
वेरविरामणपज्जवसाणं, सव्वसमुद्दमहोदहितित्थं॥१॥

१४३. यह ब्रह्मचर्य व्रत इस प्रकार है–

यह ब्रह्मचर्यव्रत पाँच महाव्रतरूप उत्तम व्रतों का मूल है, शुद्ध आचार या स्वभाव वाले मुनियों के द्वारा भावपूर्वक सम्यक् प्रकार से सेवन किया गया है, यह वैरभाव की निवृत्ति और उसका अन्त करने वाला है तथा समस्त समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र के समान दुस्तर है तथा तैरने का उपाय होने के कारण तीर्थस्वरूप है।

143. This vow of Brahmacharya is as follows :-

This vow of brahmcharya is the basis of all vows. It is practiced by all monks who observe pure conduct and behaviour. They practice it heartily in the proper way as mentioned in the code. It liquidates the feeling of enmity. It is very difficult to master as is Svayambhuraman sea. But it provides method to cross the worldly ocean. So it is Teerth.

विवेचन : पूर्वोक्त गाथा में ब्रह्मचर्य की महिमा प्रतिपादित करते हुये शास्त्रकार ने बताया है कि ब्रह्मचर्य पाँचों महाव्रतों का मूलाधार है, क्योंकि इसके खण्डित होने पर सभी महाव्रतों का खण्डन हो जाता है और इसका पूर्णरूपेण पालन करने पर ही अन्य महाव्रतों का पालन सम्भव है। जैसे लवण समुद्र आदि समग्र समुद्रों में बड़ा एवं महा दुस्तर स्वयंभूरमण समुद्र है, वैसे ही ब्रह्मचर्य सब व्रतों में महादुस्तर है तथा संसार समुद्र से पार कराने वाला होने के कारण तीर्थ भी है।

जहाँ सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन होता है, वहाँ वैर-विरोध का स्वतः अन्त हो जाता है। यद्यपि इसके विशुद्ध पालन करने के लिए धैर्य, दृढ़ता एवं संयम की आवश्यकता होती है, अतीव सावधानी बरतनी पड़ती है तथापि इसका पालन करना अशक्य नहीं है। मुनियों ने इसका पालन किया है और भगवान ने इसके पालन करने का उपाय भी बतलाया है।

गाथा में प्रयुक्त '**पंचमहव्वयसुव्वयमूलं**' इस पद के अनेक अर्थ होते हैं, जो इस प्रकार हैं-(१) अहिंसा, सत्य आदि महाव्रत नामक जो सुव्रत हैं, उनका मूल। (२) पाँच महाव्रतधारी साधुओं के उत्तम नियमों का यह मूल है, (३) पाँच महाव्रतों का तथा सुव्रतों अर्थात् अणुव्रतों का मूल, और (४) हे पंचमहाव्रत ! अर्थात् हे पाँच महाव्रतों को धारण करने के कारण सुव्रत-शोभन व्रत वाले (शिष्य !) यह ब्रह्मचर्य मूल (व्रत) है।

Elaboration—In the above aphorism, the importance of the vow of chastity has been described. Chastity is the very basis of all the five vows because all the vows are broken when this vow is transgressed.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

When this vow is practiced completely according to the code, there is possibility of meticulously following other vows. Among all seas, including Lavan Samudra, Svayambhu raman sea is the most difficult to cross; in the same way brahmacharya is most difficult to master. This vow is like the teerth to cross the worldly ocean of life, death and re-birth.

When the vow of brahmcharya is meticulously followed, the enmity comes to an end itself. Although there is a need of perseverance, firmness and self-restraint for its proper practice and one has to be extremely cautions, yet its practice is not impossible. Monks have practiced it and Bhagavan Mahavir has told the method how it can be practiced.

The word Panch mahavya suvvayamulam has many meanings. They are as follows : (1) The root of all good vows such as non-violence, truth and others. (2) The basis of all the worthy principles relating to the vows of monks who practice five major vows. (3) The basis of five major vows and of partial vows. (4) Practitioners of five major vows are addressed as those who observe good vows when they meticulously follow this vow so brahmcharya is the fundamental vow.

१४४. तित्थयरेहि सुदेसियमग्गं, णरयतिरिच्छविवज्जियमग्गं।
सव्वपवित्तिसुणिम्मियसारं, सिद्धिविमाणअवंगुयदारं॥ २॥

१४४. तीर्थंकर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने का गुप्ति आदि मार्ग भलीभाँति बताया है। यह नरकगति और तिर्यंचगति के मार्ग को रोकने वाला है, अर्थात् ब्रह्मचर्य आराधक को नरक-तिर्यंचगति से बचाता है, सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त बनाने वाला तथा मुक्ति और वैमानिक देवगति के द्वार को खोलने वाला है।

144. Revered Tirthankars have narrated clearly the path or the method to properly practice the vow of chastity (brahmcharya). It blocks the very path leading to hellish or animal state of existence. In other words it saves one from re-birth in hell or in animal state. It turns all the practices beneficial and opens the gateway for heaven.

विवेचन : तीर्थंकर भगवान ने ब्रह्मचर्यव्रत का निर्दोष पालन करने के लिए नौ गुप्ति आदि उपाय बताये हैं। (नव गुप्ति की विस्तार से जानकारी के लिए देखिये स्थानांग सूत्र स्थान-9 और उत्तराध्ययन सूत्र अ.-16) तीर्थंकर निर्दिष्ट उन उपायों का आलम्बन नहीं लिये जाने पर ब्रह्मचर्य की आराधना नहीं हो सकती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस गाथा में यह भी स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्मचर्य का निर्मल रूप से पालन करने वाला सिद्धि प्राप्त करता है। यदि उसके कर्म कुछ अवशेष रह गये हों तो वह वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है।

Elaboration—Tirthankars have stated the methods for properly practicing the vow of chastity. Those methods are guptis and others. They include nine prohibitions. In their absence brahmcharya cannot be practiced. (For details of nine Guptis see chapter-9 of Sthananga Sutra and chapter 16 of Uttradhyayan Sutra).

It is clearly stated in this aphorism that one who practices faultlessly chastity, he can attain salvation. In case some Karmas are still in existence, he takes birth among heavenly celestial beings.

१४५. देव–णरिंद–णमंसियपूयं, सव्वजगुत्तममंगलमग्गं।
दुद्धरिसं गुणणायगमेक्कं, मोक्खपहस्स वडिंसगभूयं॥ ३॥

१४५. देवेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा जो नमस्कृत हैं, अर्थात् देवेन्द्र और नरेन्द्र जिनको नमस्कार करते हैं, उन महापुरुषों के लिए भी ब्रह्मचर्य पूजनीय है। जगत् के सब मंगल कार्यों का यह मार्ग रूप है। कोई इसका पराभव नहीं कर सकता या इसका पराभव करना दुष्कर है। यह सभी गुणों का एकमात्र नायक है और मोक्ष मार्ग के लिये मस्तक के मुकुट के समान है।

145. Persons to whom kings of gods and those of human beings bow, they too worship chastity. It is the primary path to everything auspicious in the world. Nobody can reduce its importance. It is very difficult. It is unique among all the virtues. It is like crown among methods of salvation.

विवेचन : देवेन्द्र–नरेन्द्र आदि गणधरों की पूजा करते हैं और गणधर आदि महापुरुष ब्रह्मचर्य की अर्चना करते हैं, अतः ब्रह्मचर्य पूज्यों का भी पूज्य है। ब्रह्मचर्य को सब मंगलों का उपाय बताया गया है। तात्पर्य यह है मंगल का अर्थ है : मं – पाप को, गलं – गलाने वाला अथवा **मंग** – सुख को, लं – देने वाला। संसार में अर्हत् भक्ति आदि जितने भी मंगल कार्य हैं उन सबका मार्ग ब्रह्मचर्य है।

Kings of gods and those of humans worship Ganadhars and they in turn worship Bramacharya. Thus it is revered by the revered. It is said to be the instrument of all that is auspicious (Mangal). The word Mangal is derived two ways—Man means sin and galam means that which eats up. And mang means happiness and lam means that which endows. Thus Brahmacharya is instrumental in all the auspicious deeds including worship of Arhat.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

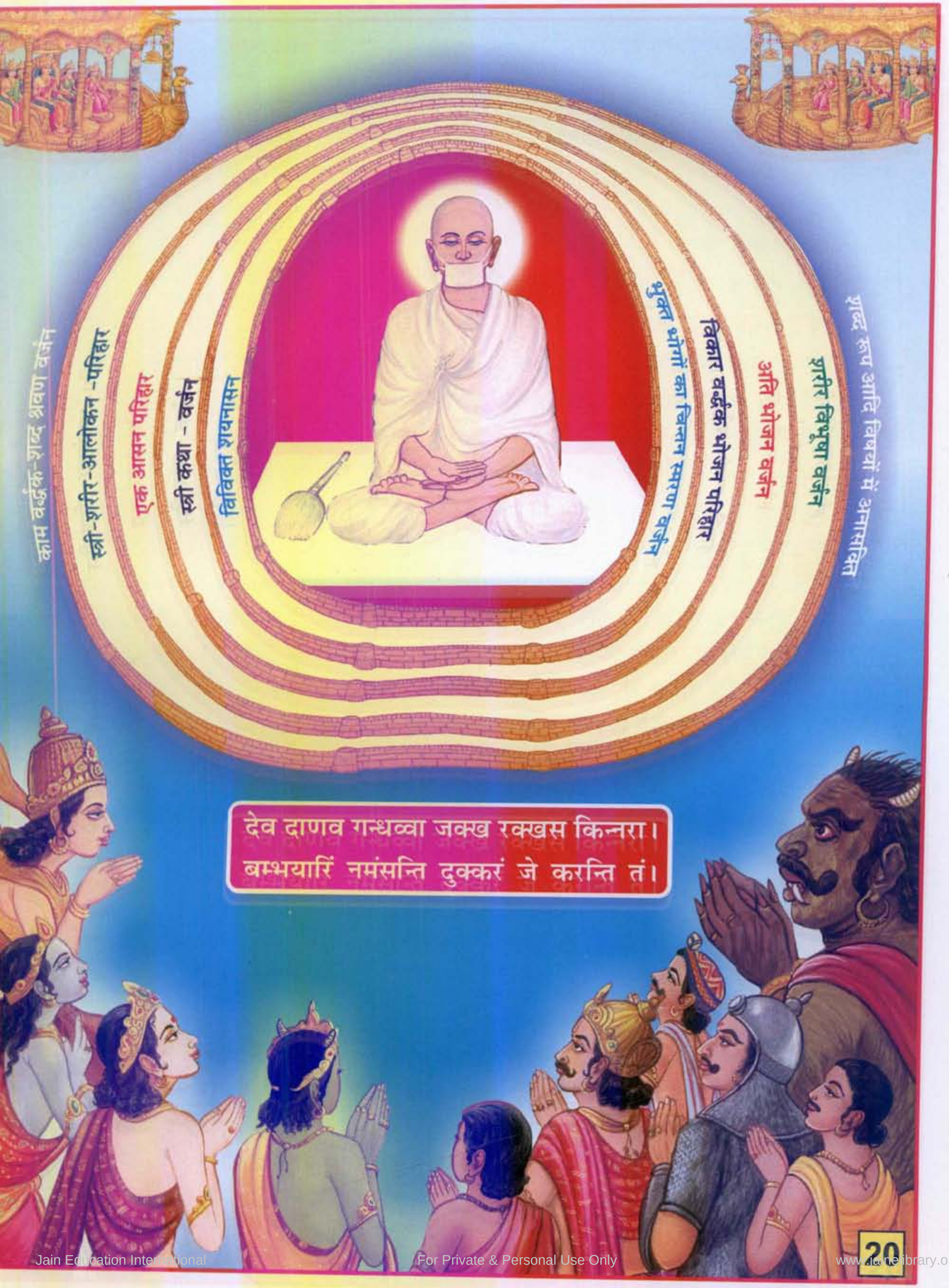

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 20

Illustration No. 20

ब्रह्मचर्य की महिमा

देव दाणव गन्धव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
बम्भयारिं नमंसन्ति दुक्करं जे करन्ति तं।।

दस समाधि के स्थान कहे गये हैं–(1) विविक्त शयनासन, (2) स्त्री कथा-वर्जन, (3) एक आसन परिहार, (4) स्त्री-शरीर-आलोकन-परिहार, (5) कामवर्द्धक शब्द श्रवण वर्जन, (6) भुक्त भोगों का चिन्तन स्मरण वर्जन, (7) विकार वर्द्धक भोजन परिहार, (8) अति भोजन वर्जन, (9) शरीर विभूषा वर्जन, (10) शब्द रूप आदि विषयों में अनासक्ति।

इन दस समधि स्थानों से संरक्षित दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले मुनि को देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं।

–सूत्र 141, पृ. 360

THE GLORY OF CELIBACY

Even divine beings like Asurs, Gandharvas, Yakshas, Rakshasas and Kinnars bow to those who practice the difficult vow of celibacy protected by the following ten places of restraint related to this vow–(1) Isolated place of sleeping and sitting. (2) Avoiding talk about women. (3) Not sitting on the same seat with women. (4) Not looking at the body of a woman. (5) Not listening to lustful talks. (6) Avoiding recalling instances of past enjoyments. (7) Avoiding eating of exciting food. (8) Avoiding excessive eating. (9) Avoiding embellishment of body. (10) Apathy towards indulgence in activities of sense organs including those of hearing and taste.

— Sutra-141; pages-360

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४६. जेण सुद्धचरिएण भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू स इसी स मुणी स संजए स एव भिक्खू जो सुद्धं चरइ बंभचेरं। इमं च रइ–राग–दोस–मोह–पवड्ढणकरं किंमज्झ–पमायदोसपासत्थ–सील–करणं अब्भंगणाणि य तेल्लमज्जणाणि य अभिक्खणं कक्ख–सीस–कर–चरण–वयण–धोवण–संबाहण–गाय–कम्म–परिमद्दणाणुलेवण–चुण्णवास–धुवण–सरीर–परिमंडण–बाउसिय–हसिय–भणिय–णट्ट–गीय–वाइय–णडणट्टग–जल्ल–मल्ल– पेच्छणवेलंबगं जाणि य सिंगारागाराणि य अण्णाणि य एवमाइयाणि तव–संजम–बंभचेर–घाओवघाइयाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं वज्जियव्वाइं सव्वकालं।

१४६. ब्रह्मचर्य महाव्रत का शुद्ध रूप से पालन करने से ही मनुष्य सुब्राह्मण–यथार्थ नाम वाला, सुश्रमण–सच्चा तपस्वी और सुसाधु–निर्वाण साधक वास्तविक साधु कहा जाता है। जो शुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करता है वही श्रेष्ठ ऋषि अर्थात् यथार्थ तत्त्वद्रष्टा है, वही मुनि–तत्त्व का वास्तविक मनन करने वाला है, वही संयत–संयमवान् है और वही सच्चा भिक्षु–निर्दोष भिक्षाजीवी है।

ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले पुरुष को इन आगे कहे जाने वाले व्यवहारों का त्याग करना चाहिए–रति–इन्द्रिय–विषयों के प्रति राग–परिवारिक जनों के प्रति स्नेह, द्वेष और मोह–मूढ़ता को बढ़ाने वाला, निस्सार प्रमाददोष तथा पार्श्वस्थ–शिथिलाचारी साधुओं का शील–आचार (जैसे निष्कारण शय्यातरपिण्ड का उपभोग आदि) और घृतादि की मालिश करना, तेल लगाकर स्नान करना, बार–बार बगल, सिर, हाथ, पैर और मुँह धोना, पैर आदि दबाना–पगचम्पी करना, परिमर्दन करना–समग्र शरीर को मलना, विलेपन करना, चूर्णवास–सुगन्धित चूर्ण–पाउडर से शरीर को सुवासित करना, अगर आदि की धूप देना–शरीर को धूपयुक्त करना, शरीर को मण्डित करना–सुशोभित करना, बाकुशिक कर्म करना–नखों, केशों एवं वस्त्रों को सँवारना, हँसी–ठट्ठा करना, विकारयुक्त भाषण करना, नाट्य, अश्लील गीत, वादित्र, नटों, नृत्यकारकों और जल्लों–रस्से पर खेल दिखलाने वालों और मल्लों–कुश्तीबाजों का तमाशा देखना तथा इसी प्रकार की अन्य बातें जो श्रृंगार का आगार हैं–श्रृंगार के स्थान हैं और जिनसे तपश्चर्या, संयम एवं ब्रह्मचर्य का उपघात–आंशिक विनाश या घात–पूर्णतः विनाश होता है, ब्रह्मचर्य का आचरण करने वाले को सदैव के लिए त्याग देना चाहिए।

146. The monk who faultlessly practices the major vow of brahmcharya is one who is worthy of his name. He is a true practitioner of austerities. He is a true monk. One who meticulously practices brahmcharya, he is rishi. It means he has true perception of essentials. He truly ponders over the essentials. He is the real follower of restraints. He is the real saint leading the life based on faultless offerings.

A practitioner of the vow of brahmcharya should detach himself from the activities mentioned ahead. He should avoid attachment towards

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

senses, attachment towards the members of his family, the hatred and the delusion that increases the ignorance, slackness, the conduct followed by monks who have gone astray (just as those who accept food from the owner of the home who has provided the place of stay and suchlike others). The activities like massaging with ghee, taking bath after using oil, washing armpits, head, hand, feet and face again and again, massaging, rubbing the feet, rubbing the entire body, applying paste or fragrant powder or any sweet smelling thing on the body, decorating the body, trimming nails, locks of hair and clothes, engaging in loud laughter, making speech with a polluted mind, dancing, seeing actors, dancers, exhibiting their performance on ropes, witnessing wrestling and other suchlike acts which are sources of temporal enjoyment, should be totally avoided for ever. Such activities adversely affect self-restraint, austerities and chastity partially or totally.

ब्रह्मचर्य–रक्षक नियम **CODES SAFE-GUARDING CHASTITY**

१४७. भावियव्वो भवइ य अंतरप्पा इमेहिं तव–णियम–सील–जोगेहिं णिच्चकालं।

किं ते ?

अण्हाणग–अदंतधोवण–सेय–मल–जल्लधारणं मूणवय–केसलोय–खम–दम–अचेलग–खुप्पिवासलाघव–सीउसिण–कट्ठसिज्जा–भूमिणिसिज्जा–परघरपवेस–लद्धावलद्ध–माणावमाण–णिंदण–दंसमसग–फास–णियम–तव– गुण–विणय–माइएहिं जहा से थिरतरगं होइ बंभचेरं।

इमं च अबंभचेर–विरमण–परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख–पावाणं विउसमणं।

१४७. (ब्रह्मचर्य साधक की) आगे कहे जाने वाले तप, नियम और शील के प्रवृत्ति योगों से अन्तरात्मा को नित्य–निरन्तर भावित–वासित करना चाहिए।

वे कौन–से प्रवृत्ति योग हैं ?

(वे ये हैं–) स्नान नहीं करना, दन्तधोवन नहीं करना, स्वेद (पसीना) और पसीने से मिश्रित मैल को शरीर से पृथक् नहीं करना या धारण करना, मौनव्रत रखना, केशों का लुंचन करना, क्षमा करना, इन्द्रियों का दमन करना, अचेलकता–वस्त्ररहित होना अथवा अल्प वस्त्र धारण करना, भूख–प्यास सहना, लाघव–उपधि अल्प रखना, सर्दी, गर्मी सहना, काष्ठ की शय्या, भूमिनिषद्या–जमीन पर आसन, परगृहप्रवेश–शय्या या भिक्षादि के लिए गृहस्थ के घर में जाना और प्राप्ति या अप्राप्ति (को समभाव से सहना), मान, अपमान, निन्दा एवं दंश–मशक का क्लेश सहन करना, नियम अर्थात् द्रव्यादि सम्बन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिग्रह करना, तप तथा मूलगुण आदि एवं विनय आदि योगों से अन्तःकरण को भावित करना चाहिए; जिससे ब्रह्मचर्यव्रत खूब स्थिर-दृढ़ हो।

अब्रह्मनिवृत्ति (ब्रह्मचर्य) व्रत की रक्षा के लिए भगवान महावीर ने यह प्रवचन कहा है। यह प्रवचन परलोक में फलप्रदायक है, भविष्य में कल्याण करने वाला है, शुद्ध है, न्याययुक्त है, अकुटिल (सरल) है, सर्वोत्तम है और दुःखों और पापों का उपशमन करने वाला है।

147. Avoiding the prohibitions, the practitioner of vow of celibacy should engage himself in activities mentioned ahead.

What are these activities ? Those activities are as under :

Not to take bath, not to wash teeth, to allow perspiration to stick to the body to allow the dirt stick to the body, to practice complete silence, to remove hair by hand, to forgive, to subdue senses, to remain without clothes or to wear a little clothing, to endure calmly pangs of hunger and thirst, to keep only a few articles, to endure heat and cold, to sleep on a piece of wood, to have a seat on ground, to go to the houses for seeking offerings and to remain in state of equanimity both when he gets or does not get alms, to tolerate disgrace, praise or adverse talk about him, to tolerate mosquito bite and the like are such activities. He should make a decision in his mind in what manner he shall accept the offering and stick to it (the abhigraha). He should practice austerities and other basic principles. He should sense the masters with a sense of humility so that he may remain completely steadfast in his vow of brahmacharya.

Bhagavan Mahavir has given this sermon in order to remain safe in practice of the vow of brahmcharya. It is beneficial in the next life and in future. It is pure, based on justice and free from crookedness. It is the best of all. It eliminates or subdues pains and sins.

विवेचन : कामवासना ऐसी प्रबल है कि तनिक-सी असावधानी होते ही मनुष्य के मन को विकृत कर देती है। यदि मनुष्य तत्काल न सँभल गया तो वह उसके वशीभूत होकर दीर्घकालिक साधना से पतित हो जाता है और फिर न घर का न घाट का रहता है। उसकी साधना खोखली, निष्प्राण, दिखावटी या आडम्बरमात्र रह जाती है। ऐसा व्यक्ति अपने साध्य से दूर पड़ जाता है। उसका बाह्य कष्टसहन निरर्थक बन जाता है।

प्रस्तुत पाठों में अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रभावशाली शब्दों में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन किया गया है। यह महिमागान जहाँ उसकी श्रेष्ठता को प्रदर्शित करता है, वहीं उसकी दुराराध्यता का भी सूचक है। यही कारण है कि इसकी आरधना के लिए अनेकानेक विधि-निषेधों का दिग्दर्शन कराया गया है।

सच्चे साधक को अपने उच्चतम साध्य पर-मुक्ति पर और उसके उपायों पर ही अपना सम्पूर्ण मनोयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केन्द्रित करना चाहिए। उसे शारीरिक वासना से ऊपर उठ जाना चाहिए। जो शरीर-वासना से ऊपर उठ जाता है, उसे स्नान, दन्तधोवन, देह के स्वच्छीकरण आदि की आवश्यकता नहीं रहती। **'ब्रह्मचारी सदा शुचिः'** इस कथन के अनुसार ब्रह्मचारी सदैव पवित्र होता है, उसे जल से पवित्र होने की आवश्यकता नहीं होती। स्नान 'काम' के आठ अंगों में एक अंग माना गया है। जैसे-गाय, भैंस आदि पशु रूखा-सूखा, स्नेहहीन और परिमित आहार करते हैं, अतएव उनके दाँत बिना धोये ही स्वच्छ रहते हैं, उसी प्रकार अन्त-प्रान्त और परिमित आहार करने वाले मुनि के दाँतों को भी धोने की आवश्यकता नहीं होती।

अभिप्राय यही है कि ब्रह्मचर्य के पूर्ण आराधक को शास्त्रोक्त सभी विधि-निषेधों का अन्तःकरण से, आत्मशोधन के उद्देश्य से पालन करना चाहिए। ऐसा करने पर ही उसका यह महाव्रत सुरक्षित रहता है। सुरक्षित ब्रह्मचर्य के अलौकिक तेज से साधक की समग्र साधना तेजोमय बन जाती है, उसकी आन्तरिक अद्‌भुत शक्तियाँ चमक उठती हैं और आत्मा तेजःपुञ्ज बन जाता है। ऐसी स्थिति में ही सुरेन्द्र, असुरेन्द्र और नागेन्द्र साधक के चरणों में नतमस्तक होते हैं।

पाँच भावनाओं के रूप में आगे भी ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के उपायों का प्ररूपण किया गया है।

Elaboration—Amorous lust is so strong that a little slackness pollutes the mind. In case the person concerned does not become cautious immediately, he as a result of it, falls down from his life of long austere practices. He is not then respected by the public or his family. His ascetic practice then becomes meaningless, lifeless and artificial. Such a person goes very much astray from his goal. His tolerance of troubles becomes meaningless.

In the current aphorisms, the vow of brahmcharya has been appreciated in a forceful and effective manner. It exhibits its sublime nature and also indicates that it is very difficult to be practiced. So many methods for its practice and several prohibitions have been underlined.

A true practitioner should concentrate fully on liberation and the methods which help in attaining it. One who rises above physical pleasures has no need for bathing, washing teeth, washing body and the like. He is always clean due to celibacy. He has no need to clean himself with water. Bathing is one of the ingredients that produces lust. A cow, buffalo and suchlike take dry food in limited quantity and their teeth remain clean even without washing them. Similarly a monk who takes only tasteless food and in limited quantity, he has no need to wash his teeth.

In brief a person who totally practices brahmcharya, he should follow all the principles laid down in the scriptures meticulously and avoid all the prohibitions from the core of his heart for self-purification. Thus his vow shall remain secure. Due to the unique aura of such a well-guarded

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

chastity, his entire ascetic practice becomes bright. The unique inner power starts shining and his soul becomes grand. When he attains that stage, only then the masters of gods and the masters of asuras and nagas—The demon gods bow to him.

Further five sentiments for the protection of the vow of chastity have been narrated.

ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनाएँ FIVE SENTIMENTS OF VOW OF CHASTITY

पूर्वोक्त सूत्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा, गौरव, स्वरूप तथा ब्रह्मचर्य पालने वाले को ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये किस प्रकार सावधान रहना चाहिए, इसका विशद निरूपण किया गया है। अब आगे ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा के लिये पांच भावनायें बताई गई हैं।

In preceding aphorisms the importance, glory and description of the vow of Brahmacharya has been given in details. Also mentioned is the awareness needed for protecting the vow taken. Now the five sentiments for bolstering the vow of celibacy are detailed.

प्रथम भावना–विविक्त–शयनासन FIRST SENTIMENT : ALOOF BED

१४८. तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थवयस्स होंति अबंभचेरविरमणपरिरक्खणट्ठयाए–

पढमं–सयणासण–घर–दुवार–अंगण–आगास–गवक्ख–साल–अभिलोयण–पच्छवत्थुक–पसाहणग–ण्हाणिगावगासा, अवगासा जे य वेसियाणं, अच्छंति य जत्थ इत्थियाओ अभिक्खणं मोहदोस–रइराग–वड्ढणीओ, कहिंति य कहाओ बहुविहाओ, ते वि हु वज्जणिज्जा। इत्थि–संसत्त–संकिलिट्ठा, अण्णे वि य एवमाई अवगासा ते हु वज्जणिज्जा।

जत्थ मणोविब्भमो वा भंगो वा भंसणा [भसंगो] वा अट्टं रुद्दं च हुज्ज झाणं तं तं वज्जेज्जऽवज्जभीरू अणाययणं अंतपंतवासी।

एवमसंसत्तवास–वसहीसमिइ–जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा, आरयमण–विरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

१४८. अब्रह्मचर्य से विरतिरूप चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिए ये पाँच भावनाएँ हैं–

प्रथम असंसक्त वासवसति समिती भावना : (उनमें से) प्रथम भावना इस प्रकार है–शय्या, आसन, गृहद्वार (घर का दरवाजा), आँगन, आकाश–ऊपर से खुला स्थान, गवाक्ष–झरोखा, शाला–सामान रखने का कमरा आदि स्थान, अभिलोकन–बैठकर देखने का ऊँचा स्थान, पश्चाद्‌गृह–पिछवाड़ा–पीछे का घर, प्रसाधनक–नहाने और श्रृंगार करने का स्थान इनके अतिरिक्त जहां वेश्याओं के स्थान–अड्डे हैं और जहाँ स्त्रियाँ बैठती–उठती हैं और बार–बार मोह, द्वेष, कामराग और स्नेहराग की वृद्धि करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाली बहुत प्रकार की कथाएँ कहती हैं-बातें करती हैं, उनका भी ब्रह्मचारी को वर्जन करना चाहिए। ऐसे स्त्री के संसर्ग के कारण संक्लिष्ट-संक्लेशयुक्त अन्य जो भी स्थान हों, वे भी निश्चय ही त्यागने योग्य हैं। इसी प्रकार के अन्य स्थान भी वर्जनीय समझने चाहिए जहाँ रहने से मन में काम विकलता होती हो, ब्रह्मचर्य भग्न होता हो या उसका आंशिक रूप से खण्डन होता हो, जहाँ रहने से आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान होता हो, उन-उन अनायतनों-अयोग्य स्थानों का पापभीरु ब्रह्मचारी-परित्याग करे। साधु तो ऐसे स्थान पर ठहरता है जो अन्त-प्रान्त हों अर्थात् इन्द्रियों के प्रतिकूल हो।

इस प्रकार असंसक्तवास-वसति-समिति के अर्थात् स्त्रियों के संसर्ग से रहित स्थान का त्याग रूप समिति के चिन्तनयुक्त प्रयोग से साधु की अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य के संस्कारों से पुष्ट हो जाती है, उसका मन ब्रह्मचर्य में लीन हो जाता है और उसकी इन्द्रियाँ विषयों से निवृत्त हो जाती हैं। वह इन्द्रिय विजेता साधु ब्रह्मचर्य की पूर्णतया सुरक्षा कर लेता है।

148. There are five sentiments for safeguarding the fourth vow of avoiding non-chastity.

First Sentiment—It is avoidance of the place where women stay. It is as follows—bed, seat, gate of the house, courtyard, open space, window, store room, a higher place where one can see others while sitting, back yard of the home, bath room, dressing room—all these places should be avoided by the person who practices chastity as they are places where he can come in contact with women.

Further, the whorehouses and the places where generally women sit and recite many types of stories. These and other such places that increase lust, delusion, hatred, affection and the like should be avoided by the brahmchari. He should avoid even other suchlike places which can create adverse sensitivity in the mind due to contact with women. There are places, which create restlessness or adversely affect the mind. This eliminates the vow of brahmcharya partially or totally and creates feelings of sorrow or anger. A brahmchari is afraid of such sinful activities. He should therefore avoid such undesirable places. A monk stays only at such a place which is isolated and according to his codes.

Thus a person who stays, in a place devoid of contact with women, maintains his mind in a state of equanimity, in a state wherein he is with the limits prescribed for chastity and he is in control of his senses. He is able to practice there his vow meticulously.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

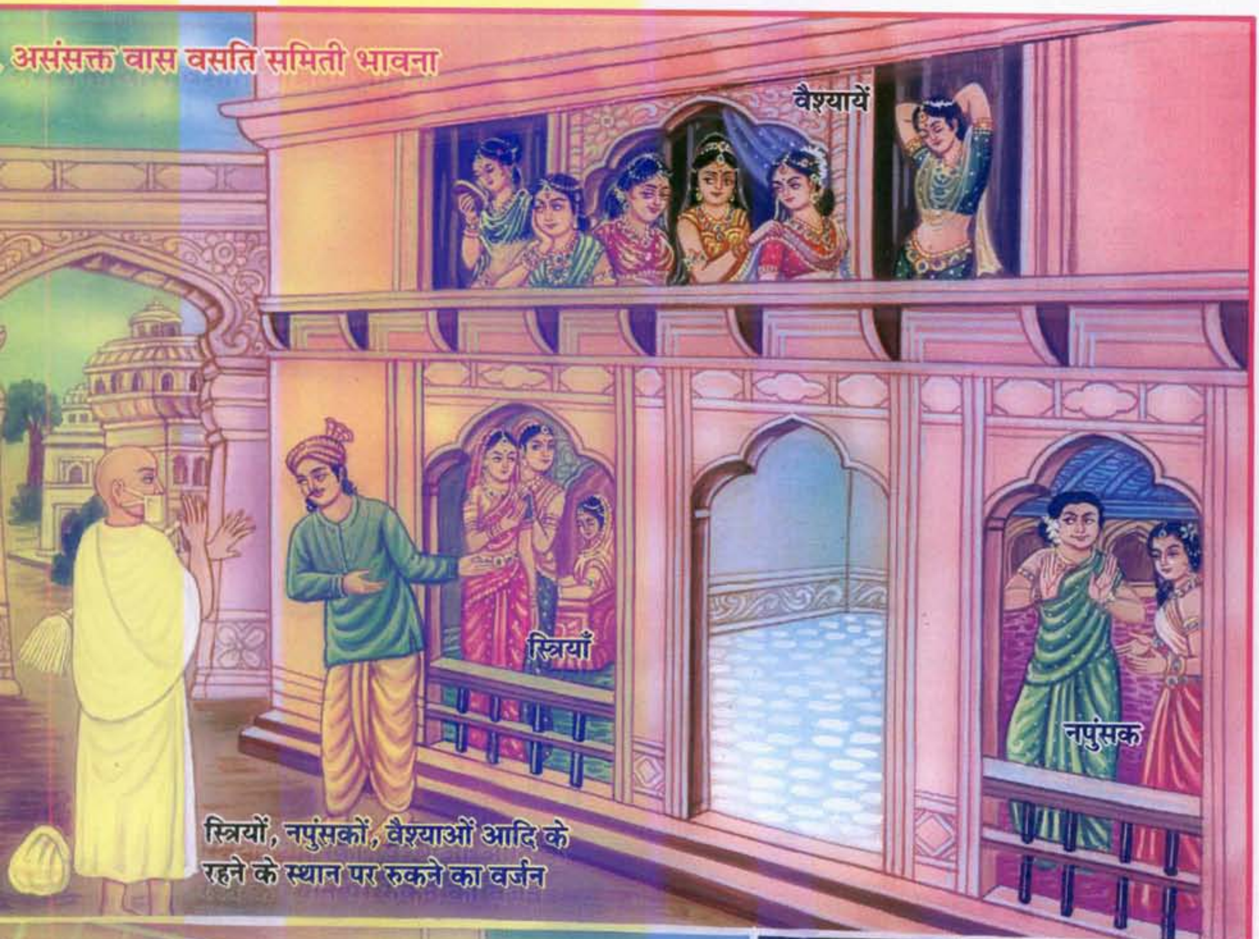

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 22

Illustration No. 22

ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ-1

ब्रह्मचर्य नामक चौथे संवर रूप महाव्रत की पाँच भावनाएँ कही गई हैं–

(1) **असंसक्त वास वसति समिति भावना**–ब्रह्मचर्य व्रत के साधक को ऐसे किसी स्थान पर नहीं रहना चाहिए, जहाँ स्त्रियों उठती-बैठती हों, वैश्याएँ रहती हों, नपुंसकों का निवास स्थान हो, उसे ऐसे सभी स्थानों पर रहना वर्जित बताया गया है। क्योंकि ऐसे स्थान पर रुकने से चित्त में चंचलता उत्पन्न हो सकती है।

(2) **स्त्री-कथा वर्जन समिति भावना**–इस भावना का अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचर्य व्रत के पालक साधु को स्त्रियों की सभा के बीच बैठकर वार्तालाप से बचना चाहिए। स्त्रियों से सम्बन्धित विलास, हास्य, श्रृंगार, उनकी चौंसठ कलाएँ, वर्ण, जाति आदि सम्बन्धित विकार उत्पादक कथाएँ नहीं करनी चाहिए।

–सूत्र 148-149, पृ. 365-367

FIVE SENTIMENTS OF VOW OF CELIBACY (1)

There are said to be five sentiments of the great vow of celibacy, the fourth Samvar–

(1) Disturbance-free place of stay – An aspirant observing the vow of celibacy should not stay at a place where women frequent, whores live, or eunuchs live. For him staying at any such place is prohibited. This is because staying at such places may disturb the required mental serenity.

(2) Refrain from talk about women – An ascetic observing the vow celibacy should avoid joining a meeting of women and talk with them. He should also avoid talking or story telling about women and their activities including their entertainment, beautification, 64 skills, complexion, and caste.

— Sutra-149, page-367

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४९. बिइयं–णारीजणस्स मज्झे ण कहियव्वा कहा–विचित्ता विब्बोय–विलास–संपउत्ता हाससिंगार–लोइयकहव्व मोहजणणी, ण आवाह–विवाह–वर–कहा, इत्थीणं वा सुभग–दुब्भगकहा, चउसट्ठिं च महिलागुणा, ण वण्ण–देस–जाइ–कुल–रूव–णाम–णेवत्थ–परिजण–कहा इत्थियाणं, अण्णा वि य एवमाइयाओ कहाओ सिंगार–कलुणाओ तव–संजम–बंभचेर–घाओवघाइयाओ अणुचरमाणेणं बंभचेरं ण कहियव्वा, ण सुणियव्वा, ण चिंतियव्वा।

एवं इत्थीकहाविरइसमिइजोगेणं भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमण–विरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

१४९. दूसरी स्त्रीकथा विरति भावना : इस प्रकार है-केवल स्त्रियों की ही सभा के बीच बैठकर अनेक प्रकार की कथा–वार्त्ता नहीं करनी चाहिए अर्थात् नाना प्रकार की बातें नहीं करनी चाहिए, जो बातें विब्बोक-स्त्रियों की कामुक चेष्टाओं से और विलास-स्मित, कटाक्ष आदि के वर्णन से युक्त हों, जो हास्यरस और श्रृंगाररस की प्रधानता वाली लौकिक कथा हों, जो मोह उत्पन्न करने वाली हों। इसी प्रकार द्विरागमन–गौने या विवाह सम्बन्धी बातें भी नहीं करनी चाहिए। स्त्रियों के सौभाग्य–दुर्भाग्य की भी चर्चा–वार्त्ता नहीं करनी चाहिए। स्त्रियों की कलाओं, स्त्रियों के रंग-रूप, देश, जाति, कुल, रूप–सौन्दर्य, भेद-प्रभेद, पोशाक तथा परिजनों सम्बन्धी कथाएँ तथा इसी प्रकार की जो भी अन्य कथाएँ श्रृंगाररस से करुणता उत्पन्न करने वाली हों और जो तप, संयम तथा ब्रह्मचर्य का घात–उपघात करने वाली हों, ऐसी कथाएँ ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले साधुजनों को नहीं कहनी चाहिए। ऐसी कथाएँ-बातें उन्हें सुननी भी नहीं चाहिए और उनका मन में चिन्तन भी नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार स्त्रीकथाविरति–समिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला, ब्रह्मचर्य में अनुरक्त चित्त वाला तथा इन्द्रिय विकार से विरत रहने वाला, जितेन्द्रिय साधु ब्रह्मचर्य से गुप्त–सुरक्षित रहता है।

149. The second sentiment is avoidance of talk about women. Its nature is as follows—He should not narrate various types of stories among women. In other words he should not have loose talk with women—the talk which contains amorous activities, their lustful enjoyments, laughter beautification or like and talk of the common people. He should avoid talk that generates delusion or attraction for them. Similarly he should not talk about marriage. He should not talk about good or bad luck of women. He should not talk about sixty four arts of ladies, their complexion, country, clan, family, facial beauty, dress and relatives. He should not indulge in other suchlike talks about them which may produce compassion in the context of their beautification and which are likely to adversely affect austerities self-restraint and chastity.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

A monk observes the vow of brahmcharya, he should therefore not indulge in suchlike talk. He should not listen such talk. He should not think about such matters in his mind.

Thus a monk who has his mind influenced with avoidance of talk about women, who is absorbed in chastity and who is totally detached from bad attitude of senses, who has full control over his senses keeps himself in complete practice of the vow of chastity (brahmacharya).

तृतीय भावना–स्त्रियों के रूप–दर्शन का त्याग

THIRD SENTIMENTS : AVOIDING LOOKING AT BEAUTY OF WOMEN

१५०. तइयं–णारीणं हसिय–भणिय–चेट्ठिय–विप्पेक्खिय–गइ–विलास–कीलियं, बिब्बोइय–णट्टगीय–वाइय–सरीर–संठाण–वण्ण–कर–चरण–णयण–लावण्ण–रूव–जोव्वण–पयोहरा–धर–वत्थालंकार–भूसणाणि य, गुज्झोकासियाइं, अण्णाणि य एवमाइयाइं तव–संजम–बंभचेर–घाओवघाइयाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं ण चक्खुसा, ण मणसा, ण वयसा पत्थेयव्वाइं पावकम्माइं।

एवं इत्थीरूवविरइ–समिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमणविरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

१५०. **तीसरी स्त्री रूप दर्शन विरति समिति भावना :** यह इस प्रकार है–नारियों के मधुर हास्य को, विकारमय कथन को, हाथ पैर आदि की चेष्टाओं को, विप्रेक्षण–कटाक्षयुक्त निरीक्षण को, गति–चाल को, विलास और क्रीड़ा को, विब्बोकित–अनुकूल–इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर अभिमानपूर्वक किया गया तिरस्कार, नाट्य, नृत्य, गीत, वीणा आदि वाद्यों के वादन, शरीर का गठन, गौर श्याम आदि वर्ण, हाथों, पैरों एवं नेत्रों का लावण्य, रूप, यौवन, स्तन, अधर–ओष्ठ, वस्त्र, अलंकार और भूषण–ललाट की बिन्दी आदि को तथा उनके गोपनीय अंगों को एवं स्त्री सम्बन्धी अन्य अंगोपांगों या चेष्टाओं को जिनसे ब्रह्मचर्य, तप तथा संयम का घात–उपघात होता है, उन्हें ब्रह्मचर्य का अनुपालन करने वाला मुनि न नेत्रों से देखे, न मन से सोचे और न वचन से उनके सम्बन्ध में कुछ बोले और न पापमय कार्यों की अभिलाषा करे।

इस प्रकार स्त्रीरूपविरति–समिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला मुनि ब्रह्मचर्य में अनुरक्त चित्त वाला, इन्द्रियविकार से विरत, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से गुप्त–सुरक्षित होता है।

150. The third sentiment is prohibition of looking at women. The monk who practices the vow of chastity should not attend to the laughter of women and their talk which creates adverse thoughts. He should not see such movements of their hands, their amorous activities, their gait, their acrobatics, their act of belittling in ego at having an article of their choice, their dance, dramatic performance, their song, their playing

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

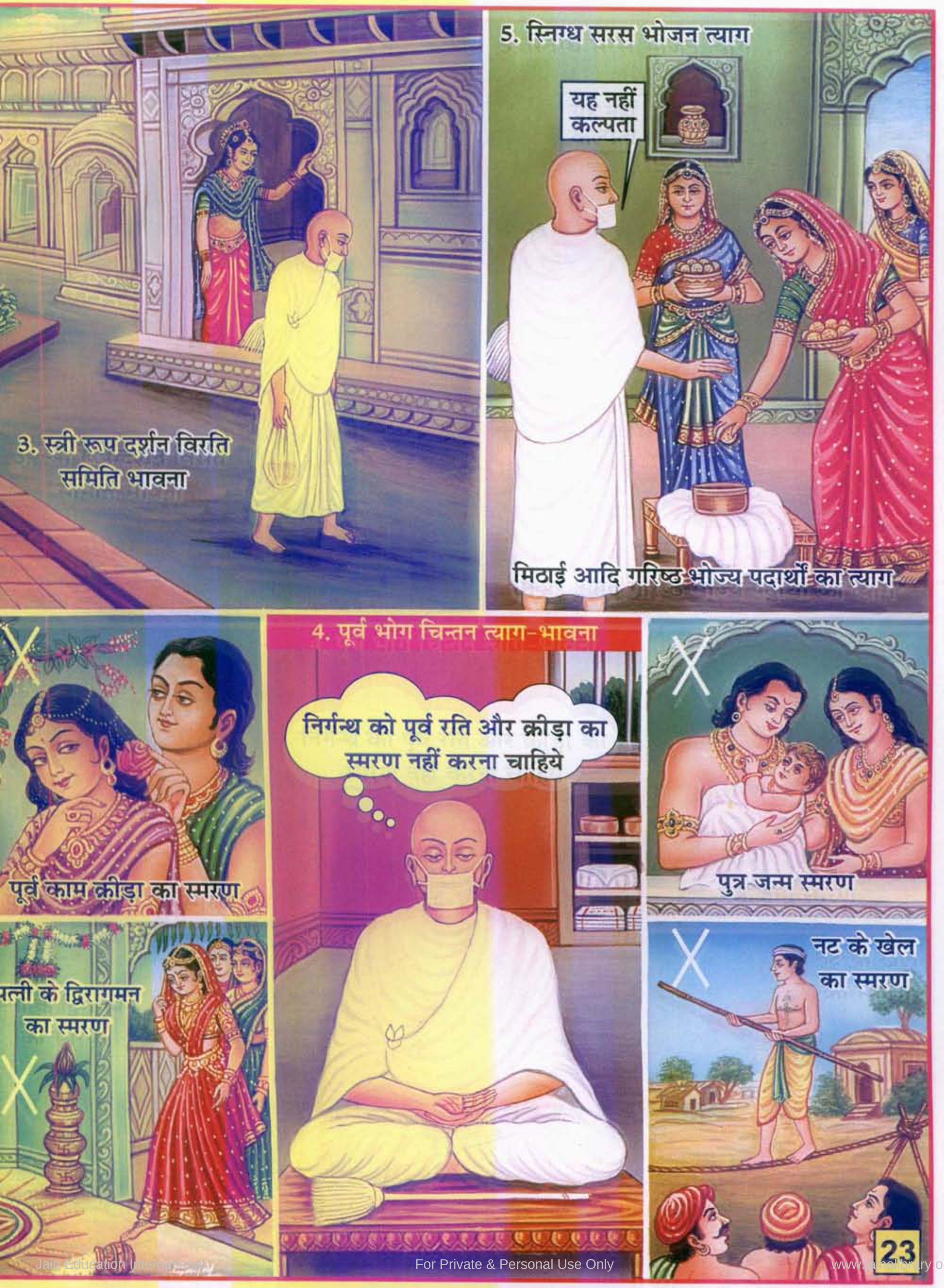

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 23

Illustration No. 23

ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ-2

(3) **स्त्री रूप दर्शन विरति समिति भावना**—इस भावना के अन्तर्गत ब्रह्मचारी साधक के लिये स्त्रियों के रूप दर्शन, हाथ-पैर आदि की चेष्टाओं को, विलास और क्रीड़ाओं को तथा अन्य ऐसी सभी चेष्टाओं को जिससे ब्रह्मचर्य व्रत का घात होता हो, देखने व सोचने का निषेध किया गया है।

(4) **पूर्व भोग चिन्तन त्याग भावना**—पूर्व काल (गृहस्थ अवस्था) में भोगे हुए भोग, जैसे—पुत्र-जन्म, पूर्व कामक्रीड़ा, पत्नी का द्विरागमन, नट-नर्तक का नाच देखना आदि जिनसे चित्त चलायमान हो जाता है, उन्हें स्मरण नहीं करना चाहिए।

(5) **स्निग्ध सरस भोजन त्याग भावना**—ब्रह्मचर्य के साधक को अपनी जिह्वा पर नियंत्रण रखना चाहिए और सरस स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन जैसे—घी, तेल, खांड, मिश्री, मिठाई, तले हुए पदार्थ आदि का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

—सूत्र 150-152, पृ. 368-370

FIVE SENTIMENTS OF VOW OF CELIBACY (2)

(3) Avoid looking at women – An ascetic observing the vow celibacy should avoid looking and enjoying the beauty of the female body, the movement of its limbs, and activities of entertainment and enjoyment. In other words he should avoid looking at any appearance or activity that inspires him to transgress his vow of celibacy. He should not even think of these.

(4) Avoid recalling enjoyments from the past – An ascetic observing the vow celibacy should avoid recalling enjoyments from the past, which means his life as a householder. This includes recalling memories of birth of a son, sexual activities, wife's homecoming after marriage and other incidents that incite excitement.

(5) Avoid eating rich and tasty food – An ascetic observing the vow celibacy should exercise control over his taste buds. He should completely avoid rich and tasty food such as butter, oil, sugar, sweets, fried things etc.

— Sutra-150-152, pages-368-370

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

musical instrument, their shape of the body, their complexion, the beauty of their eyes and feet, their facial expression, their youth, breasts, lips, clothes, ornaments, the red mark on their forehead and the like, their private parts and other suchlike activities which may adversely affect the chastity, austerity and self restraint of the monk. He should not contemplate about such activities of the women in his mind. He should not speak about such things. He should not have a desire for such things.

Thus a monk who is mentally detached from women, is engaged in chastity. He is detached from polluted activity of senses. He keeps his chastity quite safe.

चतुर्थ भावना–पूर्वभोग–चिन्तन–त्याग

FOURTH SENTIMENT : AVOIDING RECOLLECTION OF EARLIER ENJOYMENTS

१५१. चउत्थं–पुव्वरय–पुव्व–कीलिय–पुव्व–संगंथगंथ–संथुया जे ते आवाह–विवाह–चोल्लगेसु य तिहिसु जण्णेसु उस्सवेसु य सिंगारागारचारुवेसाहिं हावभावपललिय–विक्खेव–विलास–सालिणीहिं अणुकूल–पेम्मिगाहिं सद्धिं अणुभूया सयणसंपओगा, उउसुहवरकुसुम–सुरभि–चंदण–सुगंधिवर–वास–धूव–सुहफरिस–वत्थ–भूसण–गुणोववेया, रमणिज्जाओज्जगेय–पउर–णड–णट्टग–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिग–वेलंबग–कहग–पवग–लासग–आइक्खग–लंख–मंख–तूणइल्लतुंब–वीणिय–तालायर–पकरणाणि य बहूणि महुरसरगीय–सुस्सराइं, अण्णाणि य एवमाइयाणि तव–संजम–बंभचेर–घाओवघाइयाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं ण ताइं समणेण लब्भा दट्ठुं, ण कहेउं, ण वि सुमरिउं।

जे एवं पुव्वरय–पुव्वकीलिय–विरइ–समिइ–जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमण–विरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

१५१. चौथी पूर्वरत पूर्व क्रीड़ित विरति समिती भावना : (चौथी भावना में पूर्वकाल में भोगे भोगों के स्मरण के त्याग का विधान किया गया है।) यह इस प्रकार है-पहले (गृहस्थावस्था में) किया गया रमण-विषयोपभोग, पूर्वकाल में की गई क्रीड़ाएँ-द्यूत आदि क्रीड़ा, पूर्वकाल के श्वसुरकुल-ससुराल सम्बन्धी जन, साली या साले की स्त्री आदि के साथ हुए मोहक सम्बन्ध और स्त्री पुत्रादि के साथ स्नेहादि तथा संश्रुत-पूर्व काल के परिचित जन, इस सबका स्मरण नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वैवाहिक प्रसंग, पत्नी का द्विरागमन, चूडाकर्म-शिशु का मुण्डन तथा पर्वतिथियों में, यज्ञों-नागपूजा आदि के अवसरों पर, श्रृंगार के आगार जैसी सजी हुई, हाव-मुख की चेष्टा, भाव-चित्त के अभिप्राय, प्रललित-लालित्ययुक्त कटाक्ष, विक्षेप-ढीली चोटी, पत्रलेखा, आँखों में अंजन आदि श्रृंगार, विलास-हाथों, भौंहों एवं नेत्रों की विशेष प्रकार की चेष्टा-इन सबसे सुशोभित, अनुकूल प्रेम वाली स्त्रियों के साथ अनुभव किये हुए शयन आदि विविध प्रकार के कामशास्त्रोक्त प्रयोग, ऋतु के अनुकूल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख प्रदान करने वाले उत्तम पुष्पों की सौरभ एवं चन्दन की सुगन्ध, चूर्ण किए हुए अन्य उत्तम वासद्रव्य, धूप, सुखद स्पर्श वाले वस्त्र, आभूषण-इनके गुणों से युक्त, रमणीय आतोद्य-वाद्यध्वनि, गायन, प्रचुर नट, नर्तक-नाचने वाले, जल्ल-रस्सी पर खेल दिखलाने वाले, मल्ल-कुश्तीबाज, मौष्टिक-मुक्केबाज, विडम्बक-विदूषक, कथा-कहानी सुनाने वाले, प्लवक-उछलने वाले, रास गाने या रासलीला करने वाले, शुभाशुभ बतलाने वाले, लंख-ऊँचे बाँस पर खेल करने वाले, मंख-चित्रमय पट्ट लेकर भिक्षा माँगने वाले, तूण नामक वाद्य बजाने वाले, वीणा बजाने वाले, तालाचर-एक प्रकार के तमाशबीन-इन सबकी क्रीड़ाएँ, गायकों के नाना प्रकार के मधुर ध्वनि वाले गीत एवं मनोहर स्वर और इस प्रकार के अन्य विषय, जो तप, संयम और ब्रह्मचर्य का घात-उपघात करने वाले हैं, उन्हें ब्रह्मचर्यपालक श्रमण को देखना नहीं चाहिए, इनसे सम्बद्ध वार्त्तालाप नहीं करना चाहिए और पूर्वकाल में जो देखे-सुने हों, उनका स्मरण भी नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार पूर्वरत-पूर्वक्रीडितविरति-समिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला साधक, ब्रह्मचर्य में अनुरक्त चित्त वाला, मैथुनविरत, जितेन्द्रिय साधु ब्रह्मचर्य से गुप्त-सुरक्षित होता है।

151. In the fourth sentiment, there is provision of discarding recollection of earlier enjoyments. During his life as a householder, prior to monkhood, the monk had enjoyed mundane pleasures of worldly life, sensual activities, gambling, the loose talk of in-laws and of the people well-acquainted. He should not recollect those events. Further he should not attend marriages, hair-cutting ceremony of children, the women well decorated at the time of performance of yajnas and washing of demon-gods. Their amorous looks, their loose lock of hair, the collerium in their eye, their hands, eye-brows and movement of eyes that creates sensitivity in the mind. He should not recollect the sexual enjoyments with the women he had in his earlier life. He should not recollect the sweet smell of flowers, sandalwood powder and of other powders incense, clothes pleasant in touch, ornaments, musical sounds, songs, dancers, rope dancers, wrestles, boxers, clowns, storytellers, jumpers, astrologers, pole dancers, players of different musical instruments, flute players and other suchlike activities that affect austerities, self-restraint and chastity. He should not engage in talk about such matters. He should not recollect such activities seen or heard in the past.

Thus a monk who mentally keeps himself detached from the sexual enjoyment he had with the women in the past, who remains absorbed in chastity, who is detached from mating, who has full control over his senses, his vow of chastity remains fully intact.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

FIFTH SENTIMENT : AVOIDING RICH TASTY JUICY FOOD

१५२. पंचमगं–आहार–पणीय–णिद्ध–भोयण–विवज्जए संजए सुसाहू व वगय–खीर–दहि–सप्पि–णवणीय–तेल्ल–गुल–खंड–मच्छंडिग–महु–मज्ज–मंस–खज्जग–विगइ–परिचित्तकयाहारे ण दप्पणं ण बहुसो ण णिइगं ण सायसूपाहियं ण खद्धं, तहा भोत्तव्वं जहा से जायामाया य भवइ, ण य भवइ विब्भमो ण भंसणा य धम्मस्स।

एवं पणीयाहार–विरइ–समिइ–जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमण–विरय–गामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

१५२. **पाँचवीं प्रणीत आहार त्याग समिति भावना** : वह इस प्रकार है। स्वादिष्ट स्निग्ध–चिकनाई वाले भोजन का त्यागी संयमशील सुसाधु दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, शक्कर, मिश्री, मधु, मद्य, माँस, खाद्यक-पकवान और खाद्य विकृतियों से रहित आहार करे। वह इन्द्रियों में उत्तेजना उत्पन्न करने वाला आहार न करे। दिन में कई बार न खाये और न प्रतिदिन लगातार खाये। न दाल साग अधिक खाये और न प्रमाण से अधिक भोजन करे। साधु उतना ही हितकर और परिमित आहार करे जितना उसकी संयम-यात्रा के लिये पर्याप्त निर्वाहक हो, जिससे मन में उद्विग्नता उत्पन्न न हो और धर्म (ब्रह्मचर्य) से च्युत न हो।

इस प्रकार प्रणीत–आहार की विरति रूप समिति के योग से सुसंस्कृत अन्तःकरण वाला, ब्रह्मचर्य की आराधना में अनुरक्त चित्त वाला और मैथुन से विरत जितेन्द्रिय साधु ब्रह्मचर्य को पूर्णतया सुरक्षित कर लेता है।

152. Fifth sentiment of a monk is prohibition of tasty food and the food that contains lot of butter. The monk practicing restraints should take food free from milk and ghee, butter, oil, sugar, honey, intoxicating substances and roasted things which disturb the mind. He should not take such food that disturbs the senses. He should not eat more than his absolute need during the day. He should not eat continuously daily. He should not take food that contains more of pulses and tasty products. He should take only that much food which is absolutely essential for his life of ascetic restraint, which may not create restlessness in his mind and due to which he may not fall from his ascetic discipline.

Thus a monk who keeps his mind detached from rich food in a state of equanimity, is practicing vow of chastity and is detached from sex he is in control of his senses and remains well secure in his vow of brahmcharya.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : शास्त्रकार ने अब्रह्मचर्य के विविध स्थानों से साधक की आत्मा को बचाने तथा ब्रह्मचर्य पालन के संस्कारों को हृदय में जमाने हेतु ये पांच भावनायें बताई हैं-

१. विविक्तशयनासन,

२. स्त्रीकथा का परित्याग,

३. स्त्रियों के रूपादि को देखने का परिवर्जन,

४. पूर्वकाल में भुक्त भोगों के स्मरण से विरति,

५. सरस बलवर्द्धक आदि आहार का त्याग।

१. विविक्तशयनासन भावना : सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य के विघातक तत्वों पर रोक लगाई गई है अर्थात् ब्रह्मचारी को ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए जहाँ नारी जाति का सामीप्य हो-संसर्ग हो, जहाँ स्त्रियाँ उठती-बैठती हों, बातें करती हों, और जहाँ वेश्याओं का सान्निध्य हो। ऐसे स्थान पर रहने से ब्रह्मचर्यव्रत के भंग का खतरा रहता है, क्योंकि ऐसा स्थान चित्त में चंचलता उत्पन्न करने वाला है। यही इस भावना का प्रयोग है।

२. स्त्रीकथा का परित्याग : इस भावना स्त्रीकथा विरति समिति का प्रयोग है। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचर्य के साधक को स्त्रियों के बीच बैठकर वार्त्तालाप करने से बचना चाहिए। यही नहीं, स्त्रियों सम्बन्धी कामुक चेष्टाओं का, विलास, हास्य आदि का, स्त्रियों की वेशभूषा आदि का, उनके रूप-सौन्दर्य, जाति, कुल, भेद-प्रभेद का तथा विवाह आदि का वर्णन करने से भी बचना चाहिए। ऐसी बातें कामवर्द्धक एवं तप-संयम-ब्रह्मचर्य विघातक होती हैं। दूसरा कोई इस प्रकार की बातें करता हो तो उन्हें सुनना नहीं चाहिए और न ही ऐसे विषयों का मन में चिन्तन करना चाहिए। यही इस भावना का प्रयोग है, जो साधक को ब्रह्मचर्यनिष्ठ एवं इन्द्रिय विजेता बना देता है।

३. स्त्रियों के रूपादि को देखने का परिवर्जन : तीसरी भावना का सम्बन्ध चक्षुरिन्द्रिय के साथ है। जो दृश्य काम-राग को बढ़ाने वाला हों, मोहजनक हों, आसक्ति जागृत करने वाला हों, ब्रह्मचारी उससे बचता रहे। स्त्रियों के हास्य, बोल-चाल, विलास, क्रीड़ा, नृत्य, शरीर, आकृति, रूप-रंग, हाथ-पैर, नयन, लावण्य, यौवन आदि पर तथा उनके स्तन, गुप्त अंग, वस्त्र, अलंकार एवं टीकी आदि भूषणों पर ब्रह्मचारी को दृष्टिपात नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जो दृश्य तप, संयम और ब्रह्मचर्य को अंशतः अथवा पूर्णतः विघात करने वाले हों, उनसे ब्रह्मचारी को सदैव बचते रहना चाहिए। इस प्रकार की भावना के चिन्तन और प्रयोग से साधु के अन्तःकरण में ब्रह्मचर्य के संस्कार सुदृढ़ हो जाते हैं।

४. पूर्वकाल में भुक्त भोगों के स्मरण से विरति : चौथी भावना में पूर्व काल में अर्थात् गृहस्थावस्था में भोगे हुए भोगों के चिन्तन न करने की प्रेरणा की गई है। बहुत से साधक ऐसे होते हैं जो गृहस्थदशा में दाम्पत्य जीवन यापन करने के पश्चात् मुनिव्रत अंगीकार करते हैं। उनके मस्तिष्क में गृहस्थ जीवन की घटनाओं के संस्कार या स्मरण संचित होते हैं। वे संस्कार यदि निमित्त पाकर उभर उठें तो चित्त को विभ्रान्त कर देते हैं, चित्त को विकृत बना देते हैं और कभी-कभी मुनि अपने कल्पना-लोक में उसी पूर्वावस्था में पहुँचा हुआ अनुभव करने लगता है। वह अपनी वर्तमान स्थिति को कुछ समय के लिए भूल जाता है। यह स्थिति उसके तप, संयम एवं ब्रह्मचर्य का विघात करने वाली होती है। अतएव ब्रह्मचारी पुरुष को ऐसे प्रसंगों से निरन्तर बचना चाहिए, जिनसे कामवासना को जागृत होने का अवसर मिले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. सरस बलवर्द्धक आदि आहार का त्याग : ब्रह्मचर्य पर जैसे काम विकारयुक्त बातों का प्रभाव पड़ता है, वैसे ही भोजन का भी प्रभाव पड़ता है। अतः पाँचवीं भावना आहार सम्बन्धी बताई गई हैं। जो साधक जिह्वा इन्द्रिय पर पूरी तरह नियंत्रण स्थापित कर पाता है, वही निरतिचार ब्रह्मव्रत आराधन करने में समर्थ होता है। इसके विपरीत जिह्वालोलुप सरस, स्वादिष्ट एवं पौष्टिक भोजन करने वाला इस व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं कर सकता। अतएव इस भावना में दूध, दही, घृत, नवनीत, तेल, गुड़, खाँड़, मिश्री आदि के भोजन के त्याग का विधान किया गया है। मधु, माँस एवं मदिरा, ये महाविकृतियाँ है, इनका सर्वथा परित्याग तो अनिवार्य ही है। बड़े-बड़े साधक स्वाद के कारण रसनेन्द्रिय के गुलाम बने हुये हैं। ब्रह्मचारी पुरुष को ऐसा नीरस, रूखा-सूखा एवं सात्त्विक भोजन ही करना चाहिए जो वासना के उद्रेक में सहायक न बने और जिससे संयम का भलीभाँति निर्वाह भी हो जाये।

यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है। आगम 'पुरुष' की प्रधानता को लक्ष्य में रखकर विरचित होते हैं। इस कारण यहाँ ब्रह्मचारी पुरुष को स्त्रीसंसर्ग, स्त्रीकथा, स्त्री के अंगोपांगों के निरीक्षण आदि के वर्जन का विधान किया गया है। किन्तु नारी साधिका-ब्रह्मचारिणी के लिए पुरुषसंसर्ग, पुरुषकथा आदि का वर्जन समझ लेना चाहिए। नपुंसकों की चेष्टाओं का अवलोकन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी दोनों के लिए समान रूप से वर्जित है।

Elaboration—In the above mentioned aphorism five contemplations of the vow of brahmcharya have been narrated so that one may properly practice this vow according to scriptures. They are as follows—

1. Aloof bed (or place of rest).
2. Discarding talk about women.
3. Not to see closely the beauty and the like of the women.
4. Not to recollect the worldly enjoyments of the previous period.
5. To avoid tasty rich food that increases physical strength.

The gist of the first sentiment namely aloof bed is that one who practices vow of chastity, he should not stay in such a pace where ladies are nearby, they move about, they talk or where prostitutes are in the neighbourhood. There is a danger that the vow may break by living at such a place as it creates disturbance in mind.

The second sentiment is avoiding talk about women. One who practices vow of chastity, he should avoid discussion by sitting among women. Further, he should avoid giving an account about the sexual enjoyment of women, their awareness activities, laughter and the like, their dress, their beauty, their caste, family, their types and their marriage celebrations; such a talk also produces delusion. In case anyone else in making such like talk, he should not listen to it. He should not even think about such matters in his mind.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The third sentiment is primarily connected with the sense of sight. A practitioner of vow of chastity avoids seeing such a scene what is likely to infuse desire for sexual enjoyments, lust and attachment. He should not stare at the laughter, talk and sexual activities of women, their dance, their physical appearance, their body, their complexion, their hand and feet, their beauty, their beauty of youth, their breasts, private parts, clothes, ornaments and lustre. He should immediately remove his attention from that site where he happens to see a woman. By doing so the chance of attachment or delusion does not arise in the mind. In brief one who practices chastity, he should avoid such scene, which adversely affect austerities, restraints and partially or completely affect his life of brahmcharya.

Fourth sentiment is to avoid the amorous enjoyments of the period spent as householder. There are many followers of ascetic path who had spent a married life in their state as a householder and adopted monkhood thereafter. Their brain has the memories of the events of that period. In case those thoughts due to any event arise in the mind again, they make it restless. They pollute the heart and sometime the monk feels in his imagination that he is experiencing the same pleasures. He forgets for sometime his present state as a monk. Such a condition adversely affects his austerities, self-restraint and chastity; so a brahmchari should avoid such situations which may awaken desire for sexual pleasures.

Fifth sentiment is about food. It is deeply related to vow of chastity. Energetic food that instigates the ego and the senses adversely affects chastity. Only that person is capable of properly practicing the vow of chastity who has full control over his sense of taste. He who takes tasty, sweet and energetic food, he cannot practice this vow properly. So it is said down that one should not take milk, curd, ghee, butter, oil and the like in his meals. Honey, meat and wine should be completely avoided as they are the cause of great disturbance in the mind. In a nutshell, the person who is practicing the vow of chastity, he should take tasteless, dry food that does not cause any hurt to living being. His food should not assist in creating or increasing lust so that he may properly lead his ascetic life of restraint.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Here it is essential to clarify one thing. Agams have been written keeping in mind the importance of the man. So it is laid down that the person who practices chastity, he should avoid contact with women, talk about women, staring at women and looking at her limbs. It should be understood that the woman practitioner of chastity should avoid contact with men, talk about men and the like. Both the male and female practitioners of the vow should avoid seeing activities of eunuch.

उपसंहार CONCLUSION

१५३. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहि वि कारणेहिं मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं। णिच्चं आमरणंतं च एसो जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सव्वजिणमणुण्णाओ।

एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ। एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं। त्ति बेमि॥

॥ चउत्थं संवरदारं समत्तं॥

१५३. इस प्रकार ब्रह्मचर्यव्रतरूप यह संवरद्वार सम्यक् प्रकार से संवृत और सुरक्षित-पालित होता है। मन, वचन और काय, इन तीनों योगों से परिरक्षित इन (पूर्वोक्त) पाँच भावनारूप कारणों से सदैव, आजीवन यह योग धैर्यवान् और मतिमान् मुनि को पालन करना चाहिए। यह संवरद्वार आस्रव से रहित है, मलिनता से रहित है और भावछिद्रों से रहित है। इससे कर्मों का आस्रव नहीं होता। यह संक्लेश से रहित है, शुद्ध है और सभी तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात है।

इस प्रकार यह चौथा संवरद्वार स्पृष्ट-विधिपूर्वक अंगीकृत, पालित, शोधित-अतिचार-त्याग से निर्दोष किया गया, पार-किनारे तक पहुँचाया हुआ, कीर्तित-दूसरों को उपदिष्ट किया गया, आराधित और तीर्थंकर भगवान की आज्ञा के अनुसार अनुपालित होता है, ऐसा ज्ञात वंश में उत्पन्न मुनि भगवान (महावीर) ने कहा है, युक्तिपूर्वक समझाया है। यह प्रसिद्ध-जगद्विख्यात है, प्रमाणों से सिद्ध है। यह भवस्थित सिद्धों-अर्हन्त भगवानों का शासन है। सुर, नर आदि की परिषद् में उपदिष्ट किया गया है और मंगलकारी है। जैसा मैंने भगवान से सुना, वैसा ही मैं (सुधर्मा स्वामी) कहता हूँ।

॥ चतुर्थ संवरद्वार समाप्त॥

विवेचन : इस प्रकार मन-वचन-काया को परिरक्षित करने पर यह चौथा ब्रह्मचर्य रूप संवरद्वार सम्यक् प्रकार से सुरक्षित हो जाता है और धैर्यवान विवेकवान साधक जब इसकी पांचों भावनाओं का निरन्तर प्रयोग करता रहता है तो ब्रह्मचर्य उसके मूल संस्कारों में जम जाता है। इस प्रकार सुगम्य व्याख्या सहित यह चतुर्थ ब्रह्मचर्य संवरद्वार पूर्ण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

153. In this manner this Samvar Dvar of the vow of Brahmacharya is practiced properly. It remains well guarded mentally, vocally and physically due to the above-said five sentiments. A perseverant and intelligent monk should always practice it throughout his life. This gateway of Samvar is free from inflow of Karmas (asrava). It is free from dirt and fluctuations or pollution of thoughts. It does not cause inflow of Karma. It is free from all disturbances. It is pure and all the Tirthankars have propounded it.

Thus the fourth gateway of Samvar is properly accepted, followed, experimented and have been made faultless by avoiding deviations. It leads to the other end. It is taught to others and accepted by them. It is followed as ordered by Tirthankars Bhagavan Mahavir and logically taught. It is famous and prominent in the world. It has been proved logically. It is the order of the omniscient. It has been preached in the assembly of celestial beings and human beings. I have narrated it as I heard it from Bhagavan Mahavir.

Thus this fourth Samvar Dvar, Brahamacharya, is properly secured through mind, speech and body. When the aspirant regularly employes this five sentiments with patience and sagacity, it is established within his intrinsic attitude. Here concludes this fourth Samvar Dvar, Brahmacharya, with easy to comprehend elaboration.

● FOURTH SAMVAR GATEWAY CONCLUDED ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम अध्ययन : परिग्रहत्याग
FIFTH CHAPTER : DISCARDING PARIGRAHA (ATTACHMENT)

शास्त्रकार ने चौथे संवरद्वार अब्रह्मचर्य विरमण व्रत के पश्चात् अपरिग्रह संवरद्वार का निरूपण किया है। क्योंकि सर्वथा परिग्रह के परित्याग के पश्चात् ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन हो सकता है। अतः सूत्रक्रम के अनुसार यहां परिग्रह विरति रूप पंचम संवर द्वार की व्याख्या की जा रही है।

According to the order laid down in scriptures, Samvar of non-attachment has been narrated after Samvar of chastity (brahmcharya). Avoidance of mating (or sex) has been mentioned earlier which is possible only if attachment is discarded. So now Samvar in the form of avoidance of attachment is going to be described.

उत्क्षेप INTRODUCTION

१५४. जंबू ! अपरिग्गहसंवुडे य समणे आरंभ–परिग्गहाओ विरए, विरए कोह–माण–माया–लोहा।

एगे असंजमे। दो चेव रागदोसा। तिण्णि य दंडा, गारवा य, गुत्तीओ तिण्णि, तिण्णि य विराहणाओ। चत्तारि कसाया झाण–सण्णा–विकहा तहा य हुंति चउरो। पंच य किरियाओ समिइ–इंदिय–महव्वयाइं च। छज्जीवणिकाया, छच्च लेसाओ। सत्त भया। अट्ठ य मया। णव चेव य बंभचेर–वयगुत्ती। दसप्पगारे य समणधम्मे। एग्गारस य उवासगाणं। बारस य भिक्खुपडिमा। तेरस किरियाठाणा य। चउद्दस भूयगामा। पण्णरस परमाहम्मिया। गाहा सोलसया। सत्तरस असंजमे। अट्ठारस अबंभे। एगुणवीसइ णायज्झयणा। वीसं असमाहिट्ठाणा। एगवीसा य सबला य। बावीसं परिसहा य। तेवीसए सूयगडज्झयणा। चउबीसविहा देवा। पण्णवीसाए भावणा। छव्वीसा दसाकप्पववहाराणं उद्देसणकाला। सत्तावीसा अणगारगुणा। अट्ठावीसा आयारकप्पा। एगुणतीसा पावसुया। तीसं मोहणीयट्ठाणा। एगतीसाए सिद्धाइगुणा। बत्तीसा य जोगसंग्गहे। तित्तीसा आसायणा।

एक्काइयं करित्ता एगुत्तरियाए वुड्ढीए तीसाओ जाव उ भवे तिगाहिया विरइपणिहीसु य एवमाइसु बहुसु ठाणेसु जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेसु अवट्ठिएसु संकं कंखं णिराकरित्ता सद्दहए सासणं भगवओ अणियाणे अगारवे अलुद्धे अमूढमणवयणकायगुत्ते।

१५४. श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–हे जम्बू! जो मूर्च्छा–ममत्वभाव से रहित है, इन्द्रियसंवर तथा कषायसंवर से युक्त है एवं आरम्भ–परिग्रह से तथा क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित है, वही श्रमण या साधु होता है।

१. परिग्रह का एक भेद असंयम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. संक्षेप विवक्षा से बन्धन दो प्रकार के हैं-(१) रागबन्धन और (२) द्वेषबन्धन।

३. मन-वचन-काया के भेद से दण्ड तीन हैं-(१) मनोदण्ड, (२) वचनदण्ड, (३) कायदण्ड। गौरव तीन हैं-(१) ऋद्धिगौरव, (२) रसगौरव, (३) सातागौरव। गुप्ति तीन प्रकार की हैं-(१) मनोगुप्ति, (२) वचनगुप्ति, (३) कायगुप्ति। विराधना तीन प्रकार की है-(१) ज्ञान की, (२) दर्शन की, और (३) चारित्र की।

४. कषाय चार हैं-(१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ। ध्यान चार हैं-(१) आर्त्त, (२) रौद्र, (३) धर्म और (४) शुक्ल। संज्ञा चार प्रकार की हैं-(१) आहारसंज्ञा, (२) भयसंज्ञा, (३) मैथुनसंज्ञा, (४) परिग्रहसंज्ञा। विकथा चार प्रकार की है-(१) स्त्रीकथा, (२) भोजनकथा, (३) राजकथा, (४) देशकथा।

५. क्रियाएँ पाँच हैं-(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी, (५) प्राणातिपातिकी। समितियाँ पाँच हैं-(१) ईर्यासमिति, (२) भाषासमिति, (३) एषणासमिति, (४) आदान-निक्षेपणसमिति, (५) परिष्ठापनिकासमिति। इन्द्रियाँ पाँच हैं-(१) स्पर्शनेन्द्रिय, (२) रसनेन्द्रिय, (३) घ्राणेन्द्रिय, (४) चक्षुरिन्द्रिय (५) श्रोत्रेन्द्रिय। महाव्रत पाँच हैं-(१) अहिंसामहाव्रत, (२) सत्यमहाव्रत, (३) अस्तेयमहाव्रत, (४) ब्रह्मचर्यमहाव्रत, (५) अपरिग्रह महाव्रत

६. जीवनिकाय अर्थात् संसारी जीवों के छह समूह-वर्ग हैं-(१) पृथ्वीकाय, (२) अप्काय, (३) तेजस्काय, (४) वायुकाय, (५) वनस्पतिकाय, (६) त्रसकाय। लेश्याएँ छह हैं-(१) कृष्णलेश्या, (२) नीललेश्या, (३) कापोतलेश्या, (४) तेजोलेश्या, (५) पद्मलेश्या, (६) शुक्ललेश्या।

७. भय सात प्रकार के हैं-(१) इहलोकभय, (२) परलोकभय, (३) आदानभय, (४) अकस्मात्‌भय, (५) आजीविकाभय, (६) अपयशभय, (७) मृत्युभय।

८. मद आठ हैं-(१) जातिमद, (२) कुलमद, (३) बलमद, (४) रूपमद, (५) तपमद, (६) लाभमद, (७) श्रुतमद, (८) ऐश्वर्यमद।

९. ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ हैं-(१) विविक्तशयनासनसेवन, (२) स्त्रीकथावर्जन, (३) स्त्रीयुक्त आसन का परिहार, (४) स्त्री के रूपादि के दर्शन का त्याग, (५) स्त्रियों को श्रृंगारमय, करुण तथा हास्य आदि सम्बन्धी शब्दों के श्रवण का परिवर्जन, (६) पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों के स्मरण का वर्जन, (७) इन्द्रिय दर्पकारक स्वादिष्ट गरिष्ठ पदार्थों का सेवन न करना, (८) अति मात्रा में आहार का त्याग, और (९) शरीर को विभूषित न करना।

१०. श्रमणधर्म दस हैं-(१) खंति-क्षमा, (२) मुक्ति-निर्लोभता, (३) आर्जव-निष्कपटता-ऋजुता, (४) मार्दव-मृदुता-नम्रता, (५) लाघव-उपधि की अल्पता, (६) सत्य, (७) संयम, (८) तप, (९) त्याग, और (१०) ब्रह्मचर्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. श्रावक की प्रतिमाएँ ग्यारह हैं-(१) दर्शन, (२) व्रत, (३) सामायिक, (४) पौषध, (५) कायोत्सर्ग, (६) ब्रह्मचर्य, (७) सचित्तत्याग, (८) आरम्भत्याग, (९) प्रेष्यप्रयोगत्याग, (१०) उद्दिष्टत्याग, और (११) श्रमणभूत।

१२. भिक्षु-प्रतिमाएँ बारह हैं। वे इस प्रकार हैं-

मासाई सत्तंता पढमा बिय तिय सत्त राइदिणा।
अहराइ एगराई भिक्खू पडिमाण बारसगं॥

अर्थात् एकमासिकी, द्विमासिकी, त्रिमासिकी से लेकर सप्तमासिकी तक की सात प्रतिमाएँ सात-सात अहोरात्र की आठवीं, नौवीं और दसवीं, एक अहोरात्र की, ग्यारहवीं और बारहवीं प्रतिमा एक रात्रि की (विशेष विवरण दशाश्रुतस्कन्धसूत्र से जानना चाहिए)।

१३. क्रियास्थान तेरह हैं, जो इस प्रकार हैं-

अट्ठाऽणट्ठाहिंसाऽकम्हा दिट्ठी य मोसऽदिन्ने य।
अज्झप्पमाणमित्ते मायालोभेरिया वहिया॥

अर्थात् (१) अर्थदण्ड, (२) अनर्थदण्ड, (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्मात्‌दण्ड, (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड, (६) मृषावाद दण्ड, (७) अदत्तादानदण्ड, (८) अध्यात्म दण्ड, (९) मानदण्ड, (१०) मित्रद्वेषदण्ड, (११) मायादण्ड, (१२) लोभदण्ड, और (१३) ऐर्यापथिकदण्ड। (इनका विशेष विवेचन सूत्रकृतांग आदि सूत्रों से जान लेना चाहिए।)

१४. भूतग्राम अर्थात् जीवों के चौदह समास समूह हैं, जो इस प्रकार हैं-(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, (२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, (३) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, (४) बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, (५) बेइन्द्रिय पर्याप्तक, (६) बेइन्द्रिय अपर्याप्तक, (७) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, (८) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक, (९) चतुरिन्द्रय पर्याप्तक, (१०) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक, (११) पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तक, (१२) पंचेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्तक, (१३) पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक (१४) पंचेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्तक।

१५. नारक जीवों को, तीसरे नरक तक जाकर पीड़ा देने वाले असुरकुमार देव परमाधार्मिक कहलाते हैं। वे पन्द्रह प्रकार के हैं-(१) अम्ब, (२) अम्बरीष, (३) श्याम, (४) शबल, (५) रौद्र, (६) महारौद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनु, (११) कुंभ, (१२) बालुक, (१३) वैतरणिक, (१४) खरस्वर, और (१५) महाघोष। (इनके द्वारा उत्पन्न की जाने वाली यातनाओं का वर्णन प्रथम आस्रवद्वार में आ गया है।)

१६. जिसमें गाथा नामक १६वाँ अध्ययन है, ऐसे सूत्र कृतांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध में सोलह अध्ययन है। उनके नाम ये हैं-(१) समय, (२) वैतालीय, (३) उपसर्गपरिज्ञा, (४) स्त्रीपरिज्ञा, (५) नरकविभक्ति, (६) वीरस्तुति, (७) कुशीलपरिभाषित, (८) वीर्य, (९) धर्म, (१०) समाधि, (११) मार्ग, (१२) समवसरण, (१३) यथातथ्य, (१४) ग्रन्थ, (१५) यमकीय, और (१६) गाथा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. असंयम के १७ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं- (१) पृथ्वीकाय-असंयम, (२) अप्काय-असंयम, (३) तेजस्काय-असंयम, (४) वायुकाय-असंयम, (५) वनस्पतिकाय-असंयम, (६) द्वीन्द्रिय-असंयम, (७) त्रीन्द्रिय-असंयम, (८) चतुरिन्द्रिय-असंयम, (९) पंचेन्द्रिय-असंयम, (१०) अजीव-असंयम, (११) प्रेक्षा-असंयम, (१२) उपेक्षा-असंयम, (१३) परिस्थापनिका-असंयम, (१४) अप्रमार्जन-असंयम, (१५) मन-असंयम, (१६) वचन-असंयम, और (१७) काय-असंयम।

पृथ्वीकाय आदि नौ प्रकार के जीवों की यतना न करना, इनका आरम्भ करना और मूल्यवान वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि अजीव वस्तुओं को ग्रहण करना, जीव-अजीव-असंयम है। धर्मोपकरणों की यथाकाल यथाविधि प्रतिलेखना न करना प्रेक्षा-असंयम है। संयम-कार्यों में प्रवृत्ति न करना और असंयमयुक्त कार्य में प्रवृत्ति करना उपेक्षा-असंयम है। मल-मूत्र आदि का शास्त्रोक्त विधि के अनुसार प्रतिष्ठापन न करना-त्यागना परिस्थापनिका-असंयम है। वस्त्र-पात्र आदि उपधि का विधिपूर्वक प्रमार्जन नहीं करना अप्रमार्जन-असंयम है। मन को प्रशस्त चिन्तन में नहीं लगाना या अप्रशस्त चिन्तन में लगाना मानसिक-असंयम है। अप्रशस्त या मिथ्या अथवा अर्ध-मिथ्या वाणी का प्रयोग करना वचन-असंयम है और काय से सावद्य व्यापार करना काय-असंयम है।

१८. अब्रह्म-अब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार ये हैं-

ओरालियं च दिव्वं, मण-वय-कायाण करण-जोगेहिं।
अणुमोयण- कारावण- करणेणट्ठारसाऽबंभं॥

अर्थात् औदारिक शरीर द्वारा मन, वचन और काया से काम भोग का सेवन करना, कराना और अनुमोदना करना ये ९ औदारिक अब्रह्मचर्य है तथा इसी प्रकार वैक्रिय शरीर द्वारा मन, वचन, काया से अब्रह्म का सेवन करना, कराना और अनुमोदन करना ये वैक्रिय अब्रह्म सेवन है। दोनों के सम्मिलित भेद अठारह होते हैं।

१९. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के १९ अध्ययन हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) उत्क्षिप्त, (२) संघाट, (३) अण्ड, (४) कूर्म, (५) शैलकऋषि, (६) तुम्ब, (७) रोहिणी, (८) मल्ली, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्रिका, (११) दावदव (इस नाम के वृक्षों का उदाहरण), (१२) उदक, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलि, (१५) नन्दिफल, (१६) अपरकंका, (१७) आकीर्ण, (१८) सुषमा, और (१९) पुण्डरीक।

२०. बीस असमाधिस्थान इस प्रकार हैं-(१) **द्रुतचारित्व**-संयम की उपेक्षा करके जल्दी-जल्दी चलना, (२) **अप्रमार्जितचारित्व**-भूमि आदि का प्रमार्जन किये बिना उठना, बैठना, चलना आदि। (३) **दुष्प्रमार्जितचारित्व**-विधिपूर्वक भूमि आदि का प्रमार्जन किये बिना बैठना-चलना, (४) **अतिरिक्त शय्यासनिकत्व**-मर्यादा से अधिक आसन या शय्या स्थान ग्रहण करना, (५) **रात्निकपरिभाषित्व**-अपने से बड़े आचार्यादि का विनय न करना, अविनय करना, (६) **स्थविरोपघातित्व**-दीक्षा, आयु और श्रुत से स्थविर मुनियों के चित्त को किसी व्यवहार से पीड़ा पहुँचाना, (७) **भूतोपघातित्व**-जीवों का घात करना, (८) **संज्वलनता**-बात-बात में क्रोध करना या ईर्ष्या की अग्नि से जलना, (९) **क्रोधतत्व**-क्रोधशील होना,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) पृष्ठिमांसकत्व-पीठ पीछे किसी की निन्दा करना, (११) अभीक्ष्णमवधारकता-संदेह युक्त बात को भी निश्चयकारी भाषा में कहना, (१२) नये-नये कलह उत्पन्न करना, (१३) शान्त हो चुके पुराने कलह को नये सिरे से जागृत करना, (१४) सचित्तरज वाले हाथ, पैर वाले दाता से आहार लेना। (१५) अकाल में स्वाध्याय करना, (१६) कलहोत्पादक कार्य करना, बातें करना या उनमें भाग लेना, (१७) रात्रि में ऊँचे स्वर से बोलना, शास्त्रपाठ करना, (१८) झंझाकरत्व-गण, संघ या गच्छ में फूट उत्पन्न करने या मानसिक पीड़ा उत्पन्न करने वाले वचन बोलना, (१९) सूर्योदय से सूर्यास्त तक भोजन करते रहना, (२०) एषणासमिति के अनुसार आहार की गवेषणा आदि न करना और दोष बतलाने पर झगड़ना।

२१. शबलदोष-चारित्र को कलुषित करने वाले दोष और जिस कार्य से चारित्र की निर्मलता नष्ट हों, शबलदोष कहे गये हैं। वे इक्कीस हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं-(१) हस्तकर्म करना, (२) अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार रूप में मैथुनसेवन करना, (३) अतिक्रमादि रूप से रात्रि में भोजन करना, (४) आधाकर्मी आहारादि सेवन, (५) शय्यातर के आहार का सेवन करना, (६) औद्देशिक, क्रीतादि दोषों वाला आहार करना, (७) त्यागे हुए अशन आदि का उपयोग करना, (८) छह महीने के भीतर एक गण का त्याग कर दूसरे गण में जाना, (९) एक मास में तीन बार नाभि तक गहरे पानी में उतरना, (१०) एक मास में तीन बार मायाचार करना, (११) राजपिण्ड का सेवन करना, (१२) संकल्पपूर्वक प्राणियों की हिंसा करना, (१३) संकल्पपूर्वक मृषावाद करना, (१४) संकल्पपूर्वक अदत्तादान करना, (१५) जान-बूझकर सचित्त भूमि पर कायोत्सर्ग करना, (१६) जान-बूझकर गीली, रज सहित भूमि पर, सचित्त शिला पर या घुन वाले काष्ठ पर सोना-बैठना, (१७) बीजों तथा जीवों से युक्त अन्य किसी स्थान पर बैठना, (१८) जान-बूझकर कन्दमूल का सेवन करना, (१९) एक वर्ष में दस बार नाभिप्रमाण जल में अवगाहन करना, (२०) एक वर्ष में दस बार माया का सेवन करना, और (२१) बारम्बार सचित्त जल से लिप्त हाथ आदि से आहारादि ग्रहण करना।

२२. परीषह-संयम-जीवन में होने वाले कष्ट, जिन्हें समभावपूर्वक सहन करके साधु कर्मों की विशिष्ट निर्जरा करता है। ये बाईस परीषह इस प्रकार हैं-

खुहा पिवासा सीउण्हं, दंसा चेलऽरई-त्थिओ।
चरिया निसीहिया सेज्जा, अक्कोसा वह जायणा॥

अलाभ-रोग-तणफासा, मल-सक्कार परीसहा।
पण्ण अण्णाण सम्मत्तं, इय बावीस परीसहा॥

अर्थात् (१) क्षुधा (भूख), (२) पिपासा-प्यास, (३) शीत-ठण्ड, (४) उष्ण (गर्मी), (५) दंश-मशक (डांस-मच्छरों द्वारा सताया जाना), (६) अचेल (निर्वस्त्रता या अल्प एवं फटे-पुराने वस्त्रों का कष्ट), (७) अरति-संयम में अरुचि, (८) स्त्री, (९) चर्या, (१०) निषद्या, (११) शय्या-उपाश्रय, (१२) आक्रोश, (१३) वध-मारा-पीटा जाना, (१४) याचना, (१५) अलाभ-लेने की इच्छा होने पर भी आहार आदि आवश्यक वस्तु का न मिलना, (१६) रोग, (१७) तृणस्पर्श-कंकर-काँटा आदि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुभन, (१८) जल्ल–मल को सहन करना, (१९) सत्कार–पुरस्कार–आदर होने पर अहंकार और अनादर की अवस्था में विषाद होना, (२२) प्रज्ञा–विशिष्ट बुद्धि का अभिमान, (२१) अज्ञान–विशिष्ट ज्ञान के अभाव में खेद का अनुभव, और (२२) अदर्शन। इन बाईस परीषहों पर विजय प्राप्त करने वाला संयमी विशिष्ट निर्जरा का भागी होता है।

२३. सूत्रकृतांग–अध्ययन–प्रथम श्रुतस्कन्ध के पूर्वलिखित सोलह अध्ययन और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सात अध्ययन मिलकर तेईस होते हैं। द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सात अध्ययन ये हैं–(१) पुण्डरीक, (२) क्रियास्थान, (३) आहारपरिज्ञा, (४) प्रत्याख्यानक्रिया, (५) अनगारश्रुत, (६) आर्द्रकुमार, और (७) नालन्दा।

२४. चार निकाय के देवों के चौबीस भेद हैं–१० भवनवासी, ८ वाणव्यन्तर, ५ ज्योतिष और सामान्यतः १ वैमानिक। मतान्तर से मूल पाठ में आये 'देव' शब्द से देवाधिदेव अर्थात् तीर्थंकर समझना चाहिए, जिनकी संख्या चौबीस प्रसिद्ध है।

२५. भावना–पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनायें होती हैं।

२६. उद्देशक–दशाश्रुतस्कन्ध के १०, बृहत्कल्प के ६ और व्यवहारसूत्र के १० उद्देशक मिलकर छब्बीस उद्देशक हैं।

२७. साधु के मूल गुण सत्ताईस हैं–५ महाव्रत, ५ इन्द्रियों का निग्रह, ४ क्रोधादि कषायों का त्याग, भावसत्य, करणसत्य, योगसत्य, क्षमा, विरागता, मन का, वचन का और काय का निरोध, ज्ञानसम्पन्नता, दर्शनसम्पन्नता, चारित्रसम्पन्नता, वेदनादि सहन और मारणान्तिक उपसर्ग का सहन।

२८. प्रकल्प–आचार प्रकल्प २८ प्रकार का होता है। यहाँ आचार का अर्थ है–आचारांगसूत्र के दोनों श्रुतस्कन्धों के अध्ययन, जिनकी संख्या पच्चीस है और प्रकल्प का अर्थ है–निशीथसूत्र के तीन अध्ययन–उद्घातिक, अनुद्घातिक और आरोपणा। ये सब मिलकर २८ हैं।

२९. पापश्रुतस्कन्ध के २९ भेद इस प्रकार हैं–(१) भौम, (२) उत्पात, (३) स्वप्न, (४) अन्तरिक्ष, (५) अंग, (६) स्वर, (७) लक्षण, (८) व्यंजन। इन आठ प्रकार के निमित्तशास्त्रों के सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के भेद से २४ भेद हो जाते हैं। इनमें विकथानुयोग, विद्यानुयोग, मंत्रानुयोग, योगानुयोग और अन्यतीर्थिक प्रवृत्तानुयोग–इन पाँच को सम्मिलित करने पर पापश्रुत के उनतीस भेद होते हैं। मतान्तर से अन्तिम पाँच पापश्रुतों के स्थान पर गन्धर्व, नाट्य, वास्तु, चिकित्सा और धनुर्वेद का उल्लेख भी मिलता है।

३०. मोहनीय–अर्थात् मोहनीयकर्म के बन्धन के तीस स्थान–कारण इस प्रकार हैं–(१) जल में डुबाकर त्रस जीवों की घात करना, (२) हाथ आदि से प्राणियों के मुख, नाक आदि बन्द करके मारना, (३) गीले चमड़े की पट्टी कसकर मस्तक पर बाँधकर मारना, (४) मस्तक पर मुद्गर आदि का प्रहार करके मारना, (५) श्रेष्ठ पुरुष की हत्या करना, (६) शक्ति होने पर भी दुष्ट परिणाम के कारण रोगी की सेवा न करना, (७) तपस्वी साधक को बलात् धर्मभ्रष्ट करना, (८) अन्य के सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध परिणामों को विपरीत रूप में परिणत करके उसका अपकार करना, (९) जिनेन्द्र भगवान की निन्दा करना, (१०) आचार्य-उपाध्याय की निन्दा करना, (११) ज्ञानदान आदि से उपकारक आचार्य आदि का उपकार न मानना एवं उनका यथोचित सम्मान न करना, (१२) पुनः-पुनः राजा के प्रयाण के दिन आदि का कथन करना, (१३) वशीकरणादि का प्रयोग करना, (१४) परित्यक्त भोगों की कामना करना, (१५) बहुश्रुत न होने पर भी अपने को बहुश्रुत कहना, (१६) तपस्वी न होकर भी अपने को तपस्वी के रूप में विख्यात करना, (१७) मनुष्य या अन्य जीवों को घर में बन्द करके आग लगाकर मार डालना, (१८) अपने पाप को पराये सिर मढ़ना, (१९) मायाजाल रचकर जनसाधारण को ठगना, (२०) अशुभ परिणामवश सत्य को भी सभा में-बहुत लोगों के समक्ष-असत्य कहना, (२१) बारंबार कलह-लड़ाई-झगड़ा करना, (२२) विश्वास में लेकर दूसरे का धन हड़प जाना, (२३) विश्वास उत्पन्न कर परकीय स्त्री को अपनी ओर आकृष्ट करना-लुभाना, (२४) कुमार-अविवाहित न होने पर भी अपने को कुमार कहना, (२५) अब्रह्मचारी होकर भी अपने को ब्रह्मचारी कहना, (२६) जिसकी सहायता से वैभव प्राप्त किया उसी उपकारी के द्रव्य पर लोलुपता करना, (२७) जिसके निमित्त से ख्याति अर्जित की उसी के काम में विघ्न डालना, (२८) राजा, सेनापति अथवा इसी प्रकार के किसी राष्ट्रपुरुष का वध करना, (२९) देवादि का साक्षात्कार न होने पर भी साक्षात्कार-दिखाई देने की बात कहना, और (३०) देवों की अवज्ञा करते हुए स्वयं को देव कहना। इन कारणों से मोहनीयकर्म का बन्ध होता है।

३१. सिद्धादिगुण-सिद्ध भगवान में आदि से अर्थात् सिद्धावस्था के प्रथम समय से ही उत्पन्न होने वाले या विद्यमान रहने वाले गुण सिद्धादिगुण कहलाते हैं अथवा सिद्धों के आत्यन्तिक गुण। ये इकतीस हैं-(१-५) मतिज्ञानावरणीय आदि पाँच प्रकार के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय, (६-१४) नौ प्रकार के दर्शनावरण का क्षय, (१५-१६) सातावेदनीय-असातावेदनीय का क्षय, (१७) दर्शनमोहनीय का क्षय, (१८) चारित्रमोहनीय का क्षय, (१९-२२) चार प्रकार के आयुष्यकर्म का क्षय, (२३-२४) दो प्रकार के गोत्रकर्म का क्षय, (२५-२६) शुभनामकर्म और अशुभ नामकर्म का क्षय, (२७-३१) पाँच प्रकार के अन्तराय कर्म का क्षय। इस प्रकार ८ कर्मों की ३१ प्राकृतियों के क्षय रूप, गुण सिद्ध को प्रथम समय में ही प्राप्त हो जाते हैं।

अथवा सिद्धों के इकतीस गुण इस प्रकार भी होते हैं-पाँच संस्थानों, पाँच वर्णों, पाँच रसों, दो गन्धों, आठ स्पर्शों और तीन वेदों (स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद) से रहित होने के कारण २८ गुण तथा अकायता, असंगता और अरूपित्व, ये तीन गुण सम्मिलित कर देने पर सब ३१ गुण होते हैं।

३२. योगसंग्रह-मन, वचन और काय की प्रशस्त प्रवृत्तियों का संग्रह योगसंग्रह कहलाता है। यह बत्तीस प्रकार का है-(१) आलोचना-आचार्यादि के समक्ष शिष्य द्वारा अपने दोष को यथार्थ रूप से भली भांति यथा तथ्य रूप में प्रकट करना, (२) निरपलाप-शिष्य द्वारा प्रकट किये हुए दोषों को आचार्यादि किसी अन्य के समक्ष प्रकट न करे, (३) आपत्ति आ पड़ने पर भी धर्म में दृढ़ता रखना, (४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिना किसी का सहारा लिए तपश्चर्या करना, (५) आचार्यादि से सूत्र और उसके अर्थ आदि को ग्रहण करना, (६) शरीर का श्रृंगार न करना, (७) अपनी तपश्चर्या या उग्र क्रिया को प्रकाशित न करना, (८) निर्लोभ होना, (९) कष्ट-सहिष्णु होना-परीषहों को समभाव से सहन करना, (१०) आर्जव-सरलता-निष्कपटभाव होना, (११) सत्य होना, (१२) दृष्टि सम्यक् रखना, (१३) समाधि-चित्त को समाहित रखना, (१४) पाँच प्रकार के आचार का पालन करना, (१५) विनीत होकर रहना, (१६) धैर्यवान् होना-धर्मपालन में दीनता का भाव न उत्पन्न होने देना, (१७) संवेगयुक्त रहना, (१८) प्रणिधि अर्थात् मायाचार न करना, (१९) समीचीन आचार-व्यवहार, (२०) संवर-ऐसा आचरण करना जिससे कर्मों का आस्रव रुक जाये, (२१) आत्मदोषोपसंहार-अपने में उत्पन्न होने वाले दोषों का निरोध करना, (२२) कामभोगों से विरत रहना, (२३) मूलगुणों सम्बन्धी प्रत्याख्यान करना, (२४) उत्तरगुणों से सम्बन्धित प्रत्याख्यान करना-विविध प्रकार के नियमों को अंगीकार करना, (२५) व्युत्सर्ग-शरीर, उपधि तथा कषायादि का उत्सर्ग करना-त्यागना, (२६) प्रमाद का परिहार करना, (२७) प्रतिक्षण समाचारी का पालन करना, (२८) ध्यानरूप संवर की साधना करना, (२९) मारणान्तिक कष्ट के अवसर पर भी चित्त में क्षोभ न होना, (३०) विषयासक्ति से बचे रहना, (३१) अंगीकृत प्रायश्चित्त का निर्वाह करना या दोष होने पर प्रायश्चित्त लेना, और (३२) जीवन की अन्तिम घड़ियों के समय संलेखना करके अन्तिम आराधना करना।

३३. आशातनायें निम्नलिखित हैं-(१) शैक्ष-नवदीक्षित या अल्प दीक्षापर्याय वाले साधु का रात्निक-अधिक दीक्षापर्याय वाले साधु के बराबर चलना। (२) शैक्ष का रात्निक साधु के आगे-आगे गमन करना। (३) शैक्ष का रात्निक के अति निकट चलना। (४) शैक्ष का रात्निक के आगे खड़ा होना। (५) शैक्ष का रात्निक के साथ बराबरी से खड़ा होना। (६) शैक्ष का रात्निक के अति निकट खड़ा होना। (७) शैक्ष का रात्निक के साथ बराबरी से बैठना। (८) शैक्ष का रात्निक के आगे बैठना। (९) शैक्ष का रात्निक के अति समीप बैठना। (१०) शैक्ष का रात्निक के साथ स्थंडिलभूमि जाना और रात्निक से पहले ही शौच-शुद्धि कर लेना। (११) शैक्ष का रात्निक के साथ विचारभूमि या विहारभूमि जाना और रात्निक से पहले ही आलोचना कर लेना। (१२) कोई व्यक्ति दर्शनादि के लिए आया हो और रात्निक के बात करने से पहले ही शैक्ष द्वारा बात करना। (१३) रात्रि में रात्निक के पुकारने पर जागता हुआ भी न बोले। (१४) आहारादि लाकर पहले अन्य साधु के समक्ष आलोचना करे, बाद में रात्निक के समक्ष। (१५) आहारादि लाकर पहले अन्य साधु को और बाद में रात्निक साधु को दिखलाना। (१६) आहारादि के लिए पहले साधुओं को निमंत्रित करना और बाद में रत्नाधिक को। (१७) रत्नाधिक से पूछे बिना अन्य साधुओं को आहारादि देना। (१८) रात्निक साधु के साथ आहार करते समय मनोज्ञ, सरस वस्तु अधिक एवं जल्दी-जल्दी खाये। (१९) रत्नाधिक के पुकारने पर उनकी बात अनसुनी करना। (२०) रत्नाधिक के कुछ कहने पर अपने स्थान पर बैठे-बैठे सुनना और उत्तर देना। (२१) रत्नाधिक के कुछ कहने पर 'क्या कहा?' इस प्रकार पूछना। (२२) रत्नाधिक के प्रति 'तू, तुम' ऐसे तुच्छतापूर्ण शब्दों का व्यवहार करना। (२३) रत्नाधिक के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग करे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्दण्डतापूर्वक बोले, अधिक बोले। (२४) 'जी हाँ' आदि शब्दों द्वारा रात्निक की धर्मकथा का अनुमोदन न करना। (२५) धर्मकथा के समय रात्निक को टोकना, 'आपको स्मरण नहीं' इस प्रकार के शब्द कहना। (२६) धर्मकथा कहते समय रात्निक को 'बस करो' इत्यादि कहकर कथा समाप्त करने के लिए कहना। (२७) धर्मकथा के अवसर पर परिषद् को भंग करने का प्रयत्न करे। (२८) रात्निक साधु धर्मोपदेश कर रहे हों, सभा-श्रोतागण उठे न हों, तब दूसरी-तीसरी बार वही कथा कहना। (२९) रात्निक धर्मोपदेश कर रहे हों तब उनकी कथा का काट करना या बीच में स्वयं बोलने लगना। (३०) रात्निक साधु की शय्या या आसन को पैर से ठुकराना। (३१) रत्नाधिक के समान-बराबरी पर आसन पर बैठना। (३२) रत्नाधिक के आसन से ऊँचे आसन पर बैठना। (३३) रत्नाधिक के कुछ कहने पर अपने आसन पर बैठे-बैठे ही उत्तर देना। इन आशातनाओं से मोक्षमार्ग की विराधना होती है, अतएव ये वर्जनीय हैं।

सुरेन्द्र बत्तीस हैं-भवनपतियों के २०, वैमानिकों के १० तथा ज्योतिष्कों के २ चन्द्रमा और सूर्य। (इनमें एक नरेन्द्र अर्थात् चक्रवर्ती को सम्मिलित कर देने से ३३ संख्या की पूर्ति हो जाती है।)

एक से प्रारम्भ करके क्रमशः एक-एक की वृद्धि करते हुये तीन अधिक तीस अर्थात् तेतीस संख्या हो जाती है। इन सब संख्या वाले पदार्थों में तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों में, जो जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित हैं तथा शाश्वत अवस्थित और सत्य हैं, किसी प्रकार की शंका या कांक्षा न करके हिंसा आदि से निवृत्ति करनी चाहिए एवं विशिष्ट एकाग्रता धारण करनी चाहिए। इस प्रकार निदान, ऋद्धि आदि के गौरव-अभिमान से दूर रहकर, अलुब्ध-निर्लोभ होकर तथा मूढ़ता त्यागकर जो अपने मन, वचन और काय को संयम में रखता हुआ भगवान महावीर के शासन पर श्रद्धा करता है, वही साधु परिग्रह त्यागी होता है, वही वास्तव में साधु है।

विवेचन : मूल पाठ में अन्तरंग परिग्रह के एक से तैंतीस बोल दिये गये हैं। इन्हें ही अन्तरंग परिग्रह मानकर प्रतिपादित किया गया है। इन तैंतीस बोलों में वीतराग देव ने जो भी हेय, समझकर विवेकपूर्वक-अमूढ़भाव से प्रवृत्ति करनी चाहिए। साधु को इन्द्रादि पद की या भविष्य के भोगादि की आकांक्षा से रहित, निरभिमान, अलोलुप और संवरमय मन, वचन, काय वाला होना चाहिए। सोना-चांदी, मकान वस्त्र, पात्र आदि वस्तुयें ही परिग्रह नहीं हैं। अपितुः परिग्रह का एक अंतरंग रूप भी है जो बाह्य परिग्रह से कई गुना ज्यादा भंयकर है। देखा जाय तो वास्तव में परिग्रह का जन्मस्थान ही अन्तर्मन है। बाह्य परिग्रह तो अंतरंग परिग्रह का निमित्त रूप होने के कारण ही परिग्रह कहलाता है। इसलिये शास्त्रकार ने मूल पाठ में आभ्यन्तर परिग्रह के एक से लेकर तैंतीस बोलों का वर्णन किया है और इन्हें ही अन्तरंग परिग्रह मानकर प्रतिपादित किया है। इन तैंतीस बोलों में से हेय, ज्ञेय और उपादेय का विवेक करके साधक को विवेक पूर्वक अमूढ़भाव से प्रवृत्ति करनी चाहिये। साधु को इन्द्रादि पद को या भविष्य के भोगादि की आकांक्षा से रहित निरभिमान, अलोलुप और संवरमय मन, वचन, काय वाला होना चाहिए।

154. Addressing his disciple Jambu Swami, Sudharma said—O Jambu ! One who is devoid of the thought of attachment who has

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

control over his senses and passions, who is away from activities involving violence to living beings and attachment, and who is without anger, greed, ego and deceit, he is true monk.

(1) Non-restraint is generally of one type as it is due to the non-detachment in one's nature.

(2) Bondage is of two types namely—(i) bondage due to attachment, (ii) bondage due to hatred.

(3) Punishment (dand) is of three types—(i) Ill thoughts in mind, (ii) bad words, (iii) bad activity

Egoist blemish is of three types—(1) ego of wealth, (ii) ego of enjoyments, and (iii) ego of happiness.

Gupti (Control) is of three types—(i) of mind, (ii) of words, and (iii) of activities of the body.

Disobedience is of three types—(i) of knowledge, (ii) of faith, (iii) of conduct.

(4) Passions are four namely anger, ego, deceit, greed. Thought concentration is of four types—(i) in sorrow, (ii) in anger, (iii) in dharma, (v) in purity (Shukla dhyan). Natural instinct (Sanjna) is of four types—(i) for food, (ii) of fear, (iii) for mating, (iv) for attachment to collections. Ignoble talk is of four types—(i) about women, (ii) about food, (iii) about state, (iv) about the country.

(5) (a) Activity is of five types—(i) natural movement, (ii) using a weapon, (iii) arising out of hatred, (iv) causing trouble, and (v) causing damage to life force.

(b) Care (alertness) is of five types—(i) in movement, (ii) in speech, (iii) in collection of alms, (iv) in taking and placing things, (v) in dispersing things.

(c) Sense organs are five—(1) Sense of touch, (ii) of taste, (iii) of smell, (iv) of sight, and (v) of hearing.

(d) Major vows are five—(i) non-violence, (ii) truth, (iii) non-stealing, (iv) chastity, (v) non-attachment.

(6) (a) Living beings are of six types—(i) earth-bodied, (ii) water-bodied, (iii) air-bodied, (iv) fire-bodied, and (v) plant-bodied living beings.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(b) Soul complexions (leshyas) are of six types—(i) Dark, (ii) blue, (iii) grey, (iv) bright, (v) red like lotus, and (vi) purely white.

(7) Fear is of seven types—(i) from person of same class, (ii) from living beings of other class, (iii) from loss of source of livelihood, (iv) of sudden event, (v) loss, (vi) of damage to reputation, and (vii) of death.

(8) Ego is of eight types—(i) of caste, (ii) of family, (iii) of power, (iv) of beauty, (v) of austerities, (vi) of gains, (vii) of knowledge of scripture, and (viii) of wealth.

(9) Precautions about chastity (brahmcharya) are nine namely—(i) aloof bed, (ii) avoiding talk about women, (viii) avoiding seat common with woman, (iv) avoiding looking at women, (v) avoiding listening to words of compassion or laughter of ladies, (vi) recalling sensual enjoyment of the past, (vii) avoiding rich food, (viii) avoiding over eating and (ix) avoiding beautification of the body.

(10) Conduct of monk is of ten types—(i) Benevolence, (ii) non-greediness, (iii) simplicity, (iv) humility, (v) a few articles of use, (vi) truth, (vii) self-restraint, (viii) austerities, (ix) detachment, and (x) chastity or celibacy.

(11) There are eleven special austerities (pratima) of a householder devotee namely—In respect of (1) faith, (2) austerities, (3) sitting continuous in state of equanimity (Samayik) for 48 minutes, (4) fast for 24 hours in place of worship, (5) meditation, (6) chastity (brahmcharya), (7) avoiding that which contains life, (8) avoiding that which involves violence, (9) avoiding, (10) avoiding that which is prepared specifically for monk, (11) to lead life almost like a monk.

(12) There are twelve special austerities of a monk. The first seven are practiced for one month, two, three, four, five, six and seven months respectively; eighth, ninth and tenth are of 24 hours each; while the eleventh and twelfth are of one night each. There detailed description can be seen in Dashashrut Skandh Sutra.

(13) There are thirteen activities that generate sin (Kriya Sthan). They are sinful activities committed—(i) with a purpose, (ii) without purpose, (iii) involving violence, (iv) suddenly, (v) by pruned look, (vi) by falsehood, (vii) by stealing, (viii) by wrong interpretation, (ix) by egoistic

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

attitude, (x) by hatred towards friend, (xi) by deceit, (xii) by greed and (xiii) by movement with proper care.

(14) The living beings are of fourteen class—(1) subtle fully formed one-sensed living beings, (2) subtle partially formed one-sensed beings, (3) gross fully formed one-sensed beings, (4) gross partially formed one-sensed beings, (5) two-sensed fully formed being, (6) two-sensed partially formed beings, (7) three-sensed fully formed beings, (8) three-sensed partially formed beings, (9) four-sensed fully formed ones, (10) four-sensed partially formed ones, (11) five-sensed fully formed having no mind, (12) five-sensed partially formed without mind, (13) five-sensed fully developed having mind, (14) five-sensed partially developed having mind.

(15) There are fifteen types of demon gods who torture hellish beings upto third hell. They are—(1) Umb, (2) Umbareesh, (iii) Shyam, (iv) Shabal, (v) Raudra, (vi) Uparaudra, (viii) Kaal, (viii) Mahakaal, (ix) Asipatra, (x) Dhanu, (xi) Kumbh, (xii) Valuk, (xiii) Vaitarnik, (xiv) Khar Svar, (xv) Mahaghosh. The tortures given by them are mentioned in first Asrava Dvar.

(16) There are sixteen chapters in Sutra Kritanga wherein the sixteenth chapter is Gatha. They are (i) Samaya, (ii) Vaitaliya, (iii) Upasarg Parijna, (iv) Stri Parijna, (v) Narak Vibhakti, (vi) Veer Stuti, (vii) Kusheel Paribhashit, (viii) Virya, (ix) Dharma, (x) Samadhi, (xi) Marg, (xii) Samvasaran, (xiii) Yathatathya, (xiv) Granth, (xv) Yamakiya, (xvi) Gatha.

(17) Non-restraint is of seventeen types namely non-restraint about—(i) earth-bodied living being, (ii) water-bodied, (iii) fire-bodied, (iv) air-bodied, (v) plant-bodied, (vi) two-sensed, (vii) three-sensed, (viii) four-sensed and (ix) five-sensed living being; (x) non-living beings, (xi) discrimination, (xii) discarding, (xiii) disposal, (xiv) not cleaning, (xv) mind, (xvi) speech and (xvii) body.

Not to have proper care about nine types of living being such as earth-bodied and the like, causing violence to them, to collect costly clothes, pots, books and the like non-living things is non-restraint of living being and of non-living beings respectively. Not to properly look into the articles used in ascetic conduct at desired intervals is non-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

restraint in discrimination (Preksha). Not to engage in acts of restraint and to engage in acts of non-restraint is non-restraint in discarding. Not to dispose stool, urine and the like according to the code in scriptures is non-restraint in disposal. Not to clean pots clothes and the like according to code is non-restraint in non-cleaning. Not to engage mind in noble thoughts or to engage in bad thoughts is non-restraint of mind. To utter speech which is partially true or wrong or bad is non-restraint about speech. To engage body in acts involving violence is non-restraint of body.

(18) Non-chastity is of eighteen type—To engage mentally, vocally and physically in non-chastity by doing, getting done and appreciating through physical body and through fluid body. The total comes to eighteen.

(19) There are nineteen chapters in Jnata Dharma Katha Sutra namely—(1) Utkshipt, (2) Sanghaat, (3) Und (egg), (4) Koorm (tortoise), (5) Shailak rishi, (6) Tumb, (7) Rohini, (8) Malli, (9) Makandi, (10) Chandrika, (11) Davadav (a tree), (12) Udak, (13) Mandook, (14) Tetali, (15) Nandiphal, (16) Aparkanka, (17) Aakeern, (18) Sushma, (19) Pundarik.

(20) Activities causing non-equanimity are twenty namely—(1) To walk quickly ignoring self-restraint, (2) To sit, move or get up without properly cleaning the place, (3) To clean the place carelessly, (4) To keep beds and seats more than necessary, (5) Not to be humble to seniors like acharya, (6) Cause pain to monks senior in age, initiation or learning, (7) To kill living beings, (8) To be angry over petty matters, (9) To remain in anger, (10) To backbite, (11) To use words with firmness even when in doubt, (12) To escate new quarrels, (13) To re-start quarrel that had pacified, (14) To accept food from a donor whose hand or feet are full of dust that contains living beings, (15) To study at prohibited time, (16) To do acts that produce quarrel, to talk about such matters or to participate in them, (17) To speak loudly at night, (18) To utter such words that cause friction in the group, class or organisation, (19) To go on taking food from sunrise to sunset, (20) Not to seek alms according the code and to quarrel when fault is pointed out.

(21) Serious fault that adversely affect the ascetic conduct are twenty one. In brief they are—(1) To engage in masturbation, (2) To engage in

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

sex transgressing the code once, once in a while or regularly, (3) To transgress the vow of not having meals at night in the same way, (4) To accept faulty food when it is prepared for monk, (5) To take food from the person who has provided place of stay, (6) To take food prepared specifically for the monk or purchased for him, (7) To have food which has been descarded, (8) To leave ones group of monks within six months, (9) To move in navel deep water three times in a month, (10) To indulge in deceitful conduct three times in a month, (11) To have food from royal family, (12) To cause violence to living beings intentionally, (13) To utter lie intentionally, (14) To steal intentionally, (15) To sit intentionally at a place containing living beings for meditation, (16) To sit or sleep intentionally on wet land, slab containing living beings or wood that has insects, (17) To sit at a place when seed, or living beings are there, (18) To eat roots intentionally, (19) To move in navel deep water ten times in a year, (20) To have deceitful behaviour ten times in a year, (21) To accept food again and gain with hands containing animated water.

(22) There are twenty two troubles arising in monkhood which a monk bears calmly in order to destroy his karmas. They are trouble due to—(1) hunger, (2) thirst, (3) cold, (4) heat, (5) mosquito bite, (6) nakedness or little clothing, (7) lack of interest in ascetic life, (8) women, (9) movement, (10) sitting, (11) place of stay, (12) threatening, (13) beating, (14) begging, (15) not getting desired thing in meals, (16) illness, (17) pricking of thorn or stone, (18) dust on body, (19) arising of ego when receiving respect, (20) ego of special knowledge, (21) dejection due to lack of knowledge, (22) lack of faith or wrong faith.

One who overcomes the said twenty two troubles sheds his karmas.

(23) There are twenty three chapters of Sutra Kritang—Sixteen chapters in Part I already mentioned at number 16 above and seven chapters in Part II which are—(1) Pundarik, (2) Kriyasthaan, (3) Ahaar Parijna, (4) Pratyakhyan Kriya, (5) Anagar Shrut, (6) Ardra Kumar, and (7) Nalanda.

(24) There are twenty four types in all of four categories of gods namely—(1) ten gods residings in bhavans, (2) eight vaanvyantar gods, (3) five jyotish gods, and (4) one vaimanik gods. In another interpretation there are twenty four Tirthankars.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(25) There are twenty five sentiments—five each of every major vow.

(26) Twenty six lessons—ten of Dashashrut Skandh, six of Brihata Kalp and ten of Vyavahar Sutra totalling seventy six lessons.

(27) Twenty seven basic virtues of a monk—Five major vows, control of 5 senses, discarding four passions, truth in contemplation, truth in act, truth in behaviour (yoga), benevolence, detachment, control over mind, speech and body, to have knowledge, perception and ascetic conduct, to tolerate pain, to tolerate unexpected trouble at the time of death.

(28) Twenty eight lessons about ascetic conduct—twenty five chapters of the two parts of Acharanga Sutra, three chapters of Nisheeth Sutra.

(29) Twenty nine types of derogating literature texts about—(1) earth, (2) lightening, (3) dreams, (4) astronomy, (5) limbs of body, (6) voice, (7) symptoms in body, (8) special marks on human body. Eight such texts, then commentaries (Vrittis), explanatory notes (Vaartik). Thus totally twenty four. Engaging in worldly stories, worldly knowledge, worldly mantras, worldly activities and activities of persons of other faiths.

In another interpretation, the last five in the above-mentioned para are substituted with texts about gandharva music, drama, architecture, medical treatment and archery.

(30) Thirty activities that cause, bondage of delusion—(1) To kill by drowning mobile living beings, (2) To kill by closing mouth or nostril with hand, (3) To kill by binding forehead with wet leather tightly, (4) To hit forehead with a thick rod, (5) To kill a noble person, (6) Not to attend to a sick person due to evil thoughts, (7) To lead an ascetic astray from monkhood austerities forcibly, (8) To pollute a person by turning one away from the right path leading to salvation, (9) To criticise the omniscient, (10) Condemning the Acharya or Upadhyaya, (11) Not to realise gratitude of the acharya and others who have imparted scriptural knowledge, (12) To talk again and again about the death of the king, (13) To use mantra for subduing a person, (14) To have lust for sensual pleasure that had been discarded earlier, (15) To call oneself a scholar while actually it is not so. (16) To call oneself as ascetic practicing austerities while it is not so, (17) To shut many persons in a house and then set it on fire, (18) To levy one's sins on another person, (19) To cheat

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

others by deceitful means, (20) To call a true thing as false with polluted mind, (21) To quarrel again and again, (22) To usurp other's property by taking him in confidence, (23) To attract others wife by taking her in confidence, (24) To call oneself as unmarried although he is married, (25) To call oneself as celibate while he is not so, (26) To be greedy about the wealth of the person who had benefited him, (27) To cause obstruction to the person who had helped him in becoming famous, (28) To kill king, army chief or suchlike important person, (29) To pretend that he is seeing celestial beings while actually it is not so, (30) To call oneself as god, thus undermining gods.

(31) The qualities which are in Siddhas (Omniscients without physical body) right from the moment they attain this state or the unique qualities of Siddhas are thirty one. They are—(1-5) Destruction of five types of Karmas that cause obstruction to knowledge, (6-14) To destroy nine types of Karmas that adversely affect right perception, (15-16) Destroying Karmas that provide mundane pleasure and pain, (17) To destroy Karma that cause delusion in thought, 18) To destroy Karma that cause delusion in conduct, (19-22). Destroying four types of age-determining Karma, (23-24) Destroying two types of status determining Karma, (25-26) Destroying two types of name-determining Karma, (27-31) Destroying five types of Karmas that cause obstruction in attaining good results.

In another form the thirty one qualities are—to be devoid of five forms, five colours, five tastes, two smells, eight touches and three genders. These total up as twenty eight. To be without a body, without attachment and without any tangible form. Thus the qualities are thirty one.

(32) There are thirty two clones of good activities of mind, speech and body namely—(1) To admit ones fault before the Acharya and the like, (2) Acharya's action is not disclosing the faults mentioned by his disciple to another person, (3) Remaining firm in Dharma at the time of difficulty, (4) To practice austerities without any one's support, (5) To learn scriptures and their interpretation from the Acharya and the like, (6) Not to beautify the body, (7) Not to publicise one's hard austerities, (8) To be non-greedy, (9) To bear trouble with equanimity, (10) To remain

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

free from crookedness, (11) To be truthful, (12) To have right perception, (13) To keep heart in a state of equanimity, (14) To practice five types of ascetic conduct, (15) To be humble, (16) Not to allow frustration to creep in practice of dharma, (17) To have strong desire for liberation (Samvega), (18) Not to be deceitful, (19) To behave according to the code, (20) To act in such a manner that stops inflow of Karma, (21) To stop the faults arising in oneself, (22) To become detached from sensual pleasures, (23) To take vow about basic qualities, (24) To take vow regarding secondary qualities, (25) To discard attachment toward body, property and passions, (26) To avoid slackness, (27) To practice code of conduct of an ascetic every moment, (28) To practice meditation, (29) Not to feel dejected even at the time of deadly pain, (30) To avoid attachment to senses, (31) To undergo meticulously the punishment awarded, (32) To observe Sanlekhna when one is nearing death.

(33) There are thirty three transgressions in ascetic conduct—(1) Very close movement of nearly initiated monk with senior monk, (2) His moving ahead the senior monk, (3) His moving adjoining the senior monk, (4) His standing before the senior monk, (5) His standing beside the senior monk, (6) His standing very close to the senior monk, (7) His sitting beside the senior monk, (8) His sitting ahead of senior monk, (9) His sitting very close to the senior monk, (10) While going for call of nature, to be free ahead of the Senior monk, (11) While going with senior monk, to repent for faults earlier to the senior monk, (12) To talk to a visitor before he talks to the senior monk, (13) To remain silent even when awake at night while being called by the senior monk, (14) To express repentance about fault before other monk prior to doing it before senior monk after returning from collection of offerings, (16) To invite other monks for food before inviting the senior monks, (17) To give food to other monks without seeking permission from the senior monk, (18) To eat food of his taking hurriedly while jointly having meals with the senior monk, (19) To ignore the call of the senior monk, (20) To listen the call from one's seat and to reply from there itself, (21) To ask the senior monk what have you said, when he asks something, (22) To address senior monks like junior, (23) To use harsh words towards seniors, (24) Not to approve the talk of the seniors with words 'Yes Sir',

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(25) To disturb the senior monk during his lecture by saying 'you don't remember it properly', (26) To ask senior monk to stop the lecture, (27) To disperse the assembly during the lecture of senior monk, (28) To repeat something which the senior monk had said during the talk of the senior so that the audience may disperse, to repeat it twice and thrice if public does not disperse, (29) To speak during the lecture of the senior monk thus causing disturbance, (30) To sit by the side of senior monk like the senior monk, (31) Sit on seat higher than that of the senior monk, (32) To remain sitting at one's seat even if the senior monk says otherwise, (33) To reply from one's seat the question asked by the senior monk.

Such transgressions adversely affect the ascetic conduct. They should, therefore, he discarded.

The figures 33 can be arrived at by totalling Indras—20 of Bhavanpati gods, 10 of Vaimanik gods, 2 of Jyotishk gods and one Chakravarti.

The Above said is what the Tirthankars have stated. They are permanent and true. So one should have full faith in them. He should not have any lurking doubt about them. Considering them properly, he should avoid violence. He should adopt them meticulously in his conduct. Thus becoming free from any mundane desire of the result of such conduct, keeping himself away from the ego of wealth, status and others, avoiding greed and ignorance, he should control his mind, speech and action. One who has such a faith, he is the real monk.

Elaboration—The text is quite clear. It has been interpreted wherever necessary to explain its meaning. The purpose is that the Tirthankar has clearly classified what one should discard, what one should invite in his life and what one should know. It is all perfectly true, there is no reason for having any doubt in them. So one should completely avoid what is to be discarded, he should invite in life what is to be practiced and he should keep in mind with clear sense of discrimination what is to be known. A monk should not have any desire for the post of Indra and the like and of world enjoyments in future. He should not have ego or greed. He should stop inflow of Karma mentally, vocally and physically.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५५. जो सो वीरवर-वयण-विरइ-पवित्थरबहुविहप्पयारो सम्मत्त-विसुद्धमूलो धिइकंदो विणयवेइओ णिग्गय-तेल्लोक्क-विउलजस-णिविड-पीण-पवरसुजायखंधो पंचमहव्वय-विसालसालो भावणतयंत-ज्झाण-सुहजोग-णाणपल्लववरंकुरधरो बहुगुणकुसुमसमिद्धो सील-सुगंधो अणण्हवफलो पुणो य मोक्खवरबीजसारो मंदगिरि-सिहर-चूलिआ इव इमस्स मोक्खवर-मुत्तिमग्गस्स सिहरभूओ संवरवर-पायवो चरिमं संवरदारं।

१५५. श्री भगवान महावीर के वचनों से कही हुई अनेक प्रकार से परिग्रह निवृत्ति ही उस अपरिग्रह वृक्ष का विस्तार फैलाव है। यह आगे कहा जाने वाला जो अन्तिम परिग्रह विरति अपरिग्रह वृत्तिरूप संवरद्वार का संवर श्रेष्ठ वृक्ष है। सम्यग्दर्शन इसका विशुद्ध-निर्दोष मूल है। धृति-चित्त की स्थिरता इसका कन्द यानि स्कन्ध से नीचे का भाग है। विनय ही इसकी वेदिका-चारों ओर का परिकर है। तीनों लोकों में फैला हुआ विपुल यश इसका घना, स्थूल, महान् और सुनिर्मित स्कन्ध (तना) है। पाँच महाव्रत इसकी विशाल शाखाएँ हैं। अनित्यता, अशरणता आदि भावनाएँ इस संवर वृक्ष की त्वचा है तथा वह धर्मध्यान, शुभयोग तथा ज्ञानरूपी अंकुरों को धारण करने वाला है। निर्लोभता आदि शुभफल प्रद अनेक गुणों रूपी फूलों से यह समृद्ध है। यह शील की सुगन्ध से युक्त है और यह सुगन्ध इह लौकिक फलनिरपेक्ष सदाचार या सत्प्रवृत्ति रूप है। यह संवरवृक्ष अनास्रव-कर्मास्रव के निरोधरूप फलों वाला है। मोक्ष ही इसका उत्तम बीजसार-मींजी है। यह मेरु पर्वत के शिखर पर चूलिका के समान मोक्ष-कर्मक्षय के निर्लोभतास्वरूप मार्ग का शिखर है। इस प्रकार का अपरिग्रह रूप उत्तम संवरद्वाररूपी जो वृक्ष है, वह अन्तिम संवरद्वार है।

155. Bhagavan Mahavir has narrated in detail in this order that one should discard his attachment to worldly possessions. This is that tree what stops inflow of Karma (Samvar tree). This is the last gateway of Samvar and is in many forms (as mentioned earlier). Right faith is its pure faultless base. Perseverance or stability of the mind is its Kand (off-shoot). Humility is its girth. The immense respect and fame is thick, grand, well-built trunk. Five major vows are its large branches, sentiments like transitory nature is the skin of this samvar tree. It contains buds in the form of meditation on dharma, meritorious activities and scriptural knowledge. It is full of innumerable special qualities. It has the fragrance of chastity. Since that fragrance is free from immediate or expected reward, it is a good conduct. This Samvar tree has fruits in the form of stoppage of inflow of Karmas. The essence of its seed is liberation. Just as there is the Chulika at the tap of Meru mountain, it has the top climax of the path of non-greediness. Thus the last gateway of Samvar tree is non-attachment for possessions.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५६. जत्थ ण कप्पइ गामागर–णगर–खेड–कब्बड–मडंब–दोणमुह–पट्टणासमगयं च किंचि अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा तसथावरकायदव्वजायं मणसा वि परिघेत्तुं, ण हिरण्णसुवण्णखेत्तवत्थुं, ण दासी–दास–भयग–पेस–हय–गय–गवेलगं व, ण जाण–जुग्ग–सयणासणाइ, ण छत्तगं, ण कुंडिया, ण उवाणहा, ण पेहुण–वीयण–तालियंटगा, ण यावि अय–तउय–तंब–सीसग–कंस–रयय–जायरूव–मणिमुत्ताहार–पुडग–संख–दंत–मणि–सिंग–सेल–काय–वरचेल–चम्मपत्ताइं महरिहाइं, परस्स अज्झोववाय–लोहजणणाइं परियड्ढेउं गुणवओ, ण यावि पुप्फ–फल–कंद–मूलाइयाइं सणसत्तरसाइं सव्वधण्णाइं तिहिं वि जोगेहिं परिघेत्तुं ओसह–भेसज्ज–भोयणट्ठयाए संजएणं।

किं कारणं ?

अपरिमियणाणदंसणधरेहिं सील–गुण–विणय–तव–संजमणायगेहिं तित्थयरेहिं सव्वजगज्जीव–वच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरिंदेहिं एस जोणी जंगमाण दिट्ठा। ण कप्पइ जोणिसमुच्छेओ त्ति तेण वज्जंति समणसीहा।

१५६. जिस अपरिग्रह वृत्ति रूप अन्तिम संवर द्वार में गाँव, खान, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, बन्दरगाह, पत्तन अथवा आश्रम में रहा हुआ कोई भी पदार्थ हो, चाहे वह अल्पमूल्य वाला हो या बहुमूल्य हो, प्रमाण में छोटा हो अथवा बड़ा हो, वह भले त्रसकाय–शंख आदि हो या स्थावरकाय–रत्न आदि हो, उस द्रव्यसमूह को मन से भी ग्रहण करना उचित नहीं है, अर्थात् उसे ग्रहण करने की इच्छा करना भी योग्य नहीं है। चाँदी, सोना, क्षेत्र (खुली भूमि), वास्तु (मकान–दुकान आदि) भी ग्रहण करना नहीं कल्पता। दासी, दास, भृत्य–नियत वृत्ति पाने वाला सेवक, प्रेष्य–सन्देश ले जाने वाला सेवक, घोड़ा, हाथी, बैल आदि भी ग्रहण करना नहीं कल्पता। यान–रथ, गाड़ी आदि, युग्य–डोली आदि, शयन आदि और छत्र–छाता आदि भी ग्रहण करना नहीं कल्पता, न कमण्डलु, न जूता, न मोरपीछी, न पंखा, न ताड़ का पंखा–ग्रहण करना कल्पता है तथा लोहा, राँगा, ताँबा, सीसा, काँसा, चाँदी, सोना, मणि और मोती का आधार सीपसम्पुट, शंख, उत्तम दाँत, सींग, शैल–पाषाण (या पाठान्तर के अनुसार लेस अर्थात् श्लेष द्रव्य), उत्तम काँच, वस्त्र और चर्मपात्र–इन सबको भी ग्रहण करना उचित नहीं है। ये सब बहुमूल्य वस्तुयें दूसरे के मन में ग्रहण करने की इच्छा उत्पन्न करती हैं, इसी तरह की बहुमूल्य वस्तुओं का ग्रहण करना, झपट लेना अथवा उसकी वृद्धि या रक्षा करना मूल गुण आदि से सुशोभित अपरिग्रही साधु के लिये उचित नहीं है। और न ही संयमी साधु को औषध, भैषज्य (अनेक प्रकार की वस्तुओं से बनी हुई दवा) तथा भोज्य के लिये फूल, फल, कंद और मूल आदि को, तथा जिनमें १७वां धान्य सन है, ऐसे १७ प्रकार के सभी धान्यों–अनाजों का तीन योग–मन वचन काया से ग्रहण करना ठीक नहीं है।

ग्रहण नहीं करने का क्या कारण है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्त ज्ञान और दर्शन के धारक, शील-(सदाचार या समाधि), मूल गुण-अहिंसा आदि, विनय, तप और संयम के नायक, जगत् के समस्त प्राणियों पर वात्सल्य धारण करने वाले, तीनों लोकों के पूजनीय, तीर्थंकर जिनेन्द्र देवों ने अपने केवलज्ञान से देखा है कि ये पुष्प, फल आदि त्रस जीवों की योनि-उत्पत्तिस्थान हैं। योनि का विनाश करना कल्पता नहीं है। इसी कारण श्रमणसिंह-उत्तम मुनि सचित वस्तुओं को भोजनादि कार्य में लेना वर्जित करते हैं।

156. An article is lying in a village, a shop, a town, a kheda, a karbat, a mandab, a harbour, a port or in an ashram. It may be costly or of a little value. It may be small or large. It may consist of mobile living things such as conch shell or it may consist of immobile living being such as jewel. A monk should not even mentally desire to have it. It is not desirable for him to have silver, gold, open land, house. It is not desirable for him to possess chariot, cart, palanquin, bed, umbrella, bucket, broom of pea-cock feathers, fan or a fan of palm leaves. He is not allowed to have servants, maids, employees, regular messenger, horse, elephant and bullocks. He should not have iron, copper, bronze, glass, conch shells from which pearls and precious stones are derived, the unique tusk, horns, lacquor producing stone, beautiful mirror, clothes, skin-cloth, in his alms. Such precious articles create a deep desire in the mind to possess them. They produce attachment. They produce a desire to increase them and carefully keep them. So when people see them lying at a place, they have a desire to pick them up. They have an attraction to possess them. They want to keep them safely and to increase their quantity. But a monk is not allowed to have them. Similarly flower, fruit, root and the like have living organism. So suchlike things should not be taken by a monk as he has discarded all the attachment for possessions. He should not mentally, vocally or physically accept such medicines or food.

What are the causes for not accepting such things ? Tirthankars have unlimited knowledge and perception. They have immense peace in their heart. They have qualities of non-violence humility, austerity. They are the founders of code of self-restraint. They have compassion for all the living being. They are worshipped in all the three words. They have seen in their perfect knowledge that flowers, fruit and mobile livings generate from their place of birth. It is not proper to destroys their place of germination. So the excellent monks discard flowers, fruit and the like.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन : प्रस्तुत पाठ में शास्त्रकार ने अपरिग्रही साधु के लिये साफ-साफ कहा है कि ग्राम, आकर, नगर, निगम आदि किसी भी बस्ती में कोई भी वस्तु पड़ी हो तो उसे ग्रहण नहीं करनी चाहिए। इतना ही नहीं, साधु का मन इस प्रकार सधा हुआ होना चाहिए कि उसे ऐसे किसी पदार्थ को ग्रहण करने की इच्छा ही न हो ! ग्रहण न करना एक बात है, वह साधारण साधना का फल है, किन्तु ग्रहण करने की अभिलाषा ही उत्पन्न न होना उच्च साधना का फल है। मुनि का मन इतना समभावी, मूर्च्छाविहीन एवं नियंत्रित रहे कि वह किसी भी वस्तु को कहीं भी पड़ी देखकर न ललचाये। जो स्वर्ण, रजत, मणि, मोती आदि बहुमूल्य वस्तुएँ अथवा अल्प मूल्य होने पर भी सुखकर-आरामदेह वस्तुएँ दूसरे को मन में लालच उत्पन्न करती हैं, मुनि उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखे। उसे ऐसी वस्तुओं को ग्रहण करने की अभिलाषा ही न हो।

Elaboration—It has been clarly stated in this aphorism that a monk should not pick up any article lying in a village, town, colony and the like as he has discarded all the attachment for possessions. Even the mind of the monk should be trained in such a manner that he should not have any desire for them. Not to have a thing is the result of general practice of monkhood but not to have any desire even in the mind for it, is the result of ascetic practice of a high order. The mind of a monk should be in such a state of equanimity, control and free from attachment that he should not be greedy to have anything lying at any place, he should ignore it. He should not have even the slightest desire to have it. Live flowers, fruit, root and the like are the places helpful in generating mobile living beings. So it is not desirable that a monk should destroy them. So he always avoids to have such things.

सन्निधि-त्याग DISCARDING COLLECTION OF POSSESSION

१५७. जं पि य ओयणकुम्मास-गंज-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूव-सक्कुलि-वेढिम-वरसरकचुण्ण-कोसग-पिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दहि-सप्पि-णवणीय-तेल्ल-गुड-खंड-मच्छंडिय-महु-मज्ज-मंस-खज्जग-वंजण-विहिमाइयं पणीयं उवस्सए परघरे व रण्णे ण कप्पइ तं वि सण्णिहिं काउं सुविहियाणं।

१५७. और जो भी पके हुये चावल, उड़द या थोड़े उबाले मूँग आदि गंज-एक प्रकार का भोज्य पदार्थ, तर्पण-सत्तू, मंथु-बोर आदि का चूर्ण-आटा, भूंजी हुई धानी-लाई, पलल-तिल के फूलों का पिष्ट, सूप-दाल, शष्कुली-तिलपपड़ी, वेष्टिम-जलेबी, इमरती आदि, वरसरक नामक भोज्य वस्तु, चूर्णकोश-खाद्य विशेष, गुड़ आदि का पिण्ड, शिखरिणी-दही में शक्कर आदि मिलाकर बनाया गया भोज्य-श्रीखंड, वट्ट-वड़ा, मोदक-लड्डू, दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, खाजा, गुड़, खाँड़, मिश्री, मधु, मद्य, माँस और अनेक प्रकार के व्यंजन-शाक, छाछ आदि वस्तुओं का उपाश्रय में, अन्य किसी के घर में अथवा अटवी में सुविहित-परिग्रहत्यागी, सुव्रती साधुओं को संचय करना नहीं कल्पता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

157. There are many articles of consumption such as a little boiled rice, urad and moong pulses, ganj, tarpan—barley powder used as food, manthu, baked corn, paste of sesame flowers, soup of pulses, sweats like jalebis, imaratis, varsarak, churan-kosh, jaggery, mixture of curd and sugar (Shrikhand), laddus, milk, curd, ghee, butter, oil, khaja, honey, wine, meat, many types of vegetarian dishes, whey and the like. The monk should not store such articles in the upashray (place of stay) or in the house of anyone or in a hut since he has completely detached himself from attachment for possessions.

विवेचन : उपरोक्त पाठ में खाद्य पदार्थों का नामोल्लेख किया गया है। तथापि सुव्रती साधु को इनका संचय करके रखना नहीं कल्पता है। कहा है–

बिडमुब्भेइयं लोणं, तेल्लं सप्पिं च फाणियं।
ण ते सन्निहिमिच्छंति, नायपुत्तवए रया॥

अर्थात् जो ज्ञातपुत्र–भगवान महावीर के वचनों पर श्रद्धा करने वाले साधु हैं वे दोनों प्रकार के नमक, तिल, घी, तिल पपड़ी आदि अचित्त वस्तुयें भी संग्रह नहीं करते हैं।

संचय करने वाले साधु को शास्त्रकार ने गृहस्थ की कोटि में रखा है। संचय करना गृहस्थ का कार्य है, साधु का नहीं। साधु तो पक्षी के समान वृत्ति वाले होते हैं। उन्हें यह चिन्ता नहीं होती कि कल आहार प्राप्त होगा अथवा नहीं ! ऐसी चिन्ता से ही संग्रह किया जाता है, किन्तु साधु तो लाभ–अलाभ में समभाव वाला होता है। अलाभ की स्थिति को वह तपश्चर्या रूप लाभ का कारण मानकर लेशमात्र भी खेद का अनुभव नहीं करता। संग्रहवृत्ति से अन्य भी अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अतएव साधु को किसी भी भोज्य वस्तु का संग्रह करने का स्पष्ट निषेध किया गया है। परिग्रह–त्यागी मुनि के लिए यह सर्वथा अनिवार्य है।

Elaboration—In the above said aphorism the names of food-stuffs have been mentioned. A monk should not store such articles as possessions for collection. A monk should not keep in his collection salt, oil, ghee, til brick and other such like eatables. Such is the order of Bhagavan Mahavir.

The author has termed a monk who stores such things as one in the category of householder. To store is the function of a householder and not of a monk. A monk should live like a bird. He should not worry whether he shall get the food on the following day or not. A foodstuff is stored when there is a fear whether food can be got or not on the next day. But a monk remains in a state of equanimity whether he gets anything or not. He treats the period when he does not get anything in wanderings as that of austerity. So he does not feel even slightly dejected at that

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

time. Many other faults are likely to arise due to the habit of storage. One can be slack if he collects food more than his actual need. If he brings tasty food more in quantity and keeps, it in store, he shall lose control over his sense of taste. So a monk should not store any food article. It is compulsory for every monk of the order.

१५८. जं पि य उद्दिट्ठ-ठविय-रइयग-पज्जवजायं पकिण्णं पाउयरण-पामिच्चं मीसगजायं कीयगडं पाहुडं च दाणट्ठपुण्णपगडं समणवणीमगट्ठयाए वा कयं पच्छाकम्मं पुरेकम्मं णिइकम्मं मक्खियं अइरित्तं मोहरं चेव सयंगाहमाहडं मट्टिउवलित्तं, अच्छेज्जं चेव अणीसट्ठं जं तं तिहिसु जण्णेसु उस्सवेसु य अंतो वा बहिं वा होज्ज समणट्ठयाए ठवियं हिंसासावज्जसंपउत्तं ण कप्पइ तं पि य परिघेत्तुं।

१५८. तथा जो आहार साधु के लिये बनाया गया हो, अलग से रखा गया हो, चूरे को लड्डू जैसा रच कर साधु के लिये तैयार किया हो, पर्यवजात हो, प्रकीर्ण, प्रादुष्करण, प्रामित्य, मिश्रजात, क्रीतकृत, प्राभृत दोष वाला हो, जो दान के लिए या पुण्य के लिए बनाया गया हो, जो पाँच प्रकार के श्रमणों अथवा भिखारियों को देने के लिए तैयार किया गया हो, जो पश्चात्कर्म अथवा पुरःकर्म दोष से दूषित हो, जो नित्यकर्म-दूषित हो, जो म्रक्षित, अतिरिक्त मौखर, स्वयंग्राह अथवा आहृत हो, मृत्तिकोपलिप्त, आच्छेद्य, अनिसृष्ट हो अथवा जो आहार मदनत्रयोदशी आदि विशिष्ट तिथियों में यज्ञ और महोत्सवों में, उपाश्रय के भीतर या बाहर साधुओं को देने के लिए रखा हो, जो हिंसा-सावद्य दोष से युक्त हो, ऐसा भी आहार साधु को लेना नहीं कल्पता है।

158. Further, the food that is uddeshak—the one specifically for the monk; it is kept for some monk (Sthapit); it is rachit—changed into another form for the purpose of offering it to the monk; all such food is prohibited for a monk.

Further the offered food is paryawajaat—connected into another form for offering it to the monk. It is prakeern—is being offered while it is dripping on the ground. It is pradushkarm—kept in the dark and is offered by bringing it in light. It is pramitya—taken on credit for the purpose of a monk. It is mishrajaat—prepared jointly for monk and the householder. It is kreetakrit—prepared for the monk after purchasing it. It is prabhrit—served to the monk after adding fuel to the fire or after taking out fuel from the burning fire. Such is the faulty food. The food may be pashatakarm—faulty due to paschakarm activity after its offer or faulty due to the act immediately prior to its being offered. It may be faulty due to nityakarm—offered out of food which is prepared for charity for collecting merit by offering to five types of monks, (namely

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

migrandh, Shakya—the followers of Buddhist faith, those who practice service austerities, these who wear red clothes and those who are followers of Goshalak) or for beggars (Vanipakarti). It may be prakshit—offered with a hand or pot which has live water. It may be offered more than the need (atirikt). It may be maukharya—that which is got by talking more. It may be svayangrah—that which is taken by the monk himself with his hand. It may be aahrit—brought from the house or the village before the monk for offering. It may be mrittikalip—plastered with earth. It may be aachhaya—that which is offered after snatching from a weak person. It may be anisrisht—that belonging to many persons jointly but offered without the consent of all of them. It may be prepared on special dates for yajna or particular functions. It may be the one kept within or outside the place of stay of monks for offering to the monks. It may be faulty due to violence involved in it. A monk should not accept any such a food.

विवेचन : पूर्व पाठ में बताया गया है कि साधु को आपात्तकाल के लिये अचित्त आहार भी संग्रह करना नहीं कल्पता, क्योंकि संचय परिग्रह है और यह अपरिग्रह धर्म से विपरीत है। इस पाठ में बताया गया है कि भले ही आहार संचय के लिए न हो, तत्काल उपयोग के लिए हो, तथापि सूत्र में उल्लिखित दोषों में से किसी भी दोष से दूषित हो तो भी वह आहार, मुनि के लिए ग्राह्य नहीं है। इन दोषों का अर्थ इस प्रकार है–

उद्दिष्ट–साधु के लिए ही तैयार किया गया।

स्थापित–साधु के लिए अलग से रखा गया।

रचित–साधु के निमित्त मोदक के चूरे से पुनः मोदक लड्डू बांधकर तैयार किया गया।

पर्यवजात–साधु को उद्देश्य करके एक भोज्य पदार्थ को दूसरे भोज्य पदार्थ के साथ मिलाकर रूपान्तर किया हुआ।

प्रकीर्ण–भूमि पर गिराते या टपकाते हुए दिया जाने वाला आहार।

प्रादुष्करण–अँधेरे में रखे आहार को दीपक आदि जलाकर प्रकाश करके देना।

प्रामित्य–साधु के निमित्त उधार लेकर तैयार किया गया आहार।

मिश्रजात–साधु और गृहस्थ या अपने लिए संयुक्त रूप से बनाया गया आहार।

क्रीतकृत–साधु के निमित्त खरीदकर बनाया गया।

प्राभृत–साधु के आगमन की सम्भावना से मेहमानों को पहले या बाद में भोजन कराना।

दानार्थ–दान देने के लिए बनाया गया।

पुण्यार्थ–पुण्य के लिए बनाया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणार्थ–श्रमण पाँच प्रकार के माने गये हैं–(१) निर्ग्रंथ, (२) बौद्धमतानुयायी, (३) तापस–तपस्या की विशेषता वाले, (४) गेरुक–गेरुआ वस्त्र धारण करने वाले, और (५) आजीविक–गोशालक के अनुयायी। इन पांचों प्रकार के श्रमणों के लिए बनाया गया आहार श्रमणार्थ कहलाता है।

वनीपकार्थ–याचक भिखारियों के अर्थ बनाया गया। टीकाकार ने वनीपक का पर्यायवाची शब्द 'तर्कुक' लिखा है।

पश्चात्कर्म–दान के पश्चात् सचित्त पानी से बर्तन धोना आदि सावद्य क्रिया वाला आहार।

पुरःकर्म–दान से पूर्व सचित्त पानी से हाथ धोना आदि सावद्य कर्म वाला आहार।

नित्यकर्म–प्रतिदिन एक ही घर से लिया जाने वाला आहार।

म्रक्षित–सचित्त जल आदि से लिप्त हाथ अथवा पात्र से दिया जाने वाला आहार।

अतिरिक्त–प्रमाण से अधिक आहार।

मौखर्य–वाचालता–अधिक बोलकर प्राप्त किया जाने वाला।

स्वयंग्राह–दाता के अभाव में स्वयं अपने हाथ से लिया जाने वाला।

आहृत–अपने गाँव या घर से साधु के समक्ष लाया गया।

मृत्तिकालिप्त–मिट्टी, गोबर आदि से लिप्त हाथ से दिया आहार।

आच्छेद्य–निर्बल से जबरदस्ती छीनकर दिया जाने वाला।

अनिसृष्ट–दाता का अपने अधिकार का नहीं। अनेकों के स्वामित्व की वस्तु उन सबकी अनुमति के बिना दी जाये।

उपरोक्त आहार सम्बन्धी दोषों में से अनेक दोष उद्गम–उत्पादना सम्बन्धी दोषों में गर्भित हैं। तथापि अधिक स्पष्टता के लिए यहाँ उनका भी निर्देश कर दिया गया है। पूर्वोक्त दोषों में से किसी भी दोष से युक्त आहार सुविहित साधुओं के लिए निषिद्ध है।

Elaboration—In the earlier aphorism, it was mentioned that a monk should not store the food because storage represents attachment for possessions. It is against the vow of non—attachment. In the present aphorism it has been established that even if the food being accepted by the monk is not for storage and it is for his immediate consumption, it is prohibited if it has any one of the faults mentioned in this aphorism. The meanings of each fault has bean clarified side by side.

कल्पनीय भिक्षा **ACCEPTABLE OFFERING**

१५९. [प्र.] अह केरिसयं पुणाइ कप्पइ ?

[उ.] जं तं एक्कारस–पिंडवायसुद्धं किणण–हणण–पयण–कयकारियाणुमोयण– णवकोडीहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुपरिसुद्धं, दसहि य दोसेहिं विप्पमुक्कं उग्गम–उप्पायणेसणाए सुद्धं, ववगय–चुयचवियचत्त–देहं च फासुयं ववगय–संजोग–मणिंगालं विगयधूमं छट्ठाण–णिमित्तं छक्कायपरिरक्खणट्ठा हणिं हणिं फासुएण भिक्खेणं वट्टियव्वं।

१५९. [प्र.] तो फिर किस प्रकार का आहार साधु के लिए लेना उचित है?

[उ.] जो आहारादि ग्यारह पिण्डैषणा से शुद्ध हो, अर्थात् आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन के ग्यारह उद्देशकों में वर्णित दोषों से रहित हो वह साधु के लिये ग्राह्य है तथा जो खरीदना, हनन करना–हिंसा करना और पकाना, इन तीन क्रियाओं से स्वयं करना, दूसरों से कराना और अनुमोदन से निष्पन्न नौ कोटियों के दोषों से रहित हो, जो एषणा के दस दोषों से रहित हो, जो उद्गम और उत्पादना रूप एषणा अर्थात् गवेषणा और ग्रहणैषणा रूप एषणादोष से रहित हो, जो सामान्य रूप से सचित्त से अचित्त हो चुका हो, आयुक्षय के कारण जीवनक्रियाओं से रहित हो, शरीरोपचय से रहित हो, अतएव जो प्रासुक–अचेतन हो चुका हो, जो आहार संयोजन दोष और अंगारदोष से रहित हो, जो आहार की प्रशंसा रूप धूम–दोष से रहित हो, जो छह कारणों में से किसी कारण से ग्रहण किया गया हो और छह काय जीवों की रक्षा के लिए स्वीकृत किया गया हो, ऐसे प्रासुक आहारादि से प्रतिदिन–सदा निर्वाह करना चाहिए।

विवेचन : 'अपरिग्रही के लिये कैसा आहार ग्राह्य है?' इसकी व्याख्या शास्त्रकार ने इस प्रकार की है – 'जं तं **एक्कारसपिंडवायसुद्धं**..................**नवकोडीहिं सुपरिसुद्धं** ....**फासुकेण भिक्खेण वट्टियव्वं**।' इन सूत्र पंक्तियों का अर्थ हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं। तात्पर्य यह है कि भिक्षा–विधि के या आहार–ग्रहण सेवन के जो दोष पहले अहिंसासंवर के प्रकरण में बता चुके हैं, उन तमाम दोषों से रहित, नवकोटिशुद्ध तथा अंगार–धूम–संयोजनादि दोषों से मुक्त, प्रासुक, एषणीय तथा छह काय के जीवों की रक्षा के लिए शास्त्रोक्त ६ कारणों से लिया गया शुद्ध आहार ही साधु के लिए ग्राह्य है। प्रासुक भिक्षा पर ही साधु को जीवन निर्वाह करना चाहिए।

शास्त्र में साधू के लिये ६ कारणों से आहार का सेवन करना विहित है –

1. क्षुधा वेदना को मिटाने के लिए, 2. सेवा (वैयावृत्य) कर सके इसके लिये, 3. ईर्यासमिति का पालन करने के लिये, 4. संयम पालन करने के लिये, 5. अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये, 6. धर्माराधना या चिंतन करने के लिये।

159. [Q.] Then what type of food is such which can be accepted by a monk?

[Ans.] The food should be free from faults mentioned in eleven lessons (Uddeshaks) in the first chapter of the second part (Shrut Skandh) of Acharanga Sutra. It should be navakoti Vishudh. It means that it should not be purchased, got purchased or inspired to be purchased for the monk. It should not involve violence to living beings, in doing getting done and in supporting such activity. It should not be cooked, getting

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

cooked or supporting cooking for the monks only then it is pure from nine angles. It should be free from faults related to offering (Eshana) regarding its collection (udgam) and is production. It should be normally lifeless. It should be free from life. It should be free from activities of the living being due to completion of life span. It should be without a body. It should have been without life. That food should be free from faults relating to mixing, taking hurriedly in company, appreciating the food and others. It should have been collected for any one of six reasons for having food and for protecting living beings of six kinds (five kinds of immobile and one kind of mobile living beings). A monk should pass his daily life with such a type of worthy food.

Elaboration—'What type of food is acceptable for the detached?' The author has replied to this question in the aforesaid aphorism. In brief, it should be free of all the faults of alms-collection and eating as mentioned in the chapter of Ahimsa Samvar. It should be pure nine-ways and free of faults related to cooking, and others, free of life, pure and acceptable. A monk can accept only the food that is taken for purpose of protecting six classes of living beings. He should subsist only on pure food.

Six causes for taking food as mentioned in the scriptures are—

(1) To cool down the feeling relating to hunger, (2) To maintain capability for serving the Acharya and other senior monks, (3) To practice properly the rules relating to care while moving, (4) To practice ascetic restraints, (5) To protect ones life-force, (6) To practice meditation according to scriptures.

१६०. जं पि य समणस्स सुविहियस्स उ रोगायंके बहुप्पकारंमि समुप्पण्णे वायाहिक–पित्तसिंभ–अइरित्तकुविय–तहसण्णिवायजाए व उदयपत्ते उज्जल–बल–विउल (तिउल) कक्खडपगाढदुक्खे असुभकडुयफरुसे चंडफलविवागे महब्भये जीवियंतकरणे सव्वसरीरपरितावणकरे ण कप्पइ तारिसे वि तह अप्पणो परस्स वा ओसहभेसज्जं भत्तपाणं च तं पि सण्णिहिकयं।

१६०. सुविहित–शास्त्रोक्त विधिनुसार आचरण करने वाले साधु के शरीर में यदि अनेक प्रकार के ज्वर आदि रोग और जीवन को संकट या कठिनाई में डालने वाली व्याधि उत्पन्न हो जाये, वात, पित्त या कफ का अतिशय प्रकोप हो जाये, अथवा सन्निपात–वात–पित्त–कफ तीनों दोषों का एक साथ प्रकोप हो जाये और इसके कारण सुख के लेशमात्र से रहित, प्रबल–कष्ट से भोगने योग्य विपुल–चिरकाल तक अनुभव किये जाने वाले (या त्रितुल–तीनों योगों को तोलने वाले–कष्टमय बना देने वाले),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्कश-अनिष्ट एवं प्रगाढ़ अर्थात् अत्यन्त तीव्र दुःख उत्पन्न हो जाये और वह दुःख अशुभ या कटुक द्रव्य के समान अनिष्ट रूप हो, कठोर हो, दुःखमय दारुण फल वाला हो, महान् भय उत्पन्न करने वाला हो, जीवन का अन्त करने वाला और सारे शरीर में असहाय संताप उत्पन्न करने वाला हो, तो ऐसा दुःख उत्पन्न होने की स्थिति में भी स्वयं अपने लिए अथवा दूसरे साधु के लिए औषध, भैषज्य, आहार तथा पानी का संचय करना शास्त्रीय विधी से युक्त नहीं है।

160. An ascetic is practicing the ascetic conduct according to code; he suddenly gets an attack of fever or any other illness which may appear to be dangerous; he may have serious trouble relating to vaat, pitt or cough or more than one of them simultaneousl; he may not have even a little peace due to it; he may suffer for a very long period; he may have severe pain; that pain may look like a bitter substance and very difficult to bear; it may cause great fear; it may cause pain in the entire body, it may appear like signal for death; even in such a situation a monk should not keep stored food, water or medicine in store for himself or for other monk.

विवेचन : पिछले पाठ में सामान्य अवस्था में लोलुपता आदि के कारण आहारादि के संचय करने का निषेध किया गया था और इस पाठ में यह बताया गया है कि कैसी भी रोगादि की स्थिति हो या मरणासन्नता की स्थिति हो, वात-पित्त-कफादि के प्रकोप से अनेक रोग यहां तक की सन्निपात रोग भी हो जाय या सारे शरीर में असह्य पीड़ा उत्पन्न हो जाय, कर्मों के तीव्रतम उदय से मरणान्त कष्ट पैदा हो जाय तो भी साधु को अपने या दूसरों के लिये औषध, भैषज्य या भोजनपान का संचय करना या रखना उचित, शास्त्रविधि के अनुकूल नहीं है अर्थात् अपरिग्रही साधु के जीवन में संग्रह का कोई स्थान नहीं है।

Elaboration—In the earlier lesson. The storage of food was prohibited in common situation due to greed for it. In the present lesson it has been prohibited in illness. Here the intensity of illness has been described. It has been stated that illness or torture may be so much dreadful that one may not have rest even for a moment. It may be lasting for a very long period. It may cause dreadful pain to the body and the mind. It may be fatal in the end. Even in such a grave situation, a monk should not store food, water and the like. Collection is attachment and such a collection has no place in the ascetic life.

साधु के लिये ग्राह्य धर्मोपकरण ARTICLES OF A MONK

१६१. जं पि य समणस्स सुविहियस्स उ पडिग्गहधारिस्स भवइ भायण-भंडोवहिउवगरणं पडिग्गहो पायबंधणं पायकेसरिया पायठवणं च पडलाइं तिण्णेव, रयत्ताणं च गोच्छओ, तिण्णेव य पच्छागा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयहरण–चोलपट्टग–मुहणंतगमाईयं। एयं पि य संजमस्स उववूहणट्ठयाए वायायव–दंस–मसग–सीय–परिरक्खणट्ठयाए उवगरणं रागदोसरहियं परिहरियव्वं, संजएण णिच्चं पडिलेहण–पप्फोडण–पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइ सययं णिक्खिवियव्वं च गिण्हियव्वं च भायण–भंडोवहि–उवगरणं।

१६१. शास्त्रविधिनुसार चलने वाले पात्रधारी सुसाधु के पास जो भी काष्ठ पात्र, मिट्टी के बर्तन, उपधि और उपकरण होते हैं, जैसे–पात्र, पात्र बांधने की झोली, पात्रकेसरिका, पात्रस्थापनिका, पटल, रजस्त्राण, गोच्छक, तीन प्रच्छाद, रजोहरण, चोलपट्टक, मुखानन्तक–मुखवस्त्रिका, ये सब भी संयम की वृद्धि या पुष्टि के लिए होते हैं तथा वात–प्रतिकूल वायु, ताप, धूप, डांस–मच्छर और ठंड से अपनी रक्षा बचाव के लिए हैं। इन सब उपकरणों को राग और द्वेष से रहित होकर साधु को धारण करने चाहिए अर्थात् रखना चाहिए। सदा इनका प्रतिलेखन–देखना, प्रस्फोटन–झाड़ना और प्रमार्जन–पौंछना चाहिए। दिन में और रात्रि में सतत–निरन्तर अप्रमत्त (सावधान) होकर भाण्डोपकरणों को रखना और ग्रहण करना चाहिए।

161. The articles which a monk has are in order to glorify his life of ascetic restraint. They are pot, earthen pitcher, other articles such cloth to hold the pots, Patra-Kesarika—the cloth to clean the pots, Patra-Sthapanika—the seat on which pots are placed, Patal—three pieces of cloth to cover the pots, gochhak—the small broom to clean the pot, three Prachhaad—three clothes to cover the body, Rajoharan—the broom, Chulapattak—the cloth to be worn at the waist, mukhanantak—mukhvastrika for the mouth. He has articles to protect him from wind, heat, sun, mosquito bite and cold also. He should keep all these articles without any feeling of attachment or hatred. He 'should regularly look at them during the day and the night in a state free from any slackness. He should wipe them. He should carefully handle his pots and articles.

विवेचन : उपरोक्त सूत्र पाठ में **'पडिग्गहधारिस्स'** इस विशेषण पद से यह सूचित किया गया है कि विशिष्ट जिनकल्पी साधु के सिवाय केवल पात्रधारी स्थविरकल्पी साधु के उपकरणों का यहाँ उल्लेख किया गया है। ये उपकरण संयम की वृद्धि और प्रतिकूल परिस्थितियों में शरीर की रक्षा के लिए ही ग्रहण किये जाते हैं, इन सब उपकरणों को **'न सो परिग्गहो वुत्तो'** कहकर परिग्रह मानने से सर्वथा इन्कार किया है। उपरोक्त पाठ में दिये इन उपकरणों के नाम का अर्थ इस प्रकार है –

पतद्ग्रह–पात्र–आहारादि के लिए काष्ठ, मृत्तिका या तूम्बे के पात्र।

पात्रबन्धन–पात्रों को बाँधने की झोली।

पात्रकेसरिका–पात्र प्रमार्जन के लिये पोंछने का वस्त्रखण्ड।

पात्रस्थापन–जिस कम्बल के टुकड़े पर पात्र रखे जायें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पटल–भिक्षा के समय पात्र ढँकने के लिए तीन वस्त्र।

रजस्त्राण–पात्रों को धूल से रक्षा के लिये पात्र पर लपेटने का वस्त्र।

गोच्छक–पात्रादि के प्रमार्जन के लिए गोच्छक नाम का कंबल खंड।

प्रच्छाद–शरीर पर ओढ़ने के वस्त्र चादरें (तीन)।

रजोहरण–भूमि, शय्या, पाट आदि प्रमार्जन करने के लिये ओघा।

चोलपट्टक–कमर में पहनने का वस्त्र।

मुखानन्तक–मुखवस्त्रिका या मुहपत्ति।

ये उपकरण संयम-निर्वाह के उद्देश्य से साधु को ग्रहण करने और उपयोग में लाने के हेतु हैं, ममत्व से प्रेरित होकर नहीं।

यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि गृहीत उपकरणों के प्रति यदि ममत्वभाव उत्पन्न हो जाये तो वही उपकरण परिग्रह बन जाते हैं। इस भाव को प्रकट करने के लिए प्रस्तुत पाठ में भी **रागदोसरहियं परिहरितव्वं** अर्थात् राग और दोष से रहित होकर उपयोग करना चाहिए, यह उल्लेख कर दिया गया है।

Elaboration—In the aphorism the word padiggahadhariss indicates that this prohibition is not meant for Jinakalpi monk (monk who remains naked). It is for those Sthavirkalpi monks who keep pots and wear cloth. These articles are kept for smoothly undergoing life of ascetic restraint and for protection of the body in difficult situation. The meaning of some words is as follows—Patadgrah—Pots of wood, earth or of gourd for collecting food. Patra-bandhan—Cloth to tie pots.

Other words have been clarified side by side with their meaning.

A monk accepts these articles for smooth practice of ascetic life and does not have any attachment for them. So it is not parigraha (collection for attachment of possessions).

Here it is necessary to clarify that in case one has attachment for the articles he has acquired, those very articles shall be termed as parigraha. In order to emphasize this fact, the word 'raagdosarahiyam pariharitavvyam' has been mentioned which means should be used without attachment or hatred'.

अपरिग्रही साधु का आन्तरिक स्वरूप INNER NATURE OF DETACHED MONK

१६२. एवं से संजए विमुत्ते णिस्संगे णिप्परिग्गहरुई णिम्ममे णिण्णेहबंधणे सव्वपावविरए वासीचंदणसमाणकप्पे समतिणमणिमुत्तालेट्ठुकंचणे समे य माणावमाणणाए समियरए समियरागदोसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समिए समिइसु सम्मदिट्ठी समे य जे सव्वपाणभूएसु से हु समणे, सुयधारए उज्जुए संजए सुसाहू, सरणं सव्वभूयाणं सव्वजगवच्छले सच्चभासए य संसारंतट्ठिए य संसारसमुच्छिण्णे सययं मरणाणुपारए, पारगे य सव्वेसिं संसयाणं पवयणमायाहिं अट्ठहिं अट्ठकम्म–गंठी–विमोयगे, अट्ठमय–महणे ससमयकुसले य भवइ सुहदुहणिव्विसेसे अब्भिंतरबाहिरम्मि सया तवोवहाणम्मि सुट्ठुज्जुए खंते दंते य हियणिरए ईरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाण–भंड–मत्त–णिक्खेवणा–समिए उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाण–जल्ल–परिट्ठावणियासमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी चाई लज्जू धण्णे तवस्सी खंतिखमे जिइंदिये सोहिए अणियाणे अबहिल्लेस्से अममे अकिंचणे छिण्णगंथे णिरुवलेवे।

१६२. इस प्रकार से (पूर्वोक्त) आचार का परिपालन करने के कारण वह साधु संयमवान, धनादि के लोभ से मुक्त, जमीन जायदाद, सम्पत्ति का पूर्णतया त्यागी, निःसंग–आसक्ति से रहित, निष्परिग्रहरुचि–परिग्रह में रुचि नहीं रखने वाला, ममता से रहित, स्नेह के बन्धन से मुक्त, समस्त पापों से निवृत्त, चन्दनकल्प अर्थात् उपकारक और अपकारक के प्रति समान भावना वाला, तृण, मणि, मुक्ता और मिट्टी के ढेले को समान मानने वाला अर्थात् अल्पमूल्य या बहूमूल्य पदार्थों की समान रूप से उपेक्षा करने वाला, सम्मान और अपमान दोनों अवस्थाओं में समता का धारक, शमितरज–पापरूपी रज को उपशान्त करने वाला या शमितरत–विषय सम्बन्धी रति को उपशान्त करने वाला अथवा शमितरय–उत्सुकता को शान्त कर देने वाला, राग–द्वेष को शान्त करने वाला, पाँच समितियों से युक्त, सम्यग्दृष्टि और समस्त त्रस और स्थावर जीवों पर समभाव धारण करने वाला होता है। वही वास्तव में साधु है।

वह साधु श्रुत का धारक, ऋजु–निष्कपट–सरल अथवा संयम में उद्यत या उद्यमशील है। वह साधु समस्त प्राणियों के लिए शरणभूत होता है, समस्त जगद्वर्त्ती जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाला–हितैषी होता है। वह सत्यभाषी, संसार अन्त के किनारे पर स्थित है, संसार–भवपरम्परा का उच्छेद–अन्त करने वाला, सदा के लिए (बाल) मरण आदि का पारगामी और सब संशयों से परे हो गया है। पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप अष्ठ प्रवचनमाताओं के द्वारा आठ कर्मों की ग्रन्थि को खोलने वाला अर्थात् अष्ठ कर्मों का विच्छेद करने वाला, जातिमद, कुलमद आदि आठ मदों का मंथन नाश करने वाला और स्वसमय–स्वकीय सिद्धान्त में निष्णात होता है। सुख–दुःख उसके लिये समान हैं।। आभ्यन्तर और बाह्य तपरूप उपधान में सम्यक् प्रकार से पुरुषार्थ करता है, क्षमावान, इन्द्रियविजेता, स्वकीय और परकीय हित में निरत, ईर्यासमिति से सम्पन्न, भाषासमिति से सम्पन्न, एषणासमिति से सम्पन्न, आदान–भाण्ड–मात्र–निक्षेपणः समिति से सम्पन्न और मल–मूत्र–श्लेष्म–संघान–नासिकामलजल्ल– शरीरमल आदि के प्रतिष्ठापन की समिति से युक्त, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति का पालक, विषयों की ओर उन्मुख इन्द्रियों का गोपन करने वाला, ब्रह्मचर्य की गुप्ति से युक्त, समस्त प्रकार के परिग्रह का त्यागी, पापाचरण में लज्जाशील अथवा रस्सी के समान सरल, तपस्वी, क्षमागुण के कारण सहनशील, जितेन्द्रिय, सद्गुणों से शोभित या शोधित, निदान से रहित, चित्तवृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को संयम की परिधि से बाहर न जाने देने वाला, ममत्व से विहीन, अकिंचन-सम्पूर्ण रूप से निर्द्रव्य, स्नेहबन्धन को काटने वाला और कर्म या आसक्ति के लेप से रहित होता है।

162. As a Jain monk practices the conduct as above mentioned, so he is firm in ascetic restraints. He has no attachment for any thing. He is free from the desire of attachment in possessions. He has no worldly attraction for any living being. He is free from bondage of delusion. He is detached from all sinful activities. He has same feelings for a person whether the said cn had done any favour to him or troubled him. He considers a straw, a precious stone or an earthen ball as of same value. In other words he ignores cheap articles and costly articles treating them alike. He remains in a state of equanimity whether he is honoured or insulted. He subdues the molecules of sin. He pacifies his sensual desires. He subdues all the feeling of attachment and hatred. He maintains the five cares (Samitis). Such as care in movement (Iriya Samiti) and others. He has right perception. He has regards for the life-force of all the mobile beings namely those of two to five senses and of all immobile beings who have only one sense of touch. Such a person is the monk in true sense.

Such a monk is well read in scriptures. He is free from deceit and slackness. He is active in restraints. He is a support for all the living. He has compassion for all in the world. He is truthful. He is at the end of the circle of life and death. He overcomes the traditions of birth death and re-birth. He has ceased forever the state of dying with worldly desires. He is free from all doubts. He has broken the knot of the bondage of all the eight Karmas by meticulously practicing five cares (Samiti) and three stoppages (gupti). He is free from eight types of ego namely ego of clan, family and others. He is expert in his philosophy. He does not feel happy in state of worldly enjoyment and unhappy in the state of pain. He remains the same in both the said conditions. He remains always ready to practice internal and external austerities properly. He is benevolent. He has full control over his senses. He remains engaged in his welfare and simultaneously in welfare of others. He is blessed with equanimous discrimination in movement, in talk (bhasha samiti), in seeking alms (eshna samiti), in placing and picking up things and in disposing urine, stool and the like such as dirty matter from mouth, nose

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and the body. He practices complete control (gupti) in respect of mental, vocal and physical activities. He subdues the senses that have any worldly attraction towards the activities of their field. He practices all the restrictions concerning vow of Chastity (brahmcharya). He is detached from all worldly contacts. He is as straight-forward as a string. He practices austerities. He is forgiving as he is benevolent. He has control over his senses. He is famous for his good qualities. He is free from any desire of worldly benefits for his activities. He does not allow his heart to go beyond the circles of ascetic restraint. He is free from all worldly attachments. He is completely without any money. He has shattered all the worldly bondages. He is free from all covering of Karmas.

विवेचन : इस सूत्र पाठ में शास्त्रकार ने अपरिग्रही साधु के आन्तरिक जीवन की परिभाषा दी है ताकि एक आम आदमी भी अपरिग्रही साधक को पहचान सके। साधु के समग्र आचार को यहाँ सार के रूप में समाविष्ट कर दिया गया है। साधु के जीवन का अत्यन्त सुन्दर और भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। कुछ विशिष्ट पदों का तात्पर्य इस प्रकार है–

खंतिखमे–साधु अनिष्ट प्रसंगों को, वध-बन्धन आदि उपसर्गों या परीषहों को सहन करता है, किन्तु असमर्थता अथवा विवशता के कारण नहीं। उसमें क्षमा की वृत्ति इतनी प्रबल होती है अर्थात् ऐसी सहनशीलता होती है कि वह प्रतीकार करने में पूर्णरूपेण समर्थ होकर भी अनिष्ट प्रसंगों को विशिष्ट कर्मनिर्जरा के हेतु सह लेता है।

छिण्णगंथे– मन में पड़ी हुई ममत्व की गांठ को छिन्न भिन्न करने वाला अथवा अनन्तानुबन्धी कषाय की गांठ को नष्ट करने वाला। **'छिन्नगंथे'** के स्थान पर टीकाकार ने **'छिन्नसोए'** पाठान्तर का उल्लेख किया है। इसका अर्थ छिन्नशोक अर्थात् शोक को छेदन कर देने वाला-किसी भी स्थिति में शोक का अनुभव न करने वाला अथवा छिन्नश्रोत अर्थात् स्रोतों को स्थगित कर देने वाला है। जो संसार में भटकाने वाले आश्रवश्रोत नष्ट कर चुका है।

निरुपलेप–का आशय है-कर्मलेप से रहित। किन्तु मुनि कर्मलेप से रहित नहीं होते। सिद्ध भगवान ही कर्मलेप से रहित होते हैं। ऐसी स्थिति में यहाँ मुनि के लिए 'निरुपलेप' विशेषण का प्रयोग किस अभिप्राय से किया गया है ? इस प्रश्न का उत्तर टीका में दिया गया है-**'भाविनि भूतवदुपचारमाश्रित्योच्यते'** अर्थात् ऐसा साधक भविष्य में कर्मलेप से रहित होगा ही, अतएव भावी अर्थ में भूतकाल का उपचार करके इस विशेषण का प्रयोग किया गया है।

Elaboration—In the present lesson, a beautiful picture has been drawn of the inner life of a monk, so that even a common man may recognize a detached aspirant. In brief the entire ascetic conduct has been narrated. Most of the words in aphorism are easy to understand.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Some special words denote as under–

Khantikhame—A monk patiently bears bad situations, troubles and tribulations such as thrashing, bondage or even killing, not because of his incapability or helplessness. Due to his conduct of benevolence, he endures such situations considering them as occasions for special destruction of Karmas.

Chhhhinnaganthe—One who destroyes the knot of fondness in his mind or the knot of passions leading to extreme bondage. The commentator has used the word 'Chhinn Soye' instead of 'Chinnaganthe' in the aphorism. It means free from dejection, one who is not sad under any circumstances. Another interpretation is one who has stopped all the sources (Shrot). The source of river is from where it flows and the source of the worldly ocean of re-birth and death is polluted feelings and mundane behaviour.

Nirupalap—It means free from covering of Karma. Saints are not completely free from Karma cover. Only Siddhas (Souls who have attained complete liberation) are in such state. Why then the word 'nirupalep' has been used for monks ? The reply to this is that such a monk shall certainly attain liberation in future so the future state has been depicted.

निर्ग्रन्थों की ३१ उपमायें THIRTY ONE ILLUSTRATIVE COMPARISONS OF MONKS

१६३. सुविमलवरकंसभायणं व मुक्कतोए। संखे विव णिरंजणे, विगयरागदोसमोहे। कुम्मो विव इंदिएसु गुत्ते। जच्चकंचणगं व जायरूवे। पोक्खरपत्तं व णिरुवलेवे। चंदो विव सोमभावयाए। सूरो व्व दित्ततेए। अचले जह मंदरे गिरिवरे। अक्खोभे सागरो व्व थिमिए। पुढवी व्व सव्वफाससहे। तवसा च्चिय भासरासि–छण्णिव्व जायतेए। जलियहुयासणे विव तेयसा जलंते। गोसीसं चंदणं विव सीयले सुगंधे य। हरयो विव समियभावे। उग्घसियसुणिम्मलं व आयंसमंडलतलं पागडभावेण सुद्धभावे। सोंडीरे कुंजरोव्व। वसभेव्व जायथामे। सीहेव्व जहा मियाहिवे होइ दुप्पधरिसे। सारयसलिलं व सुद्धहियए। भारंडे चेव अप्पमत्ते। खग्गिविसाणं व एगजाए। खाणुं चेव उड्ढकाए। सुण्णागारेव्व अपडिकम्मे। सुण्णागारावणस्संतो णिवायसरणप्पदीवज्झाणमिव णिप्पकंपे। जहा खुरो चेव एगधारे। जहा अही चेव एगदिट्ठी। आगासं चेव णिरालंबे। विहगे विव सव्वओ विप्पमुक्के। कयपरणिलए जहा चेव उरए। अप्पडिबद्धे अणिलोव्व। जीवो व्व अपडिहयगई।

१६३. (निर्गन्थ श्रमण की महानताओं को आगे कही जाने वाली उपमाओं से उपमित किया है–)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अत्यन्त निर्मल काँसे का बर्तन जैसे जल के प्रभाव से मुक्त रहता है, वैसे ही साधु रागादि के बन्ध से मुक्त होता है।

(२) शंख के समान अंजन कालिमा से रहित अर्थात् रागादि के कालुष्य से रहित, अतएव राग, द्वेष और मोह से विरक्त होता है।

(३) कछुए की तरह इन्द्रियों का गोपन करने वाला।

(४) उत्तम स्वर्ण के समान शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त।

(५) कमल के पत्ते की तरह निर्लेप।

(६) सौम्य-शीतल स्वभाव के कारण चन्द्रमा के समान सौम्य।

(७) सूर्य के समान संयम के तेज से देदीप्यमान।

(८) गिरिवर मेरु के समान अचल-दृढ़ संयम साधु परीषह आदि में अडिग।

(९) शान्त समुद्र के समान क्षोभरहित एवं स्थिर।

(१०) पृथ्वी की तरह समस्त अनुकूल एवं प्रतिकूल स्पर्शों को सहन करने वाला।

(११) तपश्चर्या के तेज से अन्तरंग में ऐसा देदीप्यमान लगता है मानों भस्मराशि से ढकी हुई अग्नि हो। उसी प्रकार कृषकाय शरीर के भीतर उस तेजस्वी आत्मा में तप का तेज विद्यमान रहता है।

(१२) तेजी से जलती अग्नि के सदृश तेजस्विता से देदीप्यमान।

(१३) गोशीर्ष चन्दन की तरह शीतल और अपने शील के सौरभ से युक्त।

(१४) ह्रद- सरोवर के समान प्रशान्तभाव वाला।

(१५) अच्छी तरह घिसकर चमकाए हुए निर्मल दर्पणतल के समान स्वच्छ, प्रकट रूप से मायारहित होने के कारण अतीव निर्मल जीवन वाला-शुद्ध भाव वाला।

(१६) कर्म-शत्रुओं की सेना को पराजित करने में गजराज की तरह शूरवीर।

(१७) वृषभ की तरह अंगीकृत व्रत-भार का निर्वाह करने वाला।

(१८) मृगाधिपति सिंह के समान परीषहादि से अजेय।

(१९) शरद ऋतु के जल के समान स्वच्छ हृदय वाला।

(२०) भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त-सदा सजग।

(२१) गेंडे के सींग के समान एकाकी-अन्य की सहायता की अपेक्षा न रखने वाला अथवा आत्मनिष्ठा रूपी एकाकीपन वाला।

(२२) स्थाणु (ठूँठ) की भाँति ऊर्ध्वकाय-कायोत्सर्ग में स्थित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२३) सूने घर के समान अप्रतिकर्म, अर्थात् जैसे सुनसान पड़े घर को कोई सजाता-सँवारता नहीं, उसी प्रकार शरीर की साज-सज्जा से रहित।

(२४) वायुरहित घर में स्थित दीपक की तरह अकम्पित विविध उपसर्ग होने पर भी शुभ ध्यान में निश्चल रहने वाला।

(२५) उस्तरे की तरह एक धार वाला, अर्थात् एक उत्सर्ग-मार्ग में ही प्रवृत्ति करने वाला।

(२६) सर्प के समान एक दृष्टि वाला, अर्थात् सर्प जैसे अपने लक्ष्य पर ही नजर रखता है, उसी प्रकार मोक्षसाधना की ओर ही एकमात्र दृष्टि रखने वाला।

(२७) आकाश के समान आलम्बन रहित-स्वावलम्बी।

(२८) पक्षी की तरह सर्वथा विमुक्त। सब प्रकार के परिग्रह से मुक्त।

(२९) सर्प के समान दूसरों के बनाए हुये स्थान में रहने वाला।

(३०) वायु की तरह-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के प्रतिबन्ध से मुक्त।

(३१) मुक्त जीव के समान बेरोकटोक (अप्रतिहत) गति वाला अर्थात् स्वेच्छापूर्वक यत्र-तत्र विचरण करने वाला।

विवेचन : उपरोक्त उपमाओं के द्वारा द्रव्य और भाव परिग्रह से रहित निग्रन्थ श्रमणों के उदात्त चरित्र का वर्णन किया है। इनमें साधुजीवन की विशिष्टता, उज्ज्वलता, संयम के प्रति निश्चलता, स्वावलम्बित, अप्रमत्तता, स्थिरता, लक्ष्य के प्रति निरन्तर सजगता, आन्तरिक शुचिता, देह के प्रति अनासक्तता, संयम निर्वाह सम्बन्धी क्षमता आदि का प्रतिपादन किया गया है।

163. The greatness of an ascetic is depicted through the comparative illustrations given below—

(1) An extremely clean bronze vessel is totally free from effects of water. Similarly a monk is free from bondage of attachment and the like.

(2) A conch shell is free from dirt, similarly a monk is free from dirt of attachment, hatred and delusion.

(3) A monk keeps his senses under control like a tortoise.

(4) A monk is pure like gold in self-purification.

(5) A monk is free from any Karmic paste like a lotus leaf.

(6) A monk is like a moon due to his quiet nature.

(7) A monk shines like the sun due to his austerities.

(8) A monk is unmoved in troubles like Meru mountain.

(9) A monk is free from tribulation like a sea.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(10) A monk bears like the earth all the pleasant and unpleasant situations.

(11) A monk has inner brightness due to his austerities as is a fire covered with ash.

(12) A monk shines bright like a burning fire.

(13) A monk is cool in conduct like sandal wood and fragrant due to his chastity.

(14) A monk is quiet like a pond in absence of wind.

(15) A monk is as clear, transparent and free from deceit as is a clean mirror properly brightened.

(16) A monk is bold in defeating the enemies of Karma like a great elephant.

(17) A monk carries the load of his vows like a bullock.

(18) A monk, like a lion, is unconquerable by troubles and tribulations.

(19) A monk has a pure heart like water in winter.

(20) A monk is always awakened like Bharand bird.

(21) A monk, like rhinoceros-horn, remains alone and does not need assistance of others.

(22) A monk remains erect in meditation like a stump of tree.

(23) A monk like a vacant house does not beautify his body.

(24) A monk remains stable in his concentration like a lamp in the house free from wind.

(25) A monk, like a razor's edge, is single-minded on the path of austerities.

(26) A monk, like a snake, has singular attention on his goal of liberation.

(27) A monk, like the sky, does not have any support.

(28) A monk is free from attachment for possession like a bird.

(29) A monk stays like a serpent in the place built by others.

(30) A monk, like air, is free from all restrictions in wanderings regarding place, time, situation.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(31) A monk, like soul without any body cover, moves without any hindrances, freely as he desires.

Elaboration—Through these illustrations the uniqueness of ascetic life, its grandeur its fullness in ascetic discipline, its self-supporting nature, its freedom from slackness, its stability, its awakening towards the good, its inner purity, its non-attachment towards the body, its capability in practicing ascetic discipline has been depicted.

साधु अप्रतिबद्धविहारी होता है। विहार के विषय में इन किसी बन्धन से बँधा नहीं होता। अतएव निम्नोक्त सूत्र में विहार के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख करते हुए कतिपय अन्य गुणों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

It has been mentioned earlier that a monk is free from all restriction in his wanderings. So the next aphorism is about his wanderings.

१६४. गामे गामे एगरायं णयरे णयरे य पंचरायं दूइज्जंते य जिइंदिए जियपरीसहे णिब्भओ विऊ सच्चित्ता-चित्त-मीसगेहिं दव्वेहिं विरायं गए, संचयाओ विरए, मुत्ते, लहुए, णिरवकंखे, जीविय-मरणासविप्पमुक्के णिस्संधि णिव्वणं चरित्तं धीरे काएण फासयंते सययं अज्झप्पज्झाणजुत्ते, णिहुए, एगे चरेज्ज धम्मं।

इमं च परिग्गहवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विउवसमणं।

१६४. (मुनि) हर एक गांव में एक रात्रि और हर एक नगर में पाँच रात्रि तक विचरण करता है, क्योंकि वह इन्द्रिय विजेता होता है, परीषहों को जीतने वाला, निर्भय, विद्वान्-गीतार्थ, सचित्त, अचित्त और मिश्र सभी द्रव्यों में वैराग्ययुक्त होता है, संग्रहवृत्ति से दूर, निर्लोभवृत्ति वाला, लघु अर्थात् तीनों प्रकार के गौरव के भार से रहित और परिग्रह के भार से रहित होता है। जीवन और मरण की आशा-आकांक्षा से विमुक्त, चारित्र-परिणाम के विच्छेद से रहित होता है, अर्थात् उसका चारित्र-परिणाम निरन्तर विद्यमान रहता है। वह निरतिचार-निर्दोष चारित्र का धैर्यपूर्वक शारीरिक क्रिया द्वारा पालन करता है। ऐसा मुनि सदा अध्यात्मध्यान में संलग्न, उपशान्त भाव तथा एकाकी-सहायकरहित अथवा रागादि से असंपृक्त होकर धर्म का आचरण करे।

परिग्रहविरमणव्रत की रक्षा के लिये भगवान ने यह उत्तम प्रवचन-उपदेश दिया है। यह प्रवचन आत्म हितकर है, परभव में उत्तम फल देने वाला है और भविष्य में कल्याण करने वाला है। यह शुद्ध है, न्यायसंगत है, सरल है, अति उत्तम है और समस्त दुःखों तथा पापों का शमन करने वाला है।

विवेचन : उपरोक्त पाठ में कहा गया है कि मुनि को ग्राम में एक रात और नगर में पाँच रात तक ही रूकना चाहिये, उसके विषय में टीकाकार ने लिखा है-

'एतच्च भिक्षुप्रतिमाप्रतिपन्नसाध्वपेक्षया सूत्रमवगन्तव्यम्।

-प्र. व्या. आगमोदय, पृ. १५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् यह सूत्र उस साधु के लिए जानना चाहिए जिसने भिक्षुप्रतिमा अंगीकार की हो। सामान्य साधुओं के लिए यह विधान नहीं है।

164. A monk should not spend more then a night in a village and more than five nights in a town during his wanderings as he controls his senses, overcomes the troubles, has scriptural knowledge and is free from any fear. He has a sense of non-attachment in respect of things having life, lifeless things and then having both life and lifeless parts such as servant wearing ornaments and other suchlike substances. He does not keep in store his collection. He is free from greed. He is free from three types of ego. He does not carry any load of attachment for possessions. He is totally free from any desire for long life or early death. He does not blemish his conduct. He continuously follows the conduct as mentioned in scriptures. His conduct never gets adversely affected. He practices ascetic conduct free from any fault undergoing physical activities patiently. Such a monk continuously remains in meditation about the soul, is quiet and alone. He practices dharma completely detached from all attachment and the like.

Bhagavan has delivered this lecture so that one may safely practice his vow of discarding attachment towards possessions. This talk is beneficial for the soul and is going to provide best result in later lives. It is beneficial in future also. It is pure, just excellent and without any element of deceit. It has the capability of removing all troubles and sins.

Elaboration—This aphorism is easily intelligible only one things needs clarification. It is mentioned that a monk should stay for not more than a day in a village and five days in a town. About this conduct the commentator has mentioned that in this aphorism, this restriction is in case of such monks who are undergoing special practice of austerity of monks (bhikshu pratima). So it is not applicable to all the monks.

अपरिग्रहव्रत की पाँच भावनाएँ

FIVE SENTIMENTS IN RESPECT OF VOW OF NON-ATTACHMENT FOR POSSESSIONS

अपरिग्रही की पहचान के लिए पूर्व सूत्रपाठ में विशद रूप से व्याख्या करके अब शास्त्रकार ने यहां परिग्रह से विरतिरूप अपरिग्रहमहाव्रत की सुरक्षा के लिए पांच भावनाओं का निम्नोक्त सूत्रपाठ द्वारा निरूपण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

After explaining in detail about the attributes of a detached monk in the preceding aphorism, the author proceeds to explain the five sentiments for protecting the great vow of non-possession.

प्रथम भावना–श्रोत्रेन्द्रिय संयम FIRST SENTIMENT : RESTRAINT OF SENSE OF HEARING

१६५. तस्स इमा पंच भावणाओ चरिमस्स वयस्स होंति परिग्गहवेरमण–परिरक्खणट्ठयाए।

पढमं–सोइंदिएणं सोच्चा सद्दाइं मणुण्णभद्दगाइं।

[प्र.] किं ते ?

[उ.] वरमुरय–मुइंग–पणव–दद्दुर–कच्छभि–वीणा–विपंची–वल्लयि–वद्धीसग–सुघोस–णंदि–सूसरपरिवाइणी–वंस–तूणग–पव्वग–तंती–तल–ताल–तुडिय–णिग्घोसगीय–वाइयाइं। णड–णट्टग–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिग–वेलंबग–कहग–पवग–लासग–आइक्खग–लंख–मंख तूणइल्ल–तुंबवीणिय–तालायर–पकरणाणि य, बहूणि महुरसरगीय–सुस्सराइं कंची–मेहला–कलाव–पतरग–पहेरग–पायजालग–घंटिय–खिंखिणि–रयणोरुजालिय–छुद्दिय–णेउर–चलण–मालिय–कणग–णियल–जालग–भूसण–सद्दाणि, लीलचंकम्ममाणाणुदीरियाइं तरुणीजणहसिय–भणिय–कलरिभिय–मंजुलाइं गुणवयणाणि व बहूणि–महुरजण–भासियाइं अण्णेसु य एवमाइएसु सद्देसु मणुण्णभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, ण रज्जियव्वं, ण गिज्झियव्वं, ण मुज्झियव्वं, ण विणिग्घायं आवज्जियव्वं, ण लुभियव्वं, ण तुसियव्वं, ण हसियव्वं, ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा।

पुणरवि सोइंदिएण सोच्चा सद्दाइं अमणुण्णपावगाइं–

[प्र.] किं ते ?

[उ.] अक्कोस–फरुस–खिंसण–अवमाणण–तज्जण–णिब्भंछण–दित्तवयण–तासण–उक्कूजिय–रुण्ण–रडिय–कंदिय–णिग्घुट्ठरसिण–कलुण–विलवियाइं अण्णेसु य एवमाइएसु सद्देसु अमणुण्ण–पावएसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं, ण हीलियव्वं, ण णिंदियव्वं, ण खिंसियव्वं, ण छिंदियव्वं, ण भिंदियव्वं, ण वहेयव्वं, ण दुगुंछावत्तियाए लब्भा उप्पाएउं।

एवं सोइंदिय–भावणा–भाविओ भवइ अंतरप्पा मणुण्णाऽमणुण्ण–सुब्भिदुब्भि–राग–दोसप्पणिहियप्पा साहू मणवयणकायगुत्ते संवुडे पणिहिइंदिए चरेज्ज धम्मं।

१६५. इस पूर्वोक्त परिग्रहविरमण रूप अन्तिम व्रत की सुरक्षा के लिए पाँच भावनाएँ हैं। उनमें से प्रथम भावना (श्रोत्रेन्द्रिय–संयम) इस प्रकार है–

श्रोत्रेन्द्रिय से, मनोज्ञ और कर्णप्रिय–सुहावने प्रतीत होने वाले शब्दों को सुनकर साधु को उन पर राग नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[प्र.] वे शब्द मनोज्ञ कौन-से, किस प्रकार के हैं?

[उ.] (इसके उत्तर में कहते हैं) बड़ा मृदंग-महामर्दल, छोटा मृदंग, पणव-छोटा ढोल, दर्दुर-चमड़े से मढ़े मुख वाला और कलश जैसा ढोलक, कच्छभी-वाद्यविशेष, वीणा, विपंची और वल्लकी (विशेष प्रकार की वीणाएँ), वद्दीसक नाम का बाजा, सुघोषा नामक एक प्रकार का घंटा, नन्दी-बारह प्रकार के बाजों का निर्घोष, सूसरपरिवादिनी-एक प्रकार की वीणा, वंश-बांसुरी, तूणक एवं पर्वक नामक वाद्य, तंत्री-एक विशेष प्रकार की वीणा,. तल-हस्ततल, ताल-कांस्य-ताल, इन सब बाजों के नाद को (सुनकर) तथा नट, नर्तक, जल्ल-बाँस या रस्सी के ऊपर खेल दिखलाने वाले, मल्ल, मुष्टिमल्ल, विदूषक, कथा कहने वाले, प्लवक-उछलने वाले, रास गाने वाले शुभाशुभ फल बताने वाले, चित्रपट दिखाने वाले, तूण (तुनतुनी) नामक बाजा बजाने वाले, तुम्बी की वीणा बजाने वाले, करताल बजाने वाले आदि द्वारा किये जाने वाले नाना प्रकार की मधुर ध्वनि से युक्त सुस्वर गीतों को (सुनकर) तथा करधनी-कंदोरा, मेखला (विशिष्ट प्रकार की करधनी), कलापक-गले का एक आभूषण, प्रतरक और प्रहेरक नामक आभूषण, पादजालक-नूपुर आदि आभरणों के एवं घण्टिका-घुंघरू, खिंखिनी-छोटी घंटियों वाला आभरण, रत्नोरुजालक-रत्नों का जंघा का आभूषण, क्षुद्रिका नामक आभूषण, नेउर-नूपुर, चरणमालिका तथा कनकनिगड नामक पैरों में पहनने के सोने के कड़े और जालक नामक आभूषण, इन सबकी ध्वनि-आवाज को (सुनकर) तथा लीलापूर्वक चलती हुई स्त्रियों की चाल से उत्पन्न (ध्वनि को) एवं तरुणी रमणियों का हास्य तथा स्वर-मधुरतापूर्वक बोले गये शब्द तथा सुन्दर आवाज को (सुनकर) और स्नेही जनों द्वारा भाषित प्रशंसा-वचनों को एवं इसी प्रकार के मनोज्ञ एवं सुहावने वचनों को (सुनकर) उनमें साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, राग नहीं करना चाहिए, गृद्धि-अप्राप्ति की अवस्था में उनकी प्राप्ति की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, मुग्ध नहीं होना चाहिए, उनके लिए स्व-पर का घात नहीं करना चाहिए, लोभ नहीं होना चाहिए, तुष्ट-प्राप्ति होने पर प्रसन्न नहीं होना चाहिए, हँसना नहीं चाहिए, ऐसे शब्दों का स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त श्रोत्रेन्द्रिय से अमनोज्ञ तथा पापजन्य अशुभ शब्दों को-मन में अप्रीतिजनक एवं पापजन्य-अभद्र शब्दों को सुनकर रोष (द्वेष) नहीं करना चाहिए।

[प्र.] वे (अशुभ) शब्द-कौन कौन से हैं?

[उ.] आक्रोश वचन, कठोर वचन, निंदात्मक वचन, अपमान वचन, डांट फटकार, धिक्कार वचन, दीप्त वचन, त्रासजनक वचन, उत्कूजित-अस्पष्ट उच्च ध्वनि, रुदन ध्वनि, रटित-धाड़ मारकर रोने, क्रन्दन-वियोगजनित विलाप आदि की ध्वनि, निर्घुष्ट-निर्घोषरूप ध्वनि, रसित-जानवर के समान चीत्कार, करुणाजनक शब्द तथा विलाप के शब्द-इन सब शब्दों में तथा इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ एवं पापजनित-अभद्र शब्द कान में पड़ने पर साधु को रोष नहीं करना चाहिए, उनकी हीलना नहीं करनी चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, न दूसरे लोगों के सामने उनकी बुराई करनी चाहिए, अमनोज्ञ शब्द उत्पन्न करने वाले पदार्थ या व्यक्तियों के छेदन भेदन में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए, न वध करना चाहिए। न ही अपने अथवा दूसरे के हृदय में जुगुप्सा उत्पन्न करनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र-परिचय 24 **Illustration No. 24**

अपरिग्रह व्रत की पाँच भावनाएँ

अपरिग्रह व्रत के साधक को इन पाँच भावनाओं का सदा पालन करना चाहिए—

(1) **श्रोत्रेन्द्रिय संयम भावना**—वीणा का स्वर, तबले की ताल, ढोलक की थाप आदि कानों को प्रिय लगने वाले स्वरों को सुनकर साधक आसक्त न बने इसके विपरीत क्रन्दन, रुदन, जोर-जोर से चिल्लाना आदि कान को कटु लगने वाले स्वरों पर क्रोध और द्वेष न करे।

(2) **चक्षुरिन्द्रिय संयम भावना**—स्त्रियों के सुन्दर रूप, बाग-बगीचे, कमल सरोवर, टी.वी., नट का खेल और इसी प्रकार के आँखों को प्रिय लगने वाले रूप एवं दृश्य देखकर उन पर अनुराग न करे एवं अशुभ रूप एवं दृश्य देखकर मन में द्वेष अथवा घृणा भाव न लाये।

(3) **घ्राणेन्द्रिय संयम भावना**—चन्दन, गुलाब, सुगन्धित फूलों की माला, श्रेष्ठ धूप और इसी प्रकार की अन्य उत्तम सुगन्धों पर मुनि को आसक्त नहीं होना चाहिए तथा अशुभ गन्धों जैस नाली की दुर्गंध, सड़े-गले जानवरों के शवों आदि से उठने वाली असह्य दूर तक फैली दुर्गंध आदि पर घृणा नहीं करनी चाहिए।

(4) **रसनेन्द्रिय संयम भावना**—सुन्दर रसीला भोजन, विविध प्रकार की घी-तेल आदि से बनी हुई मिठाईयाँ, उत्तम प्रकार के रस, स्वादिष्ट फल एवं इसी प्रकार की अन्य मनोज्ञ रस वाली वस्तुओं पर आकर्षण न करे। इसके विपरीत रसहीन, विकृत, कटु-कषैले पदार्थों एवं अशुभ रसों पर रोष एवं घृणा नहीं करनी चाहिए।

(5) **स्पर्शनेन्द्रिय संयम भावना**—सुन्दर पंलग, मुलायम उत्तम वस्त्र, पानी के फव्वारे आदि के सुखद एवं अनुकुल स्पर्शों के प्रति अनुरक्त नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत कठोर शय्या, विहार में ठोकर आदि लगने पर, कर्कश काँटे चुभने पर साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए।

—सूत्र 165-169, पृ. 418-429

FIVE SENTIMENTS OF VOW OF NON-COVETOUSNESS

An aspirant practicing the vow of non-covetousness should always nurture the following five sentiments–

(1) Sentiment of restraining the sense organ of hearing – The aspirant should not get infatuated with the sweet sounds like those of Veena, Tabla, drum etc. At the same time he should not despise and get angry at oppressive and harsh sounds like those of wailing, crying, shouting etc.

(2) Sentiment of restraining the sense organ of seeing – The aspirant should not get infatuated with appearances pleasing to the eyes, including beauty of women, gardens, lotus ponds, television, acrobatic performances etc. At the same time he should not despise or be averse to unpleasing and repulsive scenes.

(3) Sentiment of restraining the sense organ of smelling – The aspirant should not get infatuated with the sweet smells like those of sandal-wood, rose, garlands of fragrant flowers, incenses and other fragrant substances. He should not despise and get angry at oppressive and repulsive smells like those of sever, rotting cadavers and other such stink.

(4) Sentiment of restraining the sense organ of taste – The aspirant should not get infatuated with rich food, sweets cooked in butter, good quality juices, fruits, and other tasty eatables. At the same time he should not despise and get angry at tasteless, stale, bitter, astringent and other such repulsive food.

(5) Sentiment of restraining the sense organ of touch – The aspirant should not get infatuated with pleasing and soft touch like that of comfortable bed, soft and good quality dresses, shower from a fountain, etc. At the same time he should not despise and get angry at oppressive and harsh touch like hard bed, hurt of stumbling on a stone, sting of a thorn etc.

— Sutra-165-169, pages-418-429

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय की भावना से भावित साधु का अन्तरात्मा मनोज्ञ-अमनोज्ञ या शुभाशुभ शब्दों पर राग और द्वेष को सर्वथा रोक लेता है, वह मन, वचन और काया का गोप्ता साधु ही संवर भाव से युक्त होकर इन्द्रियों पर नियंत्रण करता हुआ चारित्र धर्म का पालन करता है।

165. There are five sentiments for the vow of non-attachment in possessions or for safeguarding the Samvar of non-attachment, which is the last vow of non-attachment. The first sentiment (restraint in respect of hearing) is as fallows :

A monk should not feel elated (attached) by hearing words of his liking through his ears.

[Q.] What are such words ? In what form are they said.

[Ans.] The words of one's liking are those of large and small Mridanga (a percussion instrument), of Panav (small drum), of Dardur—a musical instrument covered with leather at its face and looking like a pot, Kachhabhi—a special musical instrument, Veena, Vipanchi, Vallaki–special type of Veena, Vaddeesak, Sughosha—a kind of bell, Susunapanivadini—a type of Veena, flute, Toorak, Parvak, Nandi—the music of twelve musical instruments played simultaneously, Tantri—a special type of Veena, Tal, Taal (kansya taal). A monk should not get attracted at the music of the said instruments. Dancers dance on pole and rope. The wrestlers show their bouts. The clowns, the story tellers, the jumpers, the singers, entertain the public with their sports and the music of Kardham and mekhala (special type of chain worn at the waist), the small bells, the ornament having bells, the ornament Kalapak worn at the neck, pratarak, praharak (names of ornaments), foot-ornaments the jewelled ornament of the thigh (ratnonyalak), Kshudrika, Chamamalika and Kanakanigad—the ornaments of feet and Jalak. All these ornaments produce sound at the movement of dancer and when women move in a pleasant mood. The young ladies produce sounds of laughter and amorous talk. The relatives utter words of appreciation. A monk should not be interested in such pleasant words. He should not get attracted towards them. He should not have a desire to listen to them again when they are no longer there. He should not feel happy when he hears them. He should not cause any damage for their sake. He should not laugh at them. He should not keep such words in his memory. He should not think of them.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Further a monk should not feel dejected when he listens unpleasant derogatory words.

[**Q.**] What are such words and in what form are they produced ?

[**Ans.**] They are the words uttered in a fit of anger. The words expressing condemnation disgrace, creating fear or asking one to get away, the harsh words, frightening words, indistinct words, the sound of weeping, moaning, wailing, weeping loudly due to separation, crying like an animal, sounds seeking compassion. All such words and suchlike other words should not adversely affect a monk. He should not condemn them, tell ill of them. He should not call them bad before the public gathering. He should not cut or destroy the substance which produces unpleasant sounds. He should not create hatred in the mind of others.

Thus a monk should lead such a life that his mind may have such a feeling about the sense of hearing that he may have no attachment or hatred in god pleasant words or bad unpleasant words. He should have full control on mind, words and body. He should have control over his senses. Only such monk truly follows the ascetic conduct.

द्वितीय भावना—चक्षुरिन्द्रिय संवर

SECOND SENTIMENT : STOPPAGE OF KARMA INFLOW RELATING TO SENSE OF SIGHT

१६६. बिइयं—चक्खुइंदिएण पासिय रूवाणि मणुण्णाइं भद्दगाइं, सचित्ताचित्तमीसगाइं कट्ठे पोत्थे य चित्तकम्मे लेप्पकम्मे सेले य दंतकम्मे य पंचहिं वण्णेहिं अणेगसंठाणसंठियाइं, गंठिम—वेढिम—पूरिम—संघाइमाणि य मल्लाइं बहुविहाणि य अहियं णयणमणसुहयराइं, वणसंडे पव्वए य गामागरणयराणि य खुद्दिय—पुक्खरिणि—वावी—दीहिय—गुंजालिय—सरसरपंतिय—सायर—बिल—पंतिय—खाइय—णईसर—तलाग—वप्पिणी—फुल्लुप्पल—पउमपरिमंडियाभिरामे अणेगसउणगण—मिहुण—वियरिए वरमंडव—विविह—भवण—तोरण—चेइय—देवकुल—सभा—प्पवा—वसह—सुकयसयणासण—सीय—रह—सयड—जाण—जुग्ग—संदण—णरणारिगणे य सोमपडिरूव—दरिसणिज्जे अलंकिय—विभूसिए पुव्वकयतवप्पभाव—सोहग्गसंपउत्ते णड—णट्टग—जल्ल—मल्ल—मुट्ठिय—वेलंबग—कहग—पवग—लासग—आइक्खग—लंख—मंख—तूणइल्ल—तुंबवीणिय—तालायर—पकरणाणि य बहूणि सुकरणाणि अण्णेसु य एवमाइएसु रूवेसु मणुण्णभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, ण रज्जियव्वं जाव ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा।

पुणरवि चक्खिंदिएण पासिय रूवाइं अमणुण्णपावगाइं—

[प्र.] किं ते ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[उ.] गंडि–कोढिक–कुणि–उयरि–कच्छुल्ल–पइल्ल–कुज्ज–पंगुल–वामण–अंधिल्लग–एगचक्खु–विणिहयसप्पिसल्लग–वाहिरोगपीलियं, विगयाणि मयगकलेवराणि सकिमिण्कुहियं च दव्वरासिं, अण्णेसु य एवमाइएसु अमणुण्ण–पावगेसु ण तेसु समणेणं रूसियव्वं जाव ण दुगुंछावत्तिया वि लब्भा उप्पाएउं।

एवं चक्खिंदियभावणाभाविओ भवइ अंतरप्पा जाव चरेज्ज धम्मं।

१६६. द्वितीय भावना चक्षुरिन्द्रिय का संवर है। वह इस प्रकार है–

चक्षुरिन्द्रिय से मनोरम एवं भद्र–सुन्दर सचित्त, अचित्त और मिश्र–सचित्ताचित्त पदार्थ के रूपों को देखकर (राग नहीं करना चाहिए)। वे रूप चाहे काष्ठ सम्बन्धी, पुस्तक या वस्त्र सम्बन्धी, चित्र सम्बन्धी, मिट्टी आदि के लेप से बनाये गये हों, पत्थर पर अंकित हों, हाथीदाँत आदि पर हों, पाँच वर्ण के और नाना प्रकार के आकार वाले हों, गूँथकर माला आदि की तरह बनाये गये हों, वेष्टन से, चपड़ी आदि भरकर अथवा संघात से–फूल आदि की तरह एक–दूसरे को मिलाकर बनाये गये हों, अनेक प्रकार की मालाओं के रूप हों और वे नयनों तथा मन को अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले हों (तथापि उन्हें देखकर राग नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए)।

इसी प्रकार वनखण्ड, पर्वत, ग्राम, आकर, नगर तथा विकसित नील कमलों एवं (श्वेतादि) कमलों से सुशोभित और मनोहर तथा जिनमें हंस, सारस आदि अनेक पक्षियों के जोड़े विचरण कर रहे हों, ऐसे छोटे जलाशय, गोलाकार बावड़ी, चौकोर बावड़ी, लम्बी बावड़ी, नहर, सरोवरों की कतार, सागर, बिलपंक्ति, लोहे आदि की खानों में खोदे हुए गड्ढों की पंक्ति, खाई, नदी, बिना खोदे प्राकृतिक रूप से बने सरोवर, तालाब, नहर (आदि को देखकर) अथवा उत्तम मण्डप, विविध प्रकार के भवन, तोरण, चैत्य–स्मारक, देवालय, सभा, प्याऊ, आवसथ–परिव्राजकों के आश्रम, सुनिर्मित शय्या, सिंहासन आदि आसन, पालकी, रथ, गाड़ी, यान, युग्य–यानविशेष, स्यन्दन–घुंघरूदार रथ या सांग्रामिक रथ और नर–नारियों के झुंड, ये सब वस्तुएँ यदि सौम्य हों, आकर्षक रूप वाली दर्शनीय हों, आभूषणों से अलंकृत और सुन्दर वस्त्रों से विभूषित हों, पूर्व में की हुई तपस्या के प्रभाव से सौभाग्य को प्राप्त हों तो (इन्हें देखकर) तथा नट, नर्तक, वादक, मल्ल, मुक्केबाज, विदूषक, कथावाचक, तैराक, रास करने वाले व वार्त्ता कहने वाले, चित्रपट लेकर भिक्षा माँगने वाले, बाँस पर खेल करने वाले, तूणइल्ल–तूणा बजाने वाले, तूम्बे की वीणा बजाने वाले एवं तालाचरों के विविध प्रयोग देखकर तथा बहुत से करतबों को देखकर (आसक्त नहीं होना चाहिए)। इस प्रकार के अन्य मनोज्ञ तथा सुहावने रूपों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, अनुरक्त नहीं होना चाहिए, यावत् उनका स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए।

इसके सिवाय चक्षुरिन्द्रिय से अमनोज्ञ और पापजनित अशुभ रूपों को देखकर (रोष नहीं करना चाहिए)।

[प्र.] वे (अमनोज्ञ रूप) कौन–से हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[उ.] गंडमाला के रोगी को, कोढ़ी को, लूले-कुंट-टोंटे को, जलोदर के रोगी को, खुजली के रोगी को, कठोर पैर या हाथीपगा के रोगी को, कुबड़े लँगड़े को, वामन-बौने को, जन्मान्ध को, एकचक्षु (काणे) को, विनिहत चक्षु को-जन्म के पश्चात् जिसकी एक या दोनों आँखें नष्ट हो गई हों, भूतपिशाच-ग्रस्त को अथवा पीठ झुकाकर हाथ में लकड़ी लेकर चलने वाले को, विशिष्ट चिर स्थायी रूप व्याधि या रोग से पीड़ित को (इनमें से किसी को देखकर) तथा विकृत, मृतक-कलेवरों को या कीड़ों से युक्त सड़ी-गली द्रव्यराशि को देखकर अथवा इनके सिवाय इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ और पापजन्य अशुभ रूपों को देखकर साधु को उन रूपों के प्रति रोष नहीं करना चाहिए, उनकी हीलना नहीं करनी चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, ना दूसरे लोगों के सामने उनकी बुराई करनी चाहिए। और न ही अमनोज्ञ रूपों को देखकर छेदन-भेदन, मारपीट जुगुप्सा करनी चाहिए।

इस प्रकार चक्षुरिन्द्रिय-संवर रूप भावना से भावित अन्तःकरण वाला होकर सुसाधु पूर्व वर्णित चारित्र धर्म का भलीभांति आचरण करता है।

166. Second sentiment is about Samvar of sense of sight. It is as follows.

A monk should not have a feeling of attachment for the living, non-living and living as wall as non-bring objects, which are to his liking even if they are of wood, cloth, pictures or books or are made with earthen plaster, or carved on stone or tusk. They may be of the five colours and of different shape. They may be made like a garland or prepared by hands. They may be prepared after stuffing some substance or by joining each other like flowers. They may be like various types of rosaries. They may be providing great pleasure to the mind and to the eyes. Still a monk should not allow any feeling of attachment to creep in at their sight.

Similarly their may be forests, mountains, villages, towns, small watersheds, circular, square or long bodies (collections of water), chain of tanks, sea, row of holes and ditches in iron mines, ditches, river, natural water reservoirs, tanks, water-beds, beautiful enclaves, various types of buildings, gates, memorials, temples, assembly halls, water-serving stations, ashrams of Sanyasis, well-constructed beds, seats, palanquins chariots, carts, transports, special transports, belled chariots, war chariots and gatherings of men and women. Such things may be beautiful, attractive worth-seeing, well-decorated with cloth and ornaments. They may be fortmate due to the effect of earlier austerities. These may be dancers, wrestlers, clowns, boxers, story-tellers,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

swimmeers, alms seekers through showing picture-cloth, bamboo dancers, flute players or Veena players. A monk should not get absorbed and attached at seeing these and the activities of such persons. A monk should not become deeply attached in other suchlike pleasant scenes. He should not recollect them and should not ponder over them.

Further, a monk should not become angry at the sight of unpleasant and sinful sights irritating to the eyes.

[**Q.**] What are such unpleasant sights ?

[**Ans.**] There may be persons suffering illness, due to wind, cough and pitta in the body; persons suffering from eighteen types of diseases including leprosy, person suffering from kunt, kuni, tote, the diseases relating to stomach, person suffering from scabies, flat foot. There may be one-legged persons, dwarfs, blind since birth, one-eyed persons, blind persons, persons affected by ghost, creatures moving with the back, persons suffering from serious disease like chittapeed. There may be corpses, rotten things in which worms have appeared. There may be other such like unpleasant and sinful scenes. A monk should not be angry at their sight. He should not cause disgrace to them. He should not have any latent contempt for them.

Thus a monk should practice ascetic conduct with the mind saturated with feelings in the form of Samvar of the sense of seeing.

तीसरी भावना–घ्राणेन्द्रिय संयम THIRD SENTIMENT–RESTRAINT OF SENSE OF SMELL

१६७. तइयं–घाणिंदिएण अग्घाइय गंधाइं मणुण्णभद्दगाइं–

[प्र.] किं ते ?

[उ.] जलय–थलय–तरस–पुप्फ–फल–पाणभोयण–कुट्ठ–तगर–पत्त–चोय–दमणग–मरुय–एलारस–पिक्क–मंसि–गोसीस–सरस–चंदण–कप्पूर–लवंग–अगर–कुंकुम–कक्कोल–उसीर–सेयचंदण–सुगंधसारंग–जुत्तिवर–धूववासे उउय–पिंडिम–णिहारिमगंधिएसु अण्णेसु य एवमाइएसु गंधेसु मणुण्णभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं जाव ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा।

पुणरवि घाणिंदिएण अग्घाइय गंधाइं अमणुण्णपावगाइं–

[प्र.] किं ते ?

[उ.] अहिमड–अस्समड–हत्थिमड–गोमड–विग–सुणग–सियाल–मणुय–मज्जार–सीह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीविय–मयकुहिय–विणट्ठकिविण–बहुदुरभिगंधेसु अण्णेसु य एवमाइएसु गंधेसु अमणुण्ण–पावगेसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं जाव पणिहिएंदिए चरेज्ज धम्मं।

१६७. तीसरी भावना घ्राणेन्द्रिय संवर है– घ्राणेन्द्रिय से मनोज्ञ और घ्राणप्रिय गंध को सूँघकर (रागादि नहीं करना चाहिए)।

[प्र.] वे सुगन्ध क्या–कैसे हैं?

[उ.] जल और थल में उत्पन्न होने वाले सरस पुष्प, फल, पेय पदार्थ, भोजन, कमलकुष्ठ, तगर, तमालपत्र, सुगंधित छाल–दालचीनी आदि, दमनक (एक विशेष प्रकार का फूल)–मरुआ, इलायची का रस, पका हुआ जटामांसी नामक सुगंध वाला द्रव्य, गोशीर्ष नामक सरस चन्दन, कपूर, लोंग, अगर, कुंकुम, कक्कोल–गोलाकार सुगंधित फलविशेष, उशीर–खसखस, श्वेत चन्दन, खुशबूदार पत्तों व अन्य सुगन्धित द्रव्यों के संयोग से बनी श्रेष्ठ धूप की सुगन्ध को सूँघकर (रागभाव नहीं धारण करना चाहिए) तथा भिन्न–भिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले अत्यंत गहरी सुगन्ध वाले एवं दूर–दूर तक फैलने वाली सुगन्ध से युक्त पदार्थों में और इसी प्रकार की मनोहर, नासिका को प्रिय लगने वाली सुगन्ध के विषय में मुनि को आसक्त नहीं होना चाहिए, यावत् अनुरागादि नहीं करना चाहिए। उनका स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त घ्राणेन्द्रिय से अमनोज्ञ और अशुभ गंधों को सूँघकर (रोष आदि नहीं करना चाहिए)।

[प्र.] वे अशुभ गन्ध कौन–कौन से हैं?

[उ.] मरे हुए सर्प, मृत घोड़ा, मरे हुए हाथी, मरी हुई गाय तथा भेड़िया, कुत्ता, श्रृंगाल, मनुष्य, बिल्ली, सिंह और चीता आदि के सड़े–गले शवों की, जिसमें कीड़े बिलबिला रहे हों, दूर–दूर तक असह्य दुर्गन्ध फैल रही हो तथा इसी प्रकार के और भी अमनोज्ञ और असुहावनी दुर्गन्धों के विषय में साधु को रोष नहीं करना चाहिए यावत् अपनी पांचों इन्द्रियों को वशीभूत करके चारित्र धर्म का आचरण करना चाहिए।

167. The third sentiment is restraint of smell. A monk should not become attached at the smell pleasant to the sense of smell.

[Q.] In what from is that smell?

[Ans.] There are beautiful flowers and fruits growing in land and in water. There are eatables, drinks, utpalakushth, tagar, tamaal leaves, sweet smelling skin of plants, damanak (a special type of flowers), marua, cardamom, jatamasi, gosheersh sandalwood, camphor, clove, agar, kumkum, kakkol (a fragrant round fruit), usheer, white sandalwood, special incense prepared with mixture of fragrant

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

materials. All such articles are very pleasant to smell. There are other substances also which grow in different seasons at their proper time and their pleasant small spreads in a very large area. The smell of all above-said articles is very good and is highly, pleasant to the nose. A monk should not get attracted to that smell. He should not become attached to it. He should not even recollect it and think of it.

Further, a monk should not feel disgust or enraged at the unpleasant smell that is despised by the nose.

[**Q.**] What are the unpleasant smells ?

[**Ans.**] The dead body of a snake, horse, elephant, cow, wolf, dog, human being, cat, jackal, lion, leopard, their rotten corpses where in worms have appeared, give out extremely drastic smell that spreads to a very large distance. There are other suchlike substances that produce unpleasant derogatory smell. A monk should not feel disgusted or angry at it. He should practice his ascetic conduct keeping his senses under complete control.

चतुर्थ भावना—रसनेन्द्रिय संयम FOURTH SENTIMENT : RESTRAIN ON TASTE

१६८. चउत्थं—जिभिंदिएण साइय रसाणि मणुण्णभद्दगाइं।

[प्र.] किं ते ?

[उ.] उग्गाहिमविविहपाण—भोयण—गुलकय—खंडकय—तेल्ल—घयकय—भक्खेसु—बहुविहेसु लवणरससंजुत्तेसु महुमंस—बहुप्पगारमज्जिय—णिट्ठाणगदालियंब—सेहंब—दुद्ध—दहि—सरय—मज्ज—वरवारुणी—सीहु—काविसायण—सायट्ठारस—बहुप्पगारेसु भोयणेसु य मणुण्ण—वण्ण—गंध—रस—फास—बहुदव्वसंभिएसु अण्णेसु य एवमाइएसु रसेसु मणुण्णभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं जाव ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा।

पुणरवि जिब्भिंदिएण साइय रसाइं अमुण्णपावगाइं—

[प्र.] किं ते ?

[उ.] अरस—विरस—सीय—लुक्ख—णिज्जप्प—पाण—भोयणाइं दोसीण—वावण्ण—कुहिय—पूइय—अमणुण्ण—विणट्ठप्पसूय—बहुदुब्भिगंधियाइं तित्त—कडुय—कसाय—अंबिल—रस—लिंडणीरसाइं, अण्णेसु य एवमाइएसु रसेसु अमणुण्ण—पावगेसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं जाव चरेज्ज धम्मं।

१६८. चतुर्थ भावना रसनेन्द्रिय संवर है– रसनेन्द्रिय से मनोज्ञ एवं जिह्वा को प्रिय रसों का स्वाद लेकर उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[प्र.] वे (प्रियरस) क्या-कैसे हैं ?

[उ.] घी-तैल आदि में तलकर बनाये हुए खाजा, घेवर आदि पकवान, विविध प्रकार के पेय पदार्थ-द्राक्षापान आदि, गुड़ या शक्कर के बनाये हुए भोज्य पदार्थ, तेल अथवा घी से बने हुए मालपूवा आदि वस्तुओं में, जो अनेक प्रकार के लवण रसों से युक्त हों, मधु, माँस, बहुत प्रकार की मदिरा, बहुमूल्य सामग्री से बनाया गया भोज्य, दालिकाम्ल-खट्टी दाल, सैन्धाम्ल-रायता आदि, दही, सरक, मद्य, उत्तम प्रकार की वारुणी, सीधु तथा कापिशायन नामक मदिराएँ, अठारह प्रकार के शाक और अनेक प्रकार के मनोज्ञ वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त अनेक द्रव्यों से निर्मित भोजन में तथा इसी प्रकार के अन्य मनोज्ञ एवं सुहावने-लुभावने रसों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, यावत् उनका स्मरण तथा विचार भी नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त जिह्वा-इन्द्रिय से अमनोज्ञ और अरुचिकर रसों को चख कर (उनमें रोष आदि नहीं करना चाहिए)।

[प्र.] वे अमनोज्ञ रस कौन कौनसे हैं ?

[उ.] रसहीन-हींग आदि के संस्कार से रहित होने के कारण रसहीन, चलित रस या बिगड़े रसों से युक्त ठण्डा, रूखे-बिना चिकनाई के, निसत्त्व भोजन-पानी को तथा रात-वासी, व्यापन्न-रंग बदले हुए, सड़े हुए, अपवित्र होने के कारण अमनोज्ञ अथवा अत्यन्त विकृत हो चुकने के कारण जिनसे दुर्गन्ध निकल रही हो ऐसे तीखे, कटु, कसैले, खट्टे, शैवालरहित पुराने पानी के समान एवं नीरस पदार्थों में तथा इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ तथा अशुभ रसों में साधु को रोष धारण नहीं करना चाहिए यावत् संयतेन्द्रिय होकर धर्म का आचरण करना चाहिए।

168. The fourth restraint is that of taste. A monk should not get attached to pleasant and beautiful juices that are according to his taste.

[Q.] What are such juices ?

[Ans.] Some preparations are made in ghee and oil. Many dishes are prepared from grapes and sugar. Many sweats such as maalpuas are prepared. There are salty preparation also. Many types of dishes are prepared with honey, the pulp and the like after spending a lot of money. The sour pulse and churned curd is prepared. Many high class wines and intoxicating drinks such as varuni, seedhi, pishayan are prepared. There are eighteen types of vegetable preparation and many others which are pleasant in colour, smell, taste and touch. A monk should not be attached in such pleasant attractive preparations pleasant to the taste. He should not remember them. He should not even think of them.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Further a monk should not feel disgusted or become angry at the food and juices which are unpleasant to his sense of taste.

[Q.] What are such things unpleasant to the taste ?

[Ans.] There are dishes which are not tasty as sweet-smelling articles such as heeng has not been added to it or which have lost their taste due to the time period lapsed since their preparation. Some have lost their taste as they have becomes cold, or are without oily substance, or have become stale and unfit for eating. They have changed in colour. They have become rotten and impure. They are giving out bad smell as they have totally deformed. Suchlike tasteless substances are like bitter, sour, pungent old water having no taste. A monk should not get disgusted at such and other suchlike unpleasant and bad preparations. He should not feel angry. He should practice his ascetic discipline keeping his senses under full control.

पाँचवीं भावना–स्पर्शनेन्द्रिय संयम FIFTH SENTIMENT : CONTROL OVER SENSE OF TOUCH

१६९. पंचमगं–फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुण्णभद्दगाइं–

[प्र.] किं ते ?

[उ.] दग–मंडव–हार–सेयचंदण–सीयल–विमल–जल–विविहकुसुम–सत्थर–ओसीर–मुत्तिय– मुणाल–दोसिणा–पेहुणउक्खेवग–तालियंट–वीयणग–जणियसुहसीयले य पवणे गिम्हकाले सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि आसणाणि य पाउरणगुणे य सिसिरकाले अंगारपयावणा य आयवणिद्धमउयसीय–उसिण–लहुआ य जे उउसुहफासा अंगसुह–णिव्वुइगरा ते अण्णेसु य एवमाइएसु फासेसु मणुण्णभद्दगेसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, ण रज्जियव्वं, ण गिज्झियव्वं, ण मुज्झियव्वं, ण विणिग्घायं आवज्जियव्वं, ण लुब्भियव्वं, ण अज्झोववजियव्वं, ण तूसियव्वंए, ण हसियव्वं, ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा।

पुणरवि फासिंदिएण फासिय फासाइं अमणुण्णपावगाइं–

[प्र.] किं ते ?

[उ.] अणेगवह–बंध–तालणंकण–अइभारारोवणए, अंगभंजण–सूईणखप्पवेस–गायपच्छणण–लक्खारस–खार–तेल्ल–कलकलंत–तउय–सीसग–काल–लोहसिंचण–हडिबंधण–रज्जुणिगल–संकल–हत्थंडुय–कुंभिपागदहण–सीहपुच्छण–उब्बंधण–सूलभेय–गयचलणमलण–करचरण–कण्ण–णासोट्ठ–सीसच्छेयण जिब्भच्छेयणवसण–णयण–हियय–दंतभंजण–जोत्तलय–कसप्पहार–पाय–पण्हि–जाणु–पत्थर–णिवाय–पीलण–कविकच्छु–अगणि–विच्छुयडक्क–वायातव–दंसमसग–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिवाए दुट्ठणिसज्जदुण्णिसीहिय-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय-उसिणलुक्खेसु बहुविहेसु अण्णेसु य एवमाइएसु फासेसु अमणुण्णपावगेसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं, ण हीलियव्वं, ण णिंदियव्वं, ण गरहियव्वं, ण खिंसियव्वं, ण छिंदियव्वं, ण भिंदियव्वं, ण वहेयव्वं, ण दुगंछावत्तियव्वं च लुब्भा उप्पाएउं।

एवं फासिंदियभावणाभाविओ भवइ अंतरप्पा, मणुण्णामणुण्ण-सुब्भि-दुब्भिरागदोसपणिहियप्पा साहू मणवयणकायगुत्ते संवुडेणं पणिहिइंदिए चरिज्ज धम्मं।

१६९. पांचवी भावना स्पर्शनेन्द्रिय संवर है- स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा मनोज्ञ और सुखद स्पर्शों को छूकर (रागभाव नहीं धारण करना चाहिए)।

[प्र.] वे (मनोज्ञ स्पर्श) कौन-से हैं ?

[उ.] जलमण्डप-जिसमें पानी के फव्वारे चल रहे हों, हार, श्वेत चन्दन, शीतल निर्मल जल, विविध प्रकार के पुष्पों की शय्या-फूलों की सेज, खसखस, मोती, कमल की डंडी, रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी तथा मोर-पिच्छी, तालवृन्त-ताड़ के पंखों से की गई सुखद शीतल हवा में, ग्रीष्मकाल में सुखद स्पर्श वाले अनेक प्रकार के शय्याओं में, आसनों में, शीतकाल में ओढ़ने के गुण वाले अर्थात् ठण्ड से बचाने वाले वस्त्रादि में, अंगारों से शरीर को तपाने, सूर्य की किरणों की धूप, चिकने-तेलादि पदार्थ, कोमल और शीतल, गर्म और हल्के-जो ऋतु के अनुकूल सुखप्रद स्पर्श वाले हों, शरीर को सुख और मन को आनन्द देने वाले हों, ऐसे सब स्पर्शों में तथा इसी प्रकार के अन्य मनोज्ञ और सुहावने स्पर्शों में श्रमण को आसक्त नहीं होना चाहिए, अनुरक्त नहीं होना चाहिए, गृद्ध नहीं होना चाहिए-उन्हें प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए, मोह नहीं करना चाहिए, और स्व-परहित का विघात नहीं करना चाहिए, लोभ नहीं करना चाहिए, तल्लीनचित्त नहीं होना चाहिए, उनमें सन्तोषानुभूति नहीं करनी चाहिए, हँसना नहीं चाहिए, यहाँ तक कि उनका स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त स्पर्शनेन्द्रिय से अमनोज्ञ एवं अशुभ स्पर्शों को छूकर (रुष्ट-द्वेष नहीं करना चाहिए)।

[प्र.] वे स्पर्श कौन कौनसे हैं ?

[उ.] विविध प्रकार के रस्सी आदि के बन्धन, लाठी आदि से वध ताड़न-थप्पड़ आदि से मारपीट, तपी हुई लोहे की सलाईयों आदि से शरीर को दागना, अधिक भार का लादा जाना, अंग-भंग होना या किया जाना, नखों में सुइयाँ चुभाया जाना, अंग की हीनता होना, लाख के रस, नमकीन (क्षार) तेल, उबलते शीशे या कृष्णवर्ण लोहे से शरीर का सींचा जाना, काष्ठ के खोड़े में डाला जाना, डोरी या बेड़ी से बाँधे जाना, हथकड़ियाँ पहनाई जाना, कुंभी में पकाना, अग्नि से जलाया जाना, शेफत्रोटन लिंगच्छेद, बाँधकर ऊपर से लटकाना, शूली पर चढ़ाया जाना, हाथी के पैर से कुचला जाना, हाथ-पैर-कान-नाक-होठ और सिर में छेद किया जाना, जीभ का बाहर खींचा जाना, अण्डकोश-नेत्र-हृदय-दाँत या आँत का मोड़ा जाना, गाड़ी में जोता जाना, बेंत या चाबुक द्वारा प्रहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जाना, एड़ी, घुटना या पाषाण का अंग पर आघात होना, यंत्र में पीला जाना, कपिकच्छू-अत्यन्त खुजली होना अथवा खुजली करने वाले फल-करेंच का स्पर्श होना, अग्नि का स्पर्श, बिच्छू के डंक का, वायु का, धूप का या डांस-मच्छरों का स्पर्श होना, दुष्ट-दोषयुक्त-कष्टजनक आसन, स्वाध्यायभूमि में दुर्गन्धमय, कर्कश, भारी, शीत, उष्ण एवं रूक्ष आदि अनेक प्रकार के स्पर्शों में और इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ स्पर्शों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए, उनकी हीलना नहीं करनी चाहिए, निन्दा और गर्हा नहीं करनी चाहिए, खिंसना नहीं करनी चाहिए, अशुभ स्पर्श वाले द्रव्य का छेदन-भेदन नहीं करना चाहिए, स्व-पर का हनन नहीं करना चाहिए। स्व-पर में घृणावृत्ति भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए।

इस प्रकार स्पर्शनेन्द्रिय-संवर की भावना से भावित अन्तःकरण वाला साधु, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, अनुकूल और प्रतिकूल स्पर्शों की प्राप्ति होने पर राग-द्वेषवृत्ति का संवरण करता है और मन, वचन और काय से गुप्त होता है। इस भाँति साधु संवृतेन्द्रिय होकर चारित्र धर्म का आचरण करे।

169. The fifth restraint is of the sense of touch. A monk should not get attached to pleasant touch of beautiful articles.

[Q.] Where are such articles that are pleasant to sense of touch ?

[Ans.] There are enclosures having water fountains. There are soft garlands, white sandalwood, pure cool water, flower-beds, khaskhas, pearl, lotus tube, pleasant glow of the moon, broom of pea-cock feathers, fan of palm leaves, pleasant cool air produced by fan, many pleasant beds and seats in summer, many clothes that provide protection in winter, sun-rays and ambers for warmth, oily substances, soft, cool, warm and light articles according to the season that are beautiful and pleasant to touch. They provide comfort to the body and ecstatic pleasure to the mind. A monk should not get attached to them and other suchlike articles which are beautiful and pleasant to touch. He should not get attracted to them. He should not have a desire to get them. He should not be deeply interested in them. He should not pollute his mind and that of others with them. He should not have greed for them. He should not be deeply absorbed in them. He should not feel dissatisfaction in their absence. He should not laugh at them. He should not even keep them in his memory. He should not think of them.

Further there are articles which are unpleasant to touch and ugly. A monk should not be irritated at them.

[Q.] What are such articles that are unpleasant to touch ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[Ans.] A person is beaten, tied and slapped. His body is touched with a hot needle. He is made to carry a heavy load. His limbs are broken. He is troubled with needle or nails. He may have some limb missing. Hot lacquor, salty oil, boiling glass or melted iron is poured on his body. He is fettered in wood. He is tightly bound with a string. He is hand-cuffed. He is cooked in a narrow mouthed vessel. He is burnt in the fire. His limb is pierced. He is tied and hung upside down. He is hanged. He is trampled under the feet of an elephant. A hole is made in his hand, foot, ear, nose, lips or head. His tongue is pulled out. His arms, eyes, heart, tooth or intestines are twisted. He is yoked to a cart. He is beaten with cane or lashes. He is hit at the heels, knees or back. He is crushed in a crusher. He is touched with extremely harsh articles that cause scales. He is touched with suchlike fruit. He gets the touch of fire, of scorpion bite, of wind, of terrible sun, of mosquito-lute. He is seated on troublesome seat. He may face bad-smelling, harsh, heavy, cold, hot or dry touch and similar other unpleasant touch at the place of his study. A monk should not feel indifferent at such a touch. He should not hate it. He should not criticise it. He should not discard it or feel dejected. He should not pierce or cut an articles that provides such a harsh touch. He should not have a feeling of contempt for it.

Thus a monk should have a state of Samvar towards sense of touch in his mind. He should remain in a state of equanimity whether he gets pleasant or unpleasant articles, an article to his liking or not. He should not have any sense of attachment or hatred. He should keep his mind, speech and body under full control. Thus he should lead his ascetic life controlling his senses.

पंचम संवरद्वार का उपसंहार CONCLUSION OF FIFTH GATEWAY OF SAMVAR

१७०. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहि पंचहिं पि कारणेहिं मणवयकायपरिरक्खिएहिं। णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया, अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुण्णाओ।

एवं पंचमं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवइ'। एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं। त्ति बेमि।

॥ पंचम संवरदारं समत्तं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७०. इस (पूर्वोक्त) प्रकार परिग्रह विरमण रूप पाँचवाँ संवरद्वार सम्यक् प्रकार से मन, वचन और काय से परिरक्षित पाँच भावनाओं से संवृत्त किया जाये तो सुरक्षित होता है। धृतिमान और बुद्धिमान सुसाधु को यह योग जीवनपर्यन्त निरन्तर पालनीय है। यह आस्रव रहित, निर्दोष, मिथ्यात्व आदि छिद्रों से रहित होने के कारण अपरिस्रावी, संक्लेशहीन, शुद्ध और समस्त तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात है। इस प्रकार यह पाँचवाँ संवरद्वार उचित समय पर काया से स्पर्श किया हुआ–अमल में लाया हुआ, पालन किया हुआ, अतिचाररहित शुद्ध किया हुआ, अन्त तक पार लगाया हुआ, वचन द्वारा कीर्तित किया हुआ, अनुपालित तथा तीर्थंकरों की आज्ञा के अनुसार आधारित होता है।

ज्ञात कुल में उत्पन्न श्रमण शिरोमणि भगवान ने ऐसा निरूपित किया है। युक्तिपूर्वक समझाया है। यह लोक में प्रसिद्ध, समस्त नय और प्रमाणों से सिद्ध और भवस्थ सिद्धों–अरिहन्तों की आज्ञा रूप बतलाया गया है, भलीभांति उपदिष्ट प्रशस्त।

यह पांचवा संवरद्वार पूर्ण हुआ। ऐसा मैं (श्री सुधर्मा स्वामी) कहता हूँ।

170. In case the vow of non-attachment for possessions–the fifth gateway of Samvar is fully guarded mentally, vocally and physically and is practiced in the form of five sentiments as above-mentioned, then it remains well protected. A monk who is perseverant and has sense of discrimination should practice it continuously throughout his life. It stops inflow of Karmas. It is spotless. It is free from gaps of ignorance. So it is devoid of asravas and troubles. It is pure and it is propounded by all the Tirthankars. Thus this fifth gateway of Samvar is experienced and practiced faultlessly in the conduct upto its completion. It is appreciated in words. It is practiced according to the code in the scriptures.

It is popounded and logically explained by the omniscient lord who had experienced it. It is famous and well established. It is said to be the excellent order of Arihants. It has been taught in a discreet manner.

Thus this noble gateway of Samvar has been concluded. So I (Sudharma) Say.

विवेचन : पूर्वोक्त सूत्रों में अपरिग्रह महाव्रत का सम्यक रूप से पालन करने के लिये अपरिग्रही साधक की आवश्यकतानुसार पाँचों इन्द्रियों के विविध विषयों को ग्रहण करते समय क्या दृष्टि होनी चाहिये, क्या भावना

[1] वाचनान्तर में उपलब्ध पाठ इस प्रकार है–"एयाणि पंचावि सुव्वय–महव्वयाणि लोगधिइकरणाणि, सुयसागर–देसियाणि संजमसीलव्वयसच्चज्जवमयाणि णरयतिरियदेवमणुयगइविवज्जयाणि सव्वजिणसासणाणि कम्मरय–वियारयाणि भवसयविमोयगाणि दुक्खसयविणासगाणि सुक्खसयपवत्तयाणि कापुरिससुदुरुत्तराणि सप्पुरिसजण–तीरियाणि णिव्वाणगमणजाणाणि कहियाणि सग्गपवायगाणि पंचावि महव्वयाणि कहियाणि।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होनी चाहिये, कैसी साधना होनी चाहिये इसका विस्तारपूर्वक वर्णन अपरिग्रहव्रत को पांचों भावनाओं में किया है। वे भावनाएँ इस प्रकार हैं-(१) श्रोत्रेन्द्रियसंवर, (२) चक्षुरिन्द्रियसंवर, (३) घ्राणेन्द्रियसंवर, (४) रसनेन्द्रियसंवर, और (५) स्पर्शनेन्द्रियसंवर।

शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श, ये इन्द्रियों के विषय हैं। प्रत्येक विषय अनुभूति की दृष्टि से दो प्रकार का है-मनोज्ञ और अमनोज्ञ।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने विषय को ग्रहण करती है तब वह विषय सामान्यरूप ही होता है। किन्तु उस ग्रहण के साथ ही आत्मा में विद्यमान संज्ञा उसमें प्रियता या अप्रियता का रंग घोल देती है। जो विषय प्रिय प्रतीत होता है वह मनोज्ञ कहलाता है और जो अनुभूत होता है वह अमनोज्ञ प्रतीत होता है।

(१) **श्रोत्रेन्द्रियसंवर भावना**-परिग्रह का अन्तरंग और बहिरंगरूप से परमत्यागी साधु जब अपनी कोई भी प्रवृत्ति करता है तो उसके कानों में कई प्रकार के शब्द आकर टकराते हैं। उनमें से कई कर्णप्रिय होते हैं, कई कर्णकटु भी। ये सारे ही शब्द राग और द्वेष के कारण हैं, जो साधक के जीवन को अन्तरंग परिग्रह के गर्त में डाल देते हैं। इसीलिए शास्त्रकार ने कुछ विशेष मनोज्ञ शब्दों के नाम गिनाकर अन्त में उन्हीं प्रकार के शब्दों के कर्णगोचर होने पर उनके प्रति राग, आसक्ति, गृद्धि, लोभ, मोह, न्योछावर, तुष्टि स्मरण और मनन से इस श्रोत्रेन्द्रियसंवर भावना के प्रकाश में शीघ्र बचने का निर्देश किया है। इसी प्रकार अमनोज्ञ शब्द, कर्कश, कर्णकटु, कठोर, असह्य और मर्मच्छेदी लगते हैं यदि साधक उन्हें सुनकर कोई द्वेषात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तो वह द्वेष साधक के जीवन को अन्तरंग परिग्रह की खाई में धकेल देता है। इसीलिए शास्त्रकार ने कुछ खास-खास अमनोज्ञ शब्दों के नाम गिनाकर अन्त में उन्हीं की तरह के कर्णकटु शब्दों के कर्णगोचर होने पर उनके प्रति रोष, अवज्ञा, निन्दा, खीज या चिढ़, छेदन, भेदन, ताड़न-तर्जन, वध, द्वेष, घृणा आदि से बचने का निर्देश किया है।

निष्कर्ष यह है कि साधु को अपने मन को इस भावना की ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, ताकि कर्णप्रिय मनोज्ञ शब्द कान में पड़ते ही वह उनपर मोहित न हो जाये और कर्णकटु अमनोज्ञ शब्द कान में पड़ते ही वह रुष्ट न हो। तभी अपरिग्रही साधु समभाव में स्थिर होकर जितेन्द्रिय और संयतेन्द्रिय बनेगा।

(२) **चक्षुरिन्द्रियसंवर भावना**-अपरिग्रहव्रती साधु जब अपनी दैनिक दिनचर्या में प्रवृत्त होता है तो कई रूप आँखों के सामने आते हैं, उनमें कुछ सचेतन प्राणी के भी होते हैं, कुछ अचेतन पदार्थों के भी। जैसे मनोज्ञ रुचिकर तथा मनोमोहक पदार्थ सामने आए तो उस समय यदि साधु उस सुन्दररूप या चेहरे आदि को देखकर मन में रागभाव या मोह लाता है तो साधक अन्तरंग परिग्रह के जाल में फंस जाता है। इसीलिए शास्त्रकार ने कुछ खास-खास मनोज्ञ रूपों के नाम गिनाकर अन्त में उसी प्रकार के अन्यान्य रूपों के दृष्टिगोचर होने पर उन पर आसक्ति, अनुराग, गृद्धि, लोभ, मोह, न्योच्छावर, तुष्टि, स्मरण और मनन से शीघ्र बचने का चक्षुरिन्द्रियसंवर भावना के प्रकाश में निर्देश किया है। इसी प्रकार इनके ठीक विपरीत अमनोज्ञ रूपों को देखकर यदि साधक एकदम रुष्ट हो जाता है तो यहीं साधक अन्तरंग परिग्रह की चपेट में आकर द्वेषरूपी शत्रु से दब जाता है। इसीलिए शास्त्रकार ने कुछ खास-खास अमनोज्ञ रूपों के नाम गिनाकर अन्त में उसी प्रकार के अन्यान्य अमनोज्ञ रूपों के दृष्टिगोचर होने पर अपनी मनोवृत्ति पर नियंत्रण रखने का निर्देश दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) **घ्राणेन्द्रियसंवर भावना**–अपरिग्रही साधक जब अपने नित्यकृत्य में प्रवृत्त होता है तो कई मनोज्ञ भोज्य पदार्थों या कई अन्य सुगंधपूर्ण पदार्थों की सुगन्ध उसके नाक से आकर टकराती है, उस समय उन भीनी–भीनी मधुर मनोमोहक सुगन्धों को पाकर यदि वह असावधान होकर उन पर रागभाव लाता है तो यहीं साधक अन्तरंग परिग्रह के जाल में फंस जाता है। इसीलिए शास्त्रकार ने कुछ विशेष मनोज्ञ गंधों के नाम गिनाकर अन्त में उन्हीं की किस्म के विभिन्न सुगन्धों के घ्राणगोचर होने पर अपने मन को नियन्त्रण में रखने का निर्देश दिया है। वैसे ही साधक जब इन सुगन्धों से ठीक विपरीत मन को बुरे लगने वाले अमनोज्ञ दुर्गन्धों का नाक से स्पर्श होने पर क्रोध से तिलमिला उठता है, भर्त्सना करता है या घृणा करता है तो वह अन्तरंग परिग्रह की चपेट में आकर द्वेषरूपी दुश्मन से दब जाता है। शास्त्रकार ने कुछ अमनोज्ञ गन्धों के नाम बताकर अन्त में यह निर्देश दिया है कि इनके सम्पर्क में आने पर भी साधक को समभाव में स्थिर रहना चाहिये।

(४) **रसनेन्द्रियसंवर भावना**–परिग्रह से सर्वथा मुक्त होने वाला साधक जब भिक्षाचर्या में प्रवृत्त होता है तो उसकी जीभ के सामने कई स्वादिष्ट मनोज्ञ रसीली चीजें या रस आते हैं अथवा उसे भिक्षा में भी कई मनोज्ञ चीजें प्राप्त होती हैं, वह उनका आस्वादन करने में प्रवृत्त होता है; यदि उस समय वह मनोज्ञ स्वादिष्ट रसयुक्त पदार्थों को देखकर मन में आसक्ति लाता है, तो वह विविध मनोज्ञ रसों के मोहक जाल में फँसकर अपनी आत्मा को पतन के गहरे गड्ढे में गिरा देता है। इसीलिए शास्त्रकार ने कुछ विशेष मनोज्ञ रसों या रसयुक्त पदार्थों के नाम गिनाकर अन्त में उन्हीं की किस्म के विभिन्न रसों या पदार्थों के रसनेन्द्रियगोचर होने पर अपनी रसनेन्द्रिय पर नियंत्रण रखने का संकेत दिया है।

और जो अमनोज्ञ अशुभ रस हैं, उनका जीभ से स्पर्श होने पर यदि साधक रोष से तिलमिला उठता है, वह साधक अन्तरंग परिग्रह की चपेट में आकर द्वेष भाव से पराजित हो जाता है। इसीलिए शास्त्रकार साधक को सूचित करते हैं कि वह अमनोज्ञ रसों या रसयुक्त पदार्थों से जिह्वेन्द्रिय का स्पर्श होने पर क्रोध से तमतमाए नहीं, अपना मन अनियंत्रित न कर बैठें। यानी शास्त्रकार अशुभ पदार्थों के प्रति रोष करने, द्वेष करने, चिढ़ने या घृणा करने, ठुकराने या छेदन–भेदन करने आदि से आत्मा को बचाने का निर्देश करते हैं।

अपरिग्रही साधक जिह्वेन्द्रिय के साथ नीरस, रुक्ष, अमनोज्ञ पदार्थों का सम्पर्क होने पर यही सोचे कि ये सब वस्तुएँ या रस नाशवान हैं, स्वादिष्ट पदार्थ भी पेट में जाकर तो विकृत बन ही जाते हैं। फिर इन विकृत पदार्थों से मुझे क्यों घबराना चाहिए?

(५) **स्पर्शनेन्द्रियसंवर भावना**–अपनी दिनचर्या में प्रवृत्त होते समय प्रतिदिन साधक की त्वचा से ठंडे, गर्म, हलके, भारी, खुर्दरे, कोमल, रुक्ष और स्निग्ध अनेक पदार्थों का स्पर्श होता है। उन रुचिकर मनोज्ञ पदार्थों का स्पर्श पाकर यदि साधु आसक्ति करता है, मोह करता है तो वह उन विविध अनुकूल स्पर्शों के मोहक जाल में फंसकर अपने आपको पतन की खाई में धकेल देता है। इसीलिए शास्त्रकार कुछ विशेष स्पर्शों का उल्लेख करके अन्त में उन्हीं के जैसे विभिन्न मनोमोहक स्पर्शों या स्पर्शयोग्य पदार्थों के स्पर्शनेन्द्रियगोचर होने पर आत्म नियंत्रण व सुसयंमित रहने की बात कहते हैं।

अशुभ अमनोज्ञ स्पर्शों के शरीर से स्पर्श होने पर जो साधक रोष से भर उठता है तो समझना चाहिये कि उसके निर्बल मन पर द्वेषरूपी शत्रु ने घेरा डाल दिया है। इसीलिए शास्त्रकार साधक को समझाते हैं कि अमनोज्ञ स्पर्शों या स्पर्शयुक्त पदार्थों का संयोग मिलने पर क्रोधित न हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार पाँचों इन्द्रियों के संवर से सम्पन्न और मन, वचन, काय से गुप्त होकर ही साधु को धर्म का आचरण करना चाहिए। उत्तराध्ययनसूत्र के 32वें अध्ययन में इस विषय में बहुत ही सुन्दरतापूर्वक कहा गया एक ही गाथा में इसका निचोड़-

जे सद्द-रूव-रस-गंधमागए, फासे य संपप्प मणुण्ण-पावए।

गेही पओसं न करेज्ज पंडिए, स होति दंते विरए अकिंचणे॥

अर्थात्-मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श के प्राप्त होने पर जो पण्डित पुरुष राग और द्वेष नहीं करता, वही इन्द्रियों का दमनकर्त्ता, विरत और अपरिग्रही कहलाता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि राग और द्वेष आभ्यन्तर परिग्रह हैं-एकान्तरूप से मुख्य परिग्रह हैं। अतएव इन्हीं को लक्ष्य में रखकर अपरिग्रह व्रत की भावनाएँ प्रतिपादित की गई हैं।

॥ पंचम संवरद्वार समाप्त ॥

Elaboration—For the proper observation of the great vow of Aparigraha (non-possession or non-covetousness) and in order to guide the aspirant to practice and acquire the right attitude at the time of experiencing the subjects of five sense organs, five sentiments of the gate of Samwar have been discussed in detail in the preceding aphorisms. They are - (1) Samwar of the sense organ of hearing, (2) Samwar of the sense organ of seeing, (3) Samwar of the sense organ of smell, (4) Samwar of the sense organ of taste, and (5) Samwar of the sense organ of touch.

Sound, appearance, smell, taste and touch are the subjects of these sense organs. Based on experience each one of these subjects is of two kinds - (1) pleasant and (2) unpleasant. Each sense organ deals with its respective subject. At that time the experience is a general one. But simultaneously it creates a feeling of pleasure or otherwise in the soul. That subject which is to the liking is called pleasant and that which is not to the liking is called unpleasant.

(1) **Attitude of Shrotrendriya Samvar**—When a monk, who has completely abandoned inner and outer covetousness (Parigraha), indulges in any activity, a variety of sounds strike his ears. Many of these are pleasant to the ears and many unpleasant. All these sounds are sources of attachment and aversion that push the life of the monk into the void of internal covetousness. That is the reason the author has, in light of this attitude of Shrotrendriya Samvar (blocking of the inflow of karmas through indulgence of the sense organ of hearing), listed some

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

selected pleasant sounds and advised to quickly avoid feelings of attachment, infatuation, obsession, greed, fondness, captivation, and contentment, as well as the desire of recalling and pondering on hearing them. In the same way repulsive sounds appear abrasive, bitter, harsh, intolerable and heart-rending. On hearing them if an aspirant expresses aversion it pushes his life into the abyss of inner covetousness. That is the reason the author has listed some selected unpleasant sounds and advised to quickly avoid feelings of anger, rejection, slandering, irritation, piercing, breaking, reprimanding, killing, aversion, hatred etc. on hearing them.

The sum and substance of this is that a monk should train his mind in the said attitude so as not to be beguiled the moment sweet and pleasant sound enters his ears and not to loose his temper on hearing harsh and repulsive sounds; only than a non-covetous monk can settle himself in equanimity and become discipliner and conqueror of senses.

(2) **Attitude of Chakshurindriya Samvar**—When a monk, who has completely abandoned covetousness (Parigraha), indulges in routine activity, a variety of forms appear before his eyes. Many of these are living things and many non-living. When an interesting and attractive thing appears and looking at that beautiful form or face, if feelings of attachment and fondness are invoked in the mind of the monk he gets trapped in the web of inner Parigraha. That is the reason the author has, in light of this attitude of Chakshurindriya Samvar (blocking of the inflow of karmas through indulgence of the sense organ of seeing), listed some selected pleasant forms and advised to quickly avoid feelings of attachment, infatuation, obsession, greed, fondness, captivation, and contentment, as well as the desire of recalling and pondering on seeing them. In the same way when repulsive forms appear, if he instantly gets angry on seeing them it pushes him into the grip of inner covetousness and he is overpowered by aversion. That is the reason the author has, listed some selected unpleasant forms and advised to quickly control his feelings on seeing them.

(3) **Attitude of Ghranendriya Samvar**—When a monk, who has completely abandoned covetousness (Parigraha), indulges in routine activity, a variety of smells enter his nose. Many of these are from a variety of tasty foodstuff and many from other fragrant materials. When

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

he smells a mild, sweet and enticing fragrance, if feelings of attachment rise and he gets carelessly attached to it he gets trapped in the web of inner Parigraha. That is the reason the author has, in light of this attitude of Ghranendriya Samvar (blocking of the inflow of karmas through indulgence of the sense organ of smell), listed some selected pleasant forms and advised to quickly control his feelings. In the same way when repulsive smells appear, if he instantly gets angry on smelling them it pushes him into the grip of inner covetousness and he is overpowered by aversion. That is the reason the author has, listed some selected unpleasant odours and advised the aspirant to remain steadfast into equanimity on smelling them.

(4) **Attitude of Rasanendriya Samvar**—When a monk, who has completely abandoned covetousness (Parigraha), indulges in routine alms-collection activity, he comes across a variety of tasty, attractive and gourmet things. He also gets many such things as alms. When he tastes such likeable things, if he gets carelessly attached to them he gets trapped in the web of inner Parigraha and allows his soul to fall into the deep gorge of disgrace. That is the reason the author has, in light of this attitude of Rasanendriya Samvar (blocking of the inflow of karmas through indulgence of the sense organ of taste), listed some selected pleasant forms and advised to quickly apply control over his taste buds.

In the same way when coming across repulsive tastes if he instantly gets angry, this pushes him into the grip of inner covetousness and he is overpowered by aversion. That is the reason the author has, listed some selected unpleasant tastes and advised the aspirant to control himself and avoid getting angry. In other words the author has advised to avoid feelings of anger, rejection, slandering, irritation, piercing, breaking, reprimanding, killing, aversion, hatred etc. when coming across repulsive things.

When he tastes drab, dry and repulsive eatables, the non-covetous aspirant should think that all these things and tastes are destructible or temporary; even the tasty food gets distorted when eaten, why then should he get disturbed in the first place.

(5) **Attitude of Sparshanendriya Samvar**—When a monk, who has completely abandoned covetousness (Parigraha), indulges in routine

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

activity, he experiences touch of a variety of things experiencing hot, cold, light, heavy, rough, soft, dry and smooth touch. When he touches such likeable things, if he gets carelessly attached to them he gets trapped in the web of inner Parigraha and allows his soul to fall into the deep gorge of disgrace. That is the reason the author has, in light of this attitude of Sparshanendriya Samvar (blocking of the inflow of karmas through indulgence of the sense organ of touch), listed some selected pleasant touches and advised to remain restrained and steadfast into equanimity on touching them.

In the same way when coming across repulsive touch if he instantly gets angry, this pushes him into the grip of inner covetousness and he is overpowered by aversion. That is the reason the author has, listed some selected unpleasant touches and advised the aspirant to control himself and avoid getting angry.

This way a monk should follow the ascetic conduct by perfecting Samvar of all five senses and three kinds of restraint—that of mind, speech and body. This has been summed up lucidly in the 32nd chapter of Uttaradhyayan Sutra as—The wise who avoids attachment and aversion when experiencing attractive and repulsive sound, form, taste, smell and touch, he alone is called the pacifier of senses, detached and non-covetous.

Here an important fact should be kept in mind; attachment and aversion are inner Parigraha and thus the basic covetousness. That is the reason all these aforesaid attitudes have been defined on that basis.

● END OF THE FIFTH CHAPTER ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पूर्ण संवरद्वार का उपसंहार
CONCLUSION OF COMPLETE GATEWAY OF SAMVAR

अब शास्त्रकार शास्त्र की समाप्ति पर इस शास्त्र का निम्नोक्त परिचयात्मक सूत्र पाठ द्वारा उपसंहार करते हैं।

१७१. एयाइं वयाइं पंच वि सुव्वय-महव्वयाइं हेउसय-विवित्त-पुक्कलाइं कहियाइं अरिहंत-सासणे पंच समासेण संवरा, वित्थरेण उ पणवीसतिं। समियसहिय-संवुडे सया जयण-घडण-सुविसुद्धदंसणे एए अणुचरिय संचए चरमसरीरधरे भविस्सइ।

पण्हावागरणे णं एगो सुयक्खंधो, दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति एगंतरेसु आयंबिलेसु णिरुद्धेसु आउत्त-भत्तपाणएणं। अंगं जहा आयारस्स।

॥ इइ पण्हवागरणं सुत्तं समत्तं ॥

१७१. हे सुव्रत ! ये पाँचों संवर द्वार (महाव्रत) सैकड़ों निर्दोष-शुद्ध हेतुओं के कारण विस्तीर्ण होते हुये भी अरिहंत भगवान के शासन में संक्षेप में पाँच ही बताये हैं, विस्तार से (प्रत्येक की पाँच-पाँच भावनाएँ होने से) इनके पच्चीस प्रकार होते हैं। जो साधु ईर्यासमिति आदि (पूर्वोक्त पच्चीस भावनाओं) सहित होता है अथवा ज्ञान और दर्शन से सहित होता है तथा कषायसंवर और इन्द्रियसंवर से संवृत होता है, जो प्राप्त संयमयोग का यत्नपूर्वक पालन करता है और अप्राप्त संयमयोग की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करता है, सर्वथा विशुद्ध श्रद्धानवान् होता है, वह इन संवरों की आराधना करके भविष्य में चरम शरीरी होता है।

इस प्रश्नव्याकरण सूत्र में एक श्रुतस्कन्ध है, एक एक जैसे दस अध्ययन हैं। उपयोगपूर्वक आहार-पानी ग्रहण करने वाले साधु द्वारा, जैसे आचारांग का वाचन किया जाता है, उसी प्रकार एकान्तर आयंबिल युक्त तपस्यापूर्वक दस दिनों में इन (दस अध्ययनों) का वाचन किया जाता है।

॥ प्रश्नव्याकरणसूत्र समाप्त ॥

171. O practitioner of vow ! The five major vows in the form of Samvar have been described in detail with hundreds of reasons. These five have been mentioned in brief in the order of Tirthankars. There are five sentiments of each vow. Thus there are twenty five sentiments in all. A monk practices twenty five sentiments such as care in movement (Iriya Samiti) and others or he has right scriptural knowledge and right perception. He has control (Samvar) of passions and of senses. He practices carefully his life of ascetic restraint. He makes serious efforts to practice these ascetic principles which he did not do so far. He has full

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

unblemished faith in them; by practicing these Samvars, he can attain the state of Siddha.

There is one Shrutaskandh in Prashna Vyakaran Sutra. It has ten Chapters. Acharanga is studied by the monk who takes water and food with proper care. Similarly these ten Chapters of Prashan Vyakaran Sutra are studied in ten days, by observing of austerities of Ayambil on alternate days.

● END OF PRASHAN VYAKARAN SUTRA ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट | Appendix

विशिष्ट शब्दों एवं नामों का कोश
Glossary of Technical Words

प्राकृत	हिन्दी	English	पृष्ठ सं.
अकारको	अकर्त्ता-क्रिया न करने वाला	non-doer	९३
अकिच्चं	अकृत्य-हिंसा का एक नाम	unworthy act; a name for violence	८
अकिरिया	अक्रिया	inaction	८१
अंकुस	अंकुश	short lance	२०८
अगम्मगामी	बहन-बेटी आदि के साथ गमन करने वाला	incester	१०२
अगर	सुगन्धित द्रव्यविशेष	a fragrant herb	२५७
अगार	घर	house	२८
अगुत्ती	अगुप्ति-परिग्रह का २३वाँ नाम	non-restraint; 23rd Name of parigraha	२२४
अचक्खुसे	अचाक्षुष-आँख से नहीं दिखने वाला	invisible to eyes	२४
अच्छभल्ल	रीछ-भालू	a bear	१६
अच्छरा	अप्सरा-देवांगना	fairy (a goddess)	१८३
अज्झप्पज्झाण	अध्यात्मध्यान	spritual meditation	३३८
अंजणकसेल	अंजनक पर्वत	anjanak mountain	२२९
अट्टालग	अट्टालिका-अटारी	tall building	२६
अट्टं	आर्त्त	distressed	३६५
अट्ठकम्म	ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्म	eight types of karmas	४०८
अट्ठमयमहणे	आठ मदों का मंथन करने वाला	churner of eight intoxications	४०८
अट्ठावय	अष्टापद-पशुविशेष	octopus	२०७
अट्ठि	अस्थि-हड्डी	bone	२२
अडवी	जंगल	forest	५९
अंडग	अंडा	egg	९०
अणकर	हिंसा का एक नाम	karma-debtor; a name for violence	८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणक्क (क्ख)	देशविशेष	name of a state	३३
अणज्ज	अनार्य	ignoble	७७
अणत्थको	अनर्थकारी-परिग्रह का एक नाम	damaging; a name of parigraha	२२८
अणत्थो	अनर्थकारी-परिग्रह का एक नाम	damaging; a name of parigraha	२२८
अणवदग्गं	अनन्त	infinite	२१९
अण्हय	आस्रव	inflow	१
अणासवो	अनास्रव-अहिंसा का एक नाम	non-inflow; a name of ahimsa	२५३
अणाह	अनाथ	an orphan	२४
अणिल	वायु	air	२४
अणिहुय	अस्थिर	unstable	१७
अत्ताणे	अत्राण-त्राण से रहित	insecure	२४
अत्थसत्थ	अर्थशास्त्र, राजनीति	economics, politics	२३९
अत्थालियं	अर्थालीक-धनसम्बन्धी असत्य	to lie about money	१०४
अंत	आंत	intestine	२२
अंध	आन्ध्र-आन्ध्र प्रदेश	andhra state	३३
अद्धचंद	अर्धचन्द्र के आकार की खिड़की या सोपान	half-moon shaped window	२८
अप्पसुह	अल्पसुख-सुख से शून्य	little joy; devoid of joy	२३९
अबितिज्जओ	अद्वितीय-असहाय	helpless	३१२
अभिज्जा	आसक्ति	infatuation	२३९
अयगर	अजगर	serpant	१७
अरविंद	कमल	lotus	३५२
अरास	मानवजातिविशेष	a tribe	३३
अलिय	अलीक-मिथ्या	a lie	७७
अवकोडकबंधन	पीठ पीछे हाथ बाँधना	to tie hands at one's back	४६
अवज्ज	अवद्य-पाप	sin	३६५
अवधिका	उधेई-दीमक	termite	६५
अविभाव	अज्ञात बन्धु	unknown friend	४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवीसंभो	अविश्रम्भ–हिंसा का एक नाम	a name for violence	८
अस्समड	मृत घोड़े का कलेवर	cadaver of a horse	४२३
असि	तलवार	sword	३७
असिवण	तलवार की धार के समान पत्तों वाले वृक्षों का वन	a forest with sharp edged leaves	५१
असंजओ	संयमरहित–हिंसा का एक नाम	unrestrained; a name for violence	८
असंजमे	असंयम	non-restrain	३७७
असंतोस	असन्तोष–परिग्रह का एक नाम	discontent; a name of parigraha	२२८
अहरगइ	अधोगति, कुगति	bad rebirth	१०४
अहिमड	अहिमृत–साँप का कलेवर	corpse of a snake	४२३
अहिसंधि	अभिप्राय	intention	१०७
आगमेसिभद्दं	आगामी काल में कल्याणकारी	beneficial in future	४१५
आगर	खान	a mine	१४५
आडा	आडपक्षी	a bird	१९
आतोज्ज	बाजे	musical instruments	२८
आदियणा	चोरी	theft	१२७
आभासिय	आभाषिक देश	name of a state	३३
आभिओग	वशीकरण आदि प्रयोग	hypnotizing etc.	११०
आमेलग	कलंगी	plume on a head gear	२०८
आमोसहि	एक प्रकार की लब्धि	a type of special power	२६४
आयरो	वस्तुओं में आदर बुद्धि रखना, परिग्रह का २१वाँ नाम	respect for things; 21st name for parigraha	२२८
आयतण	स्थानविशेष	specific place	२६
आयतणं	आयतन–अहिंसा का ४७वाँ नाम	47th name of ahimsa	२५३
आयासो	खेद का कारण, परिग्रह का २४वाँ नाम	cause of greif; 24th name for parigraha	२२८
आयाणभंडनिक्खे-वणासमित	आदान–भांड–मात्र–निक्षेपणा समिति वाला	one who observes care in disposal of things	४०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउयकम्मस्सुवद्दवो	आयु:कर्मण उपद्रव-हिंसा का १२वाँ नाम	disturbance related to ayush karma;12th name of voilence	८
आरब	अरब देश	arab country	३३
आराम	बगीचा	a garden	२६
आरिय	आर्य	aryan; noble	१६३
आपण	दुकान	a shop	२६
आवसह	परिव्राजकों का आश्रम	hermitage of parivrajaks	२६
आविंधण	मंत्रप्रयोग	use of mantras	११०
आसम	आश्रम	a hermitage	१४५
आसत्ती	आसक्ति, परिग्रह का एक नाम	infatuation; a name for parigraha	२२४
आसालिया	जीवविशेष	a specie of snakes	१८
आहाकम्म	साधु के निमित्त निर्मित	prepared for monks	३३५
आहेवण	मंत्रविशेष	specific mantra	११०
इक्कडं	इकड जाति का घास	a kind of grass	३३७
इक्खुगार	इषुकार पर्वत	ishukar hill	२२९
इब्भ	बड़ा श्रेष्ठी	a merchant	२२९
इंगाल	अंगार-आहार का एक दोष	a fault of food	४०३
इंदकेउ	इन्द्रकेतु-इन्द्र महोत्सव में गाढ़ा जाने वाला स्तम्भ	indraketu	१८८
ईरियासमित	ईर्यासमिति-गमन सम्बन्धी सावधानी से युक्त	one who observes care in movement	४०८
उक्कोस	एक जाति का पक्षी	a bird	१९
उक्खल	ऊखल	a mortar	२८
उज्जुमई	ऋजुमति नामक मन:पर्यवज्ञानी	a manah-paryavjnani with limited range	२६४
उञ्छ	भिक्षा	alms	२८६
उट्ट	ऊँट	camel	२२४
उडूवई	चन्द्रमा	the moon	३५२
उप्पाय	उत्पात पर्वत	utpat mountain	२३२
उद्	उद्देश	purpose	३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उयरि	जलोदर वाला	suffering from dropsy	४२१
उद्दवणा	उपद्रवण-हिंसा का ९वाँ नाम	disturbance; 9th name of violence	८
उब्भिय	भूमि को फोड़कर उत्पन्न होने वाला जीव	born by bursting out of earth	२१९
उम्मी	ऊर्मि-लहर	a wave	१४१
उम्मूलणा	उन्मूलना-हिंसा का दूसरा नाम	uprooting; 2nd name of violence	८
उरग	पेट के बल से चलने वाला सर्पविशेष	a type of snake	१८
उरब्भ	मेढा	a ram	१७
उवहिया	ठगाई करने वाला ठग	swindler	५३
उवकरण	परिग्रह का एक नाम	equipment; a name for parigraha	२२८
उवचयो	उपचय, परिग्रह का चतुर्थ नाम	collection; 4th name for parigraha	२२८
उवाणहा	जूता	shoe	३९६
उस्सओ	उच्छ्य-भाव की उन्नति, अहिंसा का ४५वाँ नाम	uplift of feelings; 45th name for ahimsa	२५३
उसीर	उशीर-सुगन्धित द्रव्य	a fragrant material	४२३
एगचक्खु	काणा	one-eyed	७०
एगेंदिए	एक इन्द्रिय वाला जीव	one-sensed being	६६
एणीयारा	मृग पकड़ने के लिए हिरणी लेकर फिरने वाले	deer trappers who use dow	३२
एरावण	ऐरावत-इन्द्र का हाथी	airavat, the elephant of indra	३५३
एलारस	इलायची का रस	cardamom extract	४२३
ओदण	चावल-भात	cooked rice	३९८
ओवा	अवपात-पर्वतविशेष	avapat mountain	२३२
ओसह	औषध	medicine	२४५
कक्क	कपट	deception	८०
कक्कणा	असत्य का एक नाम	a name for falsity	७७
कच्छभ	कछुआ	a tortoise	१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कच्छभि	वाद्य–बाजाविशेष	a musical instrument	४१७
कच्छुल्ल	खुजली के रोग वाला	suffering with eczema	४२१
कडगमद्दणं	कटकमर्दन–हिंसा का १५वाँ नाम	15th name of violence	८
कडुय	कडुआ	bitter	८
कठिणग	कठिण–तृणविशेष	a kind of glass	३३७
कणग	सोना	gold	३२२
कणगनियल	सोने का बना गहनाविशेष	a golden ornament	४१७
कणवीर	कनेर	oleander tree	१५६
कण्ण	कान	ear	२२
कन्दु	लोही–भूँजने का एक पात्र	a roasting pot	४६
कन्नालियं	कन्या सम्बन्धी झूठ	lie about daughter	१४९
कप्पिणि	कैंची	scissors	५२
कप्पड	कोड़ा	a whip	१४९
कपिंजलक	कपिंजल पक्षी	a bird	१९
कब्बड	खराब नगर	a bad city	२२४
कमंडलु	कुण्डी, कमण्डलु	gourd-bowl	२११
कम्मंत	कारखाना, जहाँ चूना आदि तैयार किया जाता है	lime factory	३३५
कम्मकर	सेवक	servant	१११
कयली	केला	banana	२१०
करक	करक पक्षी	a bird	१९
करभ	ऊँट	camel	१७
करवत्त	करवत	small saw	३७
करिसण	कृषि	farming	२६
कलस	कलश, घट	urn; pitcher	२११
कलाओ	कलाएँ	arts	२३९
कलाया	कलाद–सुनार	gold-smith	८०
कल्लाण	कल्याणकारी–अहिंसा का २९वाँ नाम	beatific; 29th name of ahimsa	२५३
कलिकरंडो	कलह की पेटी, परिग्रह का १९वाँ नाम	box of quarell; 19th name of parigraha	२२८
कवड	कपट	deception	७७
कविल	कपिल पक्षी	a bird	१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवोतग	कबूतर	pigeon	१९
कवोला	कपोल, गाल	cheeks	२११
कस	चमड़े का चाबुक	a leather whip	५९
कहग	कथा करने वाला	story teller	४२०
काउदर	काकोदर–एक प्रकार का साँप	a type of snake	१८
काणा	काणे	one-eyed	७१
कादम्बक	हंस विशेष	a swan	१९
कापुरिस	कायर मनुष्य	a coward	२५०
कायगुत्ते	कायगुप्त	one observing body-restraint	४०८
कारंडग	कारंडक पक्षी	a bird	१९
कारुइज्जा	छीपें–शिलूरी	strips	८०
कालोदहि	कालोदधि समुद्र	kalodadhi sea	२३३
काहावण	कार्षापण–एक प्रकार का सिक्का	a type of coin	८०
कित्ती	कीर्ति–अहिंसा का ५वाँ नाम	glory; 5th name of ahimsa	२५३
किन्नर	किन्नर देव, वाद्यविशेष	kinnar gods; a musical instrument	१८३
किन्नरी	महिलाविशेष का नाम	a class of women	२१९
किमिय	कृमि–कीड़े	worms	६६
किरिया	प्रशस्त या अप्रशस्त कार्य	noble or ignoble deeds	८१
किरियाठाण	क्रियास्थान	place of action	३७७
कीड	कीड़ा	a worm	२८४
कीर	तोता	a parrot	१९
कुक्कुड	मुर्गा	a cock	१९
कुकूलाऽनल	कोयले की आग	coal fire	३७
कुच्च	कूची बनाने योग्य घास	grass suitable for brush	३३७
कुडिल	कुटिल–टेढ़ा	cunning; bent	८०
कुड्ड	कुड्य–दीवाल	a wall	३७
कुणि	कर से हीन	devoid of arms	४२१
कुद्दाल	कुदाल	a spade	७०
कुद्धो	क्रोधी	angry	३०९
कुम्म	कछुवा	tortoise	१८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुम्मास	उड़द	a pulse	३९८
कुरंग	हिरण	deer	१७
कुलकोडी	कुलकोटि	species	६३
कुलल	कुलल पक्षी	a bird	१९
कुलक्ख	कुलक्ष–पक्षी की एक जाति, एक देश	a bird; a country	३३
कुलिंगी	कुतीर्थी	a heretic	८०
कुलिय	विशेष प्रकार का हल–बखर	a type of plough	२८
कुलीकोस	कुटीक्रोश पक्षी	a bird	१९
कुवियसाला	तृण आदि रखने का घर	a barn	३३५
कुस	कुश–तृणविशेष	a type of grass	१८७
कुसंघयण	कमजोर अस्थिबंध वाला	with weak joints	७१
कुसंठिया	खराब आकार वाले	with bad shape	७१
कुहण	कुहण देश	kuhan country	३३
कुहंड	कूष्माण्ड–देवविशेष	a type of gods	१४१
कूडतुल	झूठा तोलने वाले	who weighs wrong	८०
कूडमाणी	झूठा माप करने वाले	who measures wrong	८०
कूरकम्मा	क्रूर कर्म करने वाले	indulging in cruelty	३२
कूरिकडं	चोर का एक नाम	a name for theif	१२६
कूव	कूआ	a well	२६
केकय	केकय देश	kaikaya country	३३
केवलीणठाणं	केवलियों का स्थान–अहिंसा का ३६वाँ नाम	place of omniscients; 36th name for ahimsa	२५३
केसरिमुहविप्फाडगा	सिंह का मुँह फाड़ने वाले	one who tears a lion's mouth	१९३
कोइल	कोकिल	a cuckoo	२११
कोकंतिय	लोमड़ी	a fox	१७
कोट्टबलिकरण	बलिदान का एक प्रकार	a type of sacrifice	४६
कोढिक	कुष्ठ रोगी	a leper	४२१
कोणालग	कोणालक पक्षी	a bird	१९
कोरंग	कोरंग पक्षी	a bird	१९
कोल	कोल–चूहे के समान जीव	a rat like a animal	१७
कोल–सुणह	बड़ा सूअर	wild boar	१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोसिकार-कीडो	रेशम का कीड़ा	silk-worm	१६३
कंक	कंक पक्षी	a bird	५५-५६
कंचणक	काञ्चनक पर्वत	kanchanak hill	२३२
कंचणा	कंचना, एक नारी	a class of women	२१९
कंची	काञ्ची-कन्दोरा	waist-band	४१७
कुंडिया	कुण्डी कमण्डलु	gourd-bowl	३९६
कंती	कान्ति-चमक, अहिंसा का छठा नाम	glow; 6th name of ahimsa	२५३
कंदमूलाई	कन्दमूल	root-vegetable	३९६
कंस	कांस्य, कांसे का पात्र	bronze pot	३२२
कुंकुम	कुंकुम	vermilion powder	४२३
कुंच	क्रौंच पक्षी	a bird	१९
कुंजर	हाथी	an elephant	१८७
कुंटा	खराब हाथ वाला, टोंटा	having defective arm	७१
कुंत (कोंत)	भाला, अस्त्रविशेष	a spear	५२
कुंथु	कुन्थु-जीवविशेष	a worm	६६
कोंकणग	कोंकण देश	konkan country	३३
कोंत	भाला	a spear	५२
कोंच	क्रौंच देश	kraunch country	३३
खग	पक्षी	bird	१९
खग्ग	खड्ग-गेंडा	rhinocerous	१७
खग्ग	खड्ग-तलवार	sword	१३४
खद्धं	जल्दी, शीघ्र	quickly	३३९
खर	गधा	donkey	१७
खस	खस देश	khas country	३३
खहयर	खेचर-पक्षी	bird	१९
खाडहिल	गिलहरी	squirrel	१८
खाति(इ)य	खाई	moat; gorge	२६
खासिया	खासिक देश	khasik country	३३
खील	खील	puffed rice	२८
खुज्जा	कुबड़ा	hunch back	७१
खुड्डिय	तलाई	a pond	४२०
खुर	छुरा	a knife	३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खुहिय	भूखा	hungry	२६१
खेड	खेडा-छोटा गाँव	a small village	१४५
खेलोसहि	एक प्रकार की लब्धि	a type of special power	२६४
खेव	चोरी	theft	१२६
खंडरक्ख	चुंगी लेने वाला अथवा कोतवाल	excise inspector	८०
खंड	खांड-शक्कर	sugar	४२५
खंती	क्षान्ति-अहिंसा का १३वाँ नाम	endurance; 13th name of ahimsa	२५३
खंध	स्कन्ध	shoulder	८०
खिंखिणि	पायल, आभूषणविशेष	an ornament of ankle	४१७
गंडि	गंडमाला	goitre	४२१
गय	हाथी	an elephant	१७
गयकुल	हाथियों का झुण्ड	elephant-herd	१०८
गया	गदा-अस्त्रविशेष	a mace	१३४
गरल	अन्य वस्तु में मिला विष	contaminated with poison	३२
गरुल	गरुड़ पक्षी	an eagle	१९
गवय	रोझ-नीली गौ	black buck	१७
गवालियं	गाय सम्बन्धी झूठ	lie about a cow	१०४
गहियगहणा	गिरवीं रखने वाले-गिरवीं का माल हजम करने वाले	pawn broker	८०
गागर	घड़ा	pitcher	१८७
गाम	ग्राम	village	१४५
गाय (काय)	एक म्लेच्छ जाति	a tribe	३३
गालणा	हिंसा का एक नाम	a name for violence	८
गिद्ध	गीध	a vulture	५६
गाह	ग्राह-जल जन्तु	an aquatic animal	१७
गिलाण	बीमार	sick	३३०
गुज्झ	अब्रह्म का एक नाम	a name of non-celibacy	१७९
गुत्ती	गुप्ति	restraint	२५३, ३७७
गुणाणं विराहणत्ति	गुणों की विराधना-हिंसा का ३०वाँ नाम	insulting qualities; 30th name of violence	८
गुरुतप्पओ	गुरुपत्नीगामी	incest with teacher's wife	१०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुल(ड)	गुड़	jaggery	३९८
गोउर	गोपुर–नगर का मुख्य द्वार	city gate	२६
गोकण्ण	दो खुर वाला चौपाया जानवर	two hoofed quadrupad	१७
गोच्छओ	पूंजनी	a type of brush	४०५
गोड	गौड देश	gaur country	३३
गोण	गाय बैल	cattle	१७
गोणस	बिना फण का साँप	hoodless snake	१८
गोधा	गोधा	a type of lizard	१८
गोमड	गाय का कलेवर	cadaver of a cow	४२३
गोमिय	अधिकारीविशेष	an officer	१४९
गोहा	गोधा	a type of lizard	१०८
गोसीससरसचंदन	गोशीर्ष नामक शीतल चन्दन	a type of sandal wood	४२३
गंडूलय	गिंडोला, जन्तुविशेष	an animal	६६
गंथिभेयग	गाँठ काटने वाला	one who cuts knots	१३०
गंध	गंध	smell	४२४
गंधमादण	पर्वतविशेष	a mountain	२९६
गंधहारग	गन्धहारक देश (कन्धार)	kandhar country	३३
घत्थ	ग्रस्त–जकड़ा हुआ	trapped	२३९
घय	घी	butter-oil	४२५
घर	घर–गृह	house	२६
घायणा	हिंसा का छट्ठा नाम	6th name of violence	८
घीरोली	घर में रहने वाली गोह	a type of lizard	१८
घूय	घूक–उल्लू	owl	१४९
घंटिय	घंटिका–घुंघरू	bells	४१७
चउक्क	चौक	courtyard	१५४
चउम्मुह	चारों ओर द्वारा वाली इमारत	building with gates on four sides	१५४
चउरंग	चकोर पक्षी	a bird	१९
चउरिंदियाणं	चार इन्द्रिय वाला जीव	four sensed being	६३
चक्क	चक्र–चक्रव्यूह	circular battle formation	१३३
चक्कवट्टी	चक्रवर्ती	an emperor	८१
चक्कवाग	चक्रवाक, चकवा	a bird	१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्खुसे	चाक्षुष-आँख से देखने योग्य	seen with eyes	२४
चच्चर	चार से अधिक मार्गों का संगम	where four paths meet	१५४
चडग	चिड़िया	bird	१९
चडकर	समूह	a group	१३४
चमर	चमरी गाय	yak	१७
चम्म	चमड़ा	leather	२२
चम्मट्ठिल	चमगादड़	a bat	१९
चम्मपत्तं	चर्मपात्र	leather bowl	३९६
चम्मेट्ठ	चमड़े से मढ़ा पत्थर	leather covered stone	१३४
चय	वस्तुओं की ढेरी, परिग्रह का तीसरा भेद	a heap of things; 3rd name of parigraha	२२८
चरंतं	अब्रह्मचर्य का एक नाम	a name for non celibacy	१७९
चरिया	नगर और कोट के मध्य का मार्ग	road joining a city with battlement	२६
चलण	चरण-पैर	feet	२१०
चलणमालिय	आभूषणविशेष	an ornament	४१७
चवल	चपल	quick	१९४
चाई	त्यागी	renouncer	४०८
चाडुयार	खुशामदी	sycophant	८०
चाणूर	चाणूर मल्ल	chanur, a wrestler	१९३
चारग	बन्दीखाना	prison	१४९
चारभडा	गुप्त दूत	a secret agent	८०
चाव	धनुष	a bow	१३४
चास	चाश पक्षी	a bird	१९
चिक्खल्ल	कीचड़	slime	३७
चित्त	चित्रकूट पर्वत	chitrakoot hill	२३३
चित्तसभा	चित्रसभा	art gallery	२६
चिइ	भित्ति आदि का बनाना	to construct wall	२६
चियका	चिता	funeral pyre	१४९
चिल्लल	चीता या दो खुर वाला पशुविशेष	leopard or a two hoofed animal	१७
चीण	चीन देश	china	३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिलाय	चिलात देशवासी	people of chilat country	३३
चीरल्ल	चील	a fly	१९
चूलिया	चूलिका	a peak	३३
चेइय	चैत्य	temple complex	२६
चोक्ख	चोक्ष-अहिंसा का ५४वाँ नाम	choksh; 54th name for ahimsa	२५३
चोरिक्कं	चोरी	theft	१२६
चोलपट्टक	चोलपट्टा, साधु के पहनने का वस्त्र	part of a monk's dress	२८९
चंगेरी	फूलों की डाली या वाद्यविशेष	flower basket; a musical instrument	२८
चंडो	उद्धत-प्राणवध का विशेषण	fierce; violent	४
चंदणग	कौड़ी	small shell	६६
चंदसालिय	अटारी	a loft	२८
चुंचुया	चुंचुक	a tribe	३३
छगल	बकरे की एक जाति	a type of goat	१७
छत्त	छत्र	umbrella	२११
छरुप्पगयं	एक कला	an art	२३९
छविच्छेओ	हिंसा का २१वाँ नाम	21st name of violence	८
छीरल	बाहुओं से चलने वाला जीव	lizard like reptile	१८
छुदिय	आभरणविशेष	an ornament	४१७
जक्ख	यक्ष-देवविशेष	yaksha; a class of gods	१४०-१४१
जग	यकृत-पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली माँसग्रन्थि	lever	२२
जच्च	उत्तम जातीय	of good breed	२१०
जणवय	देश	country	१४५
जत(य)नं	यजन अभयदान-अहिंसा का ४८वाँ नाम	forgiveness; 48th name of ahimsa	२५३
जदिच्छाए	यदृच्छा	freedom	९८
जन्नो	यज्ञ, अहिंसा का ४६वाँ नाम	yajna, 46th name of ahimsa	२५३
जमपुरिस	यमपुरुष-परमाधर्मी देव	gods active in hell	३७
जमकवर	यमकवर पर्वत	yamakavar mountain	२३३
जराउय	जरायुज-जड़ के साथ उत्पन्न होने	placental beings	२१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	वाला जीव		
जरासंधमाणमहणा	जरासन्ध राजा के मान को मथने वाले	one who subdued jarasandh's pride	१९३
जलगए	जल में रहने वाले कीड़े आदि	aquatic worms	२४
जलमए	जलकाय के जीव	water-bodied beings	२४
जलयर	जलचर	aquatic animals	३४
जल्क	जल्लदेश या डोरी पर खेलने वाला	rope-walkers	३३
जल्लोसहि	एक प्रकार की लब्धि	a kind of super-power	२६४
जलूय	जलूका, जौंक	a leech	६६
जव	जौ-जव	barley	१८७
जवण	यवन लोग	yavans	३३
जहण	जघन, जंघा	thigh	२१०
जाइ	जाति, जन्म	caste; birth	८०
जाण	यान	vehicle	२८
जाणसाला	यानशाला, वाहन आदि रखने का घर	garage	२८
जारिसमो	जैसा	like that	१
जाल	ज्वाला	flame	३७
जालय	जालियाँ	nets	२८
जाहग	काँटों से ढका हुआ शरीर वाला जन्तु	needle covered animal	१८
जिणेहिं	जिनेन्द्रदेवों द्वारा	by the jinas	१९
जीवनिकाया	जीवनिकाय	class of beings	३७७
जीवियंतकरणो	हिंसा का २२वाँ नाम	22nd name of violence	८
जीवगजीवग	चकोर पक्षी	a bird	१९
जुय	युग, जूवा	eon; yoke	२८
जुयकरा	जुआरी	gambler	८०
जूव	यूप	sacrificial pillar	२११
जोगसंग्गहे	योगसंग्रह	a set of associations	३७७
जोग्ग	दो हाथ का यानविशेष-युग्य	two cubit vehicle	२८
जोणी	योनि-जन्मस्थान	genus	३९६
जंत	यन्त्र	instrument	२८
जंतुगं	पानी में पैदा होने वाला तृणविशेष	a grass found in water	३३७
जंबुय	शृगाल	jackal	१४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंबू	सुधर्मा गणधर के शिष्य	jambu, sudharma's disciple	१
जंभग	जृम्भक-देवविशेष	a class of gods	२९६
झय	ध्वज	flag	१३५
झस	जल-जन्तु	an aquatic animal	१७
झाण	ध्यान	meditation	३५३
ठिति	स्थिति, अहिंसा का २२वाँ नाम	stability; 22nd name of ahimsa	२५३
डब्भ	डाभ-तृणविशेष	a type of grass	३३७
डमर	संग्राम	battle	११४
डाइणी	डाकिन	a witch	१४९
डोंब	डोंव जाति	donve caste	३३
डोबिलग	डोविलक देश	dovalik country	३३
डंसमसग	डांस-मच्छर	mosquito	३३९
ढेणियालग	ढेणिकालग-एक प्रकार का पक्षी	a bird	१९
ढिंक	ढंक पक्षी	a bird	१९
णउल	नकुल	mongoose	१८
णक्क	नाक	nose	२२
णग	पर्वत	mountain	१८७
णगर	नगर	city	१८७
णत्थिगवाइणो	नास्तिवादी-नास्तिक	atheist	८१
णयण	नेत्र	eyes	२२
णह	नख	nails	२२
णिक्खेव	धरोहर	heritage	१०४
णित्तुसं	सारयुक्त-असारतारहित	meaningful	३४६
णियडि	माया	deception	२२४
णिवाय	पवनरहित	devoid of air	३३७
णिव्वाण	अहिंसा का एक नाम	a name for ahimsa	२५३
णिव्वुई	अहिंसा का एक नाम	a name for ahimsa	२५३
णिव्वुइघरं	मोक्ष	liberation	३४६
ण्हवणं	सौभाग्यस्नान	anointing	११४
ण्हारूणि	स्नायु	muscles	२२
णिग्घिणो	घृणारहित	free of hatred	७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिज्जवणा	णिज्जूहग–द्वारशाखा	threshhold	२८
णिस्सेणि	निस्सरणी	ladder	२८
णिस्संदं	सार	gist	१
णिसंसो	नृशंस, क्रूर	cruel; inhuman	७३
णेउर	नूपुर	tiny bell	१८७
णंदमाणग	नंदीमुख	bull-mouth	१९
णंगल	हल	plough	२८
तउय	त्रपु	lead metal	३९६
तक्कर	चोर	thief	१४९
तण्हा	तृष्णा–परिग्रह का २७वाँ नाम	craving; 27th name of parigraha	२२८
तत	वीणा आदि वाद्य	musical instruments including veena	२८
तत्तिय	संताप	grief	१११
तप्पण	सत्तू	gram flour	३९८
तयं	त्वचा	skin	३९५
तरच्छ	जंगली पशु	beast	१७
तलताल	वाद्यविशेष	a musical instrument	४१७
तलवर	मस्तक पर स्वर्णपट्टधारक राजपुरुष	officer with gold band on head	२३३
तलाग	तालाब	a pond	२६
तव	तप	penance	३६२
तस	त्रस जीव	mobile being	२१९
ताय	तात	father; elderly	४८
तारा	तारा	star	२१९
तालियंट	ताल पत्र के पंखे	palm leave fan	१८७
तित्त	तीता रस	astringent taste	४२५
तित्ती	तृप्ति–अहिंसा का १०वाँ नाम	contentment; 10th name of ahimsa	२५३
तित्तिय	तित्तिक देश	tittik country	३३
तित्तिर	तीतर पक्षी	a partridge	१९
तिमि	बड़े मत्स्य	large fish	१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिमिसंधयार	घोर अन्धकार	pitch dark	२४२
तिमिंगल	बहुत बड़े मत्स्य	giant fish	१७
तिरिय	तिर्यञ्च	animals	५७
तिवायणा	त्रिपातना (अतिपातना)-हिंसा का १०वाँ नाम	to kill; 10th name of violence	८
तिसिय	प्यासा	thirsty	२६१
तिहि	तिथि	date	४००
तुरय	घोड़ा	a horse	१८७
तूणइल्ल	वाद्यविशेष बजाने वाला	player of a musical instruments	४१७
तेणिक्कं	चोरी	theft	१२६
तेल्ल	तेल	oil	३९८
तोमर	बाण	an arrow	५२
तोरण	तोरण	arch on a door	२८
तंती	तन्त्री-वीणा	tantri veena	४१७
तंब	ताम्र	copper	२१०
तुंड	मुख	mouth	५५-५६
थण	स्तन	udder	२११
थलयर	स्थलचर	terrestrial animal	३४
थावर	स्थावर-एकेन्द्रिय जीव	one-sensed being	२१९
थूभ	स्तूप	a memorial mound	२६
थोवगं	थोड़ा	little	८१
दइओ	दयित-प्रिय	beloved	२२४
दईवतप्पभावओ	भाग्य के प्रभाव से	due to luck	९८
दग	उदक, पानी	water	१४१
दगतुंड	दगतुंड पक्षी	a bird	१९
दच्छ	दक्ष-चतुर	expert; clever	८०
दद्दुर	वाद्यविशेष	a musical instrument	४१७
दब्भपुप्फ	एक प्रकार का सर्प	a type of snake	२२
दया	दया-अहिंसा का ११वाँ नाम	pity; 11th name of ahimsa	२५३
दरदड्ढ	कुछ जला हुआ	slightly burnt	१४९
दवग्गि	दावानल	forest fire	३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दव्वसारो	द्रव्यसार वाला-परिग्रह का १०वाँ नाम	materially wealthy; 10th name of parigraha	२२८
दविल	द्रविड	dravidian	३३
दह	ह्रद	a lake	३२
दहपइ	ह्रदपति-पद्म ह्रद आदि	name of a lake/river	२३३
दहिमुह	दधिमुख पर्वत	dadhimukh mountain	२३३
दाढि	दाढ	molar teeth	२२
दामिणि	माला	a garland	२११
दार	द्वार-दरवाजा	gate; door	२६
दालियंब	खट्टी दाल	sour pulse-soup	४२५
दिलिवेढय	जलीय जन्तुविशेष	an aquatic animal	१७
दीविय	चीता	leopard	१७
दीविय	एक प्रकार की चिड़िया	a bird	१९
दीहिया	बावड़ी	stepped well or tank	३२
दुक्कय	दुष्कृत	bad deed	९२
दुग्गइप्पवाओ	हिंसा का एक नाम	a name for violence	८
दुद्ध	दुग्ध	milk	४२५
दुहण	द्रुघन-वृक्षों को गिराने वाला मुद्गर द्रुहना	a mace for falling trees	१३४
देवई(की)	देवकी रानी	queen devaki	१९३
देवकुल	देवमन्दिर	temple of gods	२६
दोणमुह	जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनों से जाने योग्य नगर	a port city	१४५
दोणि	छोटी नौका	small boat	२८
दोवई	द्रौपदी	draupadi	२१९
दोहग्ग	दुर्भाग्य	bad luck	२११
दंतट्ठा	दाँत के लिए	for teeth	२२
दंसण	सामान्य बोध, श्रद्धागुण	general perception; faith	१८३
दंसमसग	डांस-मच्छर	mosquito	३६२
धणिय	अत्यन्त	intense	१४१
धत्तरिट्ठग	धार्तराष्ट्र-हंसविशेष	a type of swan	१९
धमण	भैंस आदि के देह में हवा भरना	to blow air into a bufallo	६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धमणि	नाड़ी	vein	२२
धिइ	धृति–अहिंसा का २८वाँ नाम	patience; 28th name of ahimsa	२५३
धूम	आहार की निंदा करके खाना	food related fault	४०३
नक्क	जल–जन्तुविशेष	an aquatic animal	१७
नगरगुत्तिय	नगररक्षक	city guard	८०
नट्टग	नर्तक	dancer	४२०
नड	नट	acrobat	४२०
नह	नख	nail	२२
नाराय	लोहे का बाण	iron arrow	५२
निक्किओ	निष्क्रिय	inactive	९२
निगड	लोहे की बेड़ी	iron shackle	२४
निगम	वणिकों का निवास–स्थान	abode of traders	१४५
निग्गुणो	निर्गुण	devoid of attributes	९२
निच्चो	नित्य	permanent	९२
निज्जवणा	हिंसा का २८वाँ नाम	28th name of violence	८
नत्थिकवाइणो	नास्तिकवादी	an atheist	८१
निम्मलतर	खूब स्वच्छ, अहिंसा का ६०वाँ नाम	very pure; 60th name of ahimsa	२५३
नि(णि)यडि	कपट–मायाचार	deception	२२४
निव्वाणं	निर्वाण–मोक्ष, अहिंसा का एक नाम	liberation; a name for ahimsa	२५३
निव्वुइ	निवृत्ति, शान्ति	release; peace	११७
निहाणं	निधान, परिग्रह का ८वाँ नाम	treasure; 8th name of parigraha	२२८
नू(णू)मं	नूम–ढक्कन	lid	७७
नेउर	नूपुर	tiny bells	४१७
नेरइय	नरक के जीव	infernal beings	५०
नेहुर	नेहुर देश	nehur country	३३
नंदा	समृद्धिदायक, अहिंसा का २४वाँ नाम	source of affluence; 24th name of ahimsa	२५३
नंदि	वाद्यविशेष	a musical instrument	४१७
पइभय	प्रतिभय	fearful	३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पइल्ल	श्लीपद-फीलपाँव	elephantitis	४२१
पउम	पद्म-कमल, पद्मव्यूह	lotus; lotus shaped battle formation	५०, १३१
पउमावई	पद्मावती रानी	queen padmavati	२१९
पएणीयारा	विशेष रूप से हिरनिओं को मारने के लिए फिरने वाले	dow hunters	३२
पक्कणिय	पक्कणिक देश	pakkanik country	३३
पच्चक्खाणं	प्रत्याख्यान	to renounce	८१
पच्छागा	ढँकने का वस्त्र	cover made of cloth	४०५
पज्जत्त	पर्याप्त-पर्याप्ति की पूर्णता वाले जीव	fully developed beings	३४-३५
पट्टण	पाटन	a port	१४५
पट्टिस	प्रहरणविशेष	a weapon	१३४
पडगार	जुलाहा	textile weaver	८०
पडिग्गहो	पात्र	a pot	४०५
पडिबंधो	प्रतिबन्ध-बाह्य पदार्थों में स्हेनबन्ध होना, परिग्रह का १२वाँ नाम	fondness for material things; 12th name of parigraha	२२८
पडिलेहण	प्रतिलेखना	inspection	४०६
पडिसीसग	कृत्रिम शिर	image of head	११४
पडिसुया	प्रतिध्वनि	echo	५०
पणव	वाद्यविशेष	a musical instrument	४१७
पण्हव	पह्नव देश	pahnava country	३३
पतरग	भूषणविशेष	an ornament	४१७
पत्तेयसरीर	प्रत्येक शरीर, ऐसे जीव जिनके एक शरीर का स्वामी एक ही हो	a body with one soul	२४
पभासा	प्रभासा-अतिशय दीप्ति वाली, अहिंसा का ५७वाँ नाम	very brilliant; 57th name of ahimsa	२५३
पमया	प्रमदा-स्त्री	woman	२१०
पमोओ	प्रमोद, अहिंसा का २३वाँ नाम	joy; 23rd name of ahimsa	२५३
पयावई	प्रजापति	lord of the people	९२
परदार	परस्त्री	other's wife	२१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परभवसंकामकारओ	परभवसंक्रामकारक, हिंसा का १८वाँ नाम	pollutant of next life; 17th name of violence	८
परसु	फरसा	an axe	५२
परहड	चोरी का दूसरा नाम	theft	१२६
परा	तृणविशेष	a type of grass	३३७
परिग्गहो	परिग्रह का पहला नाम	first name of parigraha	२२८
परिचारगा	व्यभिचार में सहायक	helpful in debauchery	८०
परिजण	परिजन	a relative	११२
परिट्ठावणियासमित	मल-मूत्र आदि परठने की समिति से युक्त	having care in disposal	४०८
परियावण अण्हओ	परितापन आस्रव, हिंसा का २६वाँ नाम	inflow due to causing pain; 26th name of violence	८
परियार	तलवार की म्यान	sword-sheath	२८
परीसह	परिषह-कष्ट	affliction; pain	३७७
पल्लल	पल्वल-छोटा तालाब	small pond	३२
पलाल	पलाल-पोआल	hay	३३७
पलिओवम	उपमाकालविशेष	a unit of metaphoric time	४७
पलित्त	प्रदीप्त	glowing	३७
पलिय	सफेद बाल	white hair	२१०-२११
पवग	उछलने-कूदने वाला	acrobat	४२०
पवयण	प्रवचन	discourse	१
पवग	वाद्यविशेष	a musical instrument	४१७
पवा	प्याऊ	water-hut	२६
पवित्ता	पवित्रा, अहिंसा का ५५वाँ नाम	purity; 55th name of ahimsa	२५३
पवित्थरो	धन का विस्तार, परिग्रह का २०वाँ नाम	acquisition of wealth; 20th name of parigraha	२२८
पव्वीसग	वाद्यविशेष	a musical instrument	१८७
पसय	दो खुर वाला जानवर	two hoofed animal	१७
पहरण	शस्त्र	weapon	२८
पहाण	प्रधान	main; chief	२१०
पहेरग	भूषणविशेष	an ornament	४१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाइक्क	पैदल	on feet	१४१
पागार	कोट	battlement	२६
पाठीण	एक जाति का मत्स्य	a type of fish	१७
पाणवहो	प्राणवध, हिंसा का पहला नाम	killing; first name of violence	८
पाणीयं	पानी	water	४८
पायकेसरिया	पोंछने का वस्त्र	wiping cloth	४०५
पायजालक	पायजेब	anklet (ornament)	४१७
पाद(य)बंधंण	पात्रबन्धन	cloth for tying bowls	४०५
पायट्ठवणं	पात्र ठवणी-जिस पर पात्र रक्खा जाये	bowl-stand	४०५
पारणा	पूर्ति, व्रत का समापन	conclusion of a vow	३४०
पारस	फारस देश	persia	३३
पारदारी	परस्त्रीगामी	having illicit relations with other woman	२१६
पारिप्पव	पारिप्लव जन्तु	an animal	१९
पारेवय (ग)	कबूतर	pigeon	१९
पावकोवो	पापकोप, हिंसा का १९वाँ नाम	extreme sin; 19th name of violence	८
पावलोभ	पापलोभ, हिंसा का एक नाम	greed for sin; a name for violence	८
पासाय	प्रासाद-महल	a palace	२६
पासो	पाश	a snare	२३९
पिक्कमंसी	पका हुआ मांसी नामक द्रव्य, जटामासी	ripe mansi; jatamansi (a herb)	४२३
पिच्छ	पूँछ	tail	२२
पिट्टण	पीटना	to beat	७०
पित्त	शरीर सम्बन्धी एक दोष	a fault in body humours	२२
पिव्वीलिया	चींटी	ant	६६
पियरो	पिता आदि पूर्वज	ancestors including father	३२
पिसाय	पिशाच	a demon	१८३
पिसुण	चुगलखोर	slanderer	३०७
पिंडवाय	आहार-पानी	food and water	४०२
पिंगलक्खग	पिंगलाक्ष पक्षी	a bird	१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिंगुल	पिंगुल पक्षी, लाल रंग का तोता	a red parrot	१९
पिंडो	पिंड, परिग्रह का ९वाँ नाम	a lump; 9th name of parigraha	२२८
पीवर	पुष्ट	healthy	२१०
पुट्ठी	पुष्टि, अहिंसा का एक नाम	nourishing; a name of ahimsa	२५३
पुढविमए	पृथ्वीकायिक (जीव)	earth-bodied being	२४
पुढविसंसिए	पृथ्वी के आश्रित रहने वाला	dependent on earth	२४
पुरिसकारो	पुरुषार्थ	valour	८१
पुरोहिय	पुरोहित–शान्तिकर्मकर्त्ता	priest	२३३
पुलिंद	पुलिंद नामक देशविशेष	pulind country	३३
पुव्वधर	पूर्व नामक शास्त्रों का ज्ञाता	scholar of purvas	२६४
पूया	पूजा, अहिंसा का एक नाम	worship; a name for ahimsa	२५३
पेच्चाभवियं	परलोक में कल्याणकर	beneficial for next life	४१५
पेहुण	मोरपिच्छी	peacock-feather broom	२८
पोक्कण	जातिविशेष, पोक्कण देश	a tribe; pokkan country	३३
पोक्खरणी	पुष्करिणी, चौकोनी बावड़ी	square stepped-well	२६
पोयसत्था	नौका के व्यापारी	boat traders	५०
पोयघाया	पक्षियों के बच्चों का घात करने वाले	chick hunters	३२
पोयय	पोतज–एक जीवविशेष	placental being	२१९
पोसह	पौषध–एक विशिष्ट व्रत	a special vow	८१
पंगुला	पंगु	disabled	७१
फलक	पाट–बिस्तर–कुर्सी आदि	plank, bed, seat etc.	२८
फलिहा	परिघ–आगल	door bolt	२८
फासुय	प्रासुक–निर्जीव	free of living organism	३३५–३३६
फोफस	फुप्फुस–देह का एक अंगविशेष	lungs	२२
बउस	एक देशविशेष	a country	३३
बक	बगुला	a heron	१९
बप्प	बाप–पिता	father	४८
बब्बर	एक अनार्य जाति	a non-aryan race	३३
बरहिण	मयूर	a peacock	१९
बलदेव	बलदेव	baldev	८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलाका	बगुली	she-heron	१९
बहलीय	बहलीक देशवासी	inhabitant of bahaleek country	३३
बहिर	बहरा	deaf	७१
बायर	बादर नाम-कर्म वाले	with gross naam-karma	२४
बिल्लल	विल्वल देश	vilval country	३३
बीहणगं	भयानक	fearful	४४
बुद्धी	बुद्धि, अहिंसा का १६वाँ नाम	wisdom; 17th name of ahimsa	२५३
बेलंबग	विडम्बक	jester	४२०
बेइंद्रिय	दो इन्द्रिय वाला	two-sensed	६६
बोही	बोधि, अहिंसा का १६वाँ नाम	enlightenment; 16th name of ahimsa	२५३
वंजुल	वंजुल पक्षी	a bird	१९
बंभचेर	ब्रह्मचर्य	celibacy	३४६
भग	योनि	genus	१८७
भट्ठभज्जणाणि	भाड़ में चने के जैसे भूँजना	to roast like corn	४६
भडग	भडक जाति	bhadak tribe	३३
भडा	सैनिक	a soldier	१३६
भद्दा	भद्रा-कल्याणकारी, अहिंसा का २५वाँ नाम	beatific; 25th name of ahimsa	२५३
भमर	भ्रमर	bumble-bee	२२
भयग	नौकर	servant	१११
भयंकरो	हिंसा का २३वाँ नाम	ferocious; 23rd name of ahimsa	८
भरह	भरत क्षेत्र	bharat area	१८७
भवण	भवन	a mansion	२६
भाइल्लगा	सेवक	servant	१११
भायण	पात्र	a pot	२६
भारो	भार-आत्मा को भारी करने वाला, परिग्रह का १७वाँ नाम	burden of soul; 17th name of parigraha	२२८
भावणा	भावना	sentiment	२८४
भाविओ	भावित-संस्कार वाला	having good attitude	२८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भास	भाष पक्षी	a bird	१९
भासासमिए	भाषासमिति वाला	having care in speech	४०८
भिक्खुपडिमा	साधु की पडिमा (प्रतिज्ञा)	resolve of a monk	३७७
भिंगारग	भिंगारक पक्षी	a bird	१९
भुज्जिय	भूंजे हुए धानी	roasted barley	३९८
भुयईसर	शेषनाग	the great serpent	२०२-२०३
भूमिघर	भूमिगृह-तलघर	cellar	२६
भूयगामा	जीवों के समूह	groups of beings	३७७
भेयणिट्ठवण	भेदनिष्ठापन-हिंसा का एक नाम	to tear apart; a name for violence	८
भेसज्ज	भेषज	medicinal	३९६
भोमालियं	भूमि सम्बन्धी झूठ	lie about land	१०४
भंडोवगरण	मिट्टी के भांड	earthen pots	२६
भिंडिमाल	भिंडिपाल	a weapon	१३४
मइय	मतिक-खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने का मोटा काष्ठ	thick wooden bar for breaking lump of sand	२८
मउड	मुकुट	crown	१३६
मउलि	फण वाले सर्प	hooded snake	१८
मगर	मगरमच्छ	crocodile	१७
मच्चू	मृत्यु, हिंसा का एक नाम	death; a name for violence	८
मच्छबंधा	मछली पकड़ने वाले	fishermen	३२
मच्छि	मक्खी	a fly	६३
मच्छंडी	मिश्री	crystal sugar	३९८
मज्ज	मद्य	alcohol; wine	३९८
मज्जण	मज्जन-मर्दन	massage	३६१
मज्जार	बिल्ली	a cat	१७
मडंब	जिसके नजदीक कोई बस्ती न हो ऐसी बस्ती	an isolated village	१४१
मणगुत्ते	मनोगुप्त	having restraint of mind	४०८
मणपज्जवनाणी	मनःपर्यवज्ञानी	one with manah-paryavjnana	२६४
मणि	चन्द्रकान्त आदि	precious stones	३२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्थुलुंग	मस्तुलिंग	oil	२२
मयणसाल	मैना	maina	१९
महु	शहद	honey	३९८
मम्मण	अस्पष्ट उच्चारण करने वाला	having unclear speech	७१
मय	मद	conceit; intoxication	३७७
मयूर	मोर	peacock	१९
मरहट्ठ	महाराष्ट्र देश	maharashtra state	३३
मरुय	मरुआ	a plant	४२३
मरूया	मरुक देश	maruk country	३३
मलय	मलय देश	malaya country	३३
मल्ल	पहलवान	wrestler	४१७
मसग	मशक, मच्छर	mosquito	६३
महव्वय	महाव्रत	great vows	३५८
महाकुंभि	बड़ी कुंभी	a large urn	४६
महापह	राजमार्ग	highway	१५४
महासउणिपूयणारियु	महाशकुनि और पूतना के शत्रु	enemies of mahashakuni and putana	१९३-१९४
महाछी	*अपरिमित याचना वाला, परिग्रह का १४वाँ नाम*	*seeker of unlimited alms;* 14th name of parigraha	२२८
महिच्छा	तीव्र इच्छा, परिग्रह का एक नाम	intense desire; a name for parigraha	२२८
महिस	भैंसा	buffalo	१७
महुकरी	मधुमक्खी	honey-bee	२२
महुकोसए	मधु के छत्ते	honey-comb	१०८
महुघाय	मधु लेने वाला	one who takes honey	३२
महुर	महुर देश	mahur Country	३३
महेसी	महर्षि	great Sage	१
महोरग	बड़ा सर्प	large Serpant	१८
माढि	ढाल	a shield	१३४
माणुसोत्तर	मनुषोत्तर पर्वत	manushottar Mountain	२३३
माया	माया-कपट	deceit	७७
मायामोसो	माया-मृषा	deception-falsity	७७
मारणा	हिंसा का ७वाँ नाम	killing; 7th name of violence	८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारुय	मारुत–वायु	air	६६
मालव	मालव देश	malava state	३३
मास	माष देश	maash state	३३
मित्तकलत्त	मित्र की पत्नी	friend's wife	१०२
मिच्छद्दिट्ठी	मिथ्यादृष्टि वाला	one with wrong perception	२४५
मिलक्खुजाई	म्लेच्छजातीय	of lower caste	३३
मिय	मृग	deer	१७
मुइंग	मृदङ्ग	mridanga, a percussion instrument	४१७
मुगुंस	मंगूस–भुजपरिसर्प जन्तुविशेष	a reptile	१८
मुट्ठिअ	मौष्टिक देश	maushtika country	३३
मुट्ठिग	मौष्टिक मल्ल	pugilist	४१७
मुत्त	मोती	pearl	३२२
मुद्ध	मूर्धा–मस्तक	head	२०३–२०३
मुम्मुर	अग्नि के कण	sparks	३७
मुरय	मृदंग	a musical instrument	४१७
मुरुंड	मुरुंड देश	murund country	३३
मूसल	मूसल	a mace or club	१९३–१९४
मुसंढि	प्रहरणविशेष–भुशुंडी	a weapon	२८
मुहणंतक (पोत्तिय)	मुखवस्त्रिका	mouth-cover	२८९
महंती	महती–महिता–सम्पन्न, अहिंसा का १५वाँ नाम	wealth; 15th name of ahimsa	२५३
मूक	गूँगा	mute	७१
मूयग	एक प्रकार का तृण	a type of grass	३३७
मूलकम्मं	गर्भपात आदि मूल कर्म	abortion & other sinful acts	११०
मूसल	खांडने का उपकरण	a pestle	२८
मेइणि	पृथ्वी	earth	२१०–२११
मेय	मेद–धातु	a metal	२२
मेत्त	मेद देश	meda country	३३
मेर	मूँज के तन्तु	hessian fibre	३३७
मेहला	मेखला	a chain	४१७
मोक्ख	मोक्ष	liberation	३४६
मेहुण	मैथुन	to copulate	२१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोग्गर	मुद्गर	mace	५२
मोट्ठिय	मुष्टिप्रमाण पत्थर	fist size stone	१३४
मोयग	मोदक	a sweet	३९८
मोसं	मिथ्या	falsity	७७
मोह	मोह–अब्रह्म का एक नाम	fondness; a name for non-celibacy	१७९
मंगल	मंगलकारी, अहिंसा का ३०वाँ नाम	beatific; 30th name of ahimsa	२५३
मंडक	मण्डप–रावटी	a pavilion	२८
मंडव	मंडप	a pavilion	२६
मंडुक्क	मेंढक	a frog	१७
मंदर	मेरु पर्वत	meru mountain	४११
मंदुय	मन्दुक–जल	water	१७
मम्मणा	तुतला बोलने वाला	stammerer	११७
मंस	माँस	flesh	२२
मिंज	मज्जा	sinews	२२
मुगुंस	मंगुस–गिलहरी	squirrel	१८
यम	मूलव्रत–आजीवन व्रत	basic vows	३४६
रक्खस	राक्षस	devil	१४१
रक्खा	रक्षा, अहिंसा का ३३वाँ नाम	protection; 33rd name of ahimsa	२५३
रत्तसुभद्दा	रक्तसुभद्रा	name of Krishna's sister	२१९
रइकर	रतिकर पर्वत	ratikar mountain	२३३
रती(ई)	रति–प्रेम	love	३०, १७९
रती (ई)	सन्तोष, अहिंसा का ७वाँ नाम	contentment; 7th name of Ahimsa	२५३
रय	रज, कर्मरज	dust; Karmic dust	२४५
रयण	रत्न	gem	३२२
रयणागर	रत्नाकर, समुद्र	sea	१४१
रयणोरुजालिय	जाँघों का भूषण	a thigh ornament	४१७
रयय	चाँदी	silver	३२२
रयत्ताणं	रज से रक्षक	protector from dust	४०५
रयहरण	रजोहरण	ascetic-broom	४०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रवि	सूर्य	the sun	१८७
रसय	रसज-रसों में उत्पन्न होने वाले जीव	living organism born in juices	२१९
रह	रथ	chariot	२८
रायदुट्ठ	राजविरुद्ध	against state	१०२
रायाणो	राजा	a king	१३३
रिट्ठवसह	अरिष्ट नामक बैल	a bull named arisht	१९३-१९४
रिद्धि	ऋद्धि, अहिंसा का २०वाँ नाम	opulance; 20th name of ahimsa	२५३
रिसओ	ऋषि	a sage	८१
रुचक (रुयग)वर	मण्डलाकार रुचकगिरि	circular Ruchak hill	२३३
रुद्द	रौद्र	fierce	३६५
रुप्पिणी	रुक्मिणी	rukmini	२१९
रुरु	हिरणविशेष	a type of deer	१७
रुरु	रुरु देश	ruru country	३३
रूव	रूप	form; appearance	४२०
रोम	रोम देश	rome state	३३
रोहिए	रोहित, पशुविशेष	an animal	१०८
रोहिणी	रोहिणी, महिलाविशेष का नाम	rohini, name of a lady	२१९
लउड	लकुट-छोटा डंडा	small stick	२८
लट्ठी	लाठी	a staff or stick	४६
लद्धी	लब्धि, अहिंसा का २७वाँ नाम	special power; 27th name of Ahimsa	२५३
लयण	पर्वत खोदकर बनाया गया स्थानविशेष	a dugout in a hill	२६
लवण	लवणसमुद्र	Lavan sea	२३३
लवंग	लौंग	clove	४२३
लावग	लवा पक्षी	a bird	११
लासग	रास गाने वाले	a singer	४२०
लासिय	ल्हासिक देश	lhasik country	३३
लुद्धगा	व्याध	hunter	३२
लुद्धा	लोभग्रस्त	greedy	१३३
लुंपणा	हिंसा का एक नाम	a name for violence	८
लेट्ठु	पत्थर	a stone	३२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेण	पहाड़ में बना घर	a house in a mountain	३३५
लेस्साओ	लेश्या	soul-complexion	३७७
लोलिक्क	चोरी का एक नाम	a term for theft	१२६
लोहसंकल	लोह की बेड़ी	iron shakle	१४९
लोहपंजर	लोहे का पींजरा	iron cage	१४९
लोहप्पा	लोभात्मा, परिग्रह का १३वाँ नाम	greed; 13th name of parigraha	२२८
लंगल	शस्त्रविशेष	a weapon	१३४
लुंपणा	हिंसा का २९वाँ नाम	29th name of violence	८
वइर	वज्र	diamond; a weapon	२१०-२११
बउस	बकुशदेश	bakush country	३३
वक्खार	विजयों को विभक्त करने वाले पर्वत	mountains dividing continents	२३३
वग्गुलि	वागुल	a bird	१९
वज्ज-रिसह-नाराय-संघयण	वज्रऋषभनाराच संहनन	a body constitution	३५३
वज्जो	वर्ज्य, हिंसा का २५वाँ नाम	prohibited; 25th name of violence	८
वट्टग	बतक	a duck	१९
वट्टपव्वय	गोलाकार पर्वत	circular mountain	२३३
वडभ	टेड़े-मेढ़े शरीर वाला	having distorted body	७१
वणचरगा	जंगल में घूमने वाले	a forest wanderer	३२
वणस्सइ (वणप्फइ)	वनस्पति	plant	६६
वद्धीसग	वाद्यविशेष	a musical instrument	४१७
वल्लय	वल्वज	valvaj	३३७
वल्लर	खेतविशेष	a farm	३२
ववसाओ	व्यवसाय, अहिंसा का ४४वाँ नाम	business; 44th name of ahimsa	२५३
बब्बर	बर्वर देश	barbar country	३३
आवसह	परिव्राजकों के ठहरने का स्थान	place of stay for parivrajaks	३३५
वसा	चरबी	fat	२२
वसीकरण	वशीकरण	hypnotism	११०
वहण	नौका	boat	२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहणा	हिंसा का ८वाँ नाम	8th name of violence	८
वाउप्पिय	भुजपरिसर्पविशेष	a reptile	१८
वाउरिय	जाल लेकर घूमने वाले	trappers	३२
वाणियगा	वणिक लोग	traders	८०
वानर	बन्दर	monkey	१७
वानरकुल	बन्दर जाति	monkey species	१०८
वामण	छोटे शरीर वाला	pygmey	७१
वामलोयवाइ	लोकविरुद्ध-विपरीत बोलने वाला	speaking against tradition	८१
बायर	बादर-स्थूल	gross	२१९
वायस	कौवा	a crow	१९
वाल	बाल	hair	२२
बालरज्जुय	बाल की रस्सी	hair-rope	१४९
वावि	कमलरहित या गोल बावड़ी	a round tank	२६
वासहर	वर्षधर हिमवान् आदि पर्वत	varshadhar mountains	२३३
वासि	वसूला	a chisel	५२
वासुदेवा	वासुदेव	vasudev	८१
वाहण	गाड़ी आदि	vehicle	२८
वाहा	व्याध	a hunter	३२
विउलमई	विपुलमति-ज्ञानविशेष	a type of knowledge	२६४
विकप्प	एक तरह का महल	a type of palace	२६
विकहा	विकथा	false speech	३७७
विग	भेड़िया, व्याघ्र	wolf	१७
विगला	अंगहीन	without limbs	७१
विचित्त	विचित्रकूट पर्वत	vichitrakoot hill	२३३
विच्छुय	बिच्छू	scorpion	३७
विडव	शाखाग्र	tip of a branch	२२४
विडंग	कबूतरों का घर	pigeon hole	२८
विणासो	विनाश, हिंसा का २७वाँ नाम	destruction; 27th name of violence	८
विण्हुमय	विष्णुमय	devoted to Vishnu	९२
वितत	ढोल आदि वाद्य	drum and other such instruments	२८
वितत (वियय) पक्खि	वितत पक्षी	a bird	१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्धि	वृद्धि, अहिंसा का २१वाँ नाम	development; 21st name of Ahimsa	२५३
विप्पोसहिपत्त	एक विशिष्ट लब्धि का धारक	having a special power	२६४
विपंचि	वीणा	veena	१८७
विभूई	विभूति, अहिंसा का ३२वाँ नाम	glory; 32nd name of ahimsa	२५३
विभंग	मैथुन का एक नाम	a name for the sex act	१७९
विमुत्ती	विमुक्ति–अहिंसा का १२वाँ नाम	salvation; 12th name of ahimsa	२५३
विमल	विमल–अहिंसा का ५८वाँ नाम	tarnishfree; 58th name of ahimsa	२५३
वियग्ध	व्याघ्र	tiger	१७
विराहणा	विराधना	transgression	१७९
विस	विष	poison	२२
विसाण	हाथी का दाँत	ivory	२२
विसिट्ठदिट्ठी	विशिष्ट दृष्टि अहिंसा का २८वाँ नाम	special perception; 28th name of Ahimsa	२५३
विसुद्धी	विशुद्धि, अहिंसा का २६वाँ नाम	purity; 26th name of ahimsa	२५३
विहग	पक्षीविशेष	a bird	१९
विहार	मठ	monastry	२८
वीसत्थछिद्दघाई	विश्वासी का अवसर देखकर घात करने वाला	one who hurts a confidante	१४८
वीसाओ	विश्वास, अहिंसा का ५१वाँ नाम	belief; 51st name of ahimsa	२५३
वीसुय	विश्रुत–प्रसिद्ध	famous	३५३
वेजयन्ती	विजयपताका	flag of victory	१३६
वेढिम	वेष्टिम–जलेबी	a sweet	३९८
वेइय	वेदिका, चबूतरा	platform	२६
वेयत्थी	वेदविहित अनुष्ठान के अर्थी	desirous of Vedic ritual	३०
वेरुलिओ	वैडूर्य मणि	cats-eye	३५२
वेसर	पक्षीविशेष	a bird	१९
वोरमणं	हिंसा का १६वाँ नाम	16th name of violence	८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंजुल	एक प्रकार का पक्षी	a bird	१९
वंस	बाँसुरी	a flute	२५३
सउण	शकुन पक्षी, तीतुर	a partridge like bird	१९
सक	शक देश या जाति	shaka country or people	३३
सक्करा	धूलि	dust	३२२
सक्कुलि	तिलपापड़ी	a sweet	३९८
सक्खी	साक्षी-गवाह	a witness	८०
सगड	शकट-गाड़ी	cart	२८
सगड	शकटव्यूह	cart shaped battle formation	१२६
सणप्फय	नखयुक्त पैर वाले	with claws	३४
सयग्घी	सैकड़ों का संहार करने वाला शस्त्र-तोप	a canon like weapn	२८
सत्ति	शक्ति, त्रिशूल	a trident	१३४
सत्ती	अहिंसा का चौथा नाम	fourth name of Ahimsa	२५३
सत्थवाह	सार्थवाह	caravan chief	२३३
सद्दूल	शार्दूल सिंह	a lion	१५
सब्बल	भाला	a spear	५२
सण्णी(न्नी)	संज्ञी-मन वाले जीव	sentient beings	३४
सप्पि	घी	butter-oil	३९८
सबर	शबर, भिल्ल जाति	a tribe	३३
लउल	शस्त्रविशेष (लाठी)	a weapon	१३४
सभा	सभा	assembly	२८
समणधम्मे	श्रमणधर्म	jain religion	३७७
समचउरंससंठाण	समचतुरस्र-चारों कोण बराबर आकृति	a square shape	३५३
समिय	सिद्धान्त	principle	४०७-४०८
सम्मत्तविसुद्धमूलो	सम्यक्त्वरूप विशुद्ध मूल वाला	with righteous pure attitude	३९५
सम्मदिट्ठी	सम्यग्दृष्टि	righteous	४०८
सम्मताराहणा	सम्यक्त्व की आराधना-अहिंसा का १४वाँ नाम	practice of righteousness; 14th name of Ahimsa	२५३
समाही	समाधि-समता-अहिंसा का तीसरा नाम	equanimity; third name of Ahimsa	२५३
समिठई	समिति-अहिंसा का एक नाम	care; a name for Ahimsa	२५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समिद्धी	समृद्धि-अहिंसा का एक नाम	wealth; a name for Ahimsa	२५३
समुग्गपक्खी	पक्षिविशेष	a bird	१९
सयंभू	स्वयंभू	self-proclaimed	९०
सरड	गिरगिट नामक जीवविशेष	chamelion	१८
सरण	शरण-स्थलविशेष	a place of refuge	२६
सरंब	जन्तुविशेष	an animal	१८
सल्लय	जीवविशेष	a creature	१०८
ससमय	स्वसमय-स्वकीय सिद्धान्त	one's own doctrine	४०८
ससय	शशक-खरगोश	rabbit	१०८
साउणिया	पक्षीमार-व्याध	bird hunter	३२
साल	शाखा-वृक्ष की डाली	branch of a tree	२२४
साली	शाली धान्यविशेष	paddy	११२
साहसिय	साहसी-बिना फल सोचे काम करने वाला	courageous; bold	८०
साहारणसरीर	साधारण शरीर (जीव विशेष)	a class of living beings	२४
सिद्धाति(इ) गुणा	सिद्धों के गुण	attributes of perfected ones	३७७
सिद्धावासो	सिद्धावास, अहिंसा का ३४वाँ नाम	abode of the liberated; 34th name of Ahimsa	२५३
सिप्प	शिल्पकला	craft	२३९
सियाल	शृगाल	a jackal	१७
सिरियंदलग	श्रीकन्दलक	shrikandalak	१७
सिलप्पवाल	शिलाप्रवाल	coral rock	३२२
सिवं	शिव-उपद्रवरहित, अहिंसा का ३७वाँ नाम	trouble free; 37th name of Ahimsa	२५३
सिहरि	शिखरी नामक पर्वत	shikhari mountain	२३३
सिहरिणि	दही और शक्कर से बना पेयविशेष -श्रीखंड	sweet curd	२४२
सीमागार	एक प्रकार का ग्राह	crocodile	१७
सीया	सीता	sita river	२१९
सीया	शिबिका-बड़ी पालकी	large palanquin	२८
सीलं	शील, अहिंसा का ३९वाँ नाम	morality; 39th name of ahimsa	२५३
सीलपरिघरो	शीलपरिग्रह, अहिंसा का ४१वाँ नाम	possession of morality; 41st name of Ahimsa	२५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीसग	सीसा	lead metal	३९६
सीह	सिंह	lion	१७
सीहल	सिंहल देश	ceylon	३३
सूइ	व्यूहविशेष	a battle formation	१३३
सुईमुह	सूचीमुख-तीखी चोंच वाला पक्षी	a bird with sharp beak	१९
सुग(य)	तोता	parrot	१०८
सुकयं	सुकृत	good deed	९०
सुघोस	घंटा	bell	४१७
सुणग	कुत्ता	dog	५५
सुय	तोता	parrot	१९
सुयनाणी	श्रुतज्ञानी	having knowledge of scriptures	२६४
सुयंग	श्रुतज्ञान, अहिंसा का ९वाँ नाम	scriptural knowledge; 9th name of Ahimsa	२५३
सुरूवविज्जुमईए	सुरूपविद्युन्मती (विशेष नाम)	a name	२१९
सुवण्णगुलिया	सुवर्णगुलिका (विशेष नाम)	a name	२१९
सुसाण	श्मशान	cremation ground	३३५
सुहुम	सूक्ष्म	minute	२१९
सूइ	सूची-सूई	needle	१८७
सूकरे	सुअर	pig	१०८
सूई	शुचि, अहिंसा का ५६वाँ नाम	cleanliness, 56th name of Ahimsa	२५३
सूप	दाल	pulses	३३९
सूयग	चुगलखोर	slanderer	८०
सूयगड	सूत्रकृतांग	sutrakritanga	३७७
सूल	शूली	gallows	४६
सूलिय	शूली	gallows	२८
सूसरपरिवाइणी	वीणाविशेष	a type of Veena	४१७
सेण	श्येन-बाजपक्षी	hawk	१९
सेणावई	सेनापति	commander of army	२३३
सेउ(तु)	पुल	bridge	२६
सेय	स्वेद, पसीना	sweat	३६२
सेल	पाषाण	a rock	१९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेल्लग	शल्यक जन्तु	an animal	१८
सेह	शरीर पर काँटे वाला जन्तु-सेही	porcupine	१८
सेहंब	रायता आदि	a dish made of curd	४२५
सोणिय	रक्त	blood	२२
सोणी	कटि	back	२१०
सोत्थिय	स्वस्तिक	swastika	१८७
सोम्मा	सौम्य	sober	२१०
सोय	शोक	grief	३०
सोयरिया	सूअरों का शिकार करने वाले	boar hunters	३२
संकड	व्याप्त	wide spread	३७
संकम	उतरने का मार्ग	down-path	२६
संकरो	वस्तुओं का परस्पर मिलाना, परिग्रह का ७वाँ नाम	to mix things; 7th name of Parigraha	२२८
संकुल	व्याप्त	wide-spread	३७
संख	शंख	conch shell	२०३
संघयणे	अस्थियों की शारीरिक रचना	bone structure	३५३
संचयो	चय-वस्तुओं की अधिकता, परिग्रह का दूसरा नाम	aquisition; second name of Parigraha	२२८
संजमो	संयम, अहिंसा का एक नाम	restraint; a name for ahimsa	२५३
संठाण	संस्थान-शारीरिक आकृति	body constitution	१२७
संडासतुंड	संडास की आकृति की तरह मुँह वाला जीव	an animal	३४
संथवो	बाह्य पदार्थों का अधिक परिचय, परिग्रह का २२वाँ नाम	description of outside things; 22nd name of Parigraha	२२८
संधिच्छेय	खात खोदने वाला	a digger	१३०
संपाउप्पायओ	झूठ आदि पाप को करने वाला, परिग्रह का १८वाँ नाम	indulgence in sins including falsity; 18th name of parigraha	२२८
संदण	युद्धरथ तथा देवरथ	a war chariot or a divine chariot	२८
संबाह	संबाध, बस्तीविशेष	a place of habitation	२२४
संबर	सांभर	a large antelope	१७
संभारो	संभार, जो अच्छी तरह से धारण किया जाये, परिग्रह का छठा नाम	proper dress; sixth name of Parigraha	२२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संमुच्छिम	सम्मूर्च्छिम, बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाला जीव	living beings of asexual origin	२१९
संवरो	संवर, अहिंसा का ४२वाँ नाम	blockage of karmas; 42nd name of Ahimsa	२५३
संवट्टगसंखेवो	हिंसा का एक नाम	a name for violence	८
संसग्गि	मैथुन का एक नाम	a name for copulation	१७९
संसेइम	पसीने से पैदा होने वाला जीव	living organism born in sweat	२१९
संरक्खणा	संरक्षणा-मोहवश शरीर आदि की रक्षा करना, परिग्रह का १६वाँ नाम	to protect body out of fondness; 16th name of parigraha	२२८
सिंग	सींग	horn	२२
सुंसुमार	जलचर जन्तुविशेष	an aquatic animal	१७
हडि	काष्ठ का खोड़ा	wooden shakle	१४९
हत्थिमड	हाथी का कलेवर	cadaver of elephant	४२३
हणि हणि	प्रतिदिन	each day	३३७
हत्थंदुय	हस्तान्दुक, एक प्रकार का बन्धन	a kind of bondage	१४९
हय	घोड़ा	horse	१७
हयपुंडरीय	हृदपुण्डरीक पक्षी	a bird	१९
हरिएसा	चाण्डाल	keeper of cremation ground	३२
हल	हल	a plough	१९४
हस्स	हास्य	laughter	३०
हियंत	हृदय और आँत	heart and intestine	२२
हिमवंत	इस नाम का पर्वत	a mountain	३४६
हिरण्ण	चाँदी	silver	३९६
हीण	हीन	lowly	७१
हीणसत्ता	सत्त्व से रहित	weak	७१
हुलियं	शीघ्र	quick	३७
हूण	हूण नामक जाति	hun tribe	३३
हंस	हंस	swan	३३
हिंसविहंसा	हिंस्य (हिंस्र) विहिंसा, हिंसा का चौथा नाम	beastly violence; 4th name of violence	८
हुंड	बेडोल शरीर	dis-shaped body	३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व में पहली बार जैन साहित्य के इतिहास में एक नये ज्ञान युग का शुभारम्भ

(जैन आगम, हिन्दी एवं अंग्रेजी भावार्थ और विवेचन के साथ। शास्त्र के भावों को उद्‌घाटित करने वाले बहुरंगे चित्रों सहित)

१. **सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र** — मूल्य ५००/–

भगवान महावीर की अन्तिम वाणी। आदर्श जीवन विज्ञान तथा तत्त्वज्ञान से युक्त मोक्षमार्ग के सम्पूर्ण अंगों का सारपूर्ण वर्णन। एक ही सूत्र में सम्पूर्ण जैन आचार, दर्शन और सिद्धान्तों का समग्र सद्‌बोध।

२. **सचित्र दशवैकालिक सूत्र** — मूल्य ५००/–

जैन श्रमण की अहिंसा व यतनायुक्त आचार संहिता। जीवन में पद–पद पर काम आने वाले विवेकयुक्त, संयत व्यवहार, भोजन, भाषा, विनय आदि की मार्गदर्शक सूचनाएँ। आचार विधि को रंगीन चित्रों के माध्यम से आकर्षक और सुबोध बनाया गया है।

३. **सचित्र नन्दी सूत्र** — मूल्य ६००/–

मतिज्ञान–श्रुतज्ञान आदि पाँचों ज्ञानों का विविध उदाहरणों सहित विस्तृत वर्णन।

४. **सचित्र अनुयोगद्वार सूत्र (भाग १, २)** — मूल्य १,२००/–

यह शास्त्र जैनदर्शन और तत्वज्ञान को समझने की कुंजी है। नय, निक्षेप, प्रमाण, जैसे दार्शनिक विषयों के साथ ही गणित, ज्योतिष, संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, प्राचीन लिपि, नाप–तौल आदि सैकड़ों विषयों का वर्णन है। यह सूत्र गम्भीर भी है और बड़ा भी है। अतः दो भागों में प्रकाशित किया है।

५. **सचित्र आचारांग सूत्र (भाग १, २)** — मूल्य १,०००/–

यह ग्यारह अंगों में प्रथम अंग है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, सम्यक्त्व, संयम, तितिक्षा आदि आधारभूत तत्त्वों का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। भगवान महावीर का जीवन–चरित्र, उनकी छद्मस्थ चर्या का आँखों देखा वर्णन तथा जैन श्रमण का आचार–विचार दूसरे भाग में है। दोनों भाग विविध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक चित्रों से युक्त।

६. **सचित्र स्थानांग सूत्र (भाग १, २)** — मूल्य १,२००/–

यह चौथा अंग सूत्र है। अपनी खास संख्या प्रधान शैली में संकलित यह शास्त्र ज्ञान, विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, गणित, इतिहास, नीति, आचार, मनोविज्ञान, पुरुष–परीक्षा आदि सैकड़ों प्रकार के विषयों का ज्ञान देने वाला बहुत ही विशालकाय शास्त्र है। भावार्थ और विवेचन के कारण प्रत्येक पाठक के लिए समझने में सरल और ज्ञानवर्धक है।

७. **सचित्र ज्ञाताधर्मकथा सूत्र (भाग १, २)** — मूल्य १,०००/–

भगवान महावीर द्वारा प्रवचनों में प्रयुक्त धर्मकथाएँ, उद्‌बोधक, रूपक, दृष्टान्त आदि जिनके माध्यम से तत्त्वज्ञान सहज ही ग्राह्य हो गया है। विविध रोचक रंगीन चित्रों से युक्त। दो भागों में सम्पूर्ण आगम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. सचित्र उपासकदशा एवं अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र — मूल्य ६००/–

सप्तम अंग उपासकदशा में भगवान महावीर के प्रमुख १० श्रावकों का जीवन-चरित्र तथा उनके श्रावक धर्म का रोचक वर्णन है। नवम अंग अनुत्तरौपपातिकदशा में उत्कृष्ट तपःसाधना करने वाले ३३ श्रमणों की तप ध्यान-साधना का रोमांचक वर्णन है। भावों को स्पष्ट करने वाले कलात्मक रंगीन चित्रों सहित।

९. सचित्र निरयावलिका एवं विपाक सूत्र — मूल्य ६००/–

निरयावलिका में पाँच उपांग हैं। भगवान महावीर के परम भक्त राजा कूणिक के जन्म आदि का वर्णन तथा वैशाली गणतंत्राध्यक्ष चेटक के साथ हुए महाशिलाकंटक युद्ध का रोमांचक चित्रण तथा भगवान अरिष्टनेमि एवं भगवान पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षित अनेक श्रमण-श्रमणियों का चरित्र इनमें है।

विपाक सूत्र में अशुभ कर्मों के अत्यन्त कटु फल का वर्णन है, जिसे सुनते ही हृदय द्रवित हो जाता है, तथा सुखविपाक में दान, तप आदि शुभ कर्मों के महान् सुखदायी पुण्य फलों का मुँह बोलता वर्णन है। भावपूर्ण रोचक कलापूर्ण चित्रों के साथ।

१०. सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र — मूल्य ५००/–

आठवें अंग अन्तकृद्दशा सूत्र में मोक्षगामी ९० महान् आत्म-साधक श्रमण-श्रमणियों के तपोमय साधना जीवन का प्रेरक वर्णन है। यह सूत्र पर्युषण में विशेष रूप में पठनीय है। विविध चित्र व तपों के चित्रों से समझने में सरल सुबोध है।

११. सचित्र औपपातिक सूत्र — मूल्य ६००/–

यह प्रथम उपांग है। इसमें राजा कूणिक का भगवान महावीर की वन्दनार्थ प्रस्थान, दर्शन-यात्रा तथा भगवान की धर्मदेशना, धर्म प्ररूपणा आदि विषयों का बहुत ही विस्तृत लालित्ययुक्त वर्णन है। इसी में अम्बड़ परिव्राजक आदि अनेक परिव्राजकों की तपःसाधना का वर्णन भी है।

१२. सचित्र रायपसेणिय सूत्र — मूल्य ६००/–

यह द्वितीय उपांग है। धर्मद्वेषी प्रदेशी राजा को धर्मबोध देकर धार्मिक बनाने वाले ज्ञानी आचार्य केशीकुमार श्रमण के साथ आत्मा, परलोक, पुनर्जन्म आदि विषयों पर हुई अध्यात्म-चर्चा प्रत्येक जिज्ञासु के लिए पठनीय ज्ञानवर्द्धक है। आत्मा और शरीर की भिन्नता समझाने वाले उदाहरणों के चित्र भी बोधप्रद हैं।

१३. सचित्र कल्प सूत्र — मूल्य ६००/–

कल्प सूत्र का पठन, पर्युषण में विशेष रूप में होता है। इसमें २४ तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र है। साथ ही भगवान महावीर का विस्तृत जीवन-चरित्र, श्रमण समाचारी तथा स्थविरावली का वर्णन है। २४ तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित सुरम्य चित्रों के कारण सभी के लिए आकर्षक उपयोगी है।

१४. सचित्र छेद सूत्र (दशा-कल्प-व्यवहार) — मूल्य ६००/–

आचार-शुद्धि के लिए जिन आगमों में विशेष विधान है, उन्हें 'छेद सूत्र' कहा गया है। छेद सूत्रों में आचार-शुद्धि के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का वर्णन है। चार छेद सूत्रों में दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प तथा व्यवहार-ये तीन छेद सूत्र सभी श्रमण-श्रमणियों के लिए विशेष पठनीय हैं। प्रस्तुत भाग में तीनों छेद सूत्रों का भाष्य आदि के आधार पर विवेचन है। यह अंग्रेजी अनुवाद तथा १५ रंगीन चित्रों सहित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. **सचित्र भगवती सूत्र (भाग १, २, ३)** मूल्य १८००/–

पंचम अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र 'भगवती' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें जीव, द्रव्य, पुद्गल, परमाणु, लोक आदि चारों अनुयोगों से सम्बन्धित हजारों प्रश्नोत्तर हैं। यह विशाल आगम जैन तत्त्व विद्या का महासागर है। संक्षिप्त और सुबोध अनुवाद व विवेचन के साथ यह आगम लगभग ६ भाग में पूर्ण होने की सम्भावना है। प्रथम भाग १ से ४ शतक तक तथा १५ रंगीन चित्रों सहित प्रकाशित है। द्वितीय भाग में ५ से ७ शतक सम्पूर्ण तथा ८वें शतक का प्रथम उद्देशक लिया गया है। इस भाग में १५ रंगीन चित्र लिये गये हैं। तृतीय भाग में आठवें शतक के द्वितीय उद्देशक से नवें शतक तक सम्पूर्ण लिया गया है। साथ ही यह विषय को स्पष्ट करने वाले २२ रंगीन भाव पूर्ण चित्रों से युक्त है।

१६. **सचित्र जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र** मूल्य ६००/–

यह छठा उपांग है। इस सूत्र का मुख्य विषय जम्बूद्वीप का विस्तृत वर्णन हैं। जम्बूद्वीप में आये मानव क्षेत्र, पर्वत, नदियाँ, महाविदेह क्षेत्र, मेरु पर्वत तथा मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्र, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी आदि के विस्तृत वर्णन के साथ ही चौदह कुलकर, प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का चरित्र, सम्राट् भरत चक्रवर्ती की षट्खण्ड विजय आदि अनेक विषयों का वर्णन भी इस सूत्र में आता है। इसमें दिये रंगीन चित्र जम्बूद्वीप की भौगोलिक स्थिति, सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों की गति समझने में काफी उपयोगी सिद्ध होंगे। यह सूत्र जैन, भूगोल, खगोल और इतिहास का ज्ञानकोष है।

१७. **सचित्र प्रश्नव्याकरण सूत्र** मूल्य ६००/–

प्रश्नव्याकरण अर्थात् प्रश्नों का व्याकरण, समाधान, उत्तर। मानव मन में सदा से यह प्रश्न उठता रहा है कि राग-द्वेष जनित वे कौन-से भयंकर विकार हैं जो आत्मा को मलिन करके दुर्गति में ले जाते हैं और इनसे कैसे बचा जाए? इन प्रश्नों के समाधान स्वरूप प्रश्नव्याकरण सूत्र में इनका विस्तृत वर्णन किया गया है। इन्हें आगम की भाषा में आश्रव कहते हैं। ये आश्रव हैं-हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह। इन आश्रवों का स्वरूप और उनसे होने वाले दुःखों को इस सूत्र में भलीभाँति समझाया गया है।

साथ ही इन पाँच आश्रवरूपी शत्रुओं से बचने हेतु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह-यह पाँच संवर बताये गये हैं। सवंर से भावित आत्मा, राग-द्वेष जनित विकारों से दूर रहती है। आश्रव-संवर वर्णन में ही समग्र जिन प्रवचन का सार आ जाता है।

- इस प्रकार २३ जिल्दों में २४ आगम तथा कल्प सूत्र प्रकाशित हो चुके हैं। प्राकृत अथवा हिन्दी का साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी अंग्रेजी माध्यम से जैनशास्त्रों का भाव, उस समय की आचार-विचार प्रणाली आदि को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। अंग्रेजी शब्द कोष भी दिया गया है। पुस्तकालयों, ज्ञान-भण्डारों तथा संत-सतियों, स्वाध्यायियों के लिए विशेष रूप से संग्रह करने योग्य है।
- इस आगममाला के प्रकाशन में परम श्रद्धेय उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. की अत्यन्त बलवती प्रेरणा रही है। उनके शिष्यरत्न जैन शासन दिवाकर आगमज्ञाता उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म. द्वारा सम्पादित है, इनके सह-सम्पादक हैं प्रसिद्ध विद्वान् श्रीचन्द सुराना। अंग्रेजी अनुवादकर्त्ता हैं श्री सुरेन्द्र बोथरा तथा सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन।

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

IN THE HISTORY OF JAIN LITERATURE BEGINNING OF A NEW ERA OF KNOWLEDGE FOR THE FIRST TIME IN THE WORLD

(Jain Agams published with free flowing translation in Hind and English. Also included are multicoloured illustrations vividly exemplifying various themes contained in scriptures)

1. **Illustrated Uttaradhyayan Sutra** **Price Rs. 500/-**

   The last sermon of Bhagavan Mahavir. Essence of the ideal way of life and path of liberation based on philosophical knowledge contained in all Angas. The pious discourse encapsulating complete Jain conduct, philosophy and principles.

2. **Illustrated Dashavaikalik Sutra** **Price Rs. 500/-**

   The simple rule book of ahimsa and caution based Shraman conduct rendered vividly with the help of multicoloured illustrations. Useful at every step in life, even of common man, as a guide book of good behaviour, balanced conduct and norms of etiquette, food and speech.

3. **Illustrated Nandi Sutra** **Price Rs. 600/-**

   All enveloping discussion of the five facets of knowledge including Mati-jnana and Shrut-jnana.

4. **Illustrated Anuyogadvar Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,200/-**

   This scripture is the key to understanding Jain philosophy and metaphysics. Besides philosophical topics like Naya, Nikshep and Praman it contains discussion about hundreds of other subjects including mathematics, astrology, music, poetics, ancient scripts and weights and measures. The complexity and volume of this could be covered only in two volumes.

5. **Illustrated Acharanga Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,000/-**

   This is the first among the eleven Angas. It contains lucid description of ahimsa, samyaktva, samyam, titiksha and other fundamentals propagated by Bhagavan Mahavir. Eye-witness-like description of the life of Bhagavan Mahavir and his pre-omniscience praxis as well as details about ascetic conduct and praxis form the second part. Both parts contain multi-coloured illustrations on a variety of historical and cultural themes.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. **Illustrated Sthananga Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,200/-**

This is the fourth Anga Sutra. Compiled in its unique numerical placement style, this scripture is a voluminous work containing information about scriptural knowledge, science, astrology, geography, mathematics, history, ethics, conduct, psychology, judging man and hundreds of other topics. The free flowing translation and elaboration make the contents easy to understand and edifying even for common readers.

7. **Illustrated Jnata Dharma Katha Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,000/-**

Famous inspiring and enlightening religious tales, allegories and incidents told by Bhagavan Mahavir presented with attractive colourful illustrations. This works makes the abstract philosophical principles easy to understand. This is the sixth Anga complete in two volumes.

8. **Illustrated Upasak Dasha and Anuttaraupapatik Dasha Sutra** **Price Rs. 500/-**

This book contains the seventh and the ninth Angas. The seventh Anga, Upasak Dasha, contains the stories of life of ten prominent Shravak disciples of Bhagavan Mahavir with a special emphasis on their religious conduct. The ninth Anga Anuttaraupapatik Dasha contains thrilling description of the lofty austerities and meditation done by thirty three specific ascetics. With colourful illustrations.

9. **Illustrated Niryavalika and Vipaak Sutra** **Price Rs. 600/-**

Niryavalika has five Upangas that contain the story of the birth of king Kunik, a devout disciple of Bhagavan Mahavir. This also contains the thrilling and illustrated description of the famous Mahashilakantak war between Kunik and Chetak, the president of the republic of Vaishali. Besides these it also has life-stories of many Shramans and Shramanis of the lineage of Bhagavan Parshva Naath.

Vipaak Sutra contains the description of the extremely bitter fruits of ignoble deeds. This touching description inspires one towards noble deeds like charity and austerities the fruits of which have been lucidly described in its second section titled Sukha-vipaak. The colourful artistic illustrations add to the attraction.

10. **Illustrated Antakriddasha Sutra** **Price Rs. 500/-**

This eighth Anga contains the inspiring stories of the spiritual pursuits of ninety great men destined to be liberated. This Sutra is specially read during the Paryushan period. The illustrations related to austerities are specially informative.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. **Illustrated Aupapatik Sutra** **Price Rs. 600/-**

This the first Upanga. This contains lucid and poetic description of numerous topics including King Kunik's preparations to go to pay homage to Bhagavan Mahavir, Bhagavan's sermon and establishment of the religious order. This also contains the description of austerities observed by Ambad and many other Parivrajaks.

12. **Illustrated Raipaseniya Sutra** **Price Rs. 600/-**

This is the third Upanga. It provides an interesting and edifying reading of the discussions between Acharya Keshi Kumar Shraman and the anti-religious king Pradeshi on topics like soul, next life, and rebirth. This dialogue turned him into a great religionist. The illustrations of the examples showing the difference between soul and body are also instructive.

13. **Illustrated Kalpa Sutra** **Price Rs. 600/-**

Kalpa Sutra is widely read and recited during the Paryushan festival. It contains stories of life of 24 Tirthankars with more details about Bhagavan Mahavir's life. It also contains the disciple lineage of Bhagavan Mahavir and detailed ascetic praxis. The illustrations connected with the 24 Tirthankars add to its attraction as well as utility.

14. **Illustrated Chheda Sutra** **Price Rs. 600/-**

The Agams that contain special procedures for purity of conduct are called Chheda Sutra. These Sutras enumerate subtle rules for purity of conduct. Of the four Chheda Sutras three should be specially read by all ascetics – Dashashrut-skandh, Brihatkalpa and Vyavahar. This edition contains these three Chhed Sutras with elaboration based on commentaries (Bhashya) and other works. It also includes English translation and 15 multicolour illustrations.

15. **Illustrated Bhagavati Sutra (Parts 1, 2 & 3)** **Price Rs. 1800/-**

Vyakhyaprajnapti, the fifth Anga, is popularly known as Bhagavati. It contains thousands of questions and answers on various topics from four Anuyogas, such as soul, entities, matter, ultimate particle and universe. This voluminous Agam is an ocean of Jain metaphysics. With simple translation and brief elaboration it is expected to be completed in six volumes. The first volume contains one to four Shataks and 15 illustrations. The second volume contains five to seven Shataks complete

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and first Uddeshak of the eighth Shatak. As usual 15 colourful illustrations have also been included. The third volume contains second Uddeshak of the eighth Shatak and complete ninth Shatak. 22 colourful illustrations have also been included. These will make the complex topics simple and easy to understand. This is probably for the first time that an English translation of this Agam is being published.

16. **Illustrated Jambudveep Prajnapti Sutra** **Price 600/-**

This is the sixth Upanga. The central theme of this Sutra is detailed description of Jambudveep. The list of topics discussed in this include inhabited areas of Jambudveep continent, mountains, rivers, Mahavideh area, Meru mountain, the sun, the moon, planets, and constellations moving around the Meru; regressive and progressive cycles of time; people like the fourteen Kulakars, the first Tirthankar Bhagavan Risabhadeva; and incidents like the conquest of the six divisions of the Bharat area. The colourful illustrations included in this volume will be helpful in understanding the geographical conditions of Jambudveep as well as the movement of the sun, the moon and planets. The readers will find the beautiful multicoloured illustrations of incidents from Bhagavan Risabhadeva's life very lively. This Sutra is a compendium of Jain geography, cosmology and history.

17. **Illustrated Prashnavyakaran Sutra** **Price 600/-**

Prashnavyakaran means the grammer of questions, solutions and answers. Human mind is always faced with the question that what are those terrible perversions caused by attachment and aversion that tarnish the soul and push it to a tormenting rebirth, and how to avoid them? In order to answer these questions Prashnavyakaran Sutra starts by giving detailed description of these perversions. In Agamic terms they are called Aashravas. They are - violence, falsity, stealing, non-celibacy and covetousness. This Sutra vividly explains the definitions of these Aashravas and the miseries caused by them.

In order to protect oneself from these five Aashravas, the tormenters of mind, five Samvars have been defined. They are - Ahimsa, truth, non-stealing, celibacy and non-covetousness. A soul energized by Samvar remains free of the perversions caused by attachment and aversion. The descriptions of Aashrava and Samvar encapsulate the gist of the whole sermon of the Jina.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- Till date 24 Agams (including three parts of Bhagavati) and Kalpa Sutr have been published in 23 books. The English translation makes possible for those with passing knowledge of Prakrit and Hind t understand the content of Jain Agams including the religious practices a prevalent in ancient times. Also included in some of these editions ar glossaries of Jain terms with their meaning in English.
- Due to its demand by libraries, Jnana Bhandars, ascetics and lay reader this unique series may soon go out of print.
- The publication of this Agam series has been inspired by Uttar Bharatiy Pravartak Gurudev Bhandari Shri Padmachandra ji M. S. Its editor is hi able disciple Uttar Bharatiya Pravartak Shri Amar Muni ji Maharaj. Hi team includes renowned scholar Shri Shrichand Surana as associat editor, Shri Surendra Bothara and Sushravak Shri Raj Kumar Jain, a English translators.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्र प्र

Illustrated PRA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याकरण सूत्र

AVYĀKARAN SUTRA

प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म.

प्रस्तुत सूत्र के सम्पादक प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के एक तेजस्वी संत हैं।

जिनवाणी के परम उपासक गुरुभक्त श्री अमर मुनि जी का जन्म वि. सं. १९९३ भादवा सुदि ५ (सन् १९३६), क्वेटा (बलूचिस्तान) के मल्होत्रा परिवार में हुआ।

११ वर्ष की लघुवय में आप जैनागम रत्नाकर आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज की चरण-शरण में आये और आचार्यदेव ने अपने प्रिय शिष्यानुशिष्य भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज को इस रत्न को तराशने/सँवारने का दायित्व सौंपा। गुरुदेव श्री भण्डारी जी महाराज ने अमर मुनि जी को सचमुच अमरता के पथ पर बढ़ा दिया। आपने संस्कृत-प्राकृत-आगम-व्याकरण-साहित्य आदि का अध्ययन करके एक ओजस्वी प्रवचनकार, तेजस्वी धर्म-प्रचारक तथा जैन आगम साहित्य के अध्येता और व्याख्याता के रूप में जैन समाज में प्रसिद्धि प्राप्त की।

आपश्री ने भगवती सूत्र (४ भाग), प्रश्नव्याकरण सूत्र (२ भाग), सूत्रकृतांग सूत्र (२ भाग) आदि आगमों की सुन्दर विस्तृत व्याख्याएँ की हैं।

Pravartak Shri Amar Muni Ji M.

The editor-in-chief of this Sutra, is a brilliant ascetic affliated with Shri Vardhaman Sthanakvasi Jain Shraman Sangh.

A great worshiper of the tenets of Jina and a devotee of his Guru, Shri Amar Muni Ji was born in a Malhotra family of Queta (Baluchistan) on Bhadva Sudi 5th in the year 1993 V.

He took refuge with Jainagam Ratnakar Acharya Samrat Shri Atmaram Ji M. at an immature age of eleven years. Acharya Samrat entrusted his dear grand-disciple, Bhandari Shri Padmachandra Ji M. with the responsibility of cutting and polishing this raw gem. Gurudev Shri Bhandari Ji M. indeed, put Amar (immortal) on the path of immortality. He studied Sanskrit, Prakrit, Agams, Grammar and Literature to gain fame in the Jain society as an eloquent orator, an effective religions preacher and a scholar and interpreter of Jain Agam literature.

He has written nice and detailed commentaries of Bhagavati Sutra (in four parts), Prahsnavyakaran Sutra (in two parts), Sutrakritanga Sutra (in two parts) and some other Agams.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्र आगम साहित्य

PUBLISHERS & DISTRIBUTORS :

Padam Prakashan
Padam Dham, Narela Mandi, Delhi - 110 040
e-mail : padamparkashan@gmail.com

Shree Diwakar Prakashan
A-7, Awagarh House, M. G. Road, Agra - 2
Phone : 0562-2851165, 9319203291
e-mail : sansuman21@rediffmail.com
Website : jainbooks.co.in

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org